वक्तव्य

इस भारतीय इतिहास को हम बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रिय पाठको की सेवा मे उपस्थित करते है। इस ग्रन्थ के पूरे विषय को तीन भागो मे विभक्त किया गया है, जिन में से पहला अब जनता के सम्मुख है। इसमे हमारे प्राचीन इतिहास का वर्णन है जिसे बहुतेरे लोग यदि बिलकुल नही तो मुख्यतः कहानी मात्र मानते है। हमे आशा है कि इधर की खोज के सविधि अवलोकन से आलोचकों को विश्वास हो जायगा कि हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों मे ऐसी प्रचुर सामग्री वर्तमान है, जिसकी सहायता से प्राचीन भारत का सच्चा और क्रमबद्ध इतिहास लिखा जा सकता है।

इस इतिहास का पहला खण्ड, अर्थात् यह जिल्द प्रायः २२ शताब्दियों पर विस्तृत है (बी० सी० २७५० से बी० सी० ५६३ तक)। दूसरा खण्ड बौद्ध काल (बी० सी० ५६३) से चल कर हिन्दू साम्राज्य के अन्त पर समाप्त होगा और तीसरे मे मुसलिम तथा अँगरेज़ी समयो का हाल इस काल तक पाया जायगा। स्मरण रहे कि हिन्दू काल ४००० वर्षों से भी बड़ा है, पर मुसलिम और बृटिशकाल पूरे १००० वर्षों के भी नहीं है। द्वितीय समय का अन्त काल विविध प्रान्तो के लिये भिन्न है।

आशा करते हैं कि हमारे इस दीन परिश्रम से कदाचित् विद्वानो की प्रवृत्ति भारतीय प्राचीन इतिहास की ओर कुछ झुक जाय, क्योकि इस पर श्रम करने से वास्तव मे अलौकिक आनन्द आता है। इस ग्रन्थ के विषय तथा आधारो के विवरण भूमिका और ग्रन्थ मे मिलेंगे।

लखनऊ
१९९३

श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेव बिहारी मिश्र, } मिश्र बन्धु

———

भूमिका

हमारे प्राचीन इतिहास के दो प्रधान और एक दूसरे से पृथक् साधन है, अर्थात् वैदिक साहित्य और पुराण। वैदिक साहित्य मे संहिता (ऋक्, यजुः, साम और अथर्व), ब्राह्मण, उपनिषत्, आरण्यक, और सूत्र ग्रन्थों की गणना है। मुख्यतया ये सब धार्मिक साहित्य में माने जा सकते है और इनमे ब्राह्मण लेखको का प्राधान्य है तथा विषय बहुत करके धार्मिक है। पुराणो में लौकिक साहित्य की प्रधानता है और आदि मे इसका मूल प्रधानतया अब्राह्मण लेखकों और सहायको से भी सम्बन्ध रखता है। वेदो में सूतां, मागधो, चारणों आदि के कथन आये हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणों ने वैदिक साहित्य को स्मरण-शक्ति द्वारा सुरक्षित रक्खा, उसी प्रकार सूतों आदि ने (स्मरण शक्ति द्वारा) लौकिक साहित्य एवं राजवंशो के मूलों की रक्षा की। पुरोहितों आदि ने भी ऐसा ही किया। जब भगवान वेदव्यास ने प्राचीन साहित्य और सामग्री को इतना बढ़ा हुआ पाया कि बिना घरानो के विषय-विभाग किये हुये उसके नष्ट हो जाने का भय देख पड़ा, उस काल उन्होंने स्वयं वेदो का सम्पादन करके उनके चार भाग किये, और एक एक वेद को एक एक प्रधान शिष्य परम्परा मे बांट दिया। उसी समय उन्होंने रक्षणार्थ और वर्द्धनार्थ अन्य विषयों को अन्य शिष्यो मे बांटा। इस प्रकार स्वयं एक पुराण रचकर आपने इतिहास का विषय लोमहर्षण सूत को दिया। इस के दृढ़ आधारो का विवरण ग्रन्थ मे मिलैगा। वैदिक साहित्य मे घटनाओं के कथनो मे अत्युक्ति का प्रयोग पुराणो की अपेक्षा बहुत ही कम है। मेगास्थनीज़ कहता है कि उसने महाराज चन्द्रगुप्त के यहाँ प्राय: ६००० बी० सी० से चलने वाले राजाओ के वशवृत्त देखे थे। इन बातो से प्रकट है कि हमारा प्राचीन ऐतिहासिक विभाग अत्युक्तिपूर्ण तो है किन्तु निर्मूल नही।

इतिहास प्राचीनो के केवल गुणगानार्थ नहीं लिखा जाता वरन् हम लोगो का यह भविष्य के लिये सबसे बड़ा पथ-प्रदर्शक है। हमारे तथा पूर्व पुरुषो के सभी अनुभव बहुत करके इतिहास द्वारा ही सुर-

दिखला कर मनुष्य जाति के विचारों को उन्नत बनाते हैं। बिना प्राचीन कर्म समुदाय तथा उनके फलों को जाने हुए मनुष्य भविष्य के लिये नितांत अनभिज्ञ रहेगा। इसलिये इतिहास का अस्तित्व मानव जाति के लिये परमोपयोगी है।

इतिहास की आवश्यकता राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विषयों ही के लिये नहीं है वरन सभी बातों की उन्नति सम्बन्धी अभिज्ञता के लिये तद्विषयक ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता है। फिर भी केवल "इतिहास" कहने से उपर्युक्त तीनों विषयों ही का कथन माना जाता है, विशेषतया राजनीति का। हमने इस इतिहास में इन्हीं तीनों विषयों की प्रधानता रक्खी है। उनका प्राचीनकालिक ज्ञान बहुत करके भारतीय साहित्य से होता है। इस लिये उन विषयों के साथ साहित्यो-न्नति-सम्बन्धी भी कुछ कथन कर दिये गये हैं।

सभी पूर्वी देशो मे पाया जाता है। इस ग्रन्थ के लेखक भी इस विषय पर भक्ति रखते हैं और श्राद्ध के विषय पर भी उन्हे श्रद्धा है। फिर भी सत्य से बढ़कर कोई धर्म नही है। जब किसी विषय विशेष का वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से किया जावे तब लेखक को वर्ण्य विषय का यथावत् रूप दिखलाना पड़ेगा, चाहे उसमे उसकी इच्छा के प्रतिकूल बहुत से दोष ही क्यो न आ जावें। जब तक ऐसा वर्णन न होगा तब तक ग्रन्थ इतिहास कहलाने की पात्रता न रक्खेगा।

पूर्वज-पूजन के विचारों ने यहाँ पौराणिक समय मे विशेष बल पाया। इसीलिए उस काल का साहित्य न केवल प्राचीन छिद्रो का गोपन करता है, वरन् अत्युक्तिपूर्ण कथनो की भरमार करके माहात्म्य बढ़ाने का प्रयत्न बहुधा कहीं भी नहीं छोड़ता। फल बिलकुल विपरीत हुआ। जिन लोगो का माहात्म्य बढ़ाने को पौराणिक ऐतिहासिको ने दोष-गोपन और अत्युक्तिपूर्ण कथन किये, उन्हीं लोगो के अस्तित्व पर भी सभ्य ससार को आज संदेह हो रहा है। यह संदेह इतिहासाभाव से नही है, वरन् ऐतिहासिको की अनुचित भक्ति के कारण ही आज यह बुरा दिन हम लोगों के सामने उपस्थित हुआ है कि रामचन्द्र, युधिष्ठिर आदि महापुरुषो को न केवल बहुतेरे पाश्चात्य ऐतिहासिक, वरन् कुछ भारतीय लेखक भी कल्पित पुरुष मात्र मानते है।

रावण के दस शिर, तथा नृसिंह का साथ ही साथ मनुष्य और सिंह होना, जनमेजय का सारे संसार के सर्पो को मन्त्रो से पकड़ बुलाकर अग्निकुण्ड मे डालना, महाबीर का शतयोजन समुद्र कूद जाना तथा द्रोणाचल पर्वत उठा लेना, प्रियव्रत द्वारा नौ दिनों तक रात ही न होने देना, किसी का दस हज़ार वर्ष जीना, बानरो, रीछो, यहां तक कि साँपो का भी मनुष्यो की भाँति बातचीत करना और विज्ञान के गूढ़ तत्त्वो को हल करना तथा उनके नर-मादाओ का मनुष्यो से विवाह तक होना (यथा जाम्बवन्ती और उलूपी), सूर्य या हवा का मानुषी स्त्रियो से पुत्र उत्पन्न करना (यथा कर्ण और भीम), सुरसा साँपिन का १०० योजन (८०० मील) मुँह फैला देना इत्यादि के कथन अनर्गल है ही। वेदादि पूज्य ग्रन्थो मे इनका कहीं पता भी नहीं है। वेदो, ब्राह्मणो, सूत्रो, तथा पुराणो मे पुराण ही अत्युक्ति पूर्ण हैं।

शेष ग्रन्थों में ऐसे असत्य कथन नहीं पाये जाते और उनमें असम्भव घटनाओं का अभाव सा है. किन्तु प्राचीन साहित्य में पुराण ही सब से नवीन हैं और इन्हीं का चलन देश में अधिक है। इसीलिये पश्चिमीय लोगों की दृष्टि में हमारा पूरा प्राचीन काल समस्त इतिहास की कोटि से बाहर निकल जाता है।

इस विषय पर परिश्रम करनेवाले पर एक ओर पगड़बाज़ पण्डित तो इसलिये बिगड़ेंगे कि उसने कुम्भकर्ण की मूँछ को एक योजन से तिल भर भी कम क्यों माना, और दूसरी ओर पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतवासी बिना मुसकराये न रहेंगे और यही कहेंगे कि इस पोपलीला को इतिहास के सुन्दर वस्त्र पहिनाने का प्रयत्न सर्वथा व्यर्थ और तिर-स्करणीय है। उनके विचार में ऐसे विषय पर परिश्रम करनेवाला मनुष्य अपने समय को नष्ट करता है। अब पण्डितों का विचार है कि वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों और पुराणों को ध्यानपूर्वक पढ़कर अवश्य माहात्म्य-सम्बन्धी अत्युक्तियों को सहज ही में अलग कर, हमारे प्राचीन ग्रन्थों एवं अन्य ऐतिहासिक आधारों से सच्चा बुद्धिग्राह्य इति-हास निकल सकता है।

कथन होते ही रहेंगे. किन्तु प्रधान और राय चौधरी के परिश्रमों से रामचन्द्र से इधर वाला सन्दिग्ध इतिहास बहुत कुछ दृढ़ हो गया है। इन दोनों महाशयों ने अपने कथनों के आधारों को प्रचुरता पूर्वक लिख दिया है। पार्जिटर महोदय ने भी आधार उसी प्रचुरता से लिखे हैं, किन्तु उन्होंने अयोध्या के मानव कुल की वंशावली में जो प्राय: २६ नाम पौराणिक सम्पादकों की भूल से रामचन्द्र के पूर्व या पश्चात् वाली बिरादरी की नामावली से उठकर पूर्वपुरुषों की गणना में आ गये हैं, उन्हें अलग नहीं कर पाया, वरन इन २६ नामों के इस वंशावली में अनुचित प्रकारेण बढ़ जाने से सारी सम सामयिक ऐल वंशावलियों को अधूरी मानकर उनके पूर्व पुरुषों की दस बारह नामावलियों से चौबीस पच्चीस नाम छूटे हुये निराधार समझा। इस कारण से उनके सम सामयिक कथनों में स्वभावश: बहुत से भ्रम पड़ गये हैं। उन्हें इसी कारण से अनेकानेक वशिष्ठों और विश्वामित्रों के अस्तित्व की निराधार कल्पना करनी पड़ी है। इसलिये यद्यपि उन्होंने वंशावलियाँ वैवस्वत मनु से अन्त पर्य्यन्त दी हैं, तो भी वे स्थान स्थान पर भ्रमात्मक हैं।

इन सब बातों पर ध्यान देने से निश्चय होता है कि बुद्ध से रामचन्द्र तक के समय की नामावलियाँ तो दृढ़ हैं, किन्तु वैवस्वत मनु से रामचन्द्र तक के समय वाले वंश वृक्षों पर अब तक उतनी दृढता नहीं आई है। इसलिये हमें वंशावलियों के इस भाग पर विशेष छान-बीन करनी पड़ी है। वैवस्वत मनु से पूर्व वाले जो छै और मन्वन्तर हैं, उनमें से स्वायम्भुव मन्वन्तर की वंशावली तो प्राय: सभी पुराणों में है, किन्तु इतर पांचो मनुवों में से चार के वंश मात्र ज्ञात हैं तथा चाक्षुष मनु का वंश वृक्ष यद्यपि दिया हुआ है, तथापि है वह अधूरा। यह पुराणों से प्रकट है कि ये पांचों मनु स्वायम्भुव मनु के ही वंशधर थे। इन छवों मन्वन्तरों का पार्जिटर महोदय ने न तो विवरण लिखा है, न वंश वृक्ष। प्रधान और राय चौधरी के विषय रामचन्द्र से पहले जाते ही नहीं, सो उनके द्वारा इन मन्वन्तर कालों का कथन न होना स्वाभाविक ही है। हमने मन्वन्तरों के समयों का भी विवरण, जहाँ तक पुराणों में मिलता है वहां तक दे ही दिया है। इस काल को

अनिश्चित समझकर छोड़ देना अनुचित है, क्योंकि जिन पौराणिक और वैदिक आधारों पर इतर कालों का इतिहास दृढ़ किया गया है, वही दोनों आधार इन मन्वन्तर कालों का भी कथन करते ही हैं।

हमारे विवरण में यह प्राचीन काल चार भागों में विभक्त है, अर्थात् सत्ययुग या मन्वन्तर काल, त्रेता या मनु-रामचन्द्र काल, द्वापर या राम-युधिष्ठिर काल, और आदिम कलिकाल या युधिष्ठिर-बुद्ध काल। ऊपर के तीनों आधारों द्वारा बुद्ध से द्वापरान्त तक का इतिहास निर्णीत है, तथा सत्ययुग और त्रेतावाले पर हमें अधिक परिश्रम करना पड़ा है, क्योंकि सत्ययुग का हाल तो इधर किसी ने कहा ही नहीं, और त्रेता के सम्बन्ध में उपर्युक्त २६ पुश्तों के बढ़ जाने से पार्जिटर कृत समकालीनताओं के कथन बिगड़ गये हैं। आशा है कि पाठक महाशय इन २६ पुश्तों सम्बन्धी कथनों एवं समकालीनताओं के विवरणों पर विशेष ध्यान देंगे। इन २६ नामों के मुख्य वंशावली से अलग करने का सूत्रपात प्रधान और राय चौधरी से प्रस्तुत है, केवल अन्य विषयों के विवरण लिखने के कारण उन्होंने इस विषय पर विशेष कथन नहीं किया है। फिर भी प्रधान महाशय के ग्रन्थ में इसका कुछ वर्णन है भी। इन २६ नामों को हमने दक्षिण कोशल, हरिश्चन्द्र और सगर सम्बन्धी राजकुलों में विभक्त किया है। इस विभाजन के कारण ग्रन्थ में यथास्थान मिलेंगे। इनके मान लेने से सारी पौराणिक समकालीनताओं का सामञ्जस्य बैठ जाता है। वंशावलियों के लिखने तथा आधारों के खोजने में हम को इन तीनों ग्रन्थकर्त्ताओं से बहुत कुछ सहायता मिली है।

विनीत

लखनऊ
सं० १९९३

[illegible]

विषय सूची

भारतवर्ष का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोल एवं अन्य जानने योग्य बातें ।

भारतवर्ष एशिया महाद्वीप के तीन दाक्षिणात्य प्रायद्वीपो मे से एक है। इसका क्षेत्रफल १८,०२,६२९ वर्गमील है और १९३१ मे इसकी जन-संख्या बर्मा छोड़ कर ३३,८३,४०,९०७ थी। उत्तर से दक्षिण तक इसकी बड़ी से बड़ी लम्बाई प्राय: १९०० मील है और अधिक से अधिक चौड़ाई भी बहुत करके इतनी ही है। इसके उत्तर मे हिमाचल नामक भारी पहाड़ है, दक्षिण मे हिन्द महासागर, पूरब मे बर्मा और बङ्गाल की खाड़ी, तथा पश्चिम मे सफेद कोह, सुलेमान पहाड़, बलोचिस्तान एव अरब का समुद्र। हिमालय पहाड़ प्राय: १,५०० मील लम्बा और २०० मील चौड़ा है। इसकी ऊँचाई बहुधा २०,००० फ़ीट के लगभग है और कही कही इससे भी अधिक है यहाँ तक कि ऊँची से ऊँची चोटी गौरीशकर २९,००२ फीट ऊँची है। इसकी अन्य ऊँची चोटियों के पहाड़ किंचिचंगा, धौलागिरि, नन्दादेवी और नंगा पर्वत कहलाते है। इस पहाड़ मे कई देश बसे हैं जिनमे कश्मीर, गढ़वाल, तिब्बत, नैपाल, भूटान और शिकम की मुख्यता है। तिब्बत का सम्बन्ध प्राचीनकाल से भारत से न रहकर चीन से रहा है और शेष उपरोक्त पार्वतीय देश भारत से सम्बद्ध रहे आये हैं। हिमाचल की वृहदंश लम्बाई बर्फ से ढकी रहती है। इसीलिये इसका नाम हिमालय पड़ा। इसका जल-वायु पाश्चात्य देशा के समान ठढा एव स्वास्थ्यकर है। यहाँ के रहने वाले भारतीय शेष प्रांतों के निवासिया से गोरे भी हैं। यहाँ केसर, मृगमद, पश्मीने आदि का अच्छा व्यापार होता है।

भारत में हिमालय के अतिरिक्त विन्ध्याचल, पूर्वी घाट, पश्चिमी घाट, नीलगिरि आदि पहाड़ हैं। हिमाचल पर एक छोटा सा ज्वालामुखी भी है और सीताकुण्ड आदि कुछ गरम जल के सोते हैं। भारत में नदियाँ बड़ी और लम्बी हैं। इनमें सिन्धु, सतलज, व्यास, रावी, चनाब, झेलम, सरस्वती, गंगा, जमुना, सरजू, गोमती, गण्डक, धसान, चम्बल, केन, सोन, ब्रह्मपुत्र, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा और ताप्ती की मुख्यता है। भारतीय नदियों में गंगा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी, सरयू, गोमती, चर्मण्वती (चंबल), क्षिप्रा, वेत्रवती, महानदी और गण्डकी विशेष पुनीत समझी जाती हैं।

भारत के इस समय दो मुख्य भाग हैं अर्थात् अंग्रेजी-राज्य और देशी रियासतें। बर्मा अब भारत का भाग नहीं है। देशी रियासतें भी अङ्गरेजी रक्षा में हैं किन्तु नैपाल, भूटान और तिब्बत स्वतन्त्र हैं। अंगरेजी सरकार द्वारा भारतीय शासन का भार भारत सचिव को सौंपा गया है, जिनका उत्तरदायित्व अँगरेजी पार्लमेंट को है जिसके हाथ में उनकी बहाली तथा बर्खास्तगी है। इन्हीं की सलाह से ब्रिटेन के बादशाह भारत का शासन करते हैं। भारत में सम्राट् के प्रतिनिधि स्वरूप एक वाइसराय नियुक्त रहते हैं जिन्हें बड़े लाट कहते हैं। एक वाइसराय प्रायः पांच वर्ष तक रहता है।

देशी भारत मे प्राय: ७०० रियासतें हैं जिनमे हैदराबाद, बड़ोदा, मैसूर, ग्वालियर, कश्मीर, उदयपुर, ट्रावंकोर, इन्दौर, जयपुर, पटियाला, कोल्हापुर, जोधपुर, भरतपुर, भूपाल, भाऊनगर, अलवर, रीवां, आदि की प्रधानता है। इन रियासतों को अन्तरग शासन मे बहुत करके स्वतत्रता प्राप्त है किन्तु ये बाहरी रियासतों से सन्धि विग्रह आदि नही कर सकतीं।

मुख्य प्रान्तों एवं रियासतों का क्षेत्रफल तथा सन् १९३१ की जनसंख्या नीचे दी जाती है:—

नाम प्रान्त या रियासत	रक़बा वर्गमीलों में	सन् १९३१ की जनसंख्या
बङ्गाल ...	७८,९९९	८,१७,१३७६९
बिहार उड़ीसा ...	८३, १८१	३,७६,७६,५७६
बंबई सिंध ...	१,२३,०६४	२,१८,५४,८४१
मध्यदेश बरार ...	८१,३९९	१,५५,०७,७२३
मद्रास ...	१,४२,३३०	४,६५,७५,६७०
पंजाब ...	९९,७७९	२,३५,८०,८५२
युक्तप्रान्त ...	१,०७,२६७	४,८४,०८,७६३
देशी रियासतें ...	भारत का प्राय: २/५	८,१७,१३,७६९
योग भारत का	१८०२६२९	३३,८३,४०,९०७

देशी भारत फैलाव मे भारत का प्राय: $\frac{2}{5}$ है और जनसंख्या मे $\frac{1}{4}$। समस्त भारत का फैलाव १८ लाख वर्गमील ऊपर लिखा जा चुका है। इसमे से ७,०९,५५५ वर्गमीलो मे देशी रियासते हैं।

भारतवर्ष एक प्रकार से संसार भर का सारांश है। इसमें सभी प्रकार की जलवायु है और दुनिया भर की प्रायः सारी वस्तुयें यहाँ कहीं न कहीं पाई जाती हैं। भारत पहाड़ों तथा समुद्रों द्वारा सारी दुनिया से पृथक् सा है। इसमें घुसने के लिये खैबर, बोलन घाटियां आदि मानो फाटक हैं। इन्हीं मार्गों से समय समय पर यहाँ कई जातियाँ आईं, अर्थात आर्य, सीदियन, शक, कुशान, हूण और मुसलमान। इनमें से अब आर्य और मुसलमान ही पृथक् रह गये हैं, तथा शेष जातियाँ और भारत के आदिम निवासी आर्यों में ही मिल गये हैं। आसाम तथा तिब्बत की ओर से भी भारत में आने के मार्ग हैं किन्तु इन मार्गों से आर्य तथा कुछ मंगोल जातियों को छोड़ कर भारत में कोई विजयिनी धारा आई नहीं। यूरोपीय जातियाँ समुद्र मार्ग द्वारा दक्षिण से आईं। पहले विजयिनी जातियाँ उत्तर से प्रारम्भ होकर दक्षिण तक फैलती थीं किन्तु यूरोपीय जातियाँ दक्षिण से चल कर उत्तर फैलीं। हिमालय पहाड़ ने हमारे लिये हजारों वर्षों तक एक दुर्गम दुर्ग का काम दिया और आज भी दे रहा है। संसार के सभी पहाड़ों से यह ऊँचा है। रक्षक होने के अतिरिक्त नदियों का गोत कर हमारे लिये जलप्रद भी है। भगर्भ विद्या विशारदों ने जाना है।

बर्फीले ठंडे पानी को उत्तर की ओर न आने देकर उत्तर का जलवायु तादृश ठंढा नहीं होने देती। हिमाचल और दक्षिणी भारत के बीच में फिर भी समुद्र भरा रहा. किन्तु यह पृथ्वी भी धीरे धीरे उठती गई तथा सिन्धु, गंगा, जमुना, ब्रह्मपुत्रा, घाघरा आदि नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी यहाँ जमती गई, यहाँ तक कि समुद्र बंगाल की खाडी तक ढकेल दिया गया और पूरा देश बनकर तैयार हो गया। गगा जी के मुहाने पर सुन्दरबन के पास अब भी नई भूमि निकलती आती है। एक समय वह था कि मध्य यूरोप तथा मध्य एशिया में भारी समुद्र लहराता था। धीरे धीरे वहाँ की भी भूमि उठकर जर्मनी आदि देश बन गये। इसी समुद्र के विषय मे छाया समान कुछ कुछ कथन प्राचीन ग्रथो मे पाये जाते है।

भारत मे तीन ऋतुएँ प्रधान हैं अर्थात् जाडा, गर्मी और बर्सात। कार्तिक से आधे फाल्गुन तक जाडा समझा जाता है, चैत्र से आषाढ़ तक गर्मी और श्रावण से क्वार तक वर्षा। मुख्य बर्साती महीने सावन भादों है। माघ मे भी प्राय: १५ दिन बर्सात होती है। भारतवर्ष मे कितने ही देशो तथा विदेशी सवत् थोड़े या बहुत प्रचलित हैं। विशेषत: विक्रमी सवत्, सन् ईस्वी एव शालिवाहन शाके का अधिक प्रचार है। धर्म कार्य सकल्पादि मे सृष्टि सवत् का हवाला दिया जाता है। भूमि सम्बन्धी हिसाब के काग़ज़ो मे फसली सवत् पूर्व भारत मे प्राय: लिखा जाता है। विक्रम-सवत् चांद्र वर्ष है और शक सवत् सौर। अधिकांश भारतनिवासी हिन्दू है जिनके मतानुसार द्वारिका, बदरीनाथ, जगन्नाथ और सेतुबन्ध रामेश्वर चारो दिशाओ मे चार धाम है तथा अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जैन और द्वारका सप्त पुरियो मे हैं। ये दशो स्थान परम पवित्र माने जाते है। भारत मे १२ ज्योतिर्लिङ्ग परम पवित्र हैं। इनमे विश्वनाथ, घृष्णेश्वर, बदरीनाथ, केदारनाथ, वैद्यनाथ, श्रीनाथ, महाकालेश्वर, सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, त्र्यम्बकेश्वर, ओंकारेश्वर तथा रामेश्वर की गणना है।

धान्य मे पूर्वी देशो मे चावल की प्रधानता है। शेष भारत मे धनी पुरुष विशेषतया गेहूँ का व्यवहार करते हैं और साधारण लोग जौ, जुवार, चना, बाजरा आदि का। 'अधिकांश लोग मांस नही खाते।

उनके यहाँ दाल और दूध का अधिक व्यवहार होता है। पशु पक्षी भारत में हजारों प्रकार के पाये जाते हैं। प्राचीनकाल में सुगन्धित पुष्पों ही की महिमा थी किन्तु अब योरोपीय लोगों की देखा देखी सुन्दर निर्गन्ध पुष्पों का भी माहात्म्य बढ़ रहा है। मृदुल स्वभाव भारतीयों का मुख्य गुण है। प्राचीन काल से इनमें धर्म का बड़ा मान रहा है। यहाँ के धर्मों में हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसल्मान और ईसाई मतों की प्रधानता है। वेद हमारे परम पूज्य और प्राचीन ग्रंथ हैं। बौद्धों का धर्म-ग्रन्थ त्रिपिटक है, मुसलमानो का कुरान और ईसाइयों का बाइबुल। हिन्दू मत के मुख्य आधार स्वरूप कृष्णद्वैपायन व्यास, बादरायण व्यास तथा शंकराचार्य हैं, बौद्ध मत के गौतम बुद्ध, मुसल्मानो के मुहम्मद, ईसाइयों के जीजस क्राइस्ट, तथा जैनों के आदि नाथ।

विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा को सभी शिरोधार्य मानते आये हैं। यदि कुरुक्षेत्र के द्वैपायन व्यास एक प्रधान आचार्य थे तो ठेठ दक्षिण के शंकराचार्य दूसरे। उत्तरी गौतम और दाक्षिणात्य आपस्तंब के कथन समभाव से सारे देश मे माने गये और लोगो ने यह जानने की कभी इच्छा न की कि यह किस प्रान्त के निवासी थे। शेषनाग, काश्मीरी मम्मट और कान्यकुब्जीय भरत समभाव से काव्याचार्य माने गये हैं। उनकी जातीय भिन्नता से किसी प्रान्त ने उनके कथनों मे अश्रद्धा न दिखलाई। वेदो, ब्राह्मणो, सूत्रो. स्मृतियों. और पुराणों का सभी कहीं समभाव से मान होता आया है। अतः यदि राजनैतिक सम्बन्ध, भाषा और जलवायु हमे पूरी एकता नहीं देते, तो सभ्यता और विचार साम्य उसके पूर्ण सहायक हैं। इन्ही बातों पर भारत की भारतीयता निर्भर है। आशा है कि आगे के पृष्ठावलोकन से इन कथनो के पुष्टी करण मे कुछ विचार मिलेंगे।

हमारा भारत एक ऐसा अनोखा देश है जो एक साथ ही बृद्ध और बालक है। प्राचीन सभ्यता की उन्नति प्रदर्शन मे यह वृद्ध भारत है किन्तु वर्तमानकाल की पाश्चात्य सभ्यता के लिये, कला कौशल और व्यापारिक गरिमाओ के विचार से, यही बूढ़ा आज कल बाल भारत हो रहा है। पयफेन सी श्वेत पगड़ी के साथ अब इसे सलमे सितारे की टोपी भी पसंद आने लगी है। धार्मिक विचारो तथा दर्शनशास्त्रो मे यह आज आधी दुनिया का गुरु है और शेषार्द्ध भी थोड़े ही दिनो मे इसका महत्व मानती हुई देख पड़ती है। राजनैतिक उन्नति भो इसने ८वीं शताब्दी पर्यन्त सब से अच्छी की किन्तु पीछे समय के उलट फेर से इसने अपना पाठ भुला दिया और अब बाल भारत होकर पाश्चात्य राजनैतिक प्रणाली की प्रवेशिका परीक्षा मे उत्तीर्ण होने का यत्न कर रहा है। कला कौशल और व्यापार मे भो यही आशा है कि यह वृद्ध बालक थोड़े ही दिनो मे अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त होगा। अङ्गरेजो के सम्बन्ध से इसने थोड़े ही दिनो मे नवीन विचारो मे भी अच्छी उन्नति करली है और आगे भी उत्तरोत्तर वृद्धि की आशा है। इन दिनो थोड़े ही वर्षो से उन्नति की धारा इस वेग के साथ प्रवाहित हो रही है कि जिससे शीघ्र सारे देश के आप्यायित होजाने की दृढ़ आशा है।

दूसरा अध्याय

भारतीय इतिहास के आधार

विनसेंट स्मिथ महाशय ने भारतीय इतिहास के आधारों को चार भागों में विभक्त किया है, अर्थात् स्वदेशी ग्रंथ, विदेशियों की रचनाएं, पाषाण लिपि, सिक्के, आदि और सम सामयिक ऐतिहासिक ग्रन्थ। इन दिनों मोहंजोदड़ो और हड़प्पा की खोदाइयों से भी परमोत्कृष्ट ऐतिहासिक मसाला प्राप्त हुआ है। स्वदेशी ग्रंथों में स्मिथ ने राज-तरङ्गिणी, महाभारत, रामायण, जैन पुस्तकें, जातक और अन्य बौद्ध-पुस्तकें, लंका के पाली के ऐतिहासिक ग्रन्थ, पुराण आदि का वर्णन किया है। राजतरङ्गिणी १२वीं शताब्दी का ग्रन्थ है और स्मिथ साहब का विचार है कि उसमें कथित समय से थोड़े ही पहले का वर्णन ऐतिहासिक सत्यता रखता है, शेष अनिश्चित है। कई महाशयों ने व्याकरण एवं अन्य ग्रन्थों के साधारण वर्णनों से इतिहास की पुष्टि की है। ऐसे अनेक वर्णन खोज निकाले गए हैं

पहले ही बहुत रही है। आपने महाभारत और हरिवंश पर विशेष ध्यान नहीं दिया है, यद्यपि इन ग्रंथों से भी इतिहास लेखक को बहुत बड़ी सहायता मिलती है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक मैकडानल महाशय ने महाभारत के मूलरूप को बौद्धकाल से भी पुराना माना है। तिलक महाशय ने भी इस विषय पर अनेक प्रमाण दिये हैं। पार्जिटर महाशय ने पुराणों पर अच्छा श्रम किया है। पुराणो की प्राचीनता आपने मानी है। हम इन ग्रन्थो को भी बहुत करके प्रमाणनीय मानते हैं। स्मिथ महाशय का भी मत है कि योरोपीय लेखको ने पुराणो की उचित से अधिक अवहेलना की है। विष्णु और मत्स्य पुराणो ने मौर्य्य तथा आन्ध्र घरानो का इतिहास बहुत करके शुद्ध दिया है। जैसा कि भूमिका में हमने लिखा है, संहिता, ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थ वैदिक तथा बहुत कर के ब्राह्मण साहित्य के अंग है और पुराण मूलतः बहुधा अब्राह्मण के।

विदेशी लेखको मे भारत का सब से पहला कथन फारस के बादशाह हिस्टस्पस के पुत्र डेरियस ने परसेपुलिस और नक़्श रुस्तम में किया। इस दूसरे ग्रन्थ का समय ४८६ बी० सी० है। इससे कुछ पीछे हेरोडोटस ने और भी कुछ अधिक वर्णन किया। सिकन्दर का धावा ३२५-२३ बी० सी० मे हुआ। इसके थोड़े ही पीछे सीरिया और मिश्र के राजदूत मौर्य्य-महाराजाओ के यहाँ पटना मे रहने लगे। इन लोगो ने अपने विवरण छोड़े है जिनमे मेगास्थनीज़ का सर्व प्रधान है। दूसरी शताब्दी के एरियन का वर्णन भी अच्छा है। यह यूनान और इटली का राजसेवक था। पहली शताब्दी बी० सी० मे चीनी लेखक सोमाचीन ने भारत का बहुत अच्छा वर्णन किया। ३९९ मे चीनी यात्री फाहियेन और ६२९ मे ह्यू यन्-त्सान भारत मे आये। इन दोनो के कथन बहुत ही उपयोगी हैं विशेष कर के ह्यू यन्-त्सान के। इस यात्री ने भारत मे १६ वर्ष रह कर अपना अनमोल ग्रंथ रचा जिसका ऐतिहासिक मूल्य वर्णनातीत है। इन्होंने कन्नौज, वल्लभी, दक्षिण और कांची के राज्यों का वर्णन किया और बहुत सी ऐसी बहुमूल्य कथायें भी लिख दीं जो विना इस प्रकार रक्षित हुए नष्ट हो जातीं। आठवीं शताब्दी का मंजुश्री मूलकल्प

नामक एक उत्कृष्ट बौद्ध ग्रन्थ निकला है जिस में प्रायः ३०० श्लोकों में प्राचीन से तत्कालीन पर्य्यन्त इतिहास कथित है। महमूद गज़नवी के साथ अलबरूनी नामक एक ऐसा अरबी पंडित आया था, जिसने संस्कृत भाषा पढ़कर भारत का वर्णन लिखा जो बहुत उपयोगी है। मुसलमानी ऐतिहासिक फ़रिश्ता आदि ने भी भारत का इतिहास रचा है किन्तु इन्होंने मुसलमानी बल बढ़ा हुआ कहने के विचार से हिन्दुओं का प्रताप घटा कर लिखा। बर्नियर मनूचीं आदि ने भी मुग़ल भारत का आँख देखा कथन किया और हाल में प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार ने औरङ्गजेब का विशद इतिहास पाँच भागों में रचा है। पाश्चात्य विद्वानों में से सर विलियम जोन्स, कोलब्रुक, विल्सन, डा० मिलर, पार्जिटर, प्रिंसेप, डा० बरनल, डा० फ़्लीट, प्रोफ़ेसर रॉलिन्सन और रायल एशियाटिक सोसायटी तथा एशियाटिक सोसायटी आफ़ बङ्गाल, भारतीय विषयों पर प्रामाणिक माने जाते हैं।

क्रम बद्ध इतिहास नहीं है। बाणभट्ट ने ६२० के ग्रन्थ हर्षचरित्र में भी १८ पुराणें कहीं तथा अग्नि, भागवत और स्कन्द पुराणों का व्यवहार किया। "मिलिन्द के प्रश्न" नामक बौद्ध ग्रन्थ ३०० ई० से प्रथम का है। इसमे भी पुराणो के किसी न किसी रूप का कथन आया है। गुप्त राजाओ के समय मे पुराणो को बहुत करके वर्त्तमान रूप मिला। उस समय कुछ घटा बढ़ा कर इनका जीर्णोद्धार हुआ।

उपर्युक्त सामग्री के अतिरिक्त बहुत से अन्य आधार भी मिलते हैं। इनमे पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, परमाल रासो, टाड राजस्थान, गुजराती राष्ट्र माला आदि प्रधान हैं। सरकारी ग्रन्थ गजेटियरों मे भी प्रायः प्रत्येक स्थान का इतिहास थोड़े मे दे दिया गया है। राजपूताने की रियासतों मे भी अच्छे इतिहास-ग्रन्थ उपलब्ध हैं विशेषतया मेवाड तथा जैसलमेर मे। इनके अतिरिक्त हिन्दी, मराठी, बंगला आदि के प्राचीन साहित्य ग्रंथों मे ऐतिहासिक सामग्री प्रचुरता से मिलती है। भारत मे ऐतिहासिक सामग्री की कमी नहीं है पर समय निरूपण एवं अत्युक्ति और पक्षपात पूर्ण वर्णनों से उचित ऐतिहासिक घटनाओं का निकालना कुछ कठिन काम है। मुसलमानी लेखक अपने पक्ष मे खींचतान करते है और हिन्दू रजवाड़े अपना प्रभाव बढ़ाकर लिखते हैं। कुछ हिन्दू धर्म ग्रन्थ प्राचीन घटनाओं को लाखों वर्षों की प्राचीनता देना चाहते हैं और यूरोपीय लेखक प्राचीन से प्राचीन घटनाओ को कल की प्रमाणित करते हैं। इन सब झगड़ो से बचकर कोई सर्वमान्य इतिहास लिखना बहुत सरल नहीं है। इसीलिए स्मिथ महाशय ने ६०० बी० सी० से ही ऐतिहासिक काल माना है। इससे प्रथम वाले इतिहास के आधार स्वरूप बहुत करके हिन्दू धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रन्थ ही मिलते हैं। इनमें वेदो, ब्राह्मणो, स्मृतियो, सूत्रो, पुराणो आदि की प्रधानता है। वेदो मे घटनाएं घटा बढ़ा कर नहीं लिखी गयी है, वरन् सच्चे और प्रामाणिक कथन उनमे पाये जाते हैं। यदि देवताओ के माहात्म्य एवं प्रकट धार्मिक अत्युक्तियों को निकाल डालिये, तो वेदों का एक एक अक्षर सच्ची ऐतिहासिक सामग्री देता है। वस्तुतः वेदों का सब से बड़ा मूल्य ऐतिहासिक है। फिर भी इतनी कठिनाई है, कि वेद इतिहास

कथन के लिए नहीं बनाये गये वरन् उनमें ऐतिहासिक सामग्री अप्रासंगिक प्रकार से है। उनके मुख्य विषय कुछ और ही हैं और उपमा, रूपक, उदाहरण, महिमा-कथन आदि के सहारे हम लोगों को ऐतिहासिक सामग्री वेदों में मिलती है। फिर भी इतनी त्रुटि रह जाती है कि पूरा ऐतिहासिक वर्णन नहीं मिलता, वरन उनके इशारे मात्र उपलब्ध हैं। वेदों में मनु, इक्ष्वाकु, पृथु, दिवोदास, सुदास, ययाति, यदु, पुरु, त्रैतन, शम्बर, वृत्र, नमुचि, बलि, पुरोचन, प्रह्लाद आदि सैकड़ों महाशयों के नाम आए हैं और बहुतों के सम्बन्ध में कुछ कुछ घटनाएँ भी लिखी हैं, किन्तु पूर्वापर क्रम, मिलित वर्णन आदि कुछ भी नहीं है। उनमें ऐतिहासिक रीति पर कुछ नहीं कहा गया है वरन स्फुट प्रकार से घटनाएँ कथित हैं।

प्रामाणिक नहीं है। इसलिए सत्यता की जांच में सारा वैदिक साहित्य पौराणिक से दृढ़तर है। फिर भी पुराणों के शुद्ध कथन मान्य अवश्य हैं। उनमे सामग्री प्रचुर तथा अच्छी है। समय सम्बन्धी अभाव अवश्य कठिन आपत्ति है, किन्तु प्रसिद्ध राजघरानों के वंशवृक्ष मिलाने से और समकालिक नामों के सहारे उनका पूर्वापर क्रम स्थिर करने से मोटे मोटे समय मिल जाते हैं जिनमें इतिहास का वर्णन हो सकता है। फिर भी प्रत्येक राज्य के सम्बन्ध में सन् संवतों का ब्योरा खोज निकालना अभी तक असाध्य समझ पड़ता है। इसलिए आदिमकाल से ६०० बी० सी० तक के समय को हम भी अनैतिहासिक काल कहेंगे। अपने ग्रंथ को ३ भागों मे हमने विभक्त किया है जिसमे पहला भाग यही अनैतिहासिक काल सम्बन्धी है, दूसरे भाग मे ६०० बी० सी० से प्रायः १३१४ ई० तक का वर्णन होगा और तीसरे मे १३१४ से अब तक का। हम ऊपर वेदो, ब्राह्मणों, सूत्रों तथा पुराणो को इतिहासाधार कह आये हैं। कोई ग्रन्थ उसी समय के इतिहास का आधार हो सकता है जब कि वह बना हो या उससे कुछ पहले का। वेद, ब्राह्मण और सूत्र विशेषतया ब्राह्मणो द्वारा कहे और रचित किये गये। इस प्रकार यह वैदिक साहित्य बहुधा ब्राह्मण कृत है। पौराणिक साहित्य का मूल बहुधा चारणो, सूतो, मागधो आदि के द्वारा रचित हुआ जैसा कि भूमिका मे कहा गया है। इसके व्यास कृत पुराण तथा इतरो के चार मीमांसा ग्रन्थ प्राचीन काल मे बने। अब हम कुछ अन्य आधारो का कथन करके यह अध्याय समाप्त करेंगे।

डाक्टर राय चौधरी के विचार

ऐतिहासिक ज्ञान के लिए हमारे निम्नलिखित ग्रन्थ मान्य हैं:—

अ—परीक्षित के पीछे दृढ़ किया हुआ हिन्दू साहित्य।

१—चारों वेद, मुख्यतया अथर्ववेद की अन्तिम पुस्तक।

२—एतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय एवं अन्य प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ।

आ—बिम्बिसार के पीछे का हिन्दू साहित्य, रामायण, महाभारत, और पुराणग्रन्थ।

इ—बिम्बिसार के पीछे का निश्चित कालीन हिंदू साहित्य।
कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र, पातंजलि महाभाष्य, पाणिनीय अष्टाध्यायी।

ई—बौद्ध सुत्त, विनय सुत्त तथा जातक ग्रन्थ। ये प्रायः शुंग पूर्व के हैं।

उ—जैन ग्रन्थ ४५४ ई० में लिपिबद्ध हुए।

कृत, दूसरे ग्रंथ मागध नरेश सेनजित के समय के, तीसरे नन्दवंश के समय के और चौथे गुप्त कालीन। भागवत बहुत पीछे की। वायु अन्य पुराणों से पहले की है।

इतर आधारों के अनुसार कथन

वायु, ब्रह्माण्ड और विष्णु पुराणों का कथन है कि व्यास ने चारों वेद पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु को दिये। अनन्तर आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्प जोक्तियां बांटो। कल्प वाक्यों के आधार पर उन्होंने एक पुराण बनाई, तथा उसे एवं इतिहास को अपने शिष्य रोम हर्षण या लोम हर्ष को सिखलाया। रोम हर्षण ने उसको छः रूपों मे अपने निम्न षट शिष्यों को पढ़ाया:—आत्रेय सुमति, काश्यप-कृतव्रण, भरद्वाज, अग्निवर्चस, वशिष्ठ, मित्रयु, सावर्णि, सोमदत्ति और सुदर्शन शांशपायन। इनमे से काश्यप सावर्णि, और शांशपायन ने एक एक संहिता बनाई। पहली संहिता रोमहर्षण कृत थी। इनमे से शांशपायन की संहिता का आकार नहीं दिया हुआ है; शेष तीनों संहितायें चार चार हज़ार श्लोको की थीं।

~~~
~~~
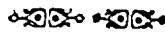
तीसरा अध्याय

भारतीय इतिहास का महत्व

कुछ इतिहासज्ञों ने लिखा है कि भारतीय इतिहास बहुत फीका है। इसमें बार बार एक बड़ा साम्राज्य क़ायम होकर तथा कुछ दिन भारी रियासत चला कर टूट जाता है और विविध प्रान्तों में छोटी छोटी रियासतों में बँट कर छिन्न भिन्न हो जाता है। भरत, रामचन्द्र, जरासन्ध, युधिष्ठिर, अजातशत्रु, अशोक, प्रवरसेन, समुद्रगुप्त, शर्ववर्मन, हर्षवर्द्धन, अलाउद्दीन, औरंगज़ेब, माधवराव आदि अवश्य भारी सम्राट थे, किन्तु इन सब के पीछे समय पर देश की एकता छिन्न भिन्न हो गयी और वह छोटी छोटी रियासतों में बँटकर सैकड़ों राजाओं से भर गया। एक दो नहीं बारह पन्द्रह बार होने इतने हेर फेर भी स्वतन्त्रता, प्रतिनिधि बल, प्रजा के अधिकार आदि में समय के साथ कोई विशेष वृद्धि न होने से यदि कोई ... राजनैतिक

खंड मे आज तक लगान की रीति कहते हैं । यदि कहीं नेवते जावें तो जो साधारण मान मरातब होता है उसे दस्तूर कहते है ।

हमारे यहाँ प्राचीन और नवीन राजाओ मे से प्राय: किसी ने घर जानी मन मानी नहीं की । सब लोग लोक प्रचलित विचारों तथा आचारो पर शासन करते रहे । धार्मिक सहनशीलता इतनी रही है कि हिन्दू, जैन, बौद्धादि सभी हिल मिल कर एक ही जगह बने रहे और पारसी भी यहीं आ बसे, किन्तु कभी धार्मिक महा संग्राम नहीं हुए । सभी को अपने विचारो एव आचारो पर चलने का पूरा अधिकार रहा । हमारे सभी प्रधान शासको मे से अशोक बड़ा धर्म फैलानेवाला था, किन्तु उसने भी बौद्धों तथा ब्राह्मणो का सदैव प्राय: समभाव से सत्कार किया और धर्म फैलाने मे कभी बल का प्रयोग नही किया । यही दशा गुप्तवशी हिन्दू-शासको की रही । प्रसिद्ध महाराज हर्षवर्द्धन का भी यही हाल था । केवल एक मात्र राजा बेन ऐसा हुआ जिसने अपने को ब्राह्मणों से पुजवाने की आज्ञा प्रचारित की । उसकी प्रजा ही ने उसका बध कर डाला और फिर भी राज्य लोभ न करके उसी के पुत्र प्रसिद्ध राजा पृथु को शासक बनाया, जिसने इस उत्तमता से राज्य किया कि धरणी उसी के नाम पर पृथ्वी कहलाने लगी । क़ानून बनाने के लिये हमारे यहाँ राजा को कभी प्रयत्न नहीं करना पड़ता था और विद्वान ब्राह्मणो के रचे हुये ग्रन्थ अपनी भलाई अथच लोक-मान्यता के कारण राज्य सभा मे क़ानून की भाँति माने जाते थे । यही दशा पेशवाओं के राज्य तक मे रही । इतनी भारी उन्नति प्राप्त करने के लिए थोड़ी शिक्षा अथवा थोड़ा प्रभाव पर्याप्त नही हो सकता ।

योरोप तथा अमेरिका मे दास प्रथा उठाने के लिये भारी-भारी संग्राम हुए किन्तु हमारे यहाँ यह प्रथा कभी बलवती हुई ही नहीं । जितनी उन्नति हिन्दू राज्य ने शासन पद्धति, प्रजा-अधिकार, स्वतन्त्रता आदि के विचारो मे कर ली उतनी तत्कालिक किसी साम्राज्य ने पृथ्वी-मडल मे नही कर पाई । यदि समय मिलता तो अन्य उन्नत देशो की भाँति भारत भी बारहवी शताब्दी के पीछे इन विचारो को दृढ़ करता,

किन्तु हिन्दू मुसलमानों की सामाजिक एवं धार्मिक भिन्नता ऐसी पड़ गई कि प्रजा और राजा में एकता का भाव मुसलमानी राज्य में नहीं आया। इसी से मुसलमान लोग अपने को सदा विजयी समझते रहे और उनकी पाँच शताब्दियों में प्रजा के अधिकार समुचित प्रकार से उन्नत नहीं हुए। यह दशा राजनैतिक विचारों एवं अधिकारों की रही और एक प्रकार से कुछ फीकी कही जा सकती है, किन्तु अन्य बातों में भारतीय इतिहास फीका नहीं है। गौतम बुद्ध के पूर्व से हमारे यहाँ कुछ प्रजातन्त्र राज्य थे। ऐसे कुछ राज्य गुप्त काल तक चले। किसी देश की ऐतिहासिक गरिमा उसके द्वारा सांसारिक सभ्यता की उन्नति पर निर्भर है, अर्थात इस उन्नति में उसने जितनी सहायता पहुँचाई होगी उसी के अनुसार उसका इतिहास अच्छा अथवा बुरा कहा जायगा। संस्कृत के इतिहास-लेखक मैकडानल महाशय ने इस विषय पर २० पृष्ठों का एक अध्याय लिख कर भारत को बहुत बाधित किया है। उन्होंने दिखलाया है कि किन किन बातों से भारत ने सांसारिक सभ्यता को वर्द्धमान किया। उन्हीं के आधार पर यहाँ कुछ वर्णन करते हुए हम आगे बढ़ेंगे।

का विवरण इसी काल मे है। इससे जान पड़ता है कि दास थे अवश्य किन्तु गणना मे वे इतने कम थे तथा उनके साथ ऐसा सुव्यवहार था कि मेगास्थनीज को समाज मे उनका अस्तित्व ही न समझ पड़ा। इसके बाद प्राय: २०० वर्ष तक यूनानियों का आना जाना भारत मे रहा।

डिओक्रिसास्टुमस नामक एक यूनानी का समय ५१ से ११७ ई० तक का है। इसने लिखा कि हिन्दुस्तानी लोग अपनी भाषा मे होमर-कृत इलियड के वीरों का गीत गाते हैं। इससे उसका प्रयोजन महाभारत से समझ पड़ता है और जान पड़ता है कि यह लोग उस समय महाभारत को जानते थे। महमूद गजनवी के जब धावे हुये तब उसके साथ अलबरूनी नामक एक पडित आया।

कुछ पादरियो ने श्रीकृष्ण सम्बन्धी बहुत सी घटनाओं को ईसा वालियों से मिलती देखकर कृष्ण पूजन की उत्पति उन से मानी है, किन्तु कृष्ण पूजन मेगास्थनीज़ के समय भी चलता था, जिसके ३०० वर्ष पीछे ईसा उत्पन्न हुए। दूसरी शताब्दी बी० सी० मे रचित महाभाष्य मे लिखा है कि कृष्ण सम्बन्धी नाटक भी खेले जाते थे। इन बातों से प्रकट है कि ईसा की जीवनी में घटना वर्णन पर कृष्ण की जीवनी का प्रभाव पड़ा है। बालकृष्ण पूजन पीछे का है और इसके विवरण मे ईसाई कथनों का कुछ प्रभाव असम्भव नहीं है।

भारतीय पर यूनानी नाटकों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, ऐसा मैकडानल महाशय ने दिखलाया है। फिर भी यूनानी लोगो का भारत मे बहुत आना जाना था जिससे संभव है कि भारतीय का यूनानी नाटकों पर प्रभाव पड़ा हो। शकुन्तला नाटक की प्रस्तावना के आधार पर प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटी ने फ़ाउस्ट की प्रस्तावना बनायी। भारतीय भूत प्रेतो की कथा कहानियो तथा उपन्यासो का प्रभाव योरोप मे बहुत अधिक पड़ा। छठवी शताब्दी में पंचतंत्र के समान एक बौद्ध ग्रंथ का अनुवाद फारसी वैद्य बरजोई ने पहलवी भाषा में सासानी बादशाह

खुसरो अनुशीरवाँ की आज्ञा से किया। वह बौद्ध ग्रन्थ और अनुवाद अब दोनों लुप्त हो गये हैं, किन्तु इस पहलवी पुस्तक का अनुवाद अरबी भाषा में ८ वीं शताब्दी में हुआ, जो अब भी प्रस्तुत है। इसका नाम कलैला दमना है। इसमें लिखा है कि बिदपा नामक एक हिन्दुस्तानी दार्शनिक ने एक दुष्ट राजा को भला बना दिया। बिदपा विद्यापति था। इसी कलैला दमना के समय पर फारसी ग्रन्थ अनवार सुहेली लिखा और मध्य कालिक योरोप में अनेकानेक भाषाओं में कई ग्रन्थ रचे गये। छान्दोग्य उपनिषद् में भी ऐसी ही कहानियाँ पाई जाती हैं जिससे प्रकट है कि यह भारत में बहुत काल से प्रचलित थीं। शतरंज का खेल भी योरोप में भारत से गया। इसे संस्कृत में चतुरंग कहते हैं, क्योंकि उसमें चतुरंग सेना होती है, अर्थात् रथी, गजी, घुड़सवार और पदाती।

शूल्व सूत्रों पर ही अवलम्बित होना सिद्ध होता है। ज्योतिष शास्त्र में भारतीय ऋषियो ने यूनान आदि से कुछ सहायता ली, जैसा कि हेली, होरा शास्त्र, रोमक सिद्धान्त आदि शब्दों से भी प्रकट होता है। फिर हिन्दुस्तानियों ने स्वतन्त्र उन्नति बहुत की और इसका प्रभाव पश्चिम पर भी पड़ा है। ८वीं एवं ९वीं शताब्दी मे भारतीयों ने अरबो को ज्योतिष विद्या सिखलाई और हिन्दू ज्योतिष ग्रन्थों का अनुवाद अरबी मे हुआ। यवनाचार्य्य आदि ब्राह्मण ज्योतिषी अरब मे हुये। बग़दाद के खलीफा ने कई बार हिन्दू ज्योतिषाचार्य्यों को इस काम के लिये अपने यहाँ बुलाया। आयुर्वेद मे हिन्दुओ के कई ग्रन्थ खलीफा बग़दाद द्वारा ७ वी शताब्दी के लगभग अनुवादित कराये गये। चरक और सुश्रुत के कई ग्रन्थ ८ वीं शताब्दी मे अरबी मे अनुवादित हुये। १० वी शताब्दी का अरबी वैद्य अलरज़ी इनको प्रमाण स्वरूप लिखता है। चरक महाराजा कनिष्क का राजवैद्य था। १७वीं शताब्दी तक अरबी आयुर्वेद इस योरोपीय शास्त्र का आधार स्वरूप रहा। अरबी आयुर्वेदीय ग्रन्थो के जो लैटिन मे अनुवाद हुये उनमे चरक का नाम बहुधा आया जिससे प्रकट है कि अरबी वैद्यगण चरक का बड़ा आदर करते थे। वर्तमान योरोप ने कृत्रिम नाक का बनाना भारत से ही सीखा। जब सिकन्दर का धावा हुआ तब उसके वैद्य सर्पदंश निवारण नहीं कर सकते थे। इसलिये इस काम पर उसने भारतीय वैद्य रक्खे। अनेकानेक योरोपीय साहित्यिक भाव बौद्ध ग्रन्थो से निकले। यहाँ तक इस विषय पर जो विचार लिखे गये है वे मैकडानल महाशय के आधार पर है।

बाबू गंगाप्रसाद एम० ए० पेंशनर डेपुटी कलेक्टर युक्त प्रान्त ने "धर्मो के मूल स्रोत" (Fountainhead of Religion) नामक ग्रन्थमें बड़ी विद्वत्ता पूर्वक सिद्ध किया है कि संसार के सारे भारी धर्म अन्त मे वैदिक पर अवलम्बित हैं। यह तो प्रकट ही है कि बौद्धमत वैदिक धर्म का सन्तान है। बाबू साहब ने अकाट्य तर्कों से सिद्ध किया है कि मुसलमानी मत का आधार ईसाई है तथा ईसाई का बौद्ध। वे यहूदी का पारसी और इसका वैदिक मत आधार स्वरूप सिद्ध करते हैं।

अतः ऐसा प्रकट होता है कि संसार के सारे मत पन्त में वैदिक धर्म पर अवलम्बित है। जुरास्टर और ब्राह्मण के मत वैदिक पर अवलम्बित माने जा सकते हैं अथवा कम से कम इन के मूल एक थे। "जान दि बैपटिस्ट" ईसा के गुरु बौद्ध सिद्धान्तों से अभिज्ञ थे। उन्हीं से ईसा ने बौद्ध मत जाना होगा। बाबू साहब ने बाल से बौद्ध और ईसाई सिद्धान्त एक ही जगह रख कर उनकी समानता दिखलाई है। रमेशचन्द्र दत्त ने दिखलाया है कि बौद्ध और ईसाई गिरजाओं में बहुत बड़ी समानता है। ... नामक ईसाई पादरी ने तिब्बत में जा बौद्ध ... देखीं.

इङ्गलैण्ड में क़ानून बनाने की आवश्यकता पड़ी। कपड़े की बारीकी यहाँ बहुत प्राचीन काल से स्थिर थी। दर्शन शास्त्र का तो भारतवर्ष मानो केन्द्र ही रहा है और यहाँ का साहित्य संस्कृत, प्राकृत एवं देशी भाषाओं में बहुत ही प्रशंसास्पद है। ऋषियों तथा योगियों की यहाँ इतनी भरमार मची रही है कि इनका बाहुल्य उचित से बहुत अधिक कहा गया है। ऐसी ऐसी अनेकानेक अन्य बातें दिखलाई जा सकती हैं। अतः केवल पूर्ण राजनैतिक उन्नति न होने के कारण ही भारतीय इतिहास को फीका कहना नहीं फबता जब कि उपरोक्त अन्य उन्नतियाँ इसे गौरव प्रदान करती हैं।

ग्रन्थ	मनु से रामचन्द्र तक पीढ़ी	मनु से वृहद्बल तक	मनु से सुमित्र तक	विवरण
विष्णु पुराण	६३	९२	१२१	इसमेसुमित्रसुरथ तक का नाम है, सुमित्र का नही।
शिव पुराण	५६	८२	११०	
भविष्य पुराण	६२	९१	११९	
{ वाल्मीकीय रामायण	३६	—	—	रामके आगे वंश नही कहा गया।
श्री भागवत	६०	८८	११५	

इस चक्र के देखने से प्रकट है कि रामायण को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थो की संख्याएँ बहुत मिलती हैं। रामायण में केवल ३६ नाम है। कुछ लोगों का विचार है कि वाल्मीकि महाराज ने पूरा वंश वृत्त न कह मुख्य मुख्य नाम ही दिये हैं। बाकी चारों ग्रन्थों मे नामों के लिखने मे भी कुछ कुछ अन्तर है, अर्थात् कोई उसी नाम को कुछ ऊपर लिखता है और कोई नीचे। इसी तरह कोई उसी पीढ़ी के लिये औरों से अनमिल नाम देता है। बहुत से राजाओं के कई नाम थे, जैसे एक श्रीकृष्ण के ही नाम यदि गिनाये जावें तो बहुत बड़ी संख्या हो जावे। इसलिये जहाँ एक ही नाम मे भेद है वहाँ प्राय: उसी राजा के कई नाम होने से ऐसा हुआ है। फिर भी मुख्य मुख्य नाम सब ग्रन्थो मे एक ही हैं और मामूली नामों मे भी बहुत थोड़ा भेद है। इसलिये ध्यान पूर्वक पढ़कर मानना पड़ेगा कि कुल ग्रन्थों का मिलान करने से भी पौराणिक राजवंश वर्णन मे ऐसा गड़बड़ नही देख पड़ता कि कोई प्रवीण पुरुष उसे प्रामाणिक न माने। सब पुराणो तथा अन्य ग्रन्थो की गवाही जोड़ने से राजवंश दृढ़ जँचते हैं।

पुराणों के लक्षण कहने में पंडितों ने पाँच मुख्य बातें मानी हैं जिनका वर्णन अन्यत्र होगा। उनके अनुसार जाँचने पर विष्णु पुराण एक बहुत ही माननीय ग्रन्थ ठहरता है। इसमें राजवंशों का कथन है भी बहुत अच्छा, बड़ा और पूरी पीढ़ियों तक। यह ग्रन्थ कहने को तो विष्णु पर है, किन्तु साम्प्रदायिक ग्रन्थों की भाँति इसमें पक्षपात कहीं नहीं है और सर्वत्र गम्भीरता देख पड़ती है। इसलिए हम इसका पौराणिक राजवंश मुख्यतया विष्णु पुराण के ही आधार पर कहेंगे, किन्तु फिर भी ऊपर लिखे हुये ग्रन्थों तथा महाभारत, हरिवंश, अग्नि पुराण आदि को भी मिलाकर जहाँ तक हो सकेगा शुद्ध राजवंश लिखे जावेंगे। विष्णु पुराण और हरिवंश के कथन पूर्ण हैं।

जैन पंडितों ने भी पुराणों के महत्त्व को माना है। १४वीं शताब्दी की जैन पुस्तक शत्रुंजय माहात्म्य में लिखा है कि "पुराणों के तीन भेद हैं, अर्थात् हिन्दू, जैन और बौद्ध। इनमें वायु, मत्स्य और विष्णु पुराणों की राजवंशावलियाँ माननीय हैं और कितने ही विषयों के सम्बन्ध में कुछ लोगों को विष्णु पुराण अन्य सभी पुराणों से कम प्रामाणिक प्रतीत होता है।" टॉड की ऐतिहासिक तथा भौगोलिक टिप्पणियों में भी अच्छी ऐतिहासिक सामग्री मिलती है।

रायचौधरी महाशय का एक तीसरा ग्रंथ इन्हीं दोनों के बीच में निकला है। उसमे परीक्षित के समय से गुप्त काल के पूर्व तक का हाल दृढ़ है। प्रधान ने रामचन्द्र के समय से महाभारत काल तक का वर्णन बड़े परिश्रम के साथ वैसा ही अच्छा लिखा है, जैसा कि रायचौधरी ने परीक्षित से पीछे वाला हाल कहा। इन दोनों ग्रन्थों से भगवान रामचन्द्र के समय तक का इतिहास दृढ़ हो जाता है। उसके पूर्व के विवरण में अब तक सन्देह उपस्थित है। रामचन्द्र से महाभारत पर्यन्त वंशावली निरूपण करके प्रधान महाशय ने बड़ा ही भारी कार्य किया है। उन्होंने तेरह वंशावलियाँ प्राचीन पौराणिक ग्रन्थों से निकाल कर यह प्रमाणित कर दिया है कि उपर्युक्त समय में १२ से १५ तक पीढ़ियाँ हुई थीं। पुराणों मे जो वंशावलियाँ दी हुई है, उनमें से प्रधान की विधि पूर्वक जाँच में कई पीढ़ियाँ अशुद्ध हो गयी है। वे सब कारण यहाँ भी कहने से हमारे ग्रन्थ की अनावश्यक वृद्धि होगी। वह ग्रन्थ कलकत्ता विश्वविद्यालय ने छपवाया है। उसकी कारण माला हमें भी दृढ़ मालूम पड़ती है। अतएव यहाँ प्रधान महाशय के निष्कर्ष मात्र दिए जावेंगे। पार्जिटर महाशय ने जितने कथन किए हैं, वे कोई आधार शून्य नहीं हैं। उन्होंने अपने प्रत्येक कथन के आधार-पाद नोटों मे दे दिये है। फिर भी वंशावलियों के कथन मे प्रधान के तर्कों से उनकी बहुतेरी पीढ़ियाँ अशुद्ध हो जाती हैं। भेद मिटाने के विचार से हम यहाँ पार्जिटर और प्रधान को मिलाकर पीढ़ियाँ लिखेंगे। राम से पहले वाली पीढ़ियाँ प्रधान में सब है नहीं, तथा पार्जिटर वाली बहुतेरी (पुराणों पर अवलम्बित होकर भी) गड़बड़ हैं। इसलिए सब बातों पर विचार करके हमको इस ग्रन्थ में कुछ नवीनता के साथ वंश-वृत्त लिखने पड़े है। इनमे प्रधान से तो प्रायः पूरा का पूरा साम्य है, किन्तु प्रकट कारणों से अन्यों से थोड़ा सा भेद है। भेद के कारण यथा स्थान दे दिए जायेंगे। अब मुख्य विषय उठाया जाता है। पार्जिटर ने मनु वैवस्वत से वंश-वृत्त उठाया है, किन्तु पुराणों में स्वायम्भुव मनु का भी वंश है। हम उसका तथा दैत्यों आदि का भी कथन करेंगे।

ब्रह्मा विष्णु के अवतार थे (वि० पु०)। उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार नामक चार मानस पुत्र उत्पन्न किये, अर्थात्

साधारण रीति से न रचकर इन्हें मन से बनाया। इन चारों ने उनके कहने पर भी सृष्टि न चलाई। तब ब्रह्मा ने और दस मानस पुत्र उत्पन्न किये, अर्थात् अत्रि, क्रतु, मरीचि, अंगिरा, पुलह, भृगु, प्रचेता, पुलस्त्य, वशिष्ट और नारद। इनके अतिरिक्त स्वायम्भुव मनु, इन्द्र और दक्ष नामक तीन और ब्रह्म पुत्र हुये। इन्हीं से प्रसिद्ध पौराणिक वंश चले, जिनका वर्णन अब किया जाता है। पुराणों के अनुसार मनुष्यों की सृष्टि दो बार करके हुई। इस कथन से भारत में आनेवाली आर्यों की दो धाराओं का पता पड़ता है।

मनु स्वायम्भुव वंश।

वंश नं० (१)

(१) स्वायम्भुव मनु—प्रियव्रत (उत्तानपाद आदि)—अग्नीध्र—नाभि (किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्यवान, कुरु, भद्राश्व, केतुमाल आदि)—(५) ऋषभ—भरत-सुमति-इन्द्रद्युम्न परमेष्टि-(१०) प्रतिहार-प्रतिहर्ता—भुव—उद्गीथ्य—प्रस्तार—(१५) पृथु—नक्त—गय—नर-विराट—(२०) महावीर्य—धीमान—महान—मनुस्य—त्वष्टा—(२५) विरज—रज—(२७) विषक्ज्योति।

(३६) चाक्षुष मनु--ऊरु[37] (सुद्युम्न भाई)--अंग--(३९) वेन--(४०) पृथु (निषाद भाई)--अन्तर्द्धान (पालित भाई)-हविर्द्धान--प्राचीन वर्हिष (प्रभावशाली; प्रजा की वृद्धि हुई।) शुक्ल (कृष्ण भाई)--(४४) प्रचेतस--(४५) दक्ष।

सूर्य्य वंश।

ब्रह्मा के मानस तनय मरीचि के पुत्र कश्यप हुये जिन्होंने दक्षपुत्री अदिति मे सूर्य्य को उत्पन्न किया। वैवस्वत मनु इन्ही सूर्य्य के पुत्र थे। इसीलिये मनुवंशी सूर्य्यवंशी कहलाते है। इन्हीं मनु से सूर्य्य और चन्द्र दोनो वंशो वाली पीढ़ियों की गिनती होगी। यह सूर्य्य वंश इस प्रकार है:—

वंश नं० २ सूर्यवंश।

१ मनुवैवस्वत—इक्ष्वाकु (नृग या नाभाग, धृष्ण या धृष्ट, शर्याति, प्रांशु, प्रषध्र, नाभानेदिष्ठ, सुद्युम्न, करुषु, नरिष्यन्त आदि भाई)—विकुक्षि उपनाम शशाद (निमि दंड आदि कई भाई) —पुरंजय उपनाम ककुत्स्थ—५. अनेनस—पृथु—विष्टराश्व (विश्वगाश्व)—आर्द्र—युवनाश्व (प्रथम)—१०. श्रावस्त—बृहदश्व—कुवलयाश्व (उपनाम धुंधमार)—दृढ़ाश्व—प्रमोद—१५. हर्यश्व (प्रथम)—निकुम्भ—संहताश्व—अकृशाश्व —प्रसेनजित—२०. युवनाश्व (दूसरे)—मान्धातृ—पुरुकुत्स (अम्बरीष, मुचकुन्दभाई)—त्रसदस्यु—सम्भूत (वेद मे तृक्षि)—२५. रुरुक—वृक—श्रुत—नाभाग—अम्बरीष—३०. सिन्धु द्वीप—शतरथ (कृतशर्मन)—विश्वशर्मन-विश्वसह (विश्वमहत) प्रथम—दिलीप खट्वांग—३५. दीर्घवाहु—रघु—अज—दशरथ—३९. राम— ४०. कुश—अतिथि—निषध—नल—नभस—४५. पुण्डरीक--क्षेम धृत्वन—देवानीक — अहीनगु— (रूप—रुरुभाई पारिपात्र के) पारिपात्र (सहस्राश्व छोटेभाई) शैल—दल—५०—बल (शल और दल वल के बड़े भाई, तथा उनसे पूर्व राजा थे)—उक्थ—वज्रनाभ - शंखन—व्युषिताश्व—५५. विश्वसह—हिरण्यनाभ—

नं० २ (अ)-कुशवंशी नं० ४९ पारिपात्र के भाई सहस्राश्व का वंश।

४९ सहस्राश्व—५०. चन्द्रावलोक—तारापीड—चन्द्रगिरि—भानुश्चन्द्र—५४. श्रुतायुस।

नं० २ (आ) सूर्यवंशी नं० ३९ के पुत्र लव का वंश, श्रावस्तीराज्य।

—तृधन्वन—३५. त्रय्यारुण—सत्यव्रत (त्रिशंकु)—हरिश्चन्द्र—रोहिताश्व—हरित—४०. चंचु—४१. विजय।

यह वंश पुराणों तथा पार्जिटर में उपरोक्त सूर्यवंश के नं० २४ सम्भूत के पीछे चलता है, और हमारे नं० २५ रुरुक। हमारे हरिश्चन्द्र वंश के नं० ४१. विजय चंचु के पुत्र लिखे हैं। इसमें कठिनता यह पड़ती है कि पुराणों तथा एतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि हरिश्चन्द्र के शुनःशेप वाले बलिदान सम्बन्धी यज्ञ में विश्वामित्र और जमदग्नि मौजूद थे। यही विश्वामित्र रामचन्द्र तथा उत्तर पांचाल महीप सुदास के समकालीन थे। वेद के तृतीय एवं अन्य मंडलों से भी विश्वामित्र और जमदग्नि की मित्रता, शुनःशेप से उनका सम्बन्ध तथा सुदास के यहाँ होना प्रकट है। वशिष्ठ की म्लेच्छ सेना से हार कर ही विश्वामित्र तपस्या करने लगे। उसी दशा में त्रिशंकु द्वारा अपने कुटुम्ब पर उपकार होने से आप इनके सहायक बने। फिर वशिष्ठ को हटा कर आप तृशंकु को राज्य दिला उनके पुरोहित बने। अनन्तर तृशंकु पुत्र हरिश्चन्द्र के अश्वमेध में आप वशिष्ठ से पराजित हो कर फिर तप करने पुष्कर चले गये। अतएव हरिश्चन्द्र के समय वाले विश्वामित्र वही कौशिक कान्यकुब्ज नरेश थे। उनके तृतीय मंडल वेद में इनके पिता गाथिन (गाधि) के भी मंत्र हैं। इनका सुदास का पुरोहित होना तृतीय मंडल ऋगवेद में प्रकट है। वहाँ कुशिक भी इनके पितामह या पूर्व पुरुष हैं। सुदास और राम प्रायः समकालीन थे। इसके कारण इस ग्रन्थ में अन्यत्र हैं। ऐसी दशा में यदि हरिश्चन्द्र राम के पूर्व पुरुष हों, तो विश्वामित्र का जीवन काल सूर्य वंशी २० पीढ़ियों के बराबर पर जावेगा, तथा सूर्यवंश में ये १२ पीढ़ी जुड़ जाने से राम की सुदास से समकालीनता नष्ट हो जावेगी, जो दृढ़ प्रमाणों पर आधारित है। अतः यह हरिश्चन्द्र का वंश राम के पूर्व पुरुषों का न होकर बिरादरी वालों का था।

नं० २ (उ) सगर का राजवंश।

३८. बाहु—सगर—४०. असमंजस—अंशुमंत—दिलीप—४३. भगीरथ।

काशीराज प्रतर्दन ने हयहय वंशी वीतिहोत्र को पराजित किया जिससे वह राज्य छोड़ कर भरद्वाज के साथी भार्गव ऋषि हो गये। उनके पुत्र अनन्त, पौत्र दुर्जय और प्रपौत्र सुप्रतीक के नाम हैहय भूपालों में लिखे हैं। सगर ने इस वंश का राज्य ही नष्ट कर दिया। (प्रमाण आगे सगर के वर्णन में मिलेंगे।)

उनके द्वारा सुप्रतीक का राज्य जीता जाना सिद्ध है। अतएव सगर प्रतर्दन के पौत्र अलर्क के प्रायः समकालीन होंगे। उधर रामायण के अनुसार अलर्क के पितामह प्रतर्दन रामाभिषेक के समय अयोध्या में नेवते आए थे। हरिवंश के अनुसार अगस्त्य की स्त्री लोपामुद्रा ने अलर्क को आशिर्वाद दिया। उधर रावण को जीतने में अगस्त्य ने राम की शस्त्रास्त्रों द्वारा सहायता की। अतएव अलर्क, प्रतर्दन, सगर और राम प्रायः समकालीन बैठते हैं। सगर ने हैहयों को हराकर वैदर्भ राजकुमारी से विवाह भी किया। प्रशस्ति के पूर्व वे और्व अग्नि ऋषि के आश्रम में रहते थे। ये अग्नि और्व ऋचीक के पिता और्व के वंशधर थे। अतएव बाहु और सगर राम के बहुत पहले नहीं हो सकते थे। सगर मध्य भारतीय भूपाल समझ पड़ते हैं। कम से कम वे रामचन्द्र से २३ पीढ़ी ऊँचे पूर्व पुरुष नहीं हो सकते, जैसा पौराणिक वंशावलियों में दर्ज है। वहां बाहु, (मुख्य वंश नं० २६) वृक के पुत्र लिखे हुए हैं। सम्भव है, बाहु और सगर हरिश्चन्द्र के वंशधर हों, जैसा कि पुराणों में कथित है, किन्तु वे राम के पूर्व पुरुष न थे। उपर्युक्त वीति-होत्र सुदास के पिता के समकालीन भरद्वाज के साथी थे। इससे भी वे बहुत पुराने न थे।

नं० २ (क) दक्षिण कोशल का राजवंश।

विस्तृत था। उसकी राजधानी रायपुर जिले में श्रीपुर थी। ऋतुपर्ण के यहाँ प्रसिद्ध नैषध राजा नल रहे थे। नल उत्तर पांचाल नरेश (नं० ३५) के सम्बन्धी थे, क्योंकि इनकी पुत्री इन्द्रसेना उनके पुत्र मुद्‌गल को ब्याही थी। नल विदर्भ के यादव नरेश भीम रथ न० ३४ के दामाद थे। इसलिए इनका स्थान दो समकालीनताओं से दृढ़ होता है। नल की पुत्री इन्द्रसेना को वैदिक साहित्य मे नलायनी कहा है। मुद्‌गल वेदर्षि भी थे। नल श्रेष्ठ रथ सचालक थे। उनकी पुत्री नलायनी ने भी रथ संचालन द्वारा एक युद्ध मे अपने पति को विजय दिला कर उनका प्रायः खोया हुआ प्रेम फिर से प्राप्त किया। नल मुद्‌गल के श्वसुर होने से उनसे एक पीढ़ी ऊचे थे। इधर मुद्‌गल के पुत्र वध्र्यूश्व के पुत्र एवं कन्या दिवोदास एवं अहल्या थी। अहल्या शरद्वन्त गौतम को ब्याही थी और उसे राम ने पवित्र किया। तिमिध्वज शम्बर को जीतने मे राम के पिता दशरथ ने दिवोदास की सहायता की। इन्ही दिवोदास के चचेरे भाई पिजवन के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक विजयी सुदास थे। ऋतुपर्ण नल के साथी होने से दिवोदास से चार पीढ़ी ऊँचे के समकालीन थे। अतएव कल्माषपाद राम के प्रायः समकालीन बैठते है। पौराणिक वशावलियो मे उनके प्रपौत्र मूलक राम से आठ पीढ़ी ऊचे पूर्व पुरुष है जो बात उपरोक्त कारणो से असिद्ध है। कल्माषपाद राम के समकालीन विश्वामित्र और वशिष्ठ के भी समकालीन थे। रामायण मे दशरथ का शम्बर के जीतने मे भाग लेना लिखा है। इधर वेद मे दिवोदास शम्बर को जीतते ही हैं। समझ पड़ता है कि गुप्त काल के पौराणिक सम्पादकों ने सगर, हरिश्चन्द्र तथा दक्षिण कोशल का पूरा हाल जाने बिना ही उनकी वंशावलियाँ मुख्य सूर्यवश मे मिला दी है। महर्षि वाल्मीकि ने इस वंशावली को निम्न प्रकार से लिखा :—

१. वैवस्वतमनु—इक्ष्वाकु-कुक्षि—विकुक्षि—५. बाण—अनरण्य—पृथु—तृशकु—धुन्धमार—१०. युवनाश्व—मान्धातृ—सुसन्धि—ध्रुवसन्धि—(प्रसेनजित भाई)—भरत—१५. असित—सगर-असमजस—दिलीप—भगीरथ—२०. काकुत्स्थ—रघु—कल्माषपाद—शंखण—-

सुदर्शन—२५. अग्निवर्ण—शीघ्रग—मनु—प्रशुश्रुक—अम्बरीष—३०. नहुष—ययाति—नाभाग—अज—दशरथ—राम ।

यह वंश वृक्ष बालकाण्ड के ७०वें अध्याय मे रामचन्द्र के वैवाहिक शास्त्रोचार मे लिखा हुआ है। इसमे हरिश्चन्द्र तथा दक्षिण कोशल के वंश तो प्रायः नहीं हैं, किन्तु सगर उपस्थित हैं, तथा लववंशी ध्रुवसन्धि, सुदर्शन, अग्निवर्ण आदि भी राम के पूर्व पुरुषों में लिखे हैं। चन्द्रवंशी नहुष और ययाति भी यहीं आ गए हैं। यह वंश वृक्ष ब्राह्मणों द्वारा सुरक्षित न था, वरन इक्ष्वाकुवों मे प्रचलित था, जिनसे प्रायः छठी सातवीं शताब्दी बी० सी० में इसे वाल्मीकि ने पाया। तो भी यह मनु से राम तक केवल ३० पीढ़ियाँ मान कर कम से कम ६३ पीढ़ी मानने वाले वंश वृक्ष के बहुत प्रतिकूल है।

उपरोक्त वंशावली में हमने दक्षिण कोशल की शाखा अलग करने में प्रधान का भी अनुगमन किया है। सगर और हरिश्चन्द्र की शाखायें सर्वमान्य घटनाओं के आधार पर अलग की गई हैं। सुदास तथा राम की शाखाओं की समकालीनता प्रधान ने भी दिखलाई है। वंशावली में राम पर्य्यन्त बहुत करके पार्जिटर, विष्णु पुराण और हरिवंश का अनुगमन है। राम के पीछे प्रधान के निष्कर्ष माने गये हैं। वे सब वैदिक अथच पौराणिक साहित्य पर आधारित हैं। उपर्युक्त कई स्थानों पर जो विविध घटनायें अंकित हैं, उनके आधार उनके यथा-स्थान वर्णनों मे दिये जायँगे। सुदास और राम की समकालीनता के कारण उत्तर पांचाल वंश के नीचे भी लिखे जावेंगे—

नं० २. (ए) विदेह का सूर्यवंश—मैथिल शाखा

मुख्यवंश का (नं० २) इक्ष्वाकु—(३ से १७ तक नाम अज्ञात)—निमि—१९. मिथि—जनक—उदावसु—नन्दिवर्द्धन—२२. सुकेतु—देवरात—२४. बृहद्रथ—महावीर्य—सुधृति—धृष्टकेतु—२८. हर्यश्व—मरु—प्रतिन्धक—कीर्तिरथ—देवमीढ—विबुध—महाधृति—कीर्तिरात—महारोमा—स्वर्णरोमा—ह्रस्वरोमा—सीरध्वज (सुनयना आदि)—३९. भानुमान [illegible]

सुवर्चसश्रुत ४७. सुश्रुतजय -विजय -ऋतु--सुनय—वीतहव्य—५२. धृति -५३. वहुलाश्व—५४ कृति।

नं० २ (ऐ) मैथिल सांकाश्य शाखा।

वश नं० २ ए का (न० ३७) ह्रस्वरोमन--कुशध्वज—धर्मध्वज—कृतध्वज (मितध्वजभाई जिसका पुत्र खांडिक्य था) ४१. केशिध्वज।

नं० २. (ओ) मैथिल वंश की ऋतुजित शाखा

वश नं० २, ए, का न० ४४ शकुनि—ऋतुजित—अरिष्ट नेमि—४७. श्रुतायुस सूर्याश्व संजय—क्षेमारि—अनेनस—मीनरथ—सत्यरथ ५३. सात्यरथी—उपगुरु—श्रुतअग्नि—५६. उपगुप्त (शायद उग्रसेन हो)। सीरध्वज जनक, न० २ ए ३८. (सूर्यवशी ३८) दशरथ के समधी समकालीन थे। इस शाखा मे वंशावलियों से प्रायः १२ नाम छूट रहे है, ऐसा समझ पड़ता है। सम्भव है कि इक्ष्वाकु से ही निमि अथवा मिथि कई पीढ़ी नीचे हो।

नं० २. (औ) वैशाली का सूर्यवंश

१. मनुवैवस्वत—नाभानेदिष्ठ—भलन्दन—वत्सपी—५. प्रांशु—प्रजाति—खनित्र—क्षुप—विंश—१०. विविंश—खनीनेत्र—करन्धम—अवीक्षित—१४. मरुत्त--१५,नरिष्यन्त -दम—राष्ट्रवर्द्धन--सुधृति—नर—२०, केवल—बन्धुमन्त—बेगवन्त—वुध--तृणबिन्दु—२५, निश्रवस—विशाल--हेमचन्द्र—सुचन्द्र--धूम्राश्व- ३० सजय--सहदेव—कृशाश्व—सोमदत्त—जनमेजय - ३५. उपरोक्त वश वृत्त पार्जिटर महाशय ने कई पुराण मिला कर लिखा। अश्वमेधपर्व म० भा० मे वही निम्नानुसार लिखा है:—

१. मनु—प्रसन्धि—क्षुप—इक्ष्वाकु—५. विश (९९ भाई और)—विश्वास—खनिनेत्र (चौदह और भाई)—सुवर्चस—१०. कारन्धम—अवीक्षिन् ११. मरुत्त।

पहला वंश वृक्ष प्रमाणनीय समझ पड़ता है।

अब चन्द्रवंश का कथन चलता है। ब्रह्मा के मानसपुत्र अत्रि

कि वे देवापी के गुरु अथवा ब्राह्मण दत्तक पिता मात्र थे, शान्तनु के भी पिता नहीं।

परीक्षित से उदय तक २२ पीढ़ियां है=६१६ वर्ष (२८ वर्ष प्रति पीढ़ी के हिसाब से)। परीक्षित से ३६ वर्ष पूर्व भारत युद्ध हुआ। उदयन ५०० बी० सी० में गद्दी पर बैठे। इस प्रकार भारत युद्ध का समय प्रधान के अनुसार ५००+६१६+३६=११५२ बी० सी० आता है। नं० २७. संवर्ण. नं० ३२. ऋक्ष के पुत्र कहे गए है. किन्तु. न० ४०. उत्तर पांचाल नरेश सुदास से हारते हैं। इसलिए उनका स्थान ३७ पर समझ पड़ता है।

वंश नं० ३. (अ) विदर्भ का द्विमीढ़ वंश

(वंश न० ३ का नं० ३०) हस्तिन - द्विमीढ़—यवीनर--(३३ से ३९ तक अज्ञात नाम)--४०. धृतिमन्त—सत्यधृति- दृढ़नेमि--सुधर्मा (या सुवर्मन)—सार्वभौम - ४५. महन्तपौर—रुक्मरथ--सुपार्श्व—सुमति—सन्ततिमन्त--५०. सनति- कृत-उग्रायुध—क्षेम्य—सुवीर-५५. नृपंजय—५६. बहुरथ।

इस वंश मे ७ नामों की जगह बढ़ानी पड़ी है। इसका नं० ५२ उग्रायुध चन्द्रवंश के नं० ५१ भीष्म से लड कर मारा गया। उसी ने उत्तर पांचाल के नं० ५० पृषत् को तथा दक्षिण पांचाल के न० ५४ जनमेजय को हराया था। इसी लिए उसका भी न० इन्ही तीनो के प्रायः बराबर होना चाहिए। पुराणों मे मुख्यवंश तो पूर्ण हैं किन्तु अमुख्यों की बहुतेरी पीढ़ियां छूट भी रही है। इसलिए अज्ञात नाम की पीढ़ियां बढ़ा कर समकालीनों की पीढ़ियां मिलानी पड़ती है।

वंश न० ३ (आ) उत्तर पांचाल का वैदिक सुदासवंश।

(वंश न० ३ का नं० ३०) हस्तिन—अजमीढ—सुशान्ति—पुरुजानु—३४. ऋक्ष (तृक्ष)—भरत (भृम्यश्व भाई)—देववात—सृंजय (चयमान भाई। इनके पुत्र अभ्यावर्तिन चायमान थे)—३८. सहदेव (प्रस्तोक, पिजवन भाई। पिजवन के पुत्र प्रसिद्ध राजा सुदास थे)—३९. सोमक—अकदन्त (४१ से ४७ तक प्रधान के अनुसार

अज्ञात नाम) — ४८. दुष्टरीतु — ४९. पृषत् — ५०. द्रुपद — ५१. धृष्टद्युम्न — ५२. धृष्टकेतु। हरिवंश में लिखा है कि मुद्गल, सृञ्जय, बृहदिषु, क्रिमिलाश्व और जयीनर का बसाया हुआ देश पांचाल कहलाया। इस काल इस वंश में राजवंश मुद्गल, काम्पिल्य, दिवोदास, प्रस्तोक और सहदेव में बटा हुआ समझ पड़ता है। सुदास के पिता पिजवन थे और सुदास का दिवोदास से इतना मेल था कि दूर के चचा हो कर भी दिवोदास वेद में सुदास के पिता कहे गए हैं। यादव नं० ४४ भजमान को उत्तर पांचाल नं० ३७ संजय की दो पुत्रियां ब्याही थीं। भजमान के पितामह सत्वन्त राम के समकालीन थे। इससे भी सुदास का समय राम के निकट आता है। भजमान के विवाहों के प्रमाण यादववंश के कथन में हैं। उपरोक्त नं० ३४ ऋक्ष के पुत्र भृम्यश्व के पुत्र मुद्गल और काम्पिल्य थे। मुद्गल को निषधनाथ प्रसिद्ध नल की बेटी इन्द्रसेना नलायनी ब्याही थी। मुद्गल अच्छे युद्धकर्ता तथा वेदर्षि थे। इनके बेटे वेद में ख्यात वध्र्यश्व के पुत्र दिवोदास थे, तथा कन्या शरद्वन्त गौतम की स्त्री अहल्या। राम ने अहल्या का पुनीत किया, तथा इनके पिता दशरथ ने शम्बर को जीतने में दिवोदास की सहायता की। वेद में सुदास, पिजवन और दिवोदास दोनों के पुत्र लिखे हैं। सम्भवतः दिवोदास ने इन्हें गोद लिया हो, या काका होने के कारण वे पिता लिखे हों। एक स्थान पर यह भी लिखा है कि प्रसिद्ध पौरव भीष्म ने अपने ताऊ बाल्हीक को पिता कहा था। दिवोदास के पुत्र थे मित्रयु, पौत्र सोम, और प्रपौत्र मैत्रयम। वाजिनेय भरद्वाज वैदिक ऋषि थे। इनके

गए, तथा उत्तर पांचाल के शासक द्रोणाचार्य और फिर अश्वत्थामा हुए। बौद्ध ग्रन्थ मंजु श्री मूलकल्प मे अश्वत्थामा प्रसिद्ध मन्त्री लिखे हैं।

वंश नं० ३ (इ) दक्षिण पांचाल वंश।

(वंश न० ३ का न० ३०) हस्तिन—अजमीढ़—बृहद्वसु—बृहदिपु ३४. बृहद्धनुप—बृहद्धर्मा · (हरिवश के अनुसार)—जयद्रथ—३७. विश्वजित—सेनजित—३९. रुचिराश्व—४०. पृथुषेण—पौरपार (प्रथम)—नीप—समर—पार (दूसरे)—४५. पृथु—सुकृति—विभ्राज—४८. अणूह (इनको किसी शुकदेव की कन्या व्याही थी)—ब्रह्मदत्त—५०. विश्वसेन—दृढ़सेन—(उदग्रसेन)—भल्लाट—५३. जनमेजय। इनके पीछे दक्षिण पांचाल मे द्रुपद का राज्य हुआ। पहले दोनों पांचाल द्रुपद के हुए, किन्तु द्रोण से हारने पर केवल दक्षिण पांचाल द्रुपद के पास रहा। प्रधान मे इसकी कुछ पीढ़ियाँ निम्नानुसार हैं:—बृहदनु—बृहन्त—बृहन्मनस—बृहद्धनुष—बृहदनुहषु—बृहत्कर्मेन—जयद्रथ।

वंश नं० ३ (ई) मागध शाखा।

(वश नं० ३ का नं० ३८) कुरु—सुधन्वन (प्रथम। चित्ररथ भाई। हरिव श मे सुधन्वन कुरु के पुत्र लिखे है किन्तु प्रधान उन्हें चित्ररथ का पुत्र कहते है)—४० सुहोत्र—४१. च्यवन—कृतयज्ञ—४३. उपरिचरवसु—४४. बृहद्रथ—कुशाग्र—वृषभ (या ऋषभ)—पुष्पवन्त—सत्यहित (या सत्यधृति)—४९. सुधन्वन (दूसरे)—उर्ज—सम्भव—५२. जरासन्ध—सहदेव—५४. सोमाधि—श्रुत श्रवस—अयुतायुस—निरमित्र—सुक्षेत्र—५९. बृहत्कर्म—सेनजित—श्रुतजय—महाबाहु (विभु, विप्रभाई)—शुचि—६४ क्षेम—भूव्रत—(अनुव्रत, सुव्रतभाई)—६६. धर्मनेत्र (सुनेत्र भाई)—विवृति (नृपति भाई)—सुव्रत—(सुश्रय, सम, तृनेत्र भाई)—६९ दृढ़सेन (द्युमत्सेन भाई)—महीनेत्र (सुमति भाई)—सुचल (अचल भाई)—सुनेत्र—७३ सत्यजित—विश्वजित (५८८ बी० सी० मे गद्दी पर बैठे)—७५. रिपुञ्जय (५६३ बी० सी० मे गद्दी

पर बैठे, तथा ५१३ बी० सी० में अपने मन्त्री पुणिक द्वारा मारे गए)।

प्रधान के अनुसार सोमाधि नं० ५४ से रिपुञ्जय नं० ७५ तक २२ पीढ़ियों का भोगकाल २८ × २२ = ६१६ वर्ष होता है। नं० ६० सेनजित के समय वायु पुराण सुना कर कहा गया कि १६ भविष्यत बार्हद्रथ राजे होंगे। ये सेनजित (लववंशी नं० ५९) दिवाकर तथा (पुरुवंशी नं० ७९) अधिसीम कृष्ण के समकालीन थे। सोमाधि नं० ५४ से विश्वजित नं० ७४ तक २१ पीढ़ियाँ (२१ × २८ = ५८८ वर्ष) हैं। इनका अन्त काल ५६३ बी० सी० में है, सो भारत युद्ध ५६३ + ५८८ = ११५१ बी० सी० में आता है। सोमाधि के पिता सहदेव इसी युद्ध में मारे गए थे। पुराणों में सोमाधि से रिपुञ्जय तक ६३८ वर्ष लिखे हैं। पौरव तथा मागध वंशों में प्रधान और पार्जिटर में काफ़ी अन्तर है। यहाँ प्रधान माने गये हैं, क्योंकि इन्होंने कई पुराणों को मिला कर तथा दृढ़ विचार करके अपने कथन किए हैं। वे प्रायः तक अकाट्य हैं। इतिहास के लिए सौर, पौरव, और मागधवंश बहुत उपयोगी हैं, क्योंकि ये महाभारत के पीछे भी कई पीढ़ियों तक चले हैं। महाभारत के समय पौरव नं० ५३ अर्जुन के समकालीन लववंशी नं० ५४ बृहद्बल, कुशवंशी नं० ५४ श्रुतायुस तथा मागधवंशी नं० ५३ सहदेव थे।

(वनपर्व)। इनका नाम ही उपरोक्त वशावली में न होकर उसका अधूरापन प्रकट करता है।

वंश नं० ३ (ऊ) काशी शाखा।

(वंश नं० ३ का नं० २४) भरत—विदथिनभरद्वाज, २६—वितथ—सुहोत्र—काशिक—काशेय—३०. दीर्घतमा—धन्वन्तरि—केतुमान (प्रथम) —भीमरथ—३४. दिवोदास (प्रथम) (अष्टारथ, भाई)—३५. हर्यश्व—सुदेव दिवोदास (दूसरे)—प्रतर्दन—वत्स (अन्यनाम ऋतध्वजक्षत्रपी या कुवलयाश्व)—४० अलर्क—सन्तति—सुनीथ—क्षेम्य—केतुमान (दूसरे) ४५. सुकेतु—धर्मकेतु—सत्यकेतु—विभु (सुविभु)—आनर्त—५० सुकुमार—धृष्टकेतु—वेणहोत्र—५३. भग—अजातशत्रु—भद्रसेन—५५. दिवोदास (राक्षसो के नाशक लिखे हुये हैं, हरिवंश मे)। प्रतर्दन ने भद्रश्रेण्यवंश का नाश किया। उपयुक्त वश हरिवंश मे कथित है। अन्य पुराणों तथा हरिवंश मे भी यही वंश दूसरे प्रकार से भी लिखा है। वहाँ सुहोत्र उपनाम सुनहोत्र के पिता क्षत्रवृद्ध और पितामह नहुष लिखे हैं। इस प्रकार जोड़ने से अलर्क मनु से केवल बीसवीं पीढ़ी पर पड़ते है, यद्यपि वे ३९वी पीढ़ी वाले राम के समकालीन थे। अतएव पहले लिखा हुआ वंश ही मान्य है।

वंश नं० ३ (ए) कान्यकुब्ज शाखा।

वश नं० ३ ऊ, का (नं० २७) सुहोत्र—अजमीढ़—३० जह्नु—अजक-(सिन्धुद्वीप म० भा० शान्ति पर्व) बलाकाश्व—वल्लभ (म० भा० शान्तिपर्व)—कुशिक— गाधि—३५. विश्वामित्र—अष्टक—३७. लौहि।

उपरोक्त वशावली हरिवंश मे है। यही कुछ अन्य पुराणो मे निम्नानुसार है:—

वंश नं० ३ का न०३. पुरूरवस—अमावसु—५. भीम—कांचन-प्रभ— सुहोत्र—जह्नु—सुनह—१०. अजक—बलाकाश्व—कुश—कुशाश्व— कुशिक—१५. गाधि— विश्वामित्र— अष्टक— १८. लौहि।

पुराणों में उपर्युक्त काशी वंश में कथित दूसरी वंशावली के आधार पर विश्वामित्र का नं० १६ आता है। उत्तर पांचाल के (नं० ३९) सुदास के पुरोहित विश्वामित्र, ऋग्वेद के अनुसार थे। अतएव विश्वामित्र का नं० १६ बिलकुल गड़बड़ बैठता है, अथच ३७ ठीक आता है। इस प्रकार पहली वंशावली यहां भी ठीक उतरती है, और दूसरी अशुद्ध। शान्ति पर्व दान धर्म म० भा० में यही शुद्ध वंशावली अजमीढ़ से विश्वामित्र तक है। इसमें केवल एक पीढ़ी अधिक है, अर्थात् कुशिक के पिता वल्लभ हैं, और पितामह बलाकाश्व। विश्वामित्र वशिष्ठ से लड़कर राज छोड़ ब्राह्मण होगए। उनके पौत्र लौहि का राज्य हैहयों द्वारा छिन कर कान्यकुब्ज राज्य उस काल गिर गया। ब्राह्मण होकर विश्वामित्र ने वेद का तीसरा मण्डल गाया। उसमें गाधि की भी ऋचायें हैं। कुशिक की ऋचाएं दशवें मण्डल में हैं। शुनःशेप थे तो विश्वामित्र के भागिनेय, किन्तु राजा हरिश्चन्द्र की नरबलि से उसे बचा कर आपने पुत्रत्व में ले लिया। भागिनेय जमदग्नि भी आपको परम प्रिय थे। इन दोनों का जन्म भी प्रायः साथ ही हुआ। प्रसिद्ध परशुराम इन्हीं जमदग्नि के पुत्र होने से, थे तो विश्वामित्र से दो पीढ़ी नीचे, किन्तु आयु के विचार से केवल एक पीढ़ी नीचे थे। इन्हीं ने हैहयराज अर्जुन को मारा।

(वायु पु० ८८, ७८–११६, हरिवंश १२, ७१७ से १३,७५३ तक विष्णुपुराण, IV ३, १३, १४, भागवत IX ७, ५–६; म० भा० XIII १३७, ६२५७)

वंश नं० ३ (ऐ) यदुवंश माथुर शाखा ।

मनुवैवस्वत—इला—पुरूवस—आयु—५.नहुप—ययाति—७.यदु—क्रोष्ट,—वृजिनीवन्त—१०. स्वाहि—रुषद्गु—चित्ररथ—पृथुश्रवस—अन्तर (तम)—१५. सुयज्ञ—उशनस—काशिनेयु—मरुत—कम्बल वर्हिष—२०. शशिबिन्दु—रुक्म कवच—परावृत—ज्यामत—विदर्भ २५. क्रथभीम—कुन्ति—धृष्ट—निवृ ति - विदूरथ—३०. दशार्ह—व्योमन—जीमूत—विकृति—भीमरथ—३५. दशरथ (रथवर या एकादशरथ) शकुनि—करम्भ—देवराट—देवक्षत्र (या देवन)—मधु—४०. पुरुद्वन्त (या पुरवश)—जन्तु (या अंशु)—४२. सत्वन्त, ४३. भीम सात्वत—अंधक (भाई भजमान, देववृद्ध तत्पुत्र बभ्रु)—४५. कुकुर—वृष्णि—कपोत रोमन—रेवत (विलोमन या तित्तिरि)—भवरैवत—५०. अज्ञात नाम (प्रधान के अनुसार)—पुनर्वसु—आहुक—उग्रसेन (देवक भाई, देवकी भतीजी)—कस—५५ श्रीकृष्ण (भागिनेय) ।

उपर्युक्त नं० ५२ आहुक के समकालीन देवमीढ़स थे, जो न० ४६ वृष्णि से इतर किसी वृष्णि के वंशज थे । इनके पुत्र सूर, पौत्र बसुदेव, और प्रपौत्र नं० ५५ श्रीकृष्ण थे । इनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र क्रमशः प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और वज्र नं० ५८ थे । श्रीकृष्ण ५५ पौरव नं० ५३ अर्जुन के समकालीन और साले थे । अन्धक के भाई भजमान ने उत्तर पाँचाल नरेश सजय की दो कन्याओं के साथ विवाह किया । (वायु पु० ९६, ३, हरिवं० ३८, २०००१, मत्स्य ४४, ४९, पद्मपथ १३७३३)

वंश नं० २ (ओ) यदुवंशी हैहय का माहिष्मती वंश दक्षिण मालवा में ।

(वंश नं० ३ ऐ का न० ७) यदु—सहस्रजित—९. शतजित—(१० से २४ तक अज्ञात नाम)—२५. हैहय—२६. धर्मनेत्र—कुन्ति—

२८. साहंज—महिष्यमन्त—३०. भद्रश्रेण्य—दुर्दम—कनक—३३. कृतवीर्य—३४. अर्जुन—जयध्वज—३६. तालजंघ—३७. वीतिहोत्र (या वीतिहव्य)—अनन्त—दुर्जय—४०. सुप्रतीक। प्रतर्दन और सगर ने हैहय वंश को नष्ट किया, और वह राज्यच्युत हो गया। सुप्रतीक के पीछे इस वंश का पता न रहा। इस काल दो हैहय वंश थे। वे दोनों गिर गए।

वंश नं० ३ (औ) की वैदर्भ चेदि शाखा।

(वंश नं० ३ ए का नं० २४) विदर्भ—२५. क्रथकैशिक—चिदि—वीरबाहु—२८. सुबाहु। इस वंश में केवल मुख्य नाम हैं, सब नहीं। शेष का पता नहीं है।

वंश नं० ३ (क) तुर्वश का मरुत्त वंश (उत्तरी बिहार)।

(यादववंश ३ ऐ का नं० ६) ययाति—तुर्वश (या तुर्वसु)—वन्हि—गर्भ—१०. गोभानु — (११ से १९ तक अज्ञात नाम) २०. त्रसानु—करन्धम—२२. मरुत्त—२३. दुष्यन्त।

राजा मरुत्त बड़े प्रसिद्ध यज्ञकर्त्ता थे। बृहस्पति के भाई संवर्त ने इन्हें यज्ञ कराया। पुत्र के अभाव में आप ने पौरववंशी दुष्यन्त को गोद लिया। यह पौरव वंश प्रायः नं० २१ तंसु के समय मान्धाता द्वारा राज्यच्युत किया गया था। पीछे से उत्तरी बिहार का राज्य पाकर दुष्यन्त ने अपना पौरव राज्य फिर से प्राप्त किया। इन्हीं से पौरव कुल में आप वंशकर कहलाये। यद्यपि दुष्यन्त गोद से तुर्वश वंशी होगए थे, तथापि इनका वंश कहलाया पौरव ही। इन्हीं विश्वामित्र की मेनका अप्सरा से उत्पन्न पुत्री शकुन्तला से आपको भरत पुत्र प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध कौशिक विश्वामित्र इन्हीं भरत के वंशज थे। प्रसिद्ध ऋषि गौतम दीर्घतमस ने भरत का ऐन्द्र महाभिषेक किया। दीर्घतमस आनव नरेश बलि के भी समकालीन थे।

वंश नं० ३ (ख) द्रुह्यु वंश, पंजाबी नरेश।

(यादव वंश ३ ऐ का नं० ६) ययाति—द्रुह्यु—बभ्रु (नं० ९ से [illegible] १९ तक अज्ञात नाम)—सेतु—२१. अंगार—गान्धार—[illegible]

[illegible]—२६. प्रचेतस— २७. सुचेतस।

नं० २१ अंगार से सूर्यवंशी, नं० २१. मान्धाता का युद्ध हुआ। (ह० वं० ३२, १८३७. ८, म० भा० १२६. १०४६५)

वंश नं० ३ (ग) आनव वंश अंग शाखा।

(यादव वंश ३ ए का नं० ६) ययाति—अनु—सभानर—कालानल—१०. सृंजय—(११ से १७ तक अज्ञात नाम) १८. पुरञ्जय—जनमेजय—महाशाल—महामनस—२२. तितिक्षु—उशद्रथ—हेम (फेन) सुतपस—२५. वलि—२६. अंग-दधिवाहन—२८. दिविरथ-(२९ से ३५ तक अज्ञात नाम)—३६ धर्मरथ—चित्ररथ—सत्यरथ—३९. लोमपाद—चतुरंग—पृथुलाक्ष—४२. चम्प—हर्यंग—४४. भद्ररथ—बृहत्कर्मन—वृहद्रथ—(वृहद्रथ के भाई थे वृहत्कर्मन तथा वृहद्भानु)—वृहन्मनस (वृहद्रथ के पुत्र) ४८. जयद्रथ (विजय भाई)—दृढ़रथ—५०. विश्वजित—अंग—५२. कर्ण—वृषसेन—५४. पृथुसेन।

दूसरा वंश।

उपर्युक्त नं० ४७ वृहन्मनस—विजय—धृति-धृतिव्रत—५१. सत्यकर्मन—अधिरथ—५३ कर्ण—वृषसेन—५५. पृथुसेन।

समझ पड़ता है कि कर्ण अधिरथ और अंग दोनों के द्वैमुष्यायन पुत्र थे। वे वास्तव मे कुन्ती से सूर्य नामक किसी व्यक्ति द्वारा कानीन पुत्र हुये थे। फिर अधिरथ द्वारा पाले जाकर उसके पालित पुत्र हुए। माता का नाम राधा हाने से आप राधेय भी कहलाते थे। इस वंश के किसी पूर्व पुरुष ने एक ब्राह्मणी से विवाह कर लिया था जिससे अनुलोमपन के कारण वंश सूत हो गया। जान पड़ता है कि जब कर्ण ने जरासन्ध को जीत कर खोया हुआ अंग राज्य फिर से प्राप्त किया, तब अंग ने भी इन्हे अपना पुत्र मान लिया।

वंश नं० ३ (घ) आनव कुल (उत्तर पश्चिमी शाखा)

(वंश नं० ३ ग का नं० २१) महामनस—२२. उसीनर—२३. शिवि (नृगभाई)—(नं० २४ से २६ तक) अज्ञात नाम—३७. केकय (कैकेयी कन्या सूर्यवंश नं० ३८. दशरथ को व्याही गई) युधाजित (कैकेयी के भाई थे)।

२८. साहंज—महिष्मन्त—३०. भद्रश्रेण्य—दुर्दम—कनक—३३. कृतवीर्य—३४. अर्जुन—जयध्वज—३६. तालजंघ—३७. वीतिहोत्र (या वीतिहव्य)—अनन्त—दुर्जय—४०. सुप्रतीक। प्रतर्दन और सगर ने हैहय वंश को नष्ट किया, और वह राज्यच्युत हो गया। सुप्रतीक के पीछे इस वंश का पता न रहा। इस काल दो हैहय वंश थे। वे दोनों गिर गए।

वंश नं० ३ (औ) की वैदर्भ चेदि शाखा।

(वंश नं० ३ ए का नं० २४) विदर्भ—२५. क्रथ कैशिक—चिदि—वीरबाहु—२८. सुबाहु। इस वंश में केवल मुख्य नाम हैं, सब नहीं। शेष का पता नहीं है।

वंश नं० ३ (क) तुर्वश का मरुत्त वंश (उत्तरी विहार)।

(यादववंश ३ ए का नं० ६) ययाति—तुर्वश (या तुर्वसु)—वन्हि—गर्भ—१०. गोभानु — (११ से १९ तक अज्ञात नाम) २०. त्रसानु—करन्धम—२२. मरुत्त—२३. दुष्यन्त।

राजा मरुत्त बड़े प्रसिद्ध यज्ञकर्त्ता थे। बृहस्पति के भाई संवर्त ने इन्हें यज्ञ कराया। पुत्र के अभाव में आप ने पौरववंशी दुष्यन्त को गोद लिया। यह पौरव वंश प्राय: नं० २१ तंसु के समय मान्धाता द्वारा राज्यच्युत किया गया था। पीछे से उत्तरी विहार का राज्य पाकर दुष्यन्त ने अपना पौरव राज्य फिर से प्राप्त किया। इसी से पौरव कुल में आप वंशकर कहलाये। यद्यपि दुष्यन्त गोद में तुर्वश वंशी होगए थे, तथापि इनका वंश कहलाया पौरव ही। किसी विश्वामित्र की मेनका अप्सरा से उत्पन्न पुत्री शकुन्तला से आपको भरत पुत्र प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध कौशिक विश्वामित्र इन्हीं भरत के [illegible] थे। प्रसिद्ध ऋषि गौतम दीर्घतमस ने भरत का ऐन्द्र महाभिषेक किया। दीर्घतमस आनव नरेश बलि के भी समकालीन थे।

वंश नं० ३ (ख) द्रुह्यु वंश, पंजाबी नरेश।

(यादव वंश ३ ए का नं० ६) ययाति—द्रुह्यु—बभ्रु (नं० ९ से १९ तक अज्ञात नाम)—सेतु—२१. अंगार—गान्धार—[illegible]—[illegible]—२६. प्रचेतस—२७. सुचेतस।

नं० २१ अंगार से सूर्यवंशी, न० २१. मान्धाता का युद्ध हुआ। (ह० वं० ३२, १८३७. ८, म० भा० १२३ १०४६५)

वंश नं० ३ (ग) आनव वंश अंग शाखा।

(यादव वंश ३ ए का न० ६) ययाति—अनु—सभानर—कालानल—१०. सृंजय—(११ से १७ तक अज्ञात नाम) १८. पुरञ्जय—जनमेजय—महाशाल—महामनस-२२. तितिक्षु—उशद्रथ—हेम (फेन) सुतपस—२५. वलि—२६. अंग-दधिवाहन—२८. दिविरथ-(२९ से ३५ तक अज्ञात नाम)—३६ धर्मरथ—चित्ररथ—सत्यरथ—३९. लोमपाद—चतुरंग—पृथुलाक्ष—४२ चम्प—हर्यंग—४४. भद्ररथ—बृहत्कर्मन—बृहद्रथ—(बृहद्रथ के भाई थे बृहत्कर्मन तथा बृहद्भानु)—बृहन्मनस (बृहद्रथ के पुत्र) ४८. जयद्रथ (विजय भाई)—दृढ़रथ—५०. विश्वजित—अंग—५२. कर्ण—वृषसेन—५४. पृथुसेन।

दूसरा वंश।

उपर्युक्त नं० ४७ बृहन्मनस— विजय—धृति-धृतिव्रत—५१. सत्यकर्मन—अधिरथ—५३. कर्ण—वृषसेन—५५. पृथुसेन।

समझ पड़ता है कि कर्ण अधिरथ और अंग दोनों के द्व्यामुष्यायन पुत्र थे। वे वास्तव में कुन्ती से सूर्य नामक किसी व्यक्ति द्वारा कानीन पुत्र हुये थे। फिर अधिरथ द्वारा पाले जाकर उसके पालित पुत्र हुए। माता का नाम राधा होने से आप राधेय भी कहलाते थे। इस वंश के किसी पूर्व पुरुष ने एक ब्राह्मणी से विवाह कर लिया था जिससे अनुलोमपन के कारण वंश सूत हो गया। जान पड़ता है कि जब कर्ण ने जरासन्ध को जीत कर खोया हुआ अंग राज्य फिर से प्राप्त किया, तब अंग ने भी इन्हें अपना पुत्र मान लिया।

वंश नं० ३ (घ) आनव कुल (उत्तर पश्चिमी शाखा)

(वंश नं० ३ ग का नं० २१) महामनस— २२. उसीनर—२३. शिवि (नृगभाई)—(नं० २४ से ३६ तक) अज्ञात नाम—३७. केकय (कैकेयी कन्या सूर्यवंश नं० ३८. दशरथ को ब्याही गई) युधाजित (कैकेयी के भाई थे)।

इसके पीछे यह वंश शत्रुओं द्वारा नष्ट हो गया और इनका राज्य राम के भाई भरत के दोनों पुत्रों पुष्कर और तक्ष ने पाया। तक्ष का राज्य तक्षशिला में हुआ और पुष्कर का पुष्करावती में। इनके वंशधर उधर ही के क्षत्रियों में मिल गए; अथवा शायद राज्य खो बैठे। (वायु पु० ८८. १८९—९०. विष्णु पुराण ४. ४५. पद्म ३५. १०. अग्नि, ११, ७, ८. रघुवंश ८८—८९)। दोनों आनव शाखाओं में जो अज्ञात नाम की पीढ़ियाँ जोड़नी पड़ी हैं, वे समसामयिक अन्य नामों के कारण। कैकय राजा दशरथ के ससुर थे, तथा लोमपाद इन्हीं दशरथ के मित्र थे। बलि की स्त्री से उन्हीं की आज्ञा से दीर्घतमस ने पुत्र उत्पन्न किए। अनन्तर उन्हीं दीर्घतमस ने पौरव वंशी नं० ३४ भरत का यज्ञ कराया। ये कथन म० भा० और रामायण पर आधारित हैं।

अब कुछ ऋषियों के भी वंश वृक्ष दिए जाते हैं। प्राचीन भारत में राजा के पीछे पुरोहित का ही दर्जा होता था। इन वंशों से भी कुछ राजाओं के समय सिद्ध होते हैं।

वंश नं० ४ कान्यकुब्ज का विश्वामित्र वंश।

१. गाधिन (गाधि)—विश्वामित्र—मधुच्छन्दस—(देवरात मधुच्छन्दस भाई) व्यश्व—५. विश्वमनस—उद्दालक—तुम्बुरु कृष्णदिश—९. नाम अज्ञात—१०. प्रतिवेश्य—सोम प्रतिवेश्य—अज्ञात—१३. सौमाप प्रियव्रत सौमापि—१५. अज्ञात—उद्दालक आरुणि—कहोड़—दीक्षि-नकि—गुणाख्य शांखायन—२०. शांखायन आरण्यक के कर्ता। ऋषि इमावर्त के पुत्र प्रतिदर्श थे। ये विश्वामित्र के समकालीन थे।

वंश नं० ४ (अ) काश्यप वंश।

१. विभाण्डक काश्यप—ऋष्य शृङ्ग काश्यप (राम के बहनोई) मित्रकुकाश्यप (ये ऋष्य शृङ्ग के समकालीन थे।—[illegible] [illegible]—५. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible]—

१३. सत्ययज्ञ पौलुषि। यह शाखा वंश ब्राह्मण में कथित है। शतपथ ब्रा० के अनुसार इन्द्रोतशौनक ने जनमेजय को यज्ञ कराया। ऋष्य शृंग राम के बहनोई थे।

वंश नं० ४ (आ) वेदव्यास का वंश

१. पराशर (दूसरे)—वेदव्यास (कृष्ण द्वैपायन)—शुक—जैमिनि—सुमन्तु—सुत्वन (कबन्ध भाई, तत्पुत्र पथ्य और वेददर्श। अन्तिम के पुत्र मौग्द और प्रश्नोपनिषत् के पिप्पलाद ऋषि) सुकर्मन (सुत्वन के पुत्र) पौष्यंजि (हिरण्य नाभ भाई) लौगाच्छि (कुथुमि, कुसीदिन, लांगलि भाई) पराशर (तीसरे भाविन्ति भाई) पाराशर्य कौथुम—प्राचीनयोग्य (पतंजलि प्रथम, आसुरायण भाई)। उपर्युक्त सुकमन, हिरण्यनाभ-याज्ञवल्क्य (प्रोतिकौसुर, विन्दि, अश्वल भाई), आसुरि, (त्रैवनि, औप जन्धिनि भाई) हिरण्यनाभ कौशल नरेश थे।

वैशपायन और उपमन्यु चन्द्रवंश ३ के नं० ५६ जनमेजय तथा उपरोक्त पिप्पलाद के समकालीन थे। प्राचीन शाल उपमन्यु के पुत्र थे, तथा याज्ञवल्क्य वैशंपायन के भागिनेय और शिष्य। सत्यकाम जाबाल जनमेजय के पौत्र अश्वमेध दत्त के समसामयिक थे। उपरोक्त नं० १६ पतंजलि के समकालीन यास्क थे, जिनके भाई पंचशिख थे। यास्क का वश यों चलता है:— १६. यास्क—जातूकर्ण्य—पाराशर्य—बादरायण—२०. तांडि (शाट्यापति भाई)।

ये वंश लिखने मे प्रधान ने पराशर के पितामह शक्ति और वशिष्ठ को नही लिखा है। प्रधान ने जिस वशिष्ठ के पुत्र शक्ति और पौत्र पराशर कहे हैं, उन्हे दक्षिण कोशल नरेश सुदास का समकालीन माना है।

वंश नं० ४ (इ) नवीन भार्गव वंश।

वीत हव्य (या वीति होत्र हैहयवशी नं० ३७) गृत्समद (वेद के दूसरे मण्डल के ऋषि)—सवेतस—४०. वर्चस सावेतस—विहव्य—वितत्त्य (वितस्य भाई)—सत्य—शिवस्त—सन्तस—४५. श्रवस—

तमम—प्रकाश—वागिन्द्र—प्रमति—५०. रुरु—शुनक—देवापि शौनक—इन्द्रोत देवापि शौनक ५४. धृति ऐन्द्रोत देवापि शौनक।

वंश नं० ४ (ई) उद्दालक आरुणिवंश।

१. तुरकावषेय—यज्ञवचसराजस्तम्बायन—कुश्रि (वाजश्रवस के पुत्र)—उपवेश अरुण आपरुशी—५. उद्दालक, आरुणि (शिष्यपुत्र, वेद-भाई) शिष्य याज्ञवल्क्य विजयसेन (शिष्य तथा पुत्र) तुरकावषेय पौरव वंश नं० ५६ जनमेजय के समय में थे। ऐतरेय पुराण में आया है कि इन्हीं तुरकावशेय से जनमेजय ने महाभिषेक पाया।

वंश नं० ४ (उ) अष्टावक्र का वंश।

१. अग्निभग—वाक—कश्यपैनधुवि—शिल्पकश्यप—५. हरि कश्यप—असितवार्ष गण—जिह्वावन्त वाध्योग—वाजश्रवस कृष्ट वाजश्रवस—उपवेश—१०. अरुण—कुशीतक [उद्दालक, अश्वपति (?),
(उद्दालक के नीचे) श्वेतकेतु, (दूसरे के नीचे) याज्ञवल्क्य
अश्वतराश्व भाई] कहोड़ १३. अष्टावक्र।
(कहोड़ के नीचे) बुडिल

वंश नं० ४ (ऊ) पैल और भारद्वाज वंश।

१. वेदव्यास पैल—इन्द्रप्रमति (बाष्कल भाई) माण्डूकेय (शाकल्य [illegible])—सत्यश्रवस—५. सत्यहित—सत्यश्री—शाकल्य (रथीतर शाकपूणि भाई) ८. [illegible]—भारद्वाज ([illegible] भाई)।

वंश नं० ४ (ए) माण्डूक्य का वंश।

वंश नं० ४ ई का ३ ऋषि [illegible]—[illegible]—[illegible]—[illegible]—[illegible] १०. [illegible]—११. [illegible]।

[illegible]

५ है, तथा तुरकावशेय नं० १ है। अतएव जनक जनमेजय से पांच पीढ़ी नीचे थे।

वंश नं० ४ (ए) शिष्य गुरुवंश नकि पिता पुत्र।

१. अमास्य के शिष्य—पाथिन—वत्मनपात—विदर्भि—कौडिन्य—५. गालव—कुमार हारीत—कैसार्य—शांडिल्य—९. वात्स्य (बृहदारण्यक वाले)।

वंश नं० ४ (ऐ) शिष्य वंश।

वश नं० ४ ई का न० १, तुरकावशेय का शिष्य—यज्ञवचस—कुश्रि—शांडिल्य—५. वत्स्य—वामकक्षायण—माहित्थि—कौत्स—९. मांडव्य।

ये उपर्युक्त ब्रह्मवंश प्रधान तथा पार्जिटर के ग्रन्थों मे साधार प्रमाण से कहे गये है।

वंश नं० ५ दैत्य वंश।

१. मरीचि (ब्रह्मा के मानसिक पुत्र)—कश्यप—हिरण्य कशिपु (हिरण्याक्ष, वज्रांग, अन्धक भाई)—प्रह्लाद (अनुह्लाद, ह्लाद, सह्लाद भाई)—५. विरोचन—बलि—बाण।

हिरण्याक्ष के उत्कूर, शकुनि, भूत संतापन, महानाभि, महाबाहु, कालनाभ, ये पुत्र हुये। वज्रांग का पुत्र तारक था। उपर्युक्त वश कश्यप की स्त्री दिति का है। इन सबकी दैत्य सज्ञा है। कश्यप की अन्य स्त्री दनु थी, जिसके वश की दानव सज्ञा है। दनु के शम्बर, शंकर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, वृषपर्वा, पुलोमा, विप्रचित्ति आदि पुत्र हुये। वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से राजा ययाति के पुरुनाम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। पुलोमा और कालिका नाम्नी कन्याये दनु के वश मे थी, जिनके वशज प्रसिद्ध दानव पौलोम और कालिकेय कहलाये। दिति की पुत्री सिंहिका विप्रचित्ति को व्याही थी। इन दोनो के पुत्रों के नाम शल्य, वातापी, नमुचि, इल्वल, नरक, कालनाभ, चक्रयोधी आदि थे। प्रसिद्ध दैत्य निवत कवच तपस्वी थे। ये संह्लाद के वंश मे हुये। ये सब चाक्षुष मन्वन्तर मे थे (वि० पु०)। यहाँ जो पुत्र कहे गये हैं वे कभी कभी दूर के भी वंशधर हैं।

वंश नं० ६ ।

शुनक—प्रद्योतन—पालक—विशाखयूप—जनक—नन्दिवर्द्धन । पुराणानुसार इन लोगों ने १३८ वर्ष मगध में वंश नंबर (३६) के पीछे राज्य किया ।

वंश नं० ७ ।

शिशुनाग—काकवर्ण—क्षेमधर्म्मा—क्षत्रोज—विन्दुसार—अजात शत्रु—दर्भक—उदयन—नन्दिवर्द्धन—महानन्दी । इन लोगों का राज्य मगध में वंश नम्बर ६ के पीछे हुआ । विष्णु पुराण इनका राजत्व काल ३६२ वर्ष कहता है, किन्तु यह काल उचित से अधिक है जैसा कि आगे विदित होगा ।

वंश नं० ८ ।

महापद्म (यह राजा शूद्रा से उत्पन्न था)—सुमाली (८ भाई) । इन लोगों ने वंश नम्बर ७ के पीछे मगध में राज्य किया । विष्णु पुराण इनका राजत्व काल १०० वर्ष मानता है ।

इन सब राजवंशो और नामों का ब्योरा चाहे कुछ पाठकों को फीका लगे पर विचारने से इसमें बहुत सी जानने योग्य बातें मिलेंगी ।

पांचवां अध्याय

वेद पूर्व का भारत।

समय १९०० बी० सी० से पूर्व ।

प्राचीन समय मे इस विषय का विवरण प्राय: वैदिक आधारों पर ही दिया जाता था, किन्तु सन् १९२२ से २७ तक जो खोदाई मोहंजो दड़ो (सिन्ध) तथा हड़प्पा, पञ्जाब, में हुई, उससे परम प्राचीन भारतीय सभ्यता की प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है । उसके विषय में पुरातत्त्व विभाग के डाइरेक्टर-जनरल सरजान मार्शल ने कई भागो में एक भारी ग्रन्थ बनाया है, जिसमे फोटो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उसी के आधार पर हम यहाँ कथन करेंगे। इसी विषय पर जनवरी सन् १९३५ मे लखनऊ विश्व-विद्यालय के इतिहासज्ञ श्रीयुत डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने एक छोटा सा व्याख्यान भी दिया। पहले उसका सारांश कह कर हम सरजान के विचारों का विवरण देवेंगे।

डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी के आधार पर कथन

शिकागो ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट ने इराक़ में जाँच कराई तो प्राय: २५०० बी० सी० के एक अखद राजा की कुछ सामग्री बग़दाद के निकट मिली। इसमे भारत से तत्काल कुछ मोहरे मिलीं जो मोहजो-दड़ो के बीचवाले परतों मे प्राप्त हुई मोहरों के समान थीं । इसमे सात तहें निकली थी जिनमे से प्रत्येक नीचे वाली तह ऊपर वाली तह से सैकड़ों वर्ष पुरानी है। जब २५०० बी० सी० मे प्राप्त मोहरें बीच की तहों मे हैं, तब मुकुर्जी महाशय का विचार है कि मोहंजो दड़ो की सब से नीचे वाली तह प्राय: ४००० बी० सी० के निकट की होगी । बग़दाद की इन मोहरों मे, सिन्ध (मोहंजो दड़ो) की लिखावट है तथा बैबिलोन में अप्राप्त भारतीय जानवर हाथी और गैंडे इनमें खुदे हैं। सभ्यता की दृष्टि से मोहंजोदड़ो के लोग बहुत बातो में संसार

सभ्यता में सर्व प्रथम थे। शहरों में रहना, शहर बनाना, पक्की ईंटें बनाना, पत्थर पर खोदाई और कारीगरी, गेहूं और जौ की उत्पत्ति, ऊन एवं सूत कातना और बुनना, मिट्टी के बर्तनों पर रोग़न का काम करना, गाड़ी बनाना, लेख लिखना (जो अब तक पढ़ा नहीं गया है), दूर देशों से व्यापार आदि के ऐसे काम हैं जिन में वे संसार में प्रायः प्रथम थे। सोना, चाँदी, हीरा जवाहिरात आदि के अलंकार उनके पास थे। हाथी, गाय, ऊँट आदि पालते तथा चीते, गैंडे या घरेलू सुअर का शिकार खेलते थे। उनके सोना, ताँबा, टीन और जवाहिरात कोलर, अनन्तपुर, फ़ारस, जैसलमेर, नीलगिरि, बदख़्शाँ, ख़ुरासान, तुर्किस्तान, तिब्बत आदि से आते थे।

जानवरों के होने से उनके यहाँ जंगलों का होना सिद्ध है, जिससे जलबाहुल्य प्रकट है। मोहरों और सजाव से प्रकट है कि उनकी कारीगरी संसार में प्रथम थी। उन्होंने पत्थर और कांसे से मनुष्य की मूर्तियाँ बनाईं। धर्म में वे आदिम मातृ देवी, शिव और शक्ति का पूजन करते थे। जानवर देवताओं के वाहन थे, तथा नाग पूजन भी प्रचलित था। उनमें ध्यानमग्न शिव-मूर्तियाँ मिली हैं, तथा नासिका पर दृष्टि लगाये हुये ध्यान धारे योगियों की मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों से इतने प्राचीन काल से ऐसे विचारों का अस्तित्व झलकता है।

भी पुराना था। शिव के निकट हाथी, चीता, गेंडा, और भैंसा हैं। नाग उनकी पूजा करते हैं, और वे हरिण मृग चर्मो पर बैठे हैं। पशुपति वे उस काल भी समझ पड़ते हैं। वहाँ लिंग और योनि के पूजन थे। सिन्ध और बलोचिस्तान में वर्तमान अरघों (जलेरियों) के समान लिंगयुक्त अर्घे मिले हैं। जानवरों का भी पूजन था। सींग देवत्व का चिन्ह था। आराम की सभ्यता में वे आर्यों से बढ़े हुये थे। भाषा उनकी अब तक पढ़ी नहीं गई है, सो उसमें लिखित विचार अज्ञात हैं। उनके सम्बन्ध का अब तक जो ज्ञान है, वह वस्तुओं मात्र से प्राप्त है। हिन्दुओं में पीछे से शिव मातृदेवी, कृष्ण, नाग, जानवर, वृक्ष, पत्थर लिंग, योग, शक्ति, संसार भक्ति आदि के पूजन-विधान जो उठे, उनके मूल इनमें पाये जाते हैं। स्नान पर बड़ा जोर था। शायद यह धार्मिक हो। मोहनजोदड़ो में शव प्रायः जलाए जाते थे, कुछ पूरे शव पाये भी गए हैं। इस सभ्यता का समय ३२५० बी० सी० से पुराना नहीं है और २७५० बी० सी० से नया भी नहीं। आजकल के पंडित इसे २८वीं शताब्दी बी० सी० मानते हैं। यहाँ ५९० मोहरें मिली हैं, जिन सब की तसवीरें ग्रन्थ में हैं। स्त्रियों का नाच, अच्छी मूर्त्ति, मिट्टी के बर्तन, कारीगरी, स्नानागार-प्राचुर्य आदि प्राप्त है। पूजनालय शायद न थे। बूढ़ा का भय था। नदियों के पेंदे समय पर ऊँचे होगए। इमारतों में मकानात, खम्भेदार हाल, छोटे-बड़े हम्माम और अनिश्चित कामों के कमरे मिले हैं। शायद ये अन्तिम मन्दिर या पूजनालय हों। ये लोग गेहूँ और जौ खाते थे। नंगी नर मूर्ति भी मिली है। कारीगरी अच्छी है। मोहन्जोदड़ो में जो मनुष्यों की पूरी हड्डियाँ मिली हैं, उन पर विद्वानों के विचार से जाना गया है कि वहाँ चार प्रकार के मनुष्य थे, अर्थात् प्रोटो आस्ट्रेलायड, मेडिटरेनियन, आल्प्स शाखा के मंगोलियन तथा शुद्ध आल्प्स शाखा। पहली शाखा भारत की थी, दूसरी दक्षिणी एशिया से, तीसरी पाश्चात्य एशिया से, और चौथी प्राच्य एशिया से। यह सभ्यता वैदिक आर्यों से असम्बद्ध थी, किन्तु द्राविड़ों तथा सुमैरियनों का सम्बन्ध सोचा जाता है। मोहंजोदड़ो में तांबे के सिक्के भी हैं। कोई गोल खम्भा नहीं है, कुएँ हैं। बांट छेददार हैं। धातुओं के

छल्ले, अँगूठी और सुइयाँ मिली हैं। मनुष्य की ऊँचाई ६१ से ६८ इंच तक थी। मार्शल साहब के ग्रन्थों में जो यहाँ के सैकड़ों चित्र हैं, उनके देखने से बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। यहाँ की प्रचुर सामग्री जो शिमले में रक्खी थी, उसे भी हमने जाकर देखा। इस चित्रमय संसार से उस काल का जो परमोत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त है, वह बहुत अनमोल है। वेदों की सभ्यता का चित्र हमारे सामने लेखों से आता है, और यहाँ का चित्रों द्वारा।

योरोपियन लेखकों का विचार है कि भारत में सबसे पहला आर्यागमन २५०० बी० सी० के निकट हुआ। उनका दो धाराओं में आना लिखा है। इसका उत्कृष्ट विवरण मुख्यतया ऋग्वेद में प्राप्त है।

उस समय यहाँ कैसे मनुष्य रहते थे और उनकी सभ्यता तथा देश की दशा क्या थी, इन बातों को जानने के लिये सिवा उपयुक्त खोदाई तथा आर्ष ग्रंथावलोकन के और कोई उपाय हम लोगों के पास नहीं है। आर्यों का प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद है जिसमें भारतीय आदिम निवासियों को अनास, भाषाहीन, और केवल चिल्लाने वाले कहा गया है। आदिम निवासियों में पिशाच जाति निकम्मी बहुत थी। जिस समय में यह लिखा गया तब आर्यों का उनसे युद्ध होता था और इन दोनों जातियों में सामाजिक सम्बन्ध बिलकुल स्थिर नहीं हुआ था। ऐसी दशा में आर्यों का उनकी भाषा को चिल्लाना मात्र कहना स्वाभाविक था। आदिम निवासियों ने आर्यों से कैसा प्रगाढ़ संग्राम किया और अपनी जातीयता एवं स्वतन्त्रता स्थापित करने के जो-जो उपाय किये, उनके देखने से अनार्यों की सभ्यता बहुत थोड़ी नहीं मालूम पड़ती। उन लोगों ने भाषाहीन वनमानुषों की भाँति का व्यवहार नहीं किया, वरन सैकड़ों वर्षों तक [illegible] आर्यों से युद्ध किया और हर प्रकार से [illegible] उनकी [illegible]। [illegible] बड़े बड़े नेता भी थे। इन बातों से प्रकट है कि [illegible] थी। [illegible] से भाषा और [illegible] [illegible] है [illegible] पता नहीं [illegible] है। [illegible] आर्यों की [illegible] [illegible] है, [illegible]

यहाँ तक कि समय पर उसका एक रूप बन गया, जो अब पहली प्राकृत या पाली कहलाती है और जिसका वर्णन आगे आवेगा। भारत की जो दशा थी उसका अनुमान उपर्युक्त खोदाई तथा ऋग्वेद के कथनों से होता है।

भारत की स्थिति उस काल आज से बहुत ही भिन्न थी। नदियाँ, पहाड़ आदि तो प्राय: ऐसे ही थे, किन्तु ग्राम आदि बहुत कम थे और सारा देश प्राय: जगल से भरा हुआ था। अनार्यों मे खेती का प्रचार बहुत कम था। जिस काल आर्य्य लोग देश मे बसने लगे, तब उन्हें जंगल जला कर खेती और निवास के लिये भूमि निकालनी पड़ी। जङ्गल की बहुतायत से समझ पड़ता है कि उन दिनों जङ्गली जीव अधिकता से होगे। व्यापार इत्यादि की क्या दशा थी सो हम नहीं जान सकते। ऊन और खाल का चलन बहुतायत से था। अनार्य्य लोग धनुष बाण से शिकार खेलते और प्राय: जङ्गलो ही मे रहते थे। मोहंजोदड़ो आदि बड़े बड़े नगर भी थे, किन्तु अधिकतर मनुष्य उस उच्च सभ्यता से असम्बद्ध होगे। पहाड़ों पर उनके क़िलों का भी होना वेद मे लिखा है, किन्तु यह निश्चय नहीं है कि इन लोगों ने आर्य्यों की नकल करके अपनी रक्षा के लिए दुर्ग रचे थे अथवा वे पहले ही से थे। आर्य्यों से सघट्ट होने पर यह लोग पहाड़ों और जङ्गलो में छिपे रहते थे और वहीं से सहसा धावा करके जानवर छीन ले जाते और खेती उजाड़ जाते थे। जान पड़ता है कि दूध आदि के लिए यह जानवर पालते और उनका भक्षण भी करते थे। देश के जङ्गली होने से आर्य्य लोग बहुत धीरे धीरे आगे बढ़े।

इसलिए अनार्य्यो ने पूरे देश मे विजित होने से पूर्व आर्य्यो से बहुत कुछ सीख लिया था। अत: हम साथ ही साथ इन लोगो के परम ओछे और गंभीर वर्णन पाते है। जान पड़ता है कि ओछे वर्णन आदिम काल के है और गंभीर उस समय के जब यह लोग आर्य्य सभ्यता से बहुत कुछ सीख चुके थे। हिरण्य कशिपु, वलि, शुम्भ, निशुम्भ, आदि के समय मे इन लोगो ने अच्छी उन्नति कर ली थी। किसी किसी का यह भी विचार है कि देवासुर संग्राम फारस मे हुआ और तब आर्य्यों की दूसरी धारा भारत आई।

अनार्य्यों की कई जातियाँ थीं, जिनका हाल वेदों, इतिहासों और पुराणों से विदित होता है। इन में महिष, कपि, नाग, मृग, गृध्र, राक्षस, व्रात्य, आज्रिक, दैत्य, दानव, कीकट, महावृष, बाल्हीक, मूजवन आदि प्रधान हैं। कीकट गया प्रान्त को कहते हैं। वहाँ के निवासी कीकट अनार्य्य थे। इन सब को अनार्य्य कहते हैं और पौराणिक काल में इनमें कुछ जातियाँ असुर भी कहलाती थीं। वैदिक समय में पहले असुर देवताओं को कहा गया और इन लोगों को राक्षस यातुधान, दस्यु, सिम्यु आदि नामों से पुकारा गया। कुछ ऐतिहासिकों का विचार है कि जो अग्नि पूजक पारसी ईरान में थे उनके तथा भारतीय आर्य्यों के पूर्व पुरुष एक ही थे और साथ ही फारस आदि में रहते थे। युद्ध के पीछे भारतीय होने वाले आर्य्य इधर चले आये। इन विचारों का कथन आगे होगा।

ऐतिहासिकों ने आर्य्यों से पहले वाले भारतियों की दो प्रधान शाखायें कही हैं, अर्थात कोल और द्रविड़। नाग नामी एक और प्राचीन जाति थी। ये कोल या द्रविड़ों की शाखा थे या स्वतंत्र जाति, सो अनिश्चित है। ये तीनों जातियाँ श्याम वर्ण की थीं। भील और सन्थाल कोलों की सन्तानें हैं। इस समय भारत में ३० लाख कोल हैं। ये लोग मुंडा भाषा बोलते हैं। कोल पत्थर और हड्डी के हथियार बनाते थे। ये वीर, चतुर, प्रसन्नचित्त, आलसी और सन्तोषी थे। कोलों के पीछे द्रविड़ भारत में आये। इन्होंने कोलों को हराया। कोल और नाग इनकी उपजातियें हैं। आज कल प्रायः ५,[illegible] द्रविड़ भारत में हैं। यह लोग खेती और व्यापार करते, नगरों और ग्रामों में बसते, सूती कपड़े पहनते, सोने के गहने धारण करते और तांबे के धातुओं का व्यवहार करते थे। ये भूत, प्रेत, सर्प आदि की पूजा करते और अपने देवताओं से डरते थे। [illegible] के समय भारत में [illegible] [illegible]

सिन्ध, बम्बई मे सीदियनो तथा द्रविड़ो का मिश्रण है, नैपाल, भूटान आसाम आदि मे मंगोलो का प्राधान्य है, बंगाल, छोटानागपूर और उड़ीसा मे मंगोल द्रविड़ो का मिश्रण है और वायव्य सीमा प्रांत के लोग तुरुष्क (तुर्की ईरानी) हैं। यह योरोपीय अनुमान ऐतिहासिक घटनाओ पर निर्भर है। जहाँ जहाँ जो जो जातियां बसी है वहीं वहीं उन सब का मिश्रण देशवासियो मे माना गया है। कोलो के कारण भारत मे परम प्राचीन समय कोलेरियन काल कहा गया है और उसके पीछे वाला द्रविड़ काल। द्रविड़ों के विषय में अभी पूरी दृढ़ता नहीं है कि वे कौन थे और कहां से आये, जैसा कि आगे कहा जायगा।

अब हम उपर्युक्त महिष, कपि आदि के विषय मे कुछ हाल लिखते हैं जो वेद, पुराणादि प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है।

महिष—इनको दुर्गासप्तशती मे महिषासुर करके कहा गया है। यह आर्यो के शत्रु थे और इसी लिये देवी ने इन्हे पराजित किया। कुछ पंडितो का मत है कि इस जाति के लोग दक्षिण मे अब भी पाये जाते हैं। मैसूर प्रान्त को प्राचीन ग्रन्थो मे महिष मंडल कहा है।

कपि अथवा बानर—इन लोगो ने रामचन्द्र की सहायता की। किष्किन्धा मे इनका राज्य था और बालि, सुग्रीव, हनुमान आदि नेता थे। कुछ लोगो का विचार है कि दक्षिण की वर्तमान टोडा जाति के लोग शरीर पर केश बाहुल्य के कारण उस काल कपि करके पुकारे गये। रामायण मे जो इनकी पूँछ आदि के वर्णन हैं वे अत्युक्ति पूर्ण एवं प्रक्षिप्त समझने चाहिये। ऋक्ष भी इसी प्रकार के लोग समझ पड़ते हैं। इनकी सभ्यता समय पर इतनी बढ़ गई थी कि जाम्बवंत नामक एक ऋक्ष की कन्या के साथ स्वयम् श्रीकृष्ण चन्द्र ने विवाह किया। इन लोगो को वास्तव मे बन्दर, भालू, भैंसा आदि समझना भारी भूल है, क्योकि कोई रीछ रामचन्द्र का मंत्री तथा श्रीकृष्ण का ससुर नही हो सकता था। इन लोगो की सभ्यता के जैसे वर्णन ग्रन्थो मे आए हैं, उनसे प्रकट है कि यह लोग वन्यजन्तु न होकर द्रविड़ जातियो के मनुष्य थे।

नाग—इस जाति के लोगों का वर्णन पहिले पहल समुद्र मन्थन के समय मे आया है। इन लोगों ने देवताओं की सदैव सहायता की। राजा जनमेजय को छोड़ और किसी आर्य राजा से इनका भारी युद्ध नही हुआ। शेष, वासुकि, तक्षक, धृतराष्ट्र आदि इनके सरदार थे। इनका वैवाहिक सम्बन्ध आर्यो से हुआ अवश्य किन्तु बहुतायत से नहीं। विशेषतया पाताल में नाग लोक कहा गया है। सिन्धप्रान्त मे पाताल नगर था जहाँ वासुकि वंशी एक नाग राजा का शासन था। वहाँ से बेबिलोन का भारतीय व्यापार चलता था। ये कथन पार्जिटर के हैं। कहीं कहीं पूर्वी बंगाल के समुद्र तट वाले भाग को भी पाताल कहा है। भारत में भी यह लोग रहते थे और गंगा, सरजू आदि नदियों के सहारे इनके देश मे पहुँचने के वर्णन आए है। वहाँ जल का बाहुल्य समझ पड़ता है। समुद्र मन्थन में इन लोगों ने आर्यों की सहायता की, जिससे इनका समुद्र तट वासी होना अनुमान सिद्ध है। बंगाल में कुछ जातियों की नाग संज्ञा अब तक है और बिहार में शिशु-नाग वंशियो का कुछ दिन राज्य भी रहा। इन सब बातों से इन लोगों का आदिम निवास स्थान बंगाल समझ पड़ता है। छोटा नाग-पुर के उत्तर इनका मुख्य केन्द्र था। आर्य वंशी राजा युवनाश्व और हर्यश्व की बहिन धूम्र वर्णा नामक नाग को ब्याही थी। इसी की ५ कन्याओं का विवाह हर्यश्व के दत्तक पुत्र यदु के साथ हुआ था। युधिष्ठिर के भाई अर्जुन ने नाग सुता उलूपी के साथ ब्याह किया था, जिससे इरावान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वासुकि की बहिन जरत्कारु का विवाह इसी नाम के एक ऋषि से हुआ। आस्तीक इन्हीं का पुत्र था जिसने जनमेजय के यज्ञ में नागों की रक्षा की। रामचन्द्र के पुत्र कुश ने भी एक नाग कन्या के साथ विवाह किया। [illegible] मेघनाद ने [illegible] राजा [illegible] पौत्र [illegible] नाग कन्या के साथ विवाह किया। श्रीकृष्ण ने वृन्दावन के समीप मे कालिय नाग का मानमर्दन [illegible] कि यह समुद्र के निकट [illegible]। इससे भी अनुमान होता है कि नाग लोग समुद्र के निकट [illegible]। वैदिक [illegible] और [illegible]

कुंडल नागो से ही छीने। सुरसा नाम्नी नाग माता ने उदधि उल्लंघन के समय देवताओं के कहने से हनुमान के बल की परीक्षा की। राजा बलि को क़ैद करके जब भगवान बामन ने पाताल भेजा था, तब उनके निरीक्षक नाग लोग नियत हुए। कुशान वंश को पराजित करके नागों ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया अथच हिन्दू सभ्यता की रक्षा की। उसी वंश का दौहित्र तृतीय वाकाटक नरेश पीछे शासक हुआ, जिससे वाकाटक राज्य चला। इनके पीछे गुप्त साम्राज्य जमा। इतनी बातों के होते हुए भी पुराणों मे बहुत स्थानों पर ऐसे वर्णन मिलते है कि नाग लोग वास्तव मे सर्प ही थे। ऐसे वर्णन अग्राह्य है।

मग—इन लोगों का वर्णन भविष्य पुराण मे कई अध्यायों द्वारा हुआ है, जहाँ इनकी पृथक् जाति सी मानी गई है। वहाँ लिखा है कि यह लोग सूर्य के उपासक थे। इनके कई राजा सरदारों आदि के नाम भी वहाँ पर आए हैं। मग शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। इन्हे कृष्ण पुत्र शाम्ब ने बाहर (फारस) से लाकर मुल्तान मे बसाया था और वहाँ एक सूर्य मन्दिर भी बनवाया जो ह्यूयन्तसांग के समय तक प्रस्तुत रहा।

दैत्य—इनका वर्णन वेदों मे कुछ है और पुराणो मे बहुत अधिकता से आया है। इनके सरदार हिरण्यकशिपु, बज्रांग, अंधक, बज्रनाभि आदि थे। इनकी माता दिति थीं, जिससे इनकी दैत्य संज्ञा हुई। इनके पिता कश्यप ऋषि कहे गए है, किन्तु ये ही दैत्य, दानव, देवता, पशु, पक्षी यहाँ तक कि वृक्ष आदि के पिता हैं। इससे यह पितृत्व का वर्णन दार्ष्टान्तिक है। इन लोगो की देवताओ से बहुत काल पर्य्यन्त शत्रुता रही। देवताओ से ऐसे स्थानों पर रूपक द्वारा आर्य्यों का प्रयोजन समझना चाहिए। समझ पड़ता है कि यह केवल अनार्य्य ही अनार्य्य न थे, वरन् अनार्य्यता के साथ इनमे कुछ आर्य्य रुधिर भी मिला हुआ था। यह लोग आर्य्य सभ्यता गृहीत थे। प्रह्लाद विष्णु भक्त थे और बलि बहुत बड़े दानी और यज्ञकर्त्ता। आर्य्यों से इनका वैवाहिक सम्बन्ध अधिकता से था। पुलोमा दैत्य

में) और पितृ शृङ्गवान पर्वत पर [illegible]
समुद्र के निकट है । ये स्थान किसी समय में इन [illegible]
स्थान थे । समय पर इनमें बहुत से हेर फेर भी हुये [illegible]
स्थान पर दिखलाये जावेंगे ।

आर्य्य लोग कौन थे और भारत में कहां से इनके [illegible] जानने के लिये सांसारिक जातियों का कुछ वर्णन करना [illegible] पड़ता है । मानव-शास्त्र-वेत्ताओं ने मनुष्यों को पांच जातियों में विभक्त किया है, अर्थात् काकेशियन, मंगोलियन या तातार, हबशी, मलय और अमरीकन । रंगों के अनुसार यही लोग क्रमशः गोरे, पीले, काले, बादामी और लाल हैं । गोरे लोग प्रधानतया योरोप, पश्चिमी और दक्षिणी एशिया तथा उत्तरी अफरीका में रहते हैं और उत्तरीय एवं दक्षिणीय अमरीका में हाल में बस गये हैं तथा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड मे बसते जाते हैं । मंगोल लोग प्रधानतया चीन, जापान, बर्मा, स्याम आदि मे रहते हैं । हबशी लोगों का स्थान अफरीका है तथा मलयों का मलक्का, मडागास्कर, न्यूजीलैण्ड आदि । अमरीकन लोग जो लाल इंडियन कहलाते हैं दोनों अमरीकाओं में रहते हैं ।

इन सब मे गोरी जाति प्रधान है । मिश्र, असीरिया, वैबिलोनिया, फिनिशिया, फारस, यूनान, इटली आदि के लोग सब गोरे थे । हिन्दू और हिब्रू लोग भी गोरे हैं । इस गोरी जाति की तीन प्रधान शाखाएँ हैं, अर्थात् आर्य, सेमेटिक और हैमेटिक । सेमेटिकों में हिब्रू लोगो, अरबो एव फिनिशिया, वैबिलोनिया और असीरियावालो की गिनती है, तथा हैमेटिको मे मिश्रवालों की । यह दोनो नाम नूह के पुत्रो शेम और हेम के नामो से निकले हैं ।

आर्य्य जाति संसार मे सर्वप्रधान है । इसी मे भारतवासियों, जर्मनों, रूसियो, अंग्रेजों, फ्रांसीसियों आदि की गणना है । सब योरोपवासी आर्य्य नही हैं । पाश्चात्य पडितों मे से कुछ का विचार है कि आर्य्य लोग मध्य एशिया मे रहते थे और कुछ लोग उन्हें पूर्वीय योरोप का निवासी मानते हैं । पंडितवर मैक्समुलर का मत है कि एक वह समय था कि जब हिन्दुओ, जर्मनो, रूसियों, यहूदियो, अफगानो,

और धनुष बाण तथा तलवार से लड़ते थे। उनमें राज्य शासन प्रणाली का आरम्भ हो चुका था। वे आकाश अथवा आकाशवासी देवता का पूजन करते थे।

कुछ पाश्चात्य पंडितों का विचार है कि प्राचीन संसार का सब से बड़ा इतिहास स्थल मेडेटरेनियन समुद्र का किनारा है। वे समझते है कि चीनी स्वपांडित्याभिमानी मात्र रहे है, हिन्दू स्वप्नवत् विचाराश्रयी मात्र, ग्रीक विचारशील तथा कारीगर और रूमी पूरे मनुष्य। अभिमानी कुछ सिखला नहीं सकता था, स्वप्नाश्रयी ने कुछ नहीं किया, कारीगर ने अपनी और अपने पड़ोस की उन्नति की और पूर्ण मनुष्य ने संसार पर शासन किया। आशा है कि ऐसे ओछे विचारो का कुछ संशोधन इन पृष्ठो के अवलोकन से हो जायगा, क्योंकि हिन्दुओ ने बहुत सी उन्नति अवश्य की थी। मिश्र, शे (चै) ल्डिया, भारतवर्ष और चीन मे अति प्राचीन समय से यथेष्ट सभ्यता वर्तमान थी। इनमे आर्य जाति सब से अधिक सभ्य थी। मिश्र और असीरियावासियों ने कई बार भारतवर्ष पर चढ़ाइयाँ की।

भारतीय इतिहास आरम्भ करने के पूर्व यह ठीक समझ पड़ता है कि अपने पड़ोसी फारस का कुछ सूक्ष्म दिग्दर्शन करा कर तब आगे बढ़े। दलाल महाशय ने १९१४ के निकट प्राचीन भारत पर एक ग्रन्थ अँगरेजी मे प्रकाशित किया।. उसमे आर्यो के विषय मे उनके जो विचार हैं उन मे से कुछ का सारांश यहाँ दिया जाता है। ८००० से ७००० बी० सी० तक ग्लेशियरो (समुद्र मे तैरनेवाले वर्फ के पहाड़ो) से शीताधिक्य एवं जनवृद्धि के कारण आर्य लोग अपने प्राकृति कसदनो को छोड़ कर नीचे उतरे। अनन्तर वे योरोप और एशिया मे बँट गए। ७००० से ६००० बी० सी० तक वे मध्य एशिया मे बसे, तथा ४००० बी० सी० मे फारस एवं भारत पहुँचे। ८००० से ६००० बी० सी० तक वे खाद का हाल नही जानते थे, किन्तु रथ, नाव, बुनाई का काम, यव और मधुपान से अभिज्ञ थे। उनके देवता उषस, द्युस और वरुण थे और वे यज्ञ करते थे। ६००० से ४००० बी० सी० तक वे बैबिलोन के निवासियो से मिले। उनकी सभ्यता उच्च थी, सो आर्यो की गति

अवरुद्ध हुई और इन्होने उनसे बहुत कुछ सीखा। तदनन्तर आर्यों का फ़ारस और भारत से संबंध प्रारम्भ हुआ। फ़ारसी और भारतीय आर्य प्रायः एक ही थे। उनमें बहुत कुछ साम्य था। जन्दावस्ता के शब्द और विचार बहुत कुछ ऋग्वेद से मिलते हैं। यथाः—

वृत्रध्न (इन्द्र) ईरानी वैरेथ्रध्न। जैतन=थइटौन।

तृत, वेदों का, थृत ईरानी। प्रथम वैद्य मित्र=मिथ्र।

शतपथ ब्राह्मण ९, ५, १ से निष्कर्ष निकलता है कि देव तथा असुर प्रजापति के पुत्र थे। देव सत्य पर रहे, असुर असत्य पर। देवासुर युद्ध होने से देव ईरान के उत्तर पूर्व मे वसे, और वहां से भारत आये। यह युद्ध दीर्घ कालीन और भारी था।

भारत मे आने पर आर्यों ने यहां द्रविडों तथा कोलो को पाकर उन्हे दास या दस्यु कहा। कोल उत्तर पूर्व से और द्रविड़ उत्तर पश्चिम से आये थे। कोई कोई इन्हे बलूचिस्तान से आनेवाले समझते है। कोलैरियनो को विन्ध्य के निकट पराजित करके द्रविड़ दक्षिण चले गए। कुछ लोगो का विचार है कि कोल आदिम भारतीय थे। द्रविडों का बैबिलोन से अच्छा व्यापार था। वे पृथ्वी और शेपनाग को पूजते थे। ग्राम्य समाजों का चलन द्रविडो ने चलाया। तरु पूजन भी उनका था। खेती का अच्छा प्रचार दक्षिण मे हुआ। उनके कुटुम्ब माताओ पर थे। ऋग्वेद में ये राक्षस और यातुधान हुए। पिशाच लाली लिए हुए बहुत चिल्लाने वाले थे। वृहत्कथा मूलतः पैशाची भाषा में थी। नागो और यक्षो की भी दो जातियां थीं। कुबेर यक्ष थे। दक्षिण में नागों के चित्र मनुष्यो के हैं न कि सर्पों के। आर्यों की दूसरी धारा गिलगिट और चितराल होकर आयी। पहले देव असुरो से हार गए, किन्तु पीछे पुरंजय की सहायता से विजयी हुए। पुरकुत्स नर्मदा तक वढ़े।

पार्जिटर महाशय का विचार हिन्दू शास्त्रों के अनुसार चलता है। हिन्दुओ मे तिब्बत गन्धमादन आदि तो पवित्र देव देश हैं, किन्तु पंजाब अफग़ानिस्तान आदि ऐसे नहीं हैं। इससे आपका कथन है कि आर्य लोग भारतवर्ष में उत्तर पश्चिम से न आकर इधर ही से आये।

फ़ारस का राज्य—यह राज्य पहले पहल पारसियों के अधीन हुआ। ये लोग आर्य्य थे और हमारे पूर्व पुरुषों की भाँति मध्य एशिया अथवा पूर्वीय रूस से आए थे। इनकी भाषा ज़न्द पुरानी संस्कृत से मिलती-जुलती है। इस भाषा में ज़न्दावस्ता नामक इनका प्राचीन धर्म ग्रन्थ मात्र रह गया है। हेरोडोटस ने बी० सी० १४०० के लगभग वाले फारस राज्य के भारतीय सम्बन्ध का हाल कहा है। पारसियों ने कई जातियों को पराजित किया, किन्तु ये लोग उनका एकीकरण न कर सके। फारस पहले मीडिया के अधीन रहा, किन्तु ७०० बी० सी० के लगभग इन लोगो का शासक पृथक हो गया। फिर भी वह रहा मीडियों के अधिकार मे, किन्तु ५५० बी० सी० मे साइरस ने मीडिया को जीत कर फारस का राज्य स्थापित किया। यह शासक बहुत बड़ा विजयी था। इसने ५४६ में लिडिया और ५३८ मे बैबिलोनिया को भी जीत कर फ़ारस में मिला लिया। पूर्व मे इसने हिन्दूकुश तक अपना राज्य फैलाया। यह बड़ा प्रतापी राजा था, किन्तु ५२९ मे सीरिया वालों से युद्ध करने मे मारा गया। इसके पुत्र कम्बीसिस ने ५२९ मे मिश्र देश को जीत लिया। ५२१ से ४८५ बी० सी० तक इसके पुत्र दारा ने राज्य किया। इसने फारस के विशाल राज्य को दृढ़ करके उसे कई प्रान्तो मे विभाजित किया। प्रत्येक प्रान्त का शासक सट्रैप कहलाता था। दारा ने सड़कें बनवायी और डाकखानो का अच्छा प्रबन्ध किया। इसने योरोपीय प्रान्त, थ्रूस और मैसिडोनिया को भी जीत कर फारसी राज्य मे मिलाये। इसके पीछे दारा ने यूनान (ग्रीस) जीतने का प्रबन्ध किया, किन्तु ४९० मे मराथान के जगत्प्रसिद्ध युद्ध में फारसी लोगों ने करारी पराजय पायी और योरोपीय पंडितो के अनुसार एशिया की योरोप विजय वाली कामना सदा के लिये अस्त हो गयी। इसके पुत्र ने फिर यूनान विजयार्थ युद्ध किये किन्तु फल यह हुआ कि उसके हाथ से मैसिडोनिया और थ्रूस भी जाते रहे। ४१४ मे मिश्र स्वतन्त्र हो गया। ३३६ में तीसरा दारा गद्दी पर बैठा। इसने ३३१ मे सिकन्दर के हाथ अर्बेला में वह करारी पराजय पायी कि जिससे फारस का राज्य ध्वस्त हो गया। इसके पीछे फारस साम्राज्य पद से गिर कर एक साधारण

राज्य रह गया। फारस का भारत से कभी कोई ऐतिहासिक भारी युद्ध नही हुआ। भारत के बहुत से शक राजे अपने को सट्रैप (क्षत्रप) कहते थे, जिससे अनुमान किया जाता है कि वे लोग फारस के अधीन थे, क्योंकि फारस के प्रान्तीय शासक सट्रैप कहलाते थे, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं।

भारतीय इतिहास के लिये यह वर्णन कुछ कुछ अप्रासगिक समझा जा सकता है, किन्तु प्राचीन भारत का इस देश से बहुत कुछ सम्बन्ध रहा है। तिलक महाशय ने अपने 'ओरियन' ग्रन्थ मे सिद्ध किया है कि आर्य्य लोग सब से पहले उत्तरीय ध्रुव के निवासी थे। हमारे शास्त्रो में लिखा है कि देवताओं के दिन रात छः छः महीनो के होते हैं। यह बात उत्तरीय ध्रुव के विषय मे आज भी घटित है। आइसलैण्ड नामक टापू में भी यही दशा है। जब तक सूर्य्य उत्तरायण रहते हैं तब तक वहाँ बराबर दिन रहता है। इसी प्रकार दक्षिणायन सूर्य्य मे छः मासों तक रात बनी रहती है। इस प्रकार ध्रुव प्रदेशो में वर्ष मे एक ही दिन रात होती है। हिन्दू शास्त्र देवताओं का यही दिन मानते हैं। इससे कुछ ध्वनि निकलती है कि आदिम आर्य्य लोग उत्तरीय ध्रुव मे रहते थे। सम्भवत: वहीं से चल कर वे पूर्वीय रूस और मध्य एशिया होते हुए भारत, पश्चिमी एशिया और योरोप मे फैले। तिलक महाशय के अनुसार आर्य्यों का पदार्पण भारत मे ६००० बी० सी० के लगभग हुआ और ४००० से २५०० तक ऋग्वेद तथा सामवेद की रचना हुई। यजुर्वेद और अथर्ववेद इस से कुछ पीछे के हैं। इसलिये इस अध्याय मे वेदो का वर्णन न करके हम उसे यथा स्थान कहेंगे। यहाँ वेदो एवं अन्य ग्रन्थो के सहारे से आर्य्यों के आगमन का कथन किया जायगा और पुराणो आदि के आधार पर शेष इतिहास कहा जायगा। वायु पुराण का कथन है कि भूत, पिशाच, नाग और देव उत्तर से भारत को आये। भूतगण भूत स्थान (भूटान) मे बसे। भविष्य पुराण बतलाता है कि आर्य उत्तर कुरु (साइबेरिया) मे रहते थे और वहाँ से मध्य भूमि (युक्त प्रान्त) मे आए।

आर्य्यों की संख्या आगमन के समय बहुत अधिक न थी। ऊपर दिखलाया जा चुका है कि भारत मे आने के पूर्व आर्य्य लोग ईरानी

तथा राज्य व्यवस्था से कुछ कुछ अभिज्ञ थे। अपने देश मे स्थानाभाव तथा देशान्तरो मे भ्रमण का चाव उन्हे हिन्दुस्तान तक ले आया। यहाँ की भूमि को बहुत उपजाऊ देख वे जङ्गलों का जला और मैदानों को साफ कर यहीं बस गए। अनार्य्य लोगों ने धनुष बाणो से उनका सामना किया, किन्तु बढ़ी हुई आर्य्य सभ्यता के सम्मुख भारतीय शिकारीगण बलवान होने पर भी ठहर न सके। उस काल अधिकतर भारतीयों को सेना बना कर लडने की प्रथा ज्ञात न थी। वे बिना दल जोड़े और बिना मंत्रणा किए सौ सौ दो दो सौ के झुंडो में आर्य्यों से लड़ लड़ कर हारते गये। जो जहां हुआ वह वहीं लड़ पड़ा। ये लोग घोड़े का हाल नहीं जानते थे। आर्य्यों के घुड़सवार देख कर इन लोगों ने घोड़ा और सवार को एक ही व्यक्ति समझा। ऐसे भयानक व्यक्ति से विजय की कुछ भी आशा न रख कर बेचारे अनार्य्य हाय हाय करके भागे। यही भ्रम अमरीका में स्पेन वालो के घुड़सवार देखकर वहाँ के आदिम निवासियों (रेड इंडियनो) को हुआ। घोड़े से विशेष कार्य्य सिद्ध होने के कारण आर्य्यों मे उसका मान बहुत बढ़ा, यहाँ तक कि दधिक्रवण के नाम से वेदो में उसकी पूजा तक हुई। इसी अवसर पर आर्य्यो ने प्राचीन भारतीयों को भाषाहीन पशु मात्र समझा। ये लोग रङ्ग मे काले और सभ्यता के सभी अंगों मे आर्य्यों से बहुत नीचे थे। अत: आर्य्यों और अनार्य्यों के भेद को वर्ण भेद की उपाधि मिली। इसी से समय पर जाति भेद निकला जैसा कि आगे दिखलाया जावेगा।

अनार्य्यों ने बहुत शीघ्रता से अपनी हार नहीं मान ली, वरन् वे जङ्गलो, पहाड़ो आदि मे छिप जाते थे और मौका पाकर आर्य्यों को भारी हानि पहुँचाते थे। इसी प्रकार इन दोनो जातियो मे सैकड़ों वर्षों तक युद्ध होता रहा। ज्यो ज्यो आर्य्य आगे बढ़ते जाते थे त्यों त्यो अनार्य्य लोग पीछे हटते जाते थे, किन्तु प्रत्येक जङ्गल और पहाड़ को उन्होने कठिन युद्ध करके छोड़ा और प्रत्येक नदी पार करने मे आर्य्यों को पूरी अड़चन डाली। इसलिए नदियाँ पार करने के वास्ते आर्य्यों को बहुत बड़े बड़े जलयान बनाने पड़े। १०० मस्तूलों तक के जलपोतो का वर्णन वेदो मे कई स्थानों पर आया है। इस

चिरकालिक युद्ध के कारण आर्य्यों तथा अनार्य्यों मे भारी शत्रुता हो गयी। इसीलिए ऋग्वेद में जहाँ कहीं अनार्यों का कथन आया है, वहाँ वह विद्वेषपूर्ण शब्दों मे है। प्रार्थनाओं में यहाँ तक कहा गया है कि हे इन्द्र तू इनकी काली चमड़ी उधेड़ दे। यह दशा यजुर्वेद और अथर्ववेद के समयों मे नहीं रही थी, क्योकि उन में अनार्य्यो के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार का परिचय मिलता है। हड़प्पा मोहंजोदड़ो आदि के समान कुछ उन्नत नगर और प्रान्त भी थे। वेदों में भी शम्बर, वृत्र आदि के पाषाण दुर्ग लिखे हैं। और भी अनेकानेक भारी अनार्य्य नेता थे। उनके जीतने मे आर्य्यो को कठिनता पड़ी, किन्तु अन्त में ये ही विजयी हुये।

इस लम्बे समय मे आर्य्यों का जीवन बहुत करके वैसा ही था जैसा कि ऋग्वेद में पाया जाता है। इन आर्य्यो ने वेद मंत्रो तक न पहुँचने वाले गद्य पद्य मय साहित्य की भी रचना की, जिसे निविध कहते हैं। यह अब हम लोगों के पास प्रस्तुत नही है, किन्तु इसके तात्कालिक अस्तित्व की खोज पंडितों को वेदों से ही मिली है। इस लम्बे समय मे आर्य्यों की भाषा भी अन्य बातो के साथ उन्नति करती तथा बदलती रही, यहाँ तक कि इस समय के पीछे ऋग्वेद जिस भाषा में लिखा गया वह आर्य्यों की प्राचीन भाषा जन्द से मिलती होने पर भी बहुत कुछ भिन्न हो गयी थी। यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि आर्य्यों की प्राचीन भाषा जन्द ही थी। हम लोगो को केवल इतना ज्ञात है कि आर्य्यों की दूसरी धारा जो फारस मे रही, उसको प्राचीन भाषा जन्द थी। आर्य्यों का कथन कुछ विस्तार के साथ वैदिक वर्णन में आवेगा। यहां केवल इतना ही कहा गया है जो उनकी अवैदिक समय वाली दशा का दिग्दर्शन करा सके। पूर्वोक्त कथन विशेषतया वेदों के आधार पर किये गए हैं। अब हम पुराणों के आधार पर इस काल का इतिहास लिखते हैं।

हमारे यहाँ पौराणिक विवरणों में समय का विभाग मन्वन्तरों के अनुसार किया गया है। पूरा भूत भविष्य काल चौदह मन्वन्तरों में बाँटा गया है, जिसमें से ६ मन्वन्तर हो चुके हैं और ७ वां इस समय चल रहा है, तथा सात आगे आने वाले हैं। एक मन्वन्तर

७१ चतुर्युगियों से कुछ अधिक होता है। प्रत्येक चतुर्युगी में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं। सत्ययुग की संख्या ४००० वर्षो की है और चार-चार सौ वर्षों की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश होते है। त्रेतायुग ३००० वर्षो का है और उसकी सन्ध्या-सन्ध्यांश मे ६ सौ वर्ष लगते है। द्वापर मे २००० वर्ष और चार सौ वर्षो की संध्या-संध्यांश है तथा कलियुग मे १००० वर्ष और दो सौ वर्षो की सध्या-संध्यांश है। प्रयोजन यह है कि जितने हजार वर्षों का युग होगा उतने ही सौ वर्षो की सन्ध्या होगी और उसी के बराबर संध्यांश होगा। अत: एक चतुर्युगी मे १२००० वर्ष होते है।

यह गणना अच्छी थी, किन्तु पौराणिक पडितो ने इस काल को देवताओ का समय कह कर बहुत बढ़ा दिया। इस पौराणिक मत के अनुसार उपर्युक्त प्रत्येक वर्ष हमारे ३६० वर्षो का होता है, क्योकि देवताओं का एक दिन हमारे एक वर्ष के बराबर है। अत: एक चतुर्युगी ४३२०००० वर्षो की हो जाती है और एक मन्वन्तर मे ऐसी ऐसी ७१ चतुर्युगियां पड़ जाती है। इसलिए यह पौराणिक समय संख्या बिलकुल बेकार हो गयी है। फिर भी मन्वन्तरो के कथन से इतना लाभ अवश्य है कि वैवस्वत मनु के पहले हमे छ: मन्वन्तर मिलते हैं और जिस मन्वन्तर मे जो कथाएँ पुराणो मे वर्णित है, उनके अनुसार घटनाओ का पूर्वापर क्रम मिल जाता है। युगों के अनुसार घटनाओ का कथन भी कुछ कुछ सहायता देता है, किन्तु प्रत्येक राजत्व काल के विषय मे निश्चयपूर्वक यह नही ज्ञात होता है कि वह किस युग मे था। मोटे प्रकार से बलिबन्धन सत्ययुग में हुआ, रामावतार त्रेता मे, महाभारत युद्ध द्वापर मे और इधर की घटनाएँ कलियुग मे हुई। महाभारत का काल बहुत लोग ६०० गत कलि मे भी मानते हैं, यद्यपि पुराणो मे कृष्ण के शरीर-त्याग, महाभारत युद्ध अथवा परीक्षित के समय से कलि का प्रारम्भ लिखा है। जो हो, हम युगो, मन्वन्तरो तथा राजवंशो के सहारे इतिहास लिखना श्रेष्ठतर समझते हैं।

चौदहो मनुओ के नाम ये हैं:—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुप, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि,

धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि। इन सब में सावर्णि वाले मन्वन्तर भविष्य से सम्बन्ध रखते हैं, न कि भूत और वर्त्तमान कालों से। अतः इनका कथन अनावश्यक है और इनके नाम केवल वर्णन पूर्णता के विचार से यहाँ लिख दिए गये हैं। इन सब का भोग काल समान मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। पृथक् पृथक् राजघरानों के समान इनका समय भी न्यूनाधिक अवश्य होगा। स्वायम्भुव मनु पहले थे। इनके वंश का वर्णन राजवंश कथन वाले अध्याय में नं० १ पर दिया हुआ है। ऋग्वेद का निर्माण काल मोटे प्रकार से चाक्षुष मन्वन्तर से प्रारम्भ होता है। इसी मे समुद्र मन्थन भी हुआ जैसा कि आगे कहा जायगा। अतः समझ पड़ता है कि चाक्षुप मन्वन्तर आर्यों के लिये बहुत ही गौरवपूर्ण समय था। सातो मनुओ में से केवल चाक्षुष और वैवस्वत वेदर्षि थे, शेष कोई नहीं। इससे भी चाक्षुष मन्वन्तर से ही मुख्यतया वैदिक समय चलने की झलक मिलती है। वेदो मे आर्यों की बहुत छोटी छोटी बातो तक के वर्णन है, किन्तु यह साफ कही नही लिखा है कि वे लोग कही बाहर से आकर भारत मे बसे। इससे प्रकट होता है कि आर्य लोग वेद निर्माणारम्भ के समय इतने दिन पहले से भारत मे बसते थे कि वे अपना बाहर से आना बिलकुल भूल चुके थे। यह बात तिलक महाशय के इस सिद्धान्त को पुष्ट करती है कि आर्य लोग वैदिक समय से बहुत वर्ष पूर्व भारत मे आए थे। यहां जैसे जैसे उनकी संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई, वैसे ही वैसे वे आगे बढ़ते गए।

स्वायम्भुव मन्वन्तर

स्वायम्भुव से चाक्षुप पर्य्यन्त छवो मन्वन्तरो मे जो विवरण है, वह श्रीभागवत, विष्णु पुराण, हरिवंश और दुर्गा सप्तशती के आधार पर है।

ऋग्वेद मे कहा गया कि हे इन्द्र तू ने यह देश मनु को दिया। इस से स्वायम्भुव मनु का प्रयोजन समझ पड़ता है। वैवस्वत मनु का कथन वेदों मे जहां हुआ वहां वैवस्वत भी कह दिया गया है। वेदो मे घटनाओं का पूर्वापर क्रम नहीं कहा गया है। पुराणों से इसे ज्ञात

होता है कि स्वायम्भुवमनु १४ मनुओं में पहले थे। इनकी ४५ पीढ़ियों ने भारत मे राज्य किया। इस कारण से यह मन्वन्तर कई सौ वर्षों का समझ पड़ता है। इनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र थे। ये दोनो बड़े प्रतापी राजा हो गए है। आर्यो के सब से पहले राजा स्वायम्भुव मनु थे। इन्ही से नरवंश का चलना कहा गया है, किन्तु वास्तव मे यह कई भारी राजवंशो मात्र के पूर्व पुरुष थे। उत्तानपाद और प्रियव्रत साथ ही साथ भिन्न भिन्न प्रदेशों के स्वामी हुए।

मनु के दो पुत्रो के अतिरिक्त आकूति, प्रसूति और देवहूति नाम्नी तीन कन्याये भी थी। देवहूति का विवाह पुलह के पुत्र कर्दम ऋषि के साथ हुआ जिनसे कपिल का जन्म हुआ। कर्दम की कन्या के साथ मनु पुत्र प्रियव्रत का विवाह हुआ जिससे दस पुत्र और दो कन्याओं का जन्म हुआ। कहा गया है कि प्रियव्रत ऐसे प्रतापी राजा थे कि उन्होने राज्य मे कई दिन तक रात्रि नहीं होने दी थी। इन्होने राज्य अपने पुत्रो मे बांट दिया। अग्नीध्र को जम्बू द्वीप (शायद एशिया) मिला, द्युतिमान को क्रौंच द्वीप, भव्य को शक द्वीप (शायद योरोप) तथा औरों को अन्य प्रान्त। बुढ़ापे मे इस प्रकार पुत्रो मे राज्य बांट कर प्रियव्रत गृहत्यागी हो गये। षष्ठी देवी की पूजा इन्हींने चलाई। बंगाल में स्त्रियां पुत्र कामना से अब भी षष्ठी का पूजन करती है। अग्नीध्र के नौ पुत्र थे जिनमे इन्होने अपना राज्य बांट दिया। नाभि को हिम वर्ष मिला जो हिमालय से अरब समुद्र पर्य्यन्त कहा गया है। हरि को नैषध उपनाम हरि वर्ष (रूसी तुर्किस्तान), इलाव्रत को इला वर्ष (पामीर), रम्यक को चीनी तातार, हिरण्मय को मगोलिया, कुरु को कुरु वर्ष (साइबेरिया), किम्पुरुष को उत्तरी चीन, भद्राश्व को दक्षिणी चीन और केतुमान को रूसी तुर्किस्तान मिले। महाराजा नाभि भारत का शासक हुआ। इसके पुत्र ऋषभदेव थे। हरि वर्ष को कहीं कहीं अरब या तिब्बत भी कहा है। इन्द्र की कन्या जयन्ती का विवाह ऋषभदेव से हुआ।

ऋषभदेव न केवल भारी सम्राट थे वरन् भारी धर्मोपदेशक भी हो गये है। आप जैनो के प्रथम तीर्थकर होने से आदिनाथ भी कहलाते

हैं। इनके सिद्धान्त निम्नानुसार कहे जाते हैं:-(१) ईश्वर सम्बन्धी विचारों से इतर भी मुक्ति संभव है। (२) संसार स्वयं भुव और नित्य है। (३) अहिंसा, आत्म-शिक्षण और दिगम्बरपन सदाचार हैं। इनसे "केवल ज्ञान" प्राप्त होता है। पुराणो मे लिखा है कि बुढ़ापे में ऋषभदेव आँय बाँय बकने लगे। इस कथन से उनके हिन्दुओ के प्रतिकूल विचारों की झलक मिलती है। ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित जो मत ऊपर कहे गये हैं वे ऐतिहासिक ज्ञान-वृद्धि के विचार से उस काल के लिये अयुक्त हैं। जान पड़ता है कि उन्होंने कुछ नव विचारोत्पादन किया था जिनका मूल समय के साथ उन्नति करता हुआ अब उपर्युक्त रूप में उन्हीं के विषय में कहा गया है। कहते हैं कि उत्तानपाद के वंशधर वेन को ऋषभदेव ने स्वमत मे दीक्षित किया। यह कथन दो कारणों से अयुक्त समझ पड़ता है। एक तो ऋषभदेव मनु से पाँचवीं पीढ़ी पर थे और वेन ३९वीं पर, सो इन दोनों का समकालिक होना असंभव था। दूसरे वेन ने जो मत चलाना चाहा था वह ऋषभदेव के मत से भिन्न था, क्योंकि वेन राजा अपने को प्रजा द्वारा पुजवाना चाहता था जो ऋषभदेव के मत से इतर मत है।

ऋषभदेव के पुत्र महाराजा भरत हुये जिनके नाम पर देश भारतवर्ष कहलाया। भरत बड़े ही पुण्यवान और वीर थे। इन्होंने अष्ट द्वीप जीते जिससे इनका राज्य नौ भागों में कथित है। वायुपुराण कहता है कि इनके नवों द्वीप समुद्र द्वारा एक दूसरे से पृथक थे। उनके नाम ये हैं:—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गोभस्तिमान. नागवर, सौम्य, गन्धर्व, वरुण और भारत। मजुमदार महाशय इन्हें सिन्धु, कच्छ, सीलोन, अंडमन, नीकोबार, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो और भारत समझते हैं। भरत ने यज्ञ किया। अनन्तर आप राज्य छोड़ कर योगी हुये और योग मे आपने इतना मन लगाया कि शरीर तक को भुला दिया जिससे उपाधि जड़ भरत हुई। वन में एक बार सिंह की गरज सुन कर एक मृगी का गर्भपात हो गया और वह मर गई। भरत ने दया से उस मृगशावक को पाला। उसमें ये इतने अनुरक्त हुये कि जप तप सब भूल बैठे। एक बार अन्य मृगो में मिल कर वह उनके साथ जंगल में चला गया और फिर इनके पास न पलटा। उसके

विरह से इन्हें इतना कष्ट हुआ कि अन्त में इनका शरीर ही छूट गया। भरत के पीछे इस वंश का राज्य निर्बल हो गया। किसी ने कोई ख्याति प्राप्त न की।

मनु के दूसरे पुत्र उत्तानपाद के दो स्त्रियाँ थीं। बड़ी स्त्री सुनीति से ध्रुव पुत्र उत्पन्न हुआ और कनिष्ठा सुरुचि से उत्तम। उत्तानपाद निर्बल चित्त के मनुष्य थे। आप छोटी रानी से अधिक स्नेह करते थे जिससे ध्रुव का भी उचित सम्मान नहीं होता था। इस कारण बाल-वय मे ही पिता से रुष्ट होकर ध्रुव तपस्या करने के लिए जंगल को चले गये। श्रेष्ठ भक्तों में इनका नाम ऊँचा है। इनके चरित्र गौरव से माहात्म्य संसार में बहुत बढ़ा। उधर उत्तम को युद्ध में यक्षों ने मार डाला। तब उत्तानपाद ने ध्रुव को राजा बना कर स्वय जंगल का रास्ता लिया। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि उत्तम को जीत कर ध्रुव ने अपना राज्य पाया। आपने यक्षों को पराजित करके बहुत दिनों तक सुख पूर्ण, शान्ति पूर्ण और प्रजा-प्रिय-शासन किया। इनको ब्रह्म-ज्ञान भी प्राप्त होना लिखा है यद्यपि यह कथन काल विरुद्ध दूषण से रहित नहीं है। उत्तरी ध्रुव नक्षत्र में इनका लोक समझा जाता है और उत्तानपाद, प्रियव्रत एवं सप्तर्षि नक्षत्र इनकी सदा परिक्रमा किया करते हैं।

उत्तानपाद के वंश में ४५ पीढ़ी राज्य चला। इन राजाओं में ध्रुव, चाक्षुष मनु, वेन, पृथु, प्रचेतस और दक्ष प्रधान थे। दक्ष के पीछे इस घराने में राज्य नहीं रहा। अग ने यज्ञ किया, किन्तु पुत्र वेन के कुव्यवहार से राज छोड़ वे जगल चले गये। राजा वेन एक दुश्चरित्र पुरुष था। इसने शायद अच्छे घराने की रानी के अतिरिक्त एक नीच वश की स्त्री भी अपने घर मे डाल ली थी जिससे निषाद नामक इस का बड़ा पुत्र उत्पन्न हुआ। वेन का छोटा पुत्र पृथु कुलीन रानी से था। यह बड़ा सुयशी राजकुमार था। राजा वेन ने एक नया धर्म चलाना चाहा और आज्ञा प्रचारित करदी कि सारी प्रजा देवभाव से राजा ही को पूजै, और किसी को नहीं। उस काल तक जन्म से जाति-भेद स्थापित नही हुआ था और लोग अपने अपने कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्री आदि माने जाते होंगे। ब्राह्मणों के कर्म करनेवाले लोग प्रजा

द्वारा शायद पुजते थे यहाँ तक कि राजा लोग भी उनका मान करते थे। उन लोगो को यह आज्ञा बुरी लगी और उन्होंने जाकर राजा वेन को समझाया, किन्तु उसने एक न मानी। इस पर क्रुद्ध होकर इन ब्राह्मणो ने उसी स्थान पर वेन का वध कर डाला और निषाद को राज्य के अयोग्य समझ कर उसके छोटे भाई पृथु को राजा बनाया। पृथु ने बड़ी ही उत्तमता पूर्वक शासन किया और अपने राज्य को इतना बढ़ाया और उसकी ऐसी उन्नति की कि भूमि ने इनकी कन्या का पद पाकर पृथ्वी नाम पाया। इन्होने जङ्गल जला, टीले आदि खोद तथा गढ़े पूर कर पृथ्वी को समथर बनाया। इन्ही के विषय मे कहा गया है कि

"बीते पृथु जिन पुहुमि सिंगारी। परबत पाँति धनुष सों टारी।"

पृथु ने कई यज्ञ किये और दान दिये तथा भारी कोप भी छोड़ा जिससे इनके पुत्र पोत्रों ने भी यज्ञ करके दान दिये। स्वायम्भुव मनु के वंशजों ने बहुत धर्म पूर्वक राज्य किया और देश की बहुत बड़ी उन्नति की। पृथु वंशी राजा प्रचेतस ने भी बहुत से जंगलों को जला कर नई भूमि निकाली। इन्हे जङ्गल ही मे एक परम सुन्दरी कन्या प्राप्त हुई, जिससे इनका पुत्र दक्ष उत्पन्न हुआ। प्रचेतस संख्या मे दस थे। वे सब राज छोड़ ब्राह्मण हागए और उनके पुत्र दक्ष प्रजापति हुये। राजा प्रियव्रत के समय आर्यो को भारत मे आए हुए बहुत काल नही बीता था। इसलिये इन का बाहर के लोगो से सम्बन्ध नही टूटा था। इसी कारण से इन्होने अपने पुत्रो मे सारी पृथ्वी का बटवारा किया और उन सब मे अकेला अग्नीध्र भारत मे रह गया। इसने भी एशिया को अपने ९ पुत्रों मे बाँटा। इस बटवारे मे अरब, पामीर, तिब्बत आदि दूर के देश भी शामिल थे। इस प्रकार के बटवारे और किसी पौराणिक राजा के विषय मे नही कहे गए हैं। अग्नीध्र के ९ पुत्रों मे अकेला नाभि भारत मे रह गया। जान पड़ता है कि प्रियव्रत और नाभि के समयों मे कई आर्य धाराएं भारत से निकल निकल कर अन्य देशो मे शासन करने लगी थीं। इनका वर्णन उन उन देशों के इतिहासो में इस कारण नहीं मिलता कि वहाँ का तात्कालिक इतिहास ज्ञात नहीं है। स्वायंभुव-मन्वन्तर का उपर्युक्त

विवरण विशेषतया विष्णु पुराण और महाभारत के आधार पर किया गया है।

स्वारोचिष मन्वन्तर

यह मन्वन्तर कितने दिन का है सो हम निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते।

स्वारोचिष मन्वन्तर मे स्कन्द पुराण के अनुसार सुरथ नामक एक सार्वभौम राजा हुआ। दुर्गापाठ मे यह भी लिखा है कि भविष्य मे राजा सुरथ ही सावर्णि मनु होगा। सुरथ चैत्र वंश मे उत्पन्न हुआ था। यह वंश कहाँ से निकला और इस मे कितने और राजा हुए सो अकथित है। सुरथ के राज्य मे कोला नामक एक अच्छा शहर अथवा प्रान्त था। इसके शत्रुओ ने कोला को विध्वंस कर डाला और सुरथ को युद्ध मे पराजित कर दिया। फिर भी यह अपने देश मे कुछ दिन तक राज्य करता रहा। अनन्तर इसके बैरियो ने इसकी राजधानी पर भी चढ़ाई करके इसके कोष और बहुत से दल का अपहरण कर लिया, जिससे घबड़ा कर यह अकेला जंगल को भाग गया, किन्तु इसके मंत्रियो ने कुछ दिनो मे कोला विध्वसियों को पराजित करके इसे जंगल से लाकर फिर गद्दी पर बिठलाया। इसके राज्यच्युत होते समय कुछ मत्री भी शत्रुओ से मिल गये थे। इसका कोष अच्छा था और यह मितव्ययी था। जंगल मे राजा सुरथ को ३ वर्षो तक मेधस ऋषियो के आश्रम मे रहना पड़ा। इससे प्रकट होता है कि ऋषि लोग उस काल से ही जगलो मे रहने लगे थे, यहाँ तक कि यह परिपाटी स्वारोचिष मन्वन्तर मे बहुत दृढ़ थी। उनके शिष्य भी वहीं रहते थे। ऋषियो ने सुरथ से कुछ ऐतिहासिक घटनाओ का भी वर्णन किया, जिससे उनका भी इसी मन्वन्तर मे अथवा इसके पूर्व होना समझ पड़ता है। जान पड़ता है कि दक्षिण वाली महिष जाति का इस समय मे आर्य्यो से घोर युद्ध हुआ। आर्य्य लोग उस समय दक्षिण तक नहीं पहुँचे थे, इससे महिषो का ही पंजाब मे आकर इन से युद्ध करना सिद्ध होता है। इनका नेता महिषासुर नाम

से पुकारा गया है। उस समय आर्यों की नेत्री देवी नाम्नी एक प्रसिद्ध आर्य महिला थीं। इन्होंने महिषासुर का वध किया।

थोड़े दिनों के पीछे शुम्भ निशुम्भ नामक दो भारी अनार्य राजे हुये। इन्होंने आर्यों को कड़े युद्धों में पराजित किया, किन्तु देवी ने इनको भी ससैन्य मार कर आर्य संकट दूर किया। चंड मुंड नामक दो प्रसिद्ध सेनापति शुम्भ के सहायक थे। इनका भी देवी ने वध किया। महिषासुर तथा इन लोगों के नाम वेदों मे नहीं आये हैं। स्वारोचिष मन्वन्तर की और कोई प्रधान घटना नहीं मिलती, केवल इतना और लिखा है कि उपर्युक्त राजा सुरथ से मधु कैटभ का हाल कहा गया। ये दोनों प्रलय के समय मे विष्णु से लड़े थे। इससे जान पड़ता है कि महाप्रलय स्वारोचिष मन्वन्तर के पहले हुआ। जिन मनु को मत्स्य देव ने भारी जहाज पर चढ़ा कर बचाया था उनका क्या नाम था सो शतपथ ब्राह्मण मे नहीं लिखा हुआ है। वहां केवल मनु का बचाया जाना कहा गया है और यह भी लिखा है कि उन्हीं मनु के हवन से इड़ा नाम की एक कन्या हुई थी, जिससे मनु ने सृष्टि उत्पन्न की। ब्राह्मण ग्रंथो से इन मनु का इससे अधिक कुछ परिचय नहीं मिलता और न वेदो मे इसका कुछ हाल कहा गया है। पुराणों में महा प्रलय वाले मनु कहीं कहीं वैवस्वत मनु कहे गये हैं, किन्तु स्कन्द पुराण के अनुसार वे या तो स्वायंभुव मनु हो सकते हैं अथवा स्वारोचिष। श्री भागवत में महा प्रलय सम्बन्धी राजा का नाम सत्यव्रत था, वही प्रलय के पीछे इसी जन्म मे वैवस्वत मनु हुये। स्वायंभुव की इड़ानाम्नी कोई कन्या कहीं नहीं लिखी है, वरन् उनकी कन्याओं के नाम आकूति, प्रसूति और देवहूति थे। अतः महाप्रलय से सम्बन्ध रखने वाले स्वारोचिष ही समझ पड़ते हैं। महाप्रलय का कोई ऐतिहासिक विवरण मिलना सर्वथा असम्भव है, किन्तु इसका कथन हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी के धार्मिक ग्रंथों में पाया जाता है। इसलिये इसका सूक्ष्म विवरण यहाँ लिख दिया गया। कुछ पंडितों का मत है कि महाप्रलय तथा मार्कण्डेय का विवरण केवल काल्पनिक था। विष्णु पुराण में लिखा है कि चैत्र, किम्पुरुष आदि स्वारोचिष के पुत्र थे।

उत्तम और तामस मन्वन्तर

उत्तम मन्वन्तर के विषय मे कोई विशेष घटना नहीं ज्ञात है। तामस मनु उत्तम के पुत्र थे। इस (तामस) मन्वन्तर मे गजेन्द्र मोक्ष की कथा कही जाती है। ख्याति, शतहय, जानुजघ आदि तामस के पुत्र थे।

रैवत मन्वन्तर

इसमें बैकुण्ठ निर्माण कहा गया है। वैकुण्ठ स्वर्गलोक को भी कहते हैं, किन्तु इस मन्वन्तर मे उसका बनना भी श्री भागवत में लिखा है। इससे जान पड़ता है कि यह पृथ्वी पर कोई स्थान था। कश्मीर या तिब्बत मे बैकुण्ठ का होना अनुमान होता है। फारसी कवियों ने भी कश्मीर के विषय मे कहा है कि "अगर फिरदौस बर रूए जमीनस्त। हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त॥" तिब्बत को भी बैकुण्ठ मानना युक्तियुक्त है। सस्कृत मे बैकुण्ठ को त्रिविष्टप भी कहते हैं जो नाम तिब्बत से बहुत कुछ मिलता है। जो हो, राजा बलि का इन्द्र से शायद इसी लोक के लिये युद्ध हुआ था। हरिवंश में कहा गया है कि जिस काल राजा बलि की फौज बैकुण्ठ विजयार्थ गयी थी, तब वह आसमान मे छा गयी थी। इससे उसका किसी पहाड़ पर जाना अनुमान सिद्ध है। विष्णु पुराण के अनुसार स्वारोचिष, उत्तम, तामस तथा रैवत मनु प्रियव्रत के वशज थे।

चाक्षुष मन्वन्तर

चाक्षुष मनु उत्तानपाद के वशज कहे गये है। ये छठवें मनु हैं। उपर्युक्त चारो मनु प्रियव्रत की २७ वीं पीढ़ी के पीछे के है, सो चाक्षुष मनु का ३६ वाँ नम्बर योग्य समझ पड़ता है। इनके वश वृक्ष से प्रायः तीस नामो का छूट जाना पाया जाता है। इस गिनती मे इन चारो मन्वन्तरो मे आठ राजे माने गये है, अर्थात् चार स्वयं मनु तथा उन चारो मन्वन्तरो मे चार और राजे। श्री भागवत के अनुसार समुद्र मन्थन और बलि बन्धन चाक्षुप मन्वन्तर की मुख्य घटनाएँ हैं। बलि बन्धन के थोड़ा ही पीछे वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ होता है।

इससे जान पड़ता है कि हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु के भी युद्ध चाक्षुष मन्वन्तर के ही अन्तर्गत हैं, क्योंकि बलि हिरण्यकशिपु के प्रपौत्र थे, सो इन दोनों का अन्तर १०० वर्षों से अधिक का नही हो सकता, और बलि बन्धन चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में होने से यदि यह मन्वन्तर प्रायः २०० वर्षों का हो, तो हिरण्याक्ष आदि की कथाएँ इसी के अन्तर्गत पड़ेंगी।

पुराणों मे कहा गया है कि देवताओं की माता अदिति हैं और दैत्यों की दिति तथा दानवो की दनु। ये तीनो बहनें थी और अदिति के देवमाता होने से इन तीनो का आर्य महिलाएँ होना अनुमान सिद्ध है। इन तीनो के पति भी एक ही व्यक्ति कहे गये हैं अर्थात् कश्यप। यदि यह बात मान ली जावे तो दैत्या, दानवों और देवताओं मे कोई भी जाति भेद नही रह जाता, क्योंकि उनके मातृ और पितृ दोनो कुल एक ही हो जाते हैं। फिर भी यह बात सभी पौराणिक ग्रन्थों से प्रकट है कि देवताओं का दैत्यो तथा दानवो से भारी जाति भेद था। इसमे जान पड़ता है कि दिति और अदिति के पतियो के नाम कश्यप अवश्य थे, किन्तु वे दो व्यक्ति थे न कि एक ही। पुराणों मे अदिति के पति का नाम सब जगह कश्यप लिखा हुआ है और वे इन्द्र के पिता कहे गये हैं, किन्तु ऋग्वेद मे अदिति के पति का नाम शुभ है। इन्द्र का वर्णन अनेक ऐसे समयों मे हुआ है जिससे सभी स्थानो पर उन्हे एक ही व्यक्ति मानने से काल-विरुद्ध दूषण आ जावेगा। वेदों मे इन्द्र देवता माने गए हैं किन्तु विनतियों मे आर्यों द्वारा किये हुए बहुत से कर्म भी इन्द्र द्वारा किये हुए माने गये हैं, जैसे कि भक्त लोग सभी के कर्म ईश्वर कृत मानते हैं। वेदों मे प्रायः ऐसे कथन हैं कि इन्द्र, अग्नि आदि ने अमुक के लिये अमुक कार्य किया। ऐसे स्थानों पर वे कार्य उन्ही राजाओं आदि के हैं और इन्द्रादि के नाम भक्ति के कारण कहे गये हैं। पुराणों मे इस विचार का बहुत बड़ा विस्तार हुआ है। वहां इन्द्र की बड़ी सेनाएँ हैं और उनके कार्य महाराजाओं के समान है। वैदिक इन्द्र कभी पराजित नही हुये किन्तु पौराणिक इन्द्र कई बार हारे हैं। वैदिक इन्द्र के प्रायः सभी कर्म उच्चाशय पूर्ण हैं, किन्तु पौराणिक इन्द्र बहुत

से गर्हित कर्मों के कर्त्ता हुये है। फिर भी वैदिक इन्द्र के प्रायः सभी गुण पौराणिक इन्द्र मे वर्त्तमान है। इन सब बातों से समझ पड़ता है कि पुराणों मे इन्द्र का विचार वैदिक इन्द्र से उठकर आर्यों के प्रधान सम्राट मे परिणत हो गया। महाभारत के शान्ति पर्व मे आया है कि कोई सदा को इन्द्र नही रहता। बहुत से इन्द्र पहले हो चुके है और बहुतेरे आगे होगे। यह बलि ने इन्द्र से कहा था। दुर्गा सप्तशती मे आया है कि देवताओ को जीतकर महिषासुर इन्द्र हो गया। उसके पीछे वह पराजित हुआ।

दैत्यो, दानवो आदि के वंशो का कुछ कथन पौराणिक राजवशो के अध्याय मे हो चुका है। कुछ योरोपीय विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद के समय पर्यन्त आर्य्य लोग सरस्वती नदी के पश्चिम तक रहे और उसके पूर्व नहीं आये। इस कथन के प्रमाण मे वे ऋग्वेद की उस ऋचा का सहारा लेते है जिसमे लिखा है कि सरस्वती नदी के पूर्व अनार्य्यों की बस्ती है। हमारी समझ मे इससे केवल इतना सिद्ध होता है कि उस काल सरस्वती के पूर्व आर्य्यों का राज्य न था और वे इधर बसे कम थे, न यह कि वे इस ओर आते जाते ही थे। ऋग्वेद मे यह भी लिखा है कि आर्य्य लोग सौ सौ मस्तूलो के जहाज़ समुद्र पर चलाते थे। कुछ योरोपीय विद्वानो का मत है कि ये जहाज समुद्र पर न चल कर केवल सिन्धु नदी पर चलते थे। हमारी समझ मे यह विचार कुतर्क मात्र है। समझ पड़ता है कि सरस्वती के पूर्व अनार्य्यों की बस्ती बतानेवाली ऋचा चाक्षुष मन्वन्तर के प्रारम्भ काल की है और सारे वैदिक समय से भी सम्बन्ध नहीं रखती।

पौराणिक वर्णनो से अनुमान होता है कि वृत्र-वध दैत्य अभ्युत्थान से पहले हुआ। कहते है कि ९९ वृत्रो को इन्द्र ने मारा। कही कही वेदों मे वृत्र के पहाडी दुर्गों का कथन है जिन्हे इन्द्र ने विमर्दित किया। ये घटनाएँ चाक्षुष मन्वन्तर की समझ पड़ती है। इस मन्वन्तर के प्रायः माध्यमिक समय मे दिति पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बड़े प्रतापी हुए। हिरण्याक्ष की सहायता से विशेष बल प्राप्त करके बड़े भाई हिरण्यकशिपु ने अपना राज्य बहुत विस्तीर्ण किया। कहा जाता है कि इसका आतङ्क आर्य्य देश मे भी पड़ा और इसने बहुत से

आर्य्यों को पदच्युत कर दिया। पुराणों में इसके द्वारा तीनों लोकों का जीता जाना कहा गया है, किन्तु वलि के समयवाले देवासुर संग्राम की भाँति कोई युद्ध इसके समय मे नही कथित है। इससे समझ पड़ता है कि आर्य्यों पर हिरण्यकशिपु का कुछ आतङ्क अवश्य पड़ा, किन्तु वे पूर्णतया पराजित नहीं हो पाये। इसका प्रभाव दिनों दिन बढ़ रहा था कि इतने ही मे अद्वितीय वीर हिरण्याक्ष का वन मे किसी वराह से सामना हो पड़ा, जिसके द्वारा वह मारा गया। इस बात से हिरण्यकशिपु का राज्य कुछ बलहीन होकर डगमगाने लगा और आर्य्यों का प्रभाव बढ़ा। कुछ पण्डितो का विचार है कि वेद तथा ज़ेदावस्ता के विवरणो से समझ पड़ता है कि देवासुर झगड़ा फारस और अफग़ानिस्तान मे हुआ होगा। सम्भवत: हिरण्यकशिपु और वलि उत्तर पच्छिमी फारस या अफग़ानिस्तान के शासक हो। ऐसी दशा मे समुद्र मन्थन भी उसी ओर की घटना निकलेगी और नागों का भी उस ओर संसर्ग बैठेगा। योग वाशिष्ठ मे आया है कि विष्णु ने प्रह्लाद नामक किसी दैत्य का अन्तिम राजा बनाकर कहा कि उस दिन से दैत्य रुधिर पृथ्वी पर नही गिरने को था। वलि के बाबा प्रह्लाद राजा न थे, सो ये प्रह्लाद कोई दूसरे भी हो सकते हैं। जान पड़ता है कि विष्णु द्वारा इस सन्धि के पीछे आर्य्य भारत मे चले आये। आगे कथा का डोर फिर से उठाया जाता है। इन्द्र इस काल एक आर्य्य सम्राट्-वंश की उपाधि समझ पड़ती है। भविष्य मे प्रह्लाद भी इन्द्र होगे। इससे उनकी उन्नति की झलक मिलती है। पद्म, सृष्टि खण्ड ७३ मे उनको सुरत्व प्राप्ति भी लिखी है। ये वलि के ही बाबा थे, सो इन्हो की उन्नति ग्राह्य है।

श्री भागवत मे लिखा है कि हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद बड़ा ही विष्णुभक्त था और इसी बात पर पिता पुत्रों मे विरोध हुआ, जिससे नृसिंह भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु मारा गया। इस कथा में दो प्रधान आपत्तियाँ हैं। एक तो यह कि एक थोड़े से मतभेद पर इतना भारी राजा अपने पुत्र को मारने ही को क्यों उद्यत होता? दूसरे जिस काल का यह वर्णन है तब तक विष्णु भक्ति का विचार ही भारत में भली-भाँति नहीं उठा था। यह विचार वैदिक समय से पीछे का है और

प्रह्लाद वैदिक समय के आरम्भ में हुये। श्री भागवत पुराण की अपेक्षा हरिवंश बहुत पुराना और अधिक माननीय है। उसमे प्रह्लाद भक्त अवश्य कहे गये हैं, किन्तु पिता पुत्र का कोई विरोध नहीं लिखा है। जान पड़ता है कि जब हिरण्याक्ष के निधन से हिरण्यकशिपु का बल कुछ मन्द पड़ गया, तब अपने विविध नेताओं मे ऐक्य उत्पन्न करके आर्य्यों ने दल बल समेत इस पर आक्रमण किया। भारी युद्ध हुआ जिसमे दैत्यो की पराजय हो गयी और स्वयं हिरण्यकशिपु नृसिंह नामक एक वीर आर्य्य पुरुष के हाथ से मारा गया। अब दैत्यो का हत शेष दल पूर्व की ओर भाग गया।

दैत्यों मे प्रह्लाद और तत्पुत्र विरोचन ने कोई राजनैतिक महत्ता प्राप्त नहीं कर पाई, किन्तु विरोचन का पुत्र बलि बड़ा पुरुषार्थी हुआ। इसने अपने पिता और पितामह के जीवनकाल में भी प्रबन्ध करना आरम्भ करके दैत्यो के बल को बहुत बढ़ाया और इनके नए निवास स्थान में एक राज्य सा स्थापित कर लिया। बलि ने इस उत्तमता से प्रबन्ध किया और दैत्यों के मुरझाये हुये बल को ऐसा जागृत किया कि इन सभो ने सर्वसम्मति से उसको राजपद अर्पित किया। विरोचन और प्रह्लाद की भी अनुमति बलि के राजा बनने ही मे थी। बलि ने राजपद पाने के पीछे और भी उत्साह से प्रजापालन तथा दैत्य बल वर्द्धन मे मन लगाया। उसने इस कौशल से काम किया कि दैत्यों तथा दानवो का महत्व दिनो दिन बढ़ने और साम्राज्य संगठित होते हुये भी इन लोगो का नागों तथा आर्य्यों मे कुछ भी वैमनस्य न होने पाया। इसका पुत्र युवराज बाणासुर भी बड़ा प्रतापी युद्धकर्त्ता था। स्वयं राजा बलि राजनीतिज्ञता, पुरुषार्थ, न्यायप्रियता, धर्म, दान आदि गुणो मे एक ही था।

जब तक हिरण्यकशिपु के समय मे पराजित होकर दैत्यो ने बलि के काल मे फिर से उन्नति प्रारम्भ की, तब तक उधर आर्य्यों ने बहुत बडी महत्ता प्राप्त कर ली। नागो से अब तक इनका साधारण मेल था किन्तु अब यातायात के बहुत अधिक बढ़ जाने से वे इनके प्रगाढ़ मित्र हो गए। नाग लोग शायद बाहर के निवासी थे और वहीं से आकर बंगाल मे बसे। अपने लोक मे समुद्र मार्ग द्वारा प्राय:

जाते आते रहने तथा व्यापार पटु होने के कारण यह लोग समुद्र यात्राओं में विशेष अभ्यस्त होंगे।

जब आर्य्यों का समुद्र पर आना जाना बढ़ा तब नागों की सहायता से इन्होंने दूर देशों में यात्रा करने के विचार किये। इस विचार मे दैत्य लोग भी सम्मिलित हुये और आर्य्यों, दैत्यों एवं नागों ने मिलकर समुद्र मन्थन का कार्य प्रारम्भ किया। इसका वर्णन पुराणों मे दार्ष्टान्तिक है। उनमे लिखा है कि शेषनाग ने मन्दराचल उखाड़ कर समुद्र के किनारे रक्खा, वासुकी नाग रस्सी बने, मन्दराचल मथानी और देव दैत्य मथने वाले। इस प्रकार प्रचुर परिश्रम से समुद्र से चौदह रत्न प्राप्त हुये. अर्थात् लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, रम्भा, वारुणी, अमृत, पांचजन्य शख, ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष. चन्द्रमा, कामधेनु. शार्ङ्ग धनुष, धन्वन्तरि वैद्य, विष, और उच्चैः श्रवस घोड़ा। इसी वर्णन को साधारण गद्य मे लिखने से समझ पड़ता है कि आर्य्यों, दैत्यो और नागो ने मिलकर समुद्र द्वारा संसार यात्रा का विचार किया। इस पर शेषनाग ने जहाज बनाने के लिये मन्दराचल की इतनी लकड़ी समुद्र के किनारे मँगाई कि मानो पहाड़ का पहाड़ ही समुद्र तट पर आ गया। नागो के दूसरे सरदार वासुकि ने रस्सी मस्तूल आदि लगा कर जहाजो को सजाया. और तब नागों की सहायता से दैत्यो और आर्य्यों ने सारे संसार में समुद्र यात्राएं की। इन यात्राओं से उन्हे भाँति-भाँति के पदार्थ प्राप्त हुए जिनमे चौदह रत्न प्रधान थे। इन रत्नो से चन्द्रमा भी एक था। इससे जान पड़ता है कि इन्हे चन्द्रमा के समान चमकनेवाला कोई रत्न मिला जिसका नाम चन्द्रमा रक्खा गया. अथवा समुद्र पर चन्द्रोदय देख इन्होंने चन्द्र को समुद्र से ही उत्पन्न मानकर उसे भी यात्रा द्वारा प्राप्त एक रत्न समझा। समुद्र यात्रा द्वारा प्राप्त पदार्थों के बटवारे में आर्य्यों का दैत्य. दानवों से झगड़ा हो गया यहां तक कि युद्ध भी हो पड़ा। राजा बलि को इस युद्ध में पराजित होकर अपने देश से भाग जाना पड़ा। फल यह हुआ कि समुद्र मथन द्वारा दैत्यों को केवल सुरा प्राप्त हुई और शेष मुख्य मुख्य वस्तुएं आर्य्यों को मिलीं। नागों को भी इन लोगों ने प्रसन्न रक्खा। जान पड़ता है कि यद्यपि नागों ने

समुद्र मन्थन मे आर्य्यों तथा दैत्यो को सहायता दी, तथापि प्रधानता उन्हीं लोगो की थी और उन्हीं मे झगडा भी हुआ, अथच नाग लोग एक भी रत्न न पाकर केवल अन्य सम्मान से प्रसन्न रहे।

राजा बलि ने अपने प्रपितामह के निधन का वैर छोडकर आर्य्यों का साथ दिया था, किन्तु फल कुछ भो न निकला और पूरा परिश्रम करके समुद्र मन्थन में दैत्य लोग खाली हाथ रहे। आर्य्यों की इस धींगाधींगी तथा स्वजात्यपमान से रुष्ट होकर बलि ने युद्ध की ठानी। इस विचार मे सारे दैत्य दानवादि सहमत हुए और प्रह्लाद तक ने न केवल इसका अनुमोदन किया, वरन् प्रगाढ़ भक्ति को भी किनारे रखकर अपनी जाति का अपमान मिटाने के विचार से रण स्थल मे स्वयं युद्ध करने की सन्नद्धता दिखलायी। राजा बलि ने अब दूना उत्साह पा रणोन्मत्त होकर रणस्थल मे रणचण्डी को तृप्त करने के लिए सेना सजने की आज्ञा दी। दैत्य दल में प्रधान लोग निम्नानुसार थे:—महापद्मिनी, पद्म, कुम्भ, कुम्भकरण, कांचनाक्ष, कपिकन्ध, क्षिति कम्पन, मैनाक, ऊर्ध्ववक्र, सितकेश, विकच, सुबाहु, सहस्रबाहु, व्याघ्राक्ष, वज्रनाभि, एकाक्ष, गजस्कन्ध, गजशीर्ष, कालजिह्वा, कपिलाक्ष, धेनुक, युवराजबाण, अनायुषा-पुत्रवलि, नमुचि, यम, पुलोमा, हयग्रीव, प्रह्लाद, शम्बर, अनुह्लाद, (प्रह्लाद का भाई), विरोचन (बलि का पिता), विषपर्वा, बित्र, कनकबिन्दु, कुजंभ, असिलोमा, एकचक्र, राहु, विप्रचित्ति दानव, केशी दानव, हेममाली, मय, वृत्रासुर आदि। जो ब्राह्मण लोग इनके पुरोहित थे वे भी युद्ध मे गए। इन्द्र के सहायक निम्नानुसार थे:—विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, डम्बर, तुम्बर, किन्नर, नाग, आदि। बड़ा भारी युद्ध हुआ और देव (आर्य) पराजित हो कर पूर्व दिशा को भाग गए। इसी युद्ध को देवासुर संग्राम कहते है। इसमे मय, शम्बर, प्रह्लाद और वलि की प्रधानता रही। मय और शम्बर विशेषतया मायावी कहे गए हैं। यह शम्बर दिवोदास के समय के शम्बर से इतर मालूम पड़ता है। देवताओ के पूर्व दिशा मे भागने से विदित होता है कि वे अपने देश मे न जाकर नाग लोक मे या अफगानिस्तान की ओर गए। इस प्रकार वलि ने आर्य्यों और नागो को पराजित करके तीनो लोको की धर्म सहित

पालना की। तीनो लोकों से किस देश का प्रयोजन है सो अनिश्चित है।

बलि से पराजित होकर आर्य्य लोग न केवल दैत्य लोक का वरन अपने देश का भी राज्य खो बैठे। अब इन्हे किसी अच्छे नेता की खोज पड़ी। बहुत ढूँढ खोज के पीछे इन्होंने कश्यप के पुत्र भगवान वामन को परम प्रवीण पुरुष पाकर उनकी शरण ताकी और उन्होंने भी स्वजाति प्रेमवश अपने पराजित भाइयो का पक्ष ग्रहण किया। बहुत मन्त्रणा के पीछे आर्य्यों ने यह निश्चय किया कि भगवान वामन बलि के यहाँ जाकर उसे किसी प्रकार से राज्य च्युत करे। उधर का पता लगाने से इन्होंने जाना कि बलि अश्वमेध यज्ञ करता है। इस अवसर को और भी शुभ समझ कर भगवान वामन ने आर्य्य पुरोहित बृहस्पति को साथ ले दैत्यपति के यज्ञस्थल मे जाकर बलि की प्रशंसा करते हुए तत्कालिक प्रचलित रीति से बढ़ी चढ़ी यज्ञ विधि कही। यह सुनकर शुक्राचार्य्य आदि बलि के पुरोहित निरुत्तर हुए। यह देख राजा बलि ने परम प्रसन्न हो वामन की प्रशंसा की और उन्हे यथारुचि वर देने का प्रण किया। भगवान ने तीनो लोक दान मे माँगे और सभी से मना किए जाने पर भी राजा बलि ने अपना वचन तोड़ना पसन्द न किया और यही कहा कि ऐसा दान पात्र आज तक किसी ने नही पाया। यह कह कर उसने अपनी सारी अल्प अनल्प पृथ्वी वामन भगवान को दे दी। अब दैत्यो ने आर्य्यों का अधिकार रोकना चाहा, किन्तु बलि की सहायता बिना वे कुछ कर न सके और आर्य्यों तथा नागो ने मिल कर सारी पृथ्वी पर अधिकार जमा लिया। वामन भगवान ने बलि को नागपाश मे बाँधकर सुतल नामक देश मे नागो के पहरे मे कैद कर दिया। इस प्रकार आर्य्यों का साम्राज्य सारे देश में फिर फैल गया। इस भाँति चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त मे आर्य्यों का प्रभाव खूब बढ़ गया। पुराणो मे लिखा है कि वामन भगवान ने बलि से केवल तीन पैग पृथ्वी माँग कर तीनो लोक तीन ही पैग मे नाप लिये। ऋग्वेद मे भी विष्णु के तीन पैगो का बहुत कथन है, यद्यपि उसमे वामन का नाम नहीं आया है। जान पड़ता है कि वामन ने

किसी प्रकार लम्बे डगों का प्रभाव दिखलाया। शत पथ ब्राह्मण में लिखा है कि वामन ने लेट कर सारी पृथ्वी नापी। इसके पीछे किसी दैत्य सरदार प्रह्लाद की अध्यक्षता में आर्य्यों की दैत्य दानवों से विष्णु द्वारा अन्तिम सन्धि हुई, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। ये प्रह्लाद चाहे बलि के पितामह ही हों चाहे कोई दूसरे। लिखे एक ही प्रह्लाद हैं। चाक्षुष मन्वन्तर की कथा महाभारत और विशेषतया हरिवंश के आधार पर लिखी गई है। आदिम भाग दुर्गापाठ से आया है।

वैवस्वत मन्वन्तर

इसी समय से वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारंभ होता है, जो अब तक चल रहा है। वास्तव में चाक्षुष मन्वन्तर ही अन्तिम है और वैवस्वत मन्वन्तर के प्राय: अनन्त होने से चाक्षुष तक ही मन्वन्तरों के अनुसार कालगणना हो सकती है, तथा वैवस्वत के आरम्भ से नये प्रकार से गिनती करनी पड़ेगी। इसी काल से नवीन आर्य्य धारा के आगमन से नया युग भी आरम्भ होता है। महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि प्रसिद्ध अयोध्या नगरी वैवस्वत मनु ही ने बसायी। पुराणों में कहीं कहीं यह भी लिखा है कि मनु पुत्र इक्ष्वाकु ने यह पुरी बसायी। चाक्षुष मन्वन्तर ही में वैदिक समय प्रारम्भ होता है। हम देखते हैं कि पहले आर्य्यों की यह दशा रही कि स्वायंभुव मन्वन्तर में इन्होंने उत्तरी भारत जीता, अन्य देशों और महाद्वीपों को विजयिनी धारायें भेजीं और जङ्गलों को जलाकर निवास योग्य भूमि निकाली एवं कृषि की उन्नति की। आर्य शब्द का अर्थ ही कृषक है। स्वारोचिष, उत्तम, तामस तथा रैवत मन्वन्तरों में ये लोग धीरे धीरे फैलते गये, यहाँ तक कि बहुत सा देश आर्य्यों के अधिकार में आगया और इनकी सभ्यता का अनुकरण करके प्राचीन भारतीयों तथा नागों ने भी कहीं कहीं अपने राज्य जमाये। चाक्षुष मन्वन्तर के डेढ़ दो सौ वर्षों में आर्य्यों ने और भी बढ़ कर अपना शासन फैलाया तथा दैत्य दानवों आदि की अध्यक्षता में अनार्य लोग मध्य और पश्चिमी भारत में बसने लगे। अब हम वेदों के

सहारे समाज का कुछ वर्णन करके क्रमबद्ध इतिहास को फिर से उठावेंगे। इसी स्थान पर भारत में आने वाली पहली आर्य्य धारा का इतिहास समाप्त होता है, ऐसा हमारा विचार है। अब तक के छवों मनु एक ही घराने के थे। वैवस्वतमनु से इनका वैवाहिक आदि कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। वैवस्वत के पिता सूर्य दक्ष के दौहित्र अवश्य थे, किन्तु ये दक्ष चाक्षुप वंशी अन्तिम राजा ही थे सो अनिश्चित है। पहली धारा ने भारत में बस कर तथा आदिम निवासियों को जीत कर यहाँ अपना प्रभुत्व फैलाया। अन्तिम मन्वन्तर के मनु स्वयं वैदिक ऋपि थे और उनके वंशधरों में पृथुवैन्य अवश्य ही ऋपि थे तथा वेन और ध्रुव भी हो सकते हैं। पहले पांच मन्वन्तरों में कोई वैदिक ऋपि न था। अतएव हम देखते हैं कि छवों मन्वन्तरों में अन्तिम चाक्षुप न केवल राजनीतिक विस्तार में गरिमापूर्ण था, वरन् उसमें वैदिक गान भी होने लगा। इस काल प्रथम आर्य्यधारा के साथ कुछ दैत्य दानव भी शायद इधर आये हों, किन्तु चाक्षुप मन्वन्तर का देवासुर युद्ध शायद फारस और अफ-गानिस्तान से ही सम्बद्ध हो। उपर्युक्त अन्तिम सन्धि के पीछे दूसरी आर्य्य धारा का भारत में आना समझ पड़ता है।

छठवां अध्याय

प्रायः २००० बी० सी० से ९५० बी० सी० तक

ऋग्वेद (प्रथम मण्डल) एवं वेदांग

भारत का आदिम इतिहास वेदों के सहारे ही लिखा जा सकता है। इसलिये स्थालीपुलाकन्यायेन इनका कुछ दिग्दर्शन पाठकों को कराना उचित समझ पड़ता है। इसमे कठिनता यह है कि वेद-मन्त्रो के अनुवादो मे पृथक मत वाले मनुष्य अपने अपने मतानुसार अर्थो मे खीचतान करते हैं, सो असली अर्थ जानना सुगम नही है। हमने विशेषतया सायणाचार्य्य का प्रमाण माना है और यथासाध्य मतभेद वाले स्थानो पर किसी भी मत की ओर न झुक कर निर्विवाद मन्त्रों आदि का अधिक सहारा लिया है। हमारा तात्पर्य किसी भी मत को पुष्ट अथवा अपुष्ट प्रमाणित करने का नहीं है, वरन् हम पाठको को निर्विवादात्मक मर्म्म बतलाने की इच्छा रखते हैं कि जिसमे लोग यह जान जावे कि इन पुनीत ग्रन्थो का आशय क्या है अथच इनके वर्णन और विषय कैसे हैं?

जैसा कि सभी लोग जानते है, वेद चार हैं अर्थात् ऋक, यजुष, साम और अथर्व। पंडितो ने सब से अधिक उपयोगी ऋग्वेद को समझा है और इस पर अधिक परिश्रम भी हुआ है।

चारो वेदो के अतिरिक्त सारे ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदो के अग है। ये गणना मे अब प्रायः ७० रह गये हैं। पडितो का मत है कि बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। वेदो के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य्य १४ वी शताब्दी मे थे। यद्यपि इनको हुये प्रायः ६०० वर्ष ही हुये हैं, तथापि इनके समय मे भी एक वह ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त था जो अब अप्राप्य हो गया है। ब्राह्मणो ही के अन्तर्गत उपनिषत् ग्रन्थ हैं। इनके विषय ब्राह्मण ग्रन्थो के शेष भागों से बिलकुल पृथक् हैं

क्योंकि इनमें ज्ञान कथन है और ब्राह्मणों के शेष भागों में कर्मकांड की प्रधानता है। उपनिषत् लगभग ११९४ हैं, जिनमे १२५ के लगभग अथर्ववेद से सम्बन्ध रखते हैं। प्रायः १५० उपनिषत् प्राचीन और महत्वपूर्ण हैं। इनमें भी १० की प्रधानता है। इन सब के वेदांश होने पर भी सुगमता के लिये हम केवल संहिता भाग को वेद कहते हैं और ऐसा ही आगे भी करेंगे।

हिन्दू धर्मानुसार वेद अनादि हैं, अर्थात् किसी ने इन्हे कभी बनाया नहीं। ये ऋषियों को आप से आप भासित हुये। इसलिये इनका किसी समय मे बनाया जाना कहना हिन्दू धर्म के प्रतिकूल है। पहले तीन ही वेद प्रधान थे और अथर्व की गणना वेदो मे न थी। इसीलिए वेदत्रयी आदि के कथन हिन्दू ग्रन्थो में प्राय. पाये जाते है। धीरे-धीरे अथर्व की भी गणना वेदो मे होने लगी। ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेयारण्यक, बृहदारण्यक तथा शतपथ ब्राह्मण मे केवल तीन ही वेद कहे गये हैं। छान्दोग्य मे भी ऐसा ही है और अथर्व को इतिहास माना गया है। साम और अथर्व के आरण्यक नहीं हैं। वेद वर्त्तमान रूप मे सदा से न थे, वरन वेदव्यास ने इन्हे जनमेजय के समय सम्पादित करके वर्तमान रूप दिया। इसका आधार बारहवें अध्याय के अन्त मे है। वेद के विभाग करने ही से उनको व्या उपाधि मिली। विष्णु पुराण के चौथे खण्ड मे लिखा है कि द्वापरयु मे कृष्ण द्वैपायन ने वेद को एक से चार किए और इसी प्रकार पह के व्यास लोग भी करते आये थे। विष्णु पुराण के अनुसार भग समय पर २८ व्यास हुए। यही मत अन्य प्रकार से भी स्थिर होत है जैसा कि आगे दिखलाया जायगा। भगवान वेदव्यास से पहले भी एक बार अथर्वण ऋषि वेदो का सम्पादन कर चुके थे। वेद के चार विभाग होने पर पैल ने ऋग्वेद सीखा, वैशम्पायन ने यजुर्वेद, जैमिनि ने सामवेद और सुमन्तु ने अथर्ववेद। प्रत्येक मंत्र का नाम [illegible] है। समय पर इन ४ ऋषियों के शिष्यों में कई भेद हो गए जिससे वेदों की अनेकानेक शाखाएं स्थिर हुईं। वेदों और ब्राह्मणों से इतर ४ उप वेद, ६ वेदाङ्ग और कई उपाङ्ग हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्ववेद का अर्थ-

शास्त्र । ६ वेदाङ्गों मे शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र नामक चार उपांग है। ये विस्तार नवम शताब्दी बी० सी० से पीछे के हैं, किन्तु विषय की पूर्णता दिखलाने को इनका आभास मात्र यहाँ कहा गया है ।

आयुर्वेद के विद्वान ब्रह्मा, रुद्र, विवस्वान, दक्ष, अश्विनीकुमार, यम, इन्द्र, धन्वन्तरि, बुद्ध, च्यवन, आत्रेय, अग्निवेश, भेर या भेल, जातुकर्ण, पराशर, शीरपाणि, हारीत, भरद्वाज और सुश्रुत (विश्वामित्र के पुत्र) थे । विदेहराज जनक ने "वैद्य सदेह भंजनम्" ग्रंथ लिखा । इसी प्रकार अगस्त्य ने "द्वैध निर्णयतंत्रम्", जावाल ने "तन्त्रसारकम्", जाजलि ने "वेदांगसार", पैल ने "निदान", कवथ ने "सर्वधर्मतन्त्रम्", काशिराज ने "चिकित्साकौमुदी" धन्वन्तरि ने "चिकित्साबलविज्ञानम्", बनारस के दिवोदास ने "चिकित्सादर्पण" आदि ग्रन्थ लिखे । विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत ने दिवोदास से वैद्यक सीखी । वे शरीरशास्त्र मे निपुण हो गए । गोमांस को सुश्रुत और चरक ने भक्ष्य लिखकर उसको भारतवर्ष की जलवायु के प्रतिकूल बतलाया । नकुल और सहदेव भी अच्छे वैद्य हो गए है । धनुर्वेद विश्वामित्र का बनाया हुआ है । उसमे आयुध ४ प्रकार के लिखे हैं, अर्थात् मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त । गान्धर्व वेद के अन्तर्गत ही नाट्यशास्त्र है । गायन के आचार्य नारद थे । महेश के कहने से नृत्य का आरम्भ हुआ । नाट्यशास्त्र को भरत मुनि ने लिखा । अर्थशास्त्र की शाखाये नीतिशास्त्र, शालिहोत्र, शिल्पशास्त्र, सूपशास्त्र आदि ६४ कलाएँ हैं । नीतिशास्त्र के रचयिता शुक्र, विदुर, कामन्दक, चाणक्य आदि हैं ।

शिक्षा से उच्चारण की रीति ज्ञात होती है । व्याकरण से शब्दों और वाक्यों के सम्यक प्रयोग की विधि का ज्ञान होता है । पाणिनि ऋषि शिक्षा और व्याकरण के सब से श्रेष्ठ आचार्य हैं । इनकी माता देवल दाक्षी थी । ये शलातुर मे रहते थे । कोई इनका जन्मस्थान तुरी बतलाते है । ये अफगान थे । इनका व्याकरण संसार भर में सब से छोटा एवं सर्वाङ्गपूर्ण है । कात्यायन और पतञ्जलि भी व्याकरणाचार्य थे । कात्यायन गोभिल गोणिका के पुत्र और सौनक के शिष्य नन्द

वंश के मन्त्री थे। ये चौथी शताब्दी बी० सी० में हुए। इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद पर एक २६ अध्यायों का श्रौत सूत्र भी लिखा। आरम्भ में इन्द्र, चन्द्र, महेश और ब्रह्मा ने मिलकर अक्षर और व्याकरण बनाये। निरुक्त से वेदों में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति एवं अर्थ का ज्ञान होता है। यास्क इसके प्रथम आचार्य हैं। कल्प में वेदकर्मों के क्रम का ज्ञान है। कल्प की मुख्य तीन शाखाएँ हैं, अर्थात श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, और धर्मसूत्र। श्रौतसूत्र के आचार्य लात्यायन, द्राह्यायन आदि हैं। आश्वलायन, गोभिल, पारस्कर आदि गृह्यसूत्र के आचार्य हैं तथा बोधायन, आपस्तंब, कात्यायन आदि धर्मसूत्र के। ज्योतिषशास्त्र से समय का समुचित ज्ञान होता है। इसमें तिथि, वारादि जानने की रीति निर्दिष्ट है। सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों की गतियाँ गणित द्वारा बतलाई गई हैं। पाराशरी संहिता ज्योतिष का पहला ग्रन्थ है। इन्होंने यवनादि जातक का उल्लेख किया है। गर्ग ने इनसे प्रायः १०० वर्ष पीछे शकों के समय में गर्ग संहिता बनाई। आर्य भट्ट ने सन ४७६ में जन्म लिया। इनका ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ये शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। इन्होंने पृथ्वी का घूमना लिखा है और पृथ्वी के विस्तार का प्रायः ठीक ठीक निर्णय करके सूर्य, चन्द्र ग्रहण के उचित कारण भी बतलाये हैं। वराह मिहिर भी शाकद्वीपी थे। ये सन ५०२ में मालवे में हुये। इन्होंने बृहत्संहिता लिखी। इसमें भूगोल, खगोल, गणित, वनस्पति और प्राणि विद्या का भी वर्णन है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के रचयिता कदाचित् ८ वी शताब्दी के हैं। इन्होंने गणित और फलित दोनो प्रकार का ज्योतिष लिखा। बारहवीं शताब्दी में भास्कराचार्य ने सिद्धांत शिरोमणि, लीलावती और बीजगणित ग्रंथ रचे। उनका कहना है कि जब लंका में प्रातः काल होता है तो रोम में दोपहर। लल्ल, श्रीधर आदि भी अच्छे ज्योतिषकार थे। श्रीधर स्वामी तथा अन्य ज्योतिषियों का कथन है कि महाभारत युद्ध के समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे और नन्द-राज्य के समय पूर्वाषाढ़ पर आचुके थे। वे एक नक्षत्र पर १०० वर्ष रहते हैं। सप्तर्षियों से जिस दिशा में ध्रुव पड़ते हैं, उसकी विपरीत दिशा में आकाश में एक सीधी रेखा खींची जाने से यह नक्षत्र राशि में से जिस पर पड़े वहीं

पर सप्तर्षि की स्थिति मानी जाती है। यास्क ने कहा कि चन्द्रमा में सूर्य से प्रकाश पहुँचता है। संजय ने धृतराष्ट्र से कहा कि जब चन्द्र पर पृथ्वी की छाया पड़ती है तब उसकी गोलाई जान पड़ती है। ब्रह्मा, मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, वशिष्ठ, कश्यप, भर्ग, नारद, बृहस्पति, विवस्वान, सोम, भृगु, मनु, च्यवन आदि भी ज्योतिषी थे। पौराणिक भूगोलों में ७ द्वीप हैं अर्थात् जम्बू, शाक, शाल्मलि, पुष्कर, प्लक्ष, कुश और क्रौंच। छन्द शास्त्र के आचार्य शेषनाग थे। छन्द दो प्रकार के है अर्थात् लौकिक और अलौकिक। वेद मे अलौकिक छन्द है और साधारण ग्रन्थो मे लौकिक। इन दोनों का वर्णन पिङ्गल नाग ने 'छन्दो निवृति ग्रन्थ' मे किया। इसी से छन्द ग्रन्थो को प्रायः पिङ्गल भी कहते हैं।

पुराण १८ और उपपुराण भी १८ है। न्यायशास्त्र के मुख्य आचार्य गौतम और वैशेषिक के कणाद हैं। पुराणो में कणाद को उलूक और गौतम को अपक्षयाद लिखा है। गौतमीय न्याय पर वात्स्यायन का न्याय है और वैशेषिक पर प्रशस्तपाद का। न्याय शास्त्र के अन्य आचार्यों मे वाचस्पति मिश्र (८ वीं शताब्दी) उदयन (१२ वीं शताब्दी) रघुनाथ, शिरोमणि व पक्षधर मिश्र (१४ वीं शताब्दी) और गणेश, जगदीश, विश्वनाथ तथा शकर मिश्र (१६ वी शताब्दी) प्रसिद्ध हैं। मीमांसा निर्णय को कहते है। पूर्व मीमांसा जैमिनि की तथा उत्तर मीमांसा व्यास की है। शवर स्वामी पूर्व मीमांसा के भाष्यकार थे। कुमारिल्ल भट्ट और प्रभाकर भी पूर्व मीमांसावादी थे। शकराचार्य, रामानुजचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, विज्ञानभिक्षु, निम्बार्काचार्य उत्तर मीमांसा के भाष्यकार हैं। धर्मशास्त्र के सांख्य और योग उपभेद हैं। कपिल भगवान सांख्य के ऋषि थे और पतजलि योग के। व्यास ने योग सूत्रो पर भाष्य रचा। श्वेताश्वतरोपनिषत् मे कपिल को परमर्षि कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है कि ऋग्वेद की उत्पत्ति अग्नि से हुई, यजुर्वेद की वायु से और सामवेद की सूर्य से। इतिहासो और पुराणो को पांचवाँ वेद कहते है। यजुर्वेद के शुक्ल और कृष्ण नामक दो भेद हैं। इनकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई कि वैश्यम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्य

नम्बर	कवि का नाम	सूक्त संख्या	किस नम्बर के सूक्त से आरम्भ	किस विषय के कितने सूक्त
२२	दीर्घतमस उचथ्य और ममता के पुत्र	२५	१४०	अग्नि १०, आप्री १, मित्र वरुण ३, विष्णु २, विष्णु इन्द्र १, अश्विन २, आकाश पृथ्वी २, ऋभु घोड़ा १, विश्वेदेवस् आदि २ ।
२३	अगस्त्य (मान के पुत्र)	२६	१६५	इन्द्र मरुत् ३, मरुत् ४, इन्द्र ७, अश्विन ५, आकाश पृथ्वी १, विश्वेदेवस् १, सोम १, आप्री १, अग्नि १, बृहस्पति १, सावरमंत्र १ ।
२४ २५	लोपामुद्रा अगस्त्य और एक शिष्य	१	१६०	रति १ ।

लोपामुद्रा अगस्त्य ऋषि की स्त्री थीं। पांच वार्षागिरों के नाम ये थे:—रिजिराश्व, अंबरीष, सुराधास, सहदेव और भयमान। इन ऋषियों में मधुच्छन्दस और जेता विश्वामित्र के पुत्र और पौत्र थे। शुनःशेप अजीगर्त्त के पुत्र थे। राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में ये बलि दिये जाते थे। इस अवसर पर मंत्र पाठ से बचे। यज्ञ में इनका तीन खम्भों में बांधा जाना इस मण्डल में भी लिखा है। इन उपर्युक्त ऋषियों में मेधातिथि, हिरण्यस्तूप, कण्व, प्रस्कण्व, सव्य और [illegible] अंगिरसवंशी थे। दीर्घतमस के विषय में महाभारत में लिखा है कि ये अन्धे थे और इनकी स्त्री ने इनके लोक लाज छोड़ कर [illegible] रति करने के कारण अप्रसन्न होकर अपने पुत्रों द्वारा [illegible] इन्हें एक नदी में बहवा दिया था। इन्हीं दीर्घतमस् ने

(महाभारत) यह मर्य्यादा स्थिर की थी कि यदि स्त्री एक पति से लड़ कर उसे छोड दे तो दूसरा न कर सके। इस मंडल में ये स्वयं कहते है कि ये अन्धे थे और दासो ने इन्हे बाँध कर नदी मे फेंक दिया था। त्रैतन नामक कोई व्यक्ति इनसे लड़ा भी था। महाभारत की पुष्टि इस मंडल से होती है। इनके मन्त्रों में छायावाद विशेष है।

उपर्युक्त ब्योरे से विदित होगा कि इस मंडल के १९१ सूक्तों में पृथक् पृथक् देवताओं आदि के विषय में मन्त्र-संख्या निम्नानुसार है:—अग्नि ४५, आप्री (अग्नि के भेदान्तर) २, वायु १, मरुत् १२, आश्विन १५, इन्द्र ४३, विश्वेदेवस् ८, बृहस्पति या ब्रह्मणस्पति २, ऋभु ४, वरुण १, पूषन् २, रुद्र १, उषस् ६, सूर्य २, सोम (चन्द्र) २, स्वनय राजा २, विष्णु २, घाड़ा २, रति १, इन्द्रवरुण १, अग्नि मरुत् १, इन्द्र अग्नि ३, अग्नि सोम १, वायु इन्द्र १, मित्र वरुण ५, विष्णु इन्द्र १, आकाश पृथ्वी ३, इन्द्र मरुत् ३, इन्द्र विश्वेदेवस् १, इन्द्र इन्दु १, इन्द्र पर्वत १, वरुण अग्नि सविता १, और सूर्य्य १।

तीन से अधिक देवताओ के नाम १४ सूक्तो मे आये हैं। इन १४ सूक्तो एवं अन्यों मे अमुख्यतया निम्न देवताओं आदि का कथन है:—

अर्य्यमन्, सरस्वती, सरस्वान्, त्वस्व, दक्षिणा, इन्द्राणी, वरुणानी, आग्नेयी, आदित्य, ऋतु, अदिति, सिन्धु, वाक्, काल, साध्यगण, गन्धर्व, भग, जल, ऊखल, मुशल, मातरिश्वम् और तृत।

सब देवता सोम पान के लिये निमन्त्रित किये जाते हैं और साम से बल प्राप्त करते हैं। उनके बुलाने मे प्राय: ये उपमाएँ दी जाती हैं कि घोड़े की भांति जल्दी आओ और बैल की भाँति प्रसन्नतापूर्वक बहुत सा सोम पान करा। उपमाएँ अधिकतर बैल से ही दी जाती हैं, यहाँ तक कि इन्द्र और विष्णु तक की उपमाएँ बैल से महत्व सूचन में दी गई हैं। कही कही भैसे और घोड़े से भी उपमाएँ दी गई हैं। मेघों की उपमाएँ प्राय: भैसे से हुई हैं। मेघों का बहुत स्थानों पर गाय कह कर बोध कराया गया है।

अग्नि—यह इन्द्र के पीछे सब से प्रसिद्ध देवता है। यह होतार, बसीठी, तथा देवताओं को यज्ञो मे लानेवाला है। इसकी उत्पत्ति अन्तरिक्ष, आकाश और जल में हुई। यह दो माताओं का पुत्र

है, अर्थात् दो लकड़ियों के संघर्षण से उत्पन्न होता है। यह तनूनपात् भी है अर्थात् अपने से भी उत्पन्न होता है। भृगु ने इसे मनुष्यों में स्थिर किया और मनु ने पुरोहित बनाया। इसकी सात लौ हैं और इसके विविध रूपों में आप्री भी है। होत्रा, भारती, वहतृ और धिषणा इसकी स्त्रियाँ हैं। धिषणा वाग्देवी है। स्वाहा नाम से अग्नि में यज्ञ होता है। यह एक स्वरूप से यज्ञों में सहायता देता है और दूसरे स्वरूप से सौ नेत्रों द्वारा जंगलों को भस्म करके नये स्थानों में भूमि को मनुष्यों के निवासयोग्य बनाता है।

वायु—यह नाम दो मन्त्रों में प्रधानतया लिया गया है और शेष इस विषय के मन्त्रों में मरुत् का नाम है। वायु के कोई प्रधान गुण नहीं कहे गये हैं। शम्बर को अतिथिग्व दिवोदास ने मारा।

मरुत्—भग के साथ उत्पन्न हुये ये रुद्र पुत्र रथ में चितले मृग जोतते हैं। इनके कन्धे पर बरछा और हाथ में तलवार तथा अँगूठी है। प्रथम ये देवता न थे। इन्द्र इनसे अप्रसन्न थे और इनके यज्ञ भाग पाने से क्रोधित होते थे, परन्तु इन्होंने इन्द्र की युद्ध में सहायता की और बड़ी दीनता दिखलाई तब वे इनसे प्रसन्न हो गये और ये यज्ञ में भाग पाने लगे। ये परम अजित, सबल, मेघ भेजने वाले, धन देने वाले और राक्षसों के संहारक हैं।

अश्विन—दो हैं। इनके विषय में पण्डितों में कुछ सन्देह है। महात्मा यास्क ने लिखा है कि इन्हें पृथक् पृथक् लोग आकाश पृथ्वी, दिन रात, सूर्य चन्द्र और दो राजा कहते हैं। ये उषस् के प्रथम चलते और दिन रात में तीन तीन बार चक्कर लगाते हैं। इनके रथ में तीन पहिये हैं और उसमें दो गधे जुते हैं। सूर्य्य की पुत्री इनकी स्त्री है। ये परम सुन्दर हैं और दारिद्र्य नाश करने तथा बहुत आनन्द देने वाले हैं। इन्होंने करकन्धु, वय, वशिष्ठ आदि को प्रसन्न किया और [illegible] को उसकी स्त्री सुदेवी ला दी। बांझ गाय से दूध निकाला, अन्धे तथा लंगड़े परावृज को अच्छा किया, विश्पला की युद्ध में टूटी हुई टांग अच्छी कर दी, वध्रिमती को हिरण्यहस्त पुत्र, ऋज्राश्व को नेत्र, विश्वक को विष्णापु पुत्र एवं घोषा को पति दिया। इन्होंने अन्य प्रकार से निम्नलिखित लोगों की सहायता की:—रेभ और वन्दन

(बँधे थे सो निकाले गये), कण्व (रक्षित हुये), अन्तक, भज्यु, सुचन्ती, पृश्निगु, अत्रि (जलते गढ़े से बचाये गये), श्रेतर्य, कुत्स, नर्य्य, वसु, दीर्घश्रवस् औसिज, कक्षीवान, रसा, तृशोक, मान्धाता, भरद्वाज, अतिथिग्व दिवोदास, कशोजु, तृपदस्यु (इन अन्तिम चारो के दुर्ग टूट गये थे तब ये बचाये गये), वम्र, उपस्तुत, कलि, व्यस्व, पृथिराजर्षि, सपु, मनु, सर्यान, विमद (इनको स्त्री दी गई), अध्रिगु, सूभर, ऋतस्तूप, कृशानु (ये युद्ध मे बचाये गये), पुरुकुत्स (इनकी घुड़दौड़ मे मदद हुई), आरजुनी पुत्र कुत्स, ध्वशान्ति, पुरुषान्ति, अग्राश्व, च्यवन (ये बूढ़े से जवान कर दिये गये) जह्नुपुत्र, जाहुश और औसर। इतने लोगो की सहायता करने के अतिरिक्ति इन्होने दस्युओ को भी हराया।

इन्द्र—वेद के सब से बड़े देवता हैं। ये देवताओं के राजा और विष्णु के मित्र कहे गये हैं। इनको कुशिक के पुत्र कौशिक भी कहा है जिससे महाभारत की उस कथा का समर्थन होता है जिसमे लिखा है कि कुशिक के पुत्र राजा गाधि इन्द्र के अवतार थे। इनकी कुतिया का नाम सरमा है। त्वष्टार ने दधीचि की अस्थि से इनका वज्र बनाया जिससे इन्होने ९९ वृत्रो को मारा। आपने वृत्र के अतिरिक्त सुश्न, बल, पिप्रु शम्बर, अहि, रौहिन, कुयव, व्यंस, कुयवाच, अर्वुद, नमुचि, करंज, परनय और वंगृद को मारा। वृत्र सुश्न आदि जल रोके थे सो उन्हें मार कर इन्द्र ने जल खोल दिया। वंगृद के सौ दुर्ग्ग नष्ट किये और दासों के भी दुर्ग्ग मर्दित किये। ये दस्युओ के नष्ट करनेवाले तथा आर्यों का बल बढ़ानेवाले है। सुश्रवस, तूर्य्यवान, यतस्, नर्य, तुर्वश, यदु, तुर्वीत, पुरुकुत्स, पुरु और सुदास की रक्षा की और उन्हे युद्धों मे जिताया तथा कक्षीवान ऋषि को वृचया स्त्री दी। ये अजित जेता और असीम वलधारी हैं। इन्होंने पृथ्वी स्थिर की और सूर्य को आकाश मे उठाया। ये स्वयं मन्त्रों और सोम से वल प्राप्त करते और देवताओं मे सर्वोपरि हैं।

विश्वेदेवस्—सख्या मे १३ हैं। ये खास देवता भी हैं और यह नाम कुल देवताओ को मिलाकर भी कहा जाता है। ये सर्पो की भांति सूरत वदलने वाले तथा रक्षक हैं।

बृहस्पति उपनाम ब्रह्मणस्पति—मन्त्रों के देवता और मन्त्र पढ़ने में सर्वश्रेष्ठ हैं। ये दुष्टों को दण्ड देते हैं। इन्होंने मनुष्यों को पृथ्वी आकाश दिखाये।

ऋभु—संख्या में तीन हैं। इनके नाम ऋभु विभवन और वाज हैं, और ये तीनों मिल कर ऋभवः कहलाते हैं। ये अङ्गिरस वंशी सुधन्वा के पुत्र मनुष्य थे, पर इन्द्र की सहायता करने से सवितर द्वारा अमर बनाये गये और ऋतुओं के देवता हो गये। इन्होंने इन्द्र का अश्व और आश्विन का रथ बनाया, तथा अमृत देने वाली एक गाय भी बनाई। इन्होंने अपने माता पिता (पृथ्वी आकाश) को फिर से जवान कर दिया।

वरुण—वरुण और मित्र का वर्णन प्रायः साथ ही साथ होता है और वरुण के वर्णन अलग भी हैं। वरुण रात के देवता हैं और मित्र दिन के। ये आकाश पृथ्वी के स्थिर रखने वाले, (ऋत) प्रकृति के शुद्धतापूर्वक सञ्चालक, सत्य और ज्योति के स्वामी, तथा धर्म प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने सूर्य का मार्ग बनाया और ये संसार भर को मार्ग पर रखने वाले हैं। अवैदिक समय वाले आर्यों में ये सर्वोपरि देवता थे। यही दशा पार्सियों में भी है। वैदिक समय में इन्द्र इनसे आगे निकल गये और महत्त्व में इनका दूसरा नम्बर हो गया।

पूषन्—१२ आदित्यों में एक हैं। ये लोगों को राह के सङ्कटों से बचाते और उन्हें सीधे सुखप्रद मार्ग पर ले जाते हैं। ये अज के पुत्र हैं और रथ में बकरे ही जोतते हैं। ये युद्धों में आर्यों के सहायक हैं।

रुद्र—बली, बड़े बुद्धिमान, उदार, यज्ञ ओषधियों और मन्त्रों के स्वामी, सूर्यवत् प्रकाशमान, देवताओं में सर्वोत्तम, घोड़ों, भेड़ों, भेड़ियों, गौओं आदि के रक्षक (पशुपति), कपर्दी (कौड़ी की भाँति गिठादार बाल वाले), शर्वाणी के स्वामी और मनुष्यों तथा पशुओं को स्वास्थ्यदायक हैं। ये मारुतों के पिता और परम सुन्दर हैं। इनसे इस प्रकार विनतियाँ की जाती हैं कि क्रोधवश हम लोगों को तथा बूढ़े बच्चों आदि को न मारो और हानि न पहुँचाओ, तुम्हारी घातक सांगी हम लोगों से दूर हो, इत्यादि।

उषस्—आकाश की पुत्री और ज्योति पूर्ण हैं। यह पुष्ट इनके

वाली सौ रथों पर चलती है। यह सब को काम में लगाती है और सदा अपने प्रेमी सूर्य्य के आगे ही चलती है। इसका वर्णन प्रायः कविता-पूर्ण है।

सूर्य्य—ज्योतिकारक, प्रकाशक, तुरगच्छक और मित्र वरुण तथा अग्नि की आँख हैं। इनके रथ मे सात घोड़े जुते है, और ये प्रेमी की भाँति उषस् के पीछे चलते तथा काँवरि रोग का नाश करते है।

सोम (चन्द्रमा)—परम बुद्धिमान्, बलदायक नेता, परम पवित्र वीरो के स्वामी, धन देने वाले, रोगशान्तिकारक, पोधा. ओषधियो, गाय, जल के उत्पादक, और वृत्र विनाशक है। वरुण वाले प्रकृति के नियम इन्हीं के है। इन्होंने आकाश फैलाया और अन्धकार हटाया, तथा नृशया वंशियो को हरा कर नदी छोड़ा दी। ये अग्नि से मिल कर पणि के पास से गौयें लाये।

सोम (रस)—सोम फल से पानी मिला, खल्ल मे पत्थर से पीस, ऊनी छन्ने में छान कर निकाला जाता था और तब मट्ठे मे मिलाकर पान करने के योग्य बनाया जाता था। यह परम स्वादिष्ट होता था। देवता इसे बहुत पसन्द करते तथा इससे बल प्राप्त करते थे।

स्वनय—भव के पुत्र, सिन्धु नदी के किनारे रहनेवाले एक राजा थे। बड़े यज्ञकर्त्ता और उदार दानी थे। इन्होंने कक्षीवान् ऋषि को सौ माला, सौ घोड़े, हज़ार गाये, घोड़ियो से जुते हुए दश रथ, मोतियो के सामान सहित घोड़े, और फिर साठ हज़ार गायें दीं।

विष्णु—द्युस के पुत्र हैं पर यज्ञ मे उनसे प्रथम भाग पाते हैं। ये पृथ्वी, आकाश तथा जीवधारियो के पोषक, कृशानु का वाण हटाने वाले, रक्षक, कष्ट न देने वाले, दयालु और उदार हैं। ये इन्द्र के मित्र है और उन्ही के साथ इन्होंने मेघों को छोड़ाया। ये पुनीत हैं पर इन्द्र इनसे अधिक पुनीत है [सूक्त नं० १५६]। विष्णु लोक मे अमृत का एक कुआँ और बहुत से तेज बैल हैं। वह लोक चमकता है।

विष्णु तीन पगो मे संसार फिर आये। इनके पृथ्वी और आकाश वाले डग देख पडे पर स्वर्ग का नही। इस मडल में तीन पगो का वर्णन कई बार आया है, सो प्रकट है कि इस से विष्णु के

अतिथिग्व, सर्यात, सुश्रव, तुर्वयान, नरय, पुरुवशी, भरद्वाज, पुरुमीथ, सतवनि, यतस, पुरुकुत्स, रेभा, वन्दन, अथर्वण, दधीच (अस्थि वाले), ऋजिस्वन, अन्तक, भुज्यु, करकन्व के पुत्र, वर्य्य, सुचन्ति, पृश्निगु, परावृज, वशिष्ठ, वम्र, श्रुतर्य्य, विस्पला, वसु, कलि, पृथि, सयु, सुदेवी (सुदास की स्त्री), अध्रिगु, सुभर, रितस्तुप, कुत्स (आरजुनि पुत्र), दवति, ध्वसान्ति, पुरुशान्ति, अघास्व, च्यवन, हिरण्यहस्त, सेलागव्य (इनका युद्ध हुआ), जन्हु, ऋचत्क, सर, कृश्नु पुत्र विश्वक, विश्नापु, घोशा, नृशपुत्रकण्व, स्वाव, स्वनय, कण्व (अन्धे से अच्छे हुये), मसरसार, आयावस, भाव, पुरुमील्ह, दीर्घतमस और तृण स्कन्द। इन मनुष्यो के विषय मे इस मडल मे कोई कथाये नही हैं वरन विनतियो मे प्रसगवश इनके नाम आ गये हैं और कही कही एक आध साधारण घटना इनके विषय मे लिखी है जिसका दिग्दर्शन इस नामावली एवं देवताओं के वर्णन मे कराया गया है।

निम्नलिखित आर्य्यों के शत्रुओ के नाम इस मडल मे आये हैं:—

वृत्र, दनु (वृत्र की माता), पिप्रु, सुश्ना, शम्बर, अर्बुद, वत्र, नमुचि, करंज, परनय, वंगृद (के १०० किले इन्द्र ने तोड़े,) वल, पणि, ९९ वृत्र (इन्हे इन्द्र ने दधीचि की अस्थि वाले वज्र से मारा), वृषय, व्यस, अहि, रौहिनि, कुभ्व, तुग्र, त्रैतन (यह दीर्घतमस् से द्वन्द युद्ध में लड़ा) और कृपवाच।

इस मंडल भर मे जितने मंत्र हैं उन सब मे केवल विनतियां हैं और कोई कथा प्रसंग नही कहा गया है। कही कही प्रसगवश कुछ बातो में मनुष्यों आदि के कथन आ गये हैं जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है और यथास्थान आगे भी होगा। इन मन्त्रों में से दो चार विनतियों के अतिरिक्त अन्य बातो का भी वर्णन हुआ है पर वह भी कथा प्रसग का नही। बहुत से मन्त्रो के अनुवादो मे भी अच्छा काव्यानन्द प्राप्त होता है, विशेषतया उषस् के वर्णनो मे। फिर भी यह कह देना चाहिए कि अधिकतर स्थानों मे अनुवाद मात्र पढ़ने से विशेष काव्यानन्द नही मिलता। इस मडल में थोड़े ही से विषयो का बारम्बार वर्णन किया गया है, [illegible] बाते [illegible] [illegible] स्थानों पर आई हैं पर फिर भी इस छोटे से विषय पर [illegible] लोग इसे [illegible]

के नये नये कथन करने मे समर्थ कैसे हुए, इसी बात पर आश्चर्य होता है, क्योकि प्राचीन कथनो के साथ प्रायः प्रत्येक मन्त्र मे कुछ न कुछ नवीनता भी प्रस्तुत है।

वेदो के रचना-काल के विषय मे कुछ मत-भेद है। हमारे यहाँ वे अनादि माने जाते हैं, अर्थात् हम हिन्दुओ का विचार है कि वे सदैव से हैं पर पाश्चात्य विद्वान् उनके निर्माण का कुछ काल बताते हैं। वे कहते है कि ऋग्वेद मिश्र एव असिरिया के कुछ ग्रन्थो के अतिरिक्त शेष ग्रन्थो मे प्राचीनतम हैं। हमारे विचार से भगवान वेद का किसी समय मे बनना भी इन्हीं के मंत्रो से प्रकट होता है, यथाः—

इस नई विनती से मैं तुझे प्रसन्न करता हूँ (६२वाँ सूक्त)। हे गौतम! बड़े ध्यानपूर्वक बनाये हुये मन्त्र अग्नि को सुनाओ (७९ वे सूक्त)।

मेरे पिता ने प्राचीन समय मे तुझे बुलाया।

अंतिम मन्त्र मे प्राचीन मन्त्रकारों का वर्णन है, जिससे प्रकट है कि वे मन्त्र इससे प्रथम बने थे और यह उनके पीछे। सो दोनों मन्त्रों का बनना ख़ास ख़ास समयो में प्रकट है।

हमारे पूर्व उषस को देखने वाले चले गये, अब हम जीवित लोग इसे देखते है और हमारे पीछे के लोग आगे देखेगे।

इन उपर्युक्त कथनो से इन ऋचाओ का किसी समय मे बनना स्पष्ट है। इनके अतिरिक्त हजारो स्थानो मे पृथक् पृथक् मनुष्यो एव घटनाओं का वर्णन है, जिन मनुष्यों और घटनाओ के पीछे उन ऋचाओ का बनना स्पष्ट है। सो यदि वेदो के अनादि होने का अर्थ यह लिया जाय कि वर्त्तमान समय मे जो शब्द ऋचाओं मे हैं वे ही अनादि काल से चले आते है तो साधारण मनुष्यो को इस मत से विरोध होगा। अब पंडितो का मत इस ओर झुकता देख पड़ता है कि वेदो के यही शब्द अनादि नही है वरन् उनके कथन सत्यता पर अवलम्बित हैं और सत्य के अनादि होने से वेद भी अनादि हैं। इस मत के प्रतिकूल किसी हिन्दू का विचार नही हो सकता। इनके कर्त्ताओ के विषयमे यह प्रकट है कि जैसे कुरानशरीफ के कर्त्ता हजरत

मोहम्मद नहीं हैं वरन् उन्हे वह अनुभूत हुई थी, इसी प्रकार वेदों का कोई कर्त्ता नही है, वरन् जिसके नाम से जो मंत्र प्रसिद्ध है उसके द्वारा वह देखा गया और संसार मे फैला। वेदो के पूर्वापर क्रम के विषय में महाभारत में लिखा है कि भगवान् वेदव्यास ने वेदो को एक से चार किया, अर्थात् वर्त्तमान क्रमानुसार उनको विभाजित किया। इस कथन का कुछ समर्थन प्रथम मंडल से होता है क्योंकि यदि वेदो की रचना का क्रम वही हो जो आजकल प्रचलित है, तो ऋग्वेद के प्रथम मंडल को सब से प्राचीन होना चाहिए, पर इस मंडल के पहले ही मन्त्र मे प्राचीन मन्त्रकारों का कथन है, जिससे उन मन्त्रो का इस मन्त्र से प्रथम होना सिद्ध है। फिर इस मंडल के मन्त्रकारों मे कई ऋषि विश्वामित्र और वशिष्टवंशी हैं, पर इन दोनो ऋषियों के मंडल आगे आवेंगे। यह प्रकट है कि विश्वामित्र वाला तीसरा मंडल पहले मण्डल के कई मन्त्रों से प्राचीनतर है। एक स्थान पर इस मंडल में सामवेद के रथन्तर नामक मन्त्र का नाम आया है। वेद मन्त्रों के कई कथनों से उस समय की समाजसम्बन्धी उन्नति का भी कुछ पता लगता है। इस प्रकार के निम्नलिखित कथन इस मंडल में हैं:—

(१) आर्य्यों की पाँच मुख्य शाखाएँ थी, जिनके पूर्व पुरुषों के नाम यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्य और पुरु थे। महाभारत मे लिखा है कि ये पाँचों पुरुष राजा ययाति के पुत्र थे।

(२) आर्य्यों से ऐसे लोगों से युद्ध होते थे, जो वैदिक रीतियों को नहीं मानते थे। ये लोग दास, दस्यु सिम्यु आदि कहे गये हैं। ये धूम्र वर्ण के थे और उनके मुख्य मुख्य नेताओं के बड़े प्रभाव थे यहां तक कि उनमें से एक एक तक के सौ सौ किले थे, पर ये लोग आर्य्यों से प्रायः सदैव हारते थे। [illegible] पिप्रु, वृत्र, [illegible], और शम्बर के दुर्ग थे जिनको इन्द्र ने नष्ट किये। [illegible] मरने पर इसकी दोनो स्त्रियों ने विलाप [illegible] नहीं आई और उन्होंने ईश्वर को नहीं मनाया [illegible] डूब जाय। ऐसे समय में भी [illegible] ही दुष्ट और [illegible] होगा।

(३) जो दामाद बुरे होते थे वे धन खूब देते थे तब विवाह होता था (सूक्त न० १०९)।

(४) सौ पतवारों तक के जहाज़ होते थे। इससे समुद्र-यात्रा सिद्ध है।

(५) अग्नि द्वारा जंगलों को जला कर रहने योग्य स्थान बनाया जाता था। इससे विदित है कि उस समय देश जंगलों से पूर्ण था और आर्य्यों की बस्ती बढ़ती जाती थी।

(६) आर्य्यों में मत स्थिर करने के लिए सभाएँ होती थीं।

(७) घुड़दौड़ भी होती थी। इसका कई बार वर्णन आया है।

(८) इन्द्र दुर्गविमर्दक कहे गये हैं। रथों पर युद्ध होते थे। एक ऋचा में लिखा है कि जब देवता यज्ञों से प्रसन्न होकर राजाओं की सहायता करें और यह लोग युद्ध जीतें तब ऋत्विजों को भी लूट का भाग मिलना चाहिये। राजाओं और सेनाओं का वर्णन भी है।

(९) अश्वमेध प्रायः होता था। इसके विधानों का कुछ कथन घोड़े के वर्णन में मिलेगा।

(१०) साँप से काटे जाने पर अगस्त्य मुनि ने एक बार साबर-मन्त्र बनाया। कहते हैं कि इसके जपने से सर्प-दंशित मनुष्य अच्छा हो सकता है।

(११) नदियों का जहाँ कहीं वर्णन हुआ है वहाँ सात संख्या कही गई है, जिससे सतलज, व्यास, रावी, चनाब, झेलम, सिन्धु और सरस्वती नामक पंजाब की नदियों का बोध हो सकता है। विशेष कर के जहाँ नाम लिये गये हैं, वहाँ सिन्धु और सरस्वती के नाम आये हैं। एक स्थान पर सीफा नदी का भी कथन है। गंगा, यमुना, गोमती, गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा आदि का कहीं भी नाम इस मंडल में नहीं आया है। किसी किसी का कथन है कि सप्त सिन्धवः में गंगा और यमुना भी सम्मिलित हैं। डाक्टर राय चौधरी भी यही कहते हैं।

(१२) पूरी आयु १०० वर्ष की कही गई है। सूक्त न० ८९ में लिखा है कि हम पूरी आयु सौ वर्ष जिएँ, इसके बीच न मरें, इतने दिनों में मरें।

(१३) आर्य्य और दस्यु शब्द आये है पर इस मंडल में जाति-भेद का कथन नही है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आदि इस मंडल मे नही है, केवल एक मन्त्र मे वृहस्पति ब्रह्मणस्पति कहे गये हैं। असुर शब्द से सदा देवताओं का बोध कराया गया है।

(१४) इस मंडल मे असीमबल के देवताओं का वर्णन नही है, क्योंकि सामपान और मन्त्रो से उनके बल की वृद्धि होती है। ब्रह्मा एवं ईश्वर का नाम इस मंडल मे नही आया है। जल, नदी एवं नैसर्गिक पदार्थों मे यत्र तत्र देवभाव माना गया है।

(१५) एक स्थान पर लिखा है कि मै क्या हूं सो मैं नही जानता। इससे प्रकट है कि लोग उस समय दर्शन-सम्बन्धी विषयों पर भी विचार करने लगे थे। एक स्थान पर यह भी लिखा है कि पृथ्वी आकाश की उत्पत्ति अज्ञात है।

(१६) इस मंडल मे उपमाएँ उत्तमता सूचन में प्रायः बैल से दी जाती हैं। इन्द्र एवं विष्णु तक की उपमाएँ बैल से दी गई हैं। मेघों की उपमा गऊ एवं भैंसे से भी दी गई है, और सामपान में शीघ्रता-सूचक उपमा घोड़े से है।

उपर्युक्त कथनों मे एक प्रकार से ऋग्वेद के प्रथम मंडल की सूची दे दी गई है। जितनी नई बातों का कथन इस मंडल मे है वह सब विशेषतया यहाँ आ गया है, केवल ऊपर लिखे हुए मनुष्यों के विषय में जो छोटी छोटी दो चार बातें यत्र तत्र लिखी हैं उन सब का कथन यहाँ नही किया गया है, क्योंकि न तो वे कुछ रोचक ही हैं और न उनका कथन किसी और प्रकार आवश्यक समझ पड़ा। हम [illegible] मन्त्रों के अनुवाद उदाहरणार्थ आगे देंगे।

पाठकों को विदित हुआ होगा कि उपर्युक्त वर्णन में कोई विशेष चमत्कार नहीं है, और वेदों पर विशेष श्रद्धा न रखनेवालों के लिए यह बिलकुल साधारण कथन है, क्योंकि किसी प्रकार के गूढ़ भाव या [illegible] विचार साधारण पाठकों को इसमें न मिलेंगे। इसका मुख्य [illegible] यह है कि यदि धर्म-सम्बन्धी विचार छोड़ दिया जावे, तो [illegible] साधारण मनुष्यों को [illegible] होंगे। ये कथन विद्वानों को रुचिकर हैं और धर्म के अतिरिक्त, इनका मुख्य [illegible] प्रायः [illegible]

विषयो में ऐतिहासिक ज्ञान-वर्द्धन का है। वेदों के ध्यानपूर्वक पढ़ने से ही विदित हो सकता है कि संसार मे मानव शक्तियों का पतनोत्थान कैसे हुआ, और समाज, धर्म्म, विज्ञानादि सम्बन्धी विचारो ने संसार मे किस किस प्रकार से धीरे धीरे उन्नति पाई। जो लोग इन विषयो के ऐतिहासिक विस्तारो और आदिम विचारो से भी वेदो के विषयज्ञान का विशेष आदर नहीं करते, उनके लिये वेद भगवान् फीके हैं और यह वर्णन अवर्णनीय है।

उदाहरण

सूक्त नम्बर ४९ उषस् सम्बन्धी—हे उषस्! आकाश के तेजोमय उच्च प्रदेशो के ऊपर से आ। तुझे लाल घोड़े उसके घर को ले आवें जो सोम देता है। हे उषस् सुन्दरी! जिस सहारे से चलने वाले रथ पर तू सवार होती है उससे आज हे आकाश की पुत्री! तू बड़े सुयशी लोगो की सहायता कर। हे चमकीली उषस्! जब तेरे समय आते है, तब सब चौपाये और द्विपद चलते फिरते है और आकाश की सब दिशाओं से चारों ओर पंखदार पक्षीगण उड़ते है। सब जगमगाते प्रदेशों को उदय होते ही तू अपनी ज्योति की किरणो से चमकाती है। ऐसी जो तू है, उसे कण्ववंशियो ने प्रसन्नतापूर्वक धन प्राप्ति के लिये पुनीत गीतों से बुलाया है।

सूक्त नम्बर ७८ अग्नि सम्बन्धी—हे तीव्र और तुरगच्छक जातदेवस्! हम गौतम लोग पवित्र गीतो से तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते है।

ऐसी जो तू है, उसे धन की इच्छा से गौतम अपने गीत से पूजता है। हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं। ऐसे जात वेदस को जो सर्वोत्कृष्ट लूट जीतने वाला है, हम अङ्गिरस की भाँति बुलाते हैं, हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते है। तू वृत्र विनाशको मे सर्वश्रेष्ठ है और हमारे दस्यु शत्रुओ को भगाता है। हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं।

हम रहूगण के पुत्रो ने अग्नि के लिये एक सुखद गीत गाया है। हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं।

नाम विद्वान,	ऋग्वेद संहिता बी० सी० मे, कब से।	कब तक।	विवरण
मैक्स मुलर	१५००	१२००	मैक्समुलर ने पहले यही काल १२०० से ८०० बी० सी० तक माना था।
आर० सी० दत्त०	२०००	१४००	मैक्समुलर का पहला काल कथन यों था :— छन्दस १२००-१००० बी० सी० मन्त्र १००० ८०० ' ' ब्राह्मण ८००-६०० " " सूत्र ६००-२०० " " पाणिनि ३०० बी० सी० से पीछे के नही हैं।
हर्बर्ट यच गोवेन			छठी शताब्दी बी० सी० मे पाठ हुआ।
वेवर	१४००		सिन्ध नदी के देश मे आर्य १६ वी शताब्दी बी० सी० मे आये।
ह्विटनी वेनफ़े	१८३०	८६०	२००० बी० सी० से १५०० बी० सी० तक भी माना है।
यन्साइक्लो पीडिया ब्रिटेनिका	२०००	१५००	
जकोबी	४०००		इसे कई लोग सन्दिग्ध कहते हैं।
गाथ	२०००		
यफ मुलर	२०००	१५००	
हाग	२५००	१४००	
विल्सन	३५ ०		
बालगंगाधर तिलक	४०००	२५००	

[illegible] महाशय का मत:—जे हर्टेल (J. Hertel) के मत से [illegible] का समय ५५९ से ५२२ बी० सी० है, जो सिद्ध नहीं [illegible] है। [illegible] ५८३ बी० सी० तक का भी कथन प्रसिद्ध है। [illegible]

नहीं मानते है कि ईरानी तथा भारतीय आर्यो का साथ प्राय: २००० बी० सी० तक रहा। यह कथन भी असिद्ध है। पीक यही समय १७६० बी० सी० कहते हैं, किन्तु यह भी अनिश्चित समझा गया है। वैदिक ऋषियों में सबसे प्राचीन ध्रुव, पृथु वैन्य, चाक्षुष मनु, वेन, पुरूरवस, ययाति आदि है, और सब से नये खांडव दाह से बचे हुए जरितर, द्रोणादि चार ऋषि तथा युधिष्ठिर के समकालीन नारायण ऋषि। यदि वेन पृथु के पिता हों, तो वे पुराने निकलेंगे। यदि वेदर्षि ध्रुव उत्तानपादात्मज पुराने ध्रुव हों, तो यही प्राचीनतम वैदिक ऋषि निकलेंगे, किन्तु इनका वही ध्रुव होना अनिश्चित है। चाक्षुष मनु और पृथु वैन्य अवश्य प्राचीनतम प्राप्त वैदिक ऋषि है। यदि महाभारत का युद्ध ९५० बी० सी० के निकट पड़े, जैसा कि पार्जिटर का विचार है, तो ऋग्वेद का अन्ततम समय उसी काल पर आ जावेगा। रामचन्द्र के समय के बहुत से ऋषि हैं। यदि आर्य्यागमन का प्राचीनतम काल २६०० बी० सी० के लगभग माना जावे, जैसा कि कुछ का विचार है, तो स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत वश का भोगकाल ६०० वर्षो का मानने से प्राय: २००० बी० सी० तक बैठेगा। चाक्षुष मन्वन्तर का भोगकाल क्या था, सो अज्ञात है, किन्तु चाक्षुष मनु वेदर्षि है ही, और वैदिक समयारम्भ २००० बी० सी० के निकट मानने से यही समय चाक्षुष मनु का होगा, क्योंकि वे प्राचीनतम ऋषियो मे हैं।

प्राय: चौदहवी शताब्दी बी० सी० का जो सन्धिपत्र मेसोपोटैमिया मे मिला है, और जिसमे कुछ वैदिक देवताओ को नमस्कार लिखा है, उससे इतने प्राचीन समय मे उस दूरस्थ प्रान्त मे वैदिक विचारो की स्थापना मिलती है। यह सन्धि हिटीशिया तथा मितानी के बादशाहो मे हुई, और भारत से असम्बद्ध थी। फिर भी उसमे मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य को नमस्कार और उनकी वन्दना है। इससे वैदिक सभ्यता की प्राचीनता प्रकट है।

पडितो का मत है कि अथर्ववेद चला ऋग्वेद के ही समय से, किन्तु बनता बहुत पीछे तक रहा। यजुर्वेद ऋग्वेद के पीछे प्रारम्भ

होकर उसके बहुत पीछे तक बनता रहा। सामवेद में केवल ७२ मंत्र नये हैं, और शेष प्रायः १५०० ऋग्वेद से आये हैं। यजुर्वेद बुद्ध के पूर्व समाप्त हो चुका था, ऐसा सिद्ध है। गौतम बुद्ध के समय चारों वेद प्रस्तुत थे, तथा प्राचीन उपनिषदों के समय भी। जनमेजय को पुराण सुनाने वाले वैशपायन के भागिनेय और शिष्य याज्ञवल्क्य के समय ही यजुर्वेद पूर्ण होकर उसकी तैत्तिरीय और शुक्ल शाखाएँ भी स्थापित हुई।

सातवाँ अध्याय

प्रायः २०००—७०० बी० सी०

ऋग्वेद (शेष मंडल) तथा अन्य वेद ।

ऋग्वेद का पहला मंडल ऊपर कुछ विस्तार के साथ दिखलाया जा चुका है। अब शेष नवो मंडलो का कुछ दिग्दर्शन कराना है। जिस विस्तार के साथ पहले मंडल का हाल कहा गया है वैसा अन्यो के विषय मे कहने को इस ऐतिहासिक ग्रथ मे हमारे पास स्थान नहीं है। धार्मिक एवं अन्य विवरण इनके भी प्रायः वैसे ही है जैसे कि पहले के। इसलिए इन मंडलो से जितनी ऐतिहासिक सहायता मिलती है उसी का हाल संक्षेप रीति से हम यहाँ कहेगे।

ऋग्वेद—दूसरा मंडल

इसमे कुल मिलाकर केवल ४३ सूक्त है, जिनके ऋषि गृत्समद, सोमाहुत और कूर्म है। कूर्म गृत्समद के पुत्र थे। इनके केवल ३ सूक्त है और सोमाहुत के ४। शेष सभी सूक्त गृत्समद के है। इस मंडल मे अग्नि की प्रधानता है और जगती तथा त्रिष्टुप् छन्द है। गृत्समद के नाम पर यह गार्त्समद मंडल कहलाता है। आप हैहय वंशी (नं० ३७) राजा वीति होत्र के दत्तक पुत्र थे। इसमे उपमाएँ प्रथम मडल की अपेक्षा कुछ नयी आयी है। इस मंडल की मुख्य मुख्य घटनाएँ ये हैं—इन्द्र ने और्णवाभ, अर्बुद नामैल और वल को मारा, शम्बर को पहाड़ से निकाल कर उसका वध किया और रौहिन को आसमान पर चढ़ते देखकर मार डाला। इन्द्र ने दभीक, उरन शुष्मा, वेस, क्रवी, अश्न, अहि, वृकद्वार और सन्धिको के स्वामी को भी मारा। उर्जयन्ती एक राक्षसी थी। जातूष्ठिर आर्य्यो का सहायक था। इन्द्र ने दिवोदास के कारण शम्बरासुर के ९९ क़िलो को नष्ट किया तथा दस्यो के लौह किलों का भी तहस नहस कर दिया। उन्होने वल

के पहाड़ी क़िलों को ध्वस्त तथा चुमुरि और धुनि को चूर किया और वर्चित को पुत्रों और सहायकों सहित मारा। शम्बर के १०० क़िलों का भी ध्वस्त होना लिखा है। पणि का ख़ज़ाना कन्दराओं में छिपा हुआ था। उसे भी इन्द्र ने लूट लिया। इस मंडल में उपमाएँ बहुत हैं। नयी उपमाओं के उदाहरण में एक यह है कि दो चकवों की तरह आओ। सरस्वती उत्तम माता, उत्तम देवी और उत्तम नदी कही गयी है। गृत्समद महोत्र घराने के कहे गए हैं। ऊपर के वर्णन से विदित हुआ होगा कि दूसरा मंडल विशेषतया विजयों का वर्णन करता है। शम्बर के सम्बन्ध में (१९-६) दिवोदास का कथन है। गृत्समद (४१-१८,१७) शुनहोत्र वंश में उपजे थे।

ऋग्वेद—तीसरा मंडल

यह मंडल मुख्यतया विश्वामित्र का है। इनके अतिरिक्त ऋषभ (दो सूक्त), उत्कील (दो सूक्त), कठ (दो सूक्त), गाथिन् (चार सूक्त), देवश्रवस् और देवव्रात (१ सूक्त), और प्रजापति (४ सूक्त) भी १५ सूक्तों के ऋषि हैं। ये लोग विश्वामित्र के ही पिता, पुत्र और पौत्रों में थे। कुल मिलाकर ६२ सूक्त इस मंडल में हैं। वर्णन विशेषतया अग्नि और इन्द्र के हैं और जगती, गायत्री, तथा त्रिष्टुप छन्दों की प्रधानता है। इस में प्रथम दो मंडलों की अपेक्षा कुछ कुछ नयी उपमाएँ हैं और संख्या में भी बहुत हैं। इसमें वेदपाठियों का एक देवता कहा गया है। देवताओं की संख्या प्रायः ३३ कही जाती है, किन्तु यहां नवें सूक्त में वह बढ़कर ३३३९ हो गयी है। शायद इसी लिए यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि विश्वामित्र ने नए देवता बनाए। ५४-८ में तो भी आपने एकेश्वरवाद चलाया। ५५-१३ में कहा गया कि हे देवतात्मा! तुम सब भारत में निवास करो। सरस्वती और दृषद्वती का वर्णन [illegible] आया है। विश्वामित्र ने ([illegible]) अपने को कुशिक कहा और अग्नि को इन्द्र का पुत्र माना। सिंह की भांति गरजने की उपमा इस मंडल में आयी है। इस में शुतुद्रि (सतलज) और विपाशा (व्यास) नदियों का वर्णन आदर के साथ आया है और कहा गया है कि ये दो माताओं की भांति बहती हैं।

विश्वामित्र का वशिष्ठ से वैमनस्य था। एक बार वशिष्ठ के पुत्र शक्ति ने इन्हें अवाक् कर दिया। ऐसी दशा मे जमदग्नि ऋषि ने इन्हें ससरपरी अर्थात् भापण देवी को शक्ति दी। (५३-१४,१५) इस प्रकार इन्होने विश्वामित्र को वाक्ययुक्त करके साहस प्रदान किया। इस स्थान पर विश्वामित्र ने जमदग्नि की प्रशंसा और वशिष्ठ की निन्दा की है। (५३-२१) जो हमे घृणा करता है, वह सब के बल नीचे गिरे, तथा जिससे हम घृणा करते है उसके प्राण जावे। यह मडल बड़ा ही मनोरजक और इतिहास के लिए सहायक है। जगत-प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र विश्वामित्र ने इसी मण्डल मे कहा। आप राजा सुदास के साथ थे। इन्होने भरतों का बहुत वर्णन किया (५३-११,१२) और शर्यात का भी नाम कहा है। जहाँ पर कहा गया है कि विश्वामित्र वाले मन्त्रो के गान से भरतो का वश प्रसन्न रहेगा, वही पर सुदास का भी नाम आया है। भोज लोग सुदास के खानदानी थे। कीकट लोग अवध और दक्षिण बिहार के निवासी अपूजक (५३-१४) थे। प्रमदगंड उनका राजा था। विश्वामित्र ने यह भी कहा है कि तुम्हारा धन जह्नु घराने के साथ (५८-३) है। पुराणों से ज्ञात होता है कि विश्वामित्र जह्नु के वंशधर थे। प्रथम मण्डल के (११६-१९) मे आया है कि जह्नुवशी आश्विनो के पूजक थे।

इन्द्र के बल-प्रकाश मे इस मडल मे विशेषतया कुनार और अहि का बध लिखा है। कहा गया है 'हे इन्द्र! तुम राक्षसो के वंश को निर्मूल कर दो।" कुनार राक्षस के हाथ न थे। वह वृत्रासुर की माता दनु के साथ रहता था। इन्द्र ने जव अहि को मारा तव वह पानी के पास छिपा था। (३३-११, १२) भारत लोग पंजाबी नदियो के पार गये। विश्वामित्र ने नदी रोकी। जव वे सुदास के साथ थे (५३-९) तव कौशिक द्वारा इन्द्र प्रसन्न हुये। (५३-११, १२) सुदास पूर्व, पश्चिम और उत्तर जीते तथा अच्छी जगहों पर पूजा करे। विश्वामित्र की यह विनती भारत वंश को बचाती है।

पुराणों द्वारा विदित होता है कि परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि विश्वामित्र के भाँजे थे। इस मण्डल मे जमदग्नि का नाम कई बार आने और उनके द्वारा विश्वामित्र की मदद होने से इस पौराणिक

गाथा को सहायता मिलती है। पुराणों में यह भी लिखा है कि सुदास के पुत्र कल्मापपाद द्वारा विश्वामित्र ने वशिष्ठ के पुत्र शक्ति को मरवा डाला। शक्ति से विश्वामित्र की घोर शत्रुता इस मण्डल में लिखी है।

ऋग्वेद—चौथा मंडल

इस मण्डल में ५८ सूक्त हैं जिनके ऋषि विशेपतया गौतम पुत्र वामदेव है। इनके अतिरिक्त त्रसदस्यु (१), पुरमील्ह और अजमील्ह (२) ने केवल तीन सूक्त बनाए। देवताओ मे इन्द्र और अग्नि की प्रधानता है। छन्द विशेपतया गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती आए हैं। इस मण्डल मे रुद्र मनुष्य घातक कहे गए हैं और लिखा है कि अग्नि ने अन्धे मामतेय (४-११, १३) के दुःख दूर किए। इन्द्र ने मृगय और पिप्रु के ५०, ००० सहायकों, वॅम, तथा सरजू के किनारे अर्ण और चित्ररथ को मारा। ये दोनो आर्य्य राजे थे और सरजू नदी पार रहते थे। इन्द्र ने अहि को मार कर सातो नदियाँ खोल दी। शम्बर कुलीतर का लड़का था। इस मण्डल मे सहदेव, सोमक, कुत्स, परुशनी (रावी नदी) और कवच के वर्णन आए हे। राजा पुरु और त्रसदस्यु के वर्णन हैं और सीता की पूजा (५७-६) लिखी है। त्रसदस्यु ने पौरवो का कुञ्ज दिया (३८-१)। (४२-१८, ९) दुर्गह का पुत्र पुरुकुत्स कैद मे था, तब उसका पुत्र त्रसदस्यु उत्पन्न हुआ। त्रसदस्यु अपने को भारा राजा कहता है। वह शत्रुओ का जेता अर्द्ध देव था।

१५, ४, ८. ९. सृंजय देववान के पुत्र थे। सहदेव के पुत्र सोमक ने वामदेव को दो घोड़े दिए।

१६, १३, विदथिन के पुत्र ऋजिश्वन ने मृगय और पिप्रु को जीता।

ग्रिफिथ के नोट, २५...४, मे है कि वामदेव भारत थे।

२६, ३, दिवोदास अतिथिग्व ने शम्बर के ९९ दुर्ग तोड़े। ३०, १४, १५, शम्बर कुलीतर का पुत्र था। वर्चिन के एक लाख पांच सौ वीर मारे गए।

३०, १८ से २१ तक तुर्वश और यदु इन्द्र ने बचाए गए, तथा आर्य अर्ण और चित्ररथ सरयू के किनारे मारे गए। दिवोदास ने

पत्थर के सौ क़िले तोड़े, तथा ३०००० दासों को मारा। यह कार्य दभीति ऋषि की सहायता से हुआ।

५४, १, मनु के वंशधरों ने सवितार से धन पाया।

ऋग्वेद—पाँचवाँ मंडल

इसमे ८७ सूक्त है। इसके ऋषि कई अत्रिवंशी हैं, जिन मे से कुछ के नाम निम्नानुसार हैं:— बुध और गविष्ठिर (१), गय (२), सुतंभर, (४), पुरु (२), वव्रि (१), त्र्यरुण, त्रसदस्यु और अश्वमेध या अत्रि (१), सम्वरण (२), अत्रि भौम (८), स्यावास्व (१३), अर्चनानस (२), रातहव्य (२), बाहवृक्त (२), पौर (२), सत्यश्रवस् (२), और यवयामरुत (१)। इस मण्डल मे विशेषतया अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस्, मरुत, मित्रावरुण और आश्विन के वर्णन है। अग्नि ने शुनःशेप का बचाया। अग्नि उत्पत्ति के समय वरुण है, जब जलाई जाती है तब मित्र होती है और आहुति के समय इन्द्र। रोदसी मरुत् की माता और रुद्र को स्त्री और कही कही मरुत् की भी स्त्री कही गई है। इस मंडल मे पृथ्वी का घूमना (८४-२) लिखा है। पुरुमीढ़ एक अच्छे ऋषि थे। सुचद्रथ के पुत्र सुनीथ थे। भरतो का वर्णन इस मे आया है। इन्द्र ने नमुचि को मारा। अत्रि उसिज के पुत्र कक्षीवान के पुरोहित थे। मनु ने विससिप्र को जीता। परुष्णी (रावी नदी) का नाम इस मण्डल मे आया है। परावत लोग परुष्णी नदी के किनारे रहते थे। ये आर्य्य समझ पड़ते हैं, क्योकि इन्होने ऋषियो को वहुत दान दिया। (देखिये आठवां मंडल)। कहा गया है कि यमुना नदी (५२-१७) के किनारे मुझे वहुत सी गाएँ मिली। इस बात से आर्यों का उस काल उस नदी तक पहुँचना सिद्ध है। काबुल नदी को उस काल कुभा कहते थे। सरजू (५३-९) नदी का भी नाम आया है। यह अवध में है, किन्तु पजाब मे भी इस नाम की एक नदी थी। इस मण्डल मे यह विदित नही होता कि कवि पंजाव के विषय मे कहता है या अवध के। इसमें छन्द विशेषतया त्रिष्टुप्, गायत्री, अनुष्टुप्, जगती और अतिजगती हैं। (२-३०) १००० गौवो के कारण शुनःशेप बँधे थे जिन्हे अग्नि ने छोड़ाया।

(११-१) भारत पवित्र हैं तथा (१२-६) नाहुष भले। (२७) त्रियरुण त्रिविषन के पुत्र थे। त्रसदस्यु अच्छे राजा थे। (२९-११) विदथिन के पुत्र रिजिश्वन ने पिप्रु को जीता। पुरकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु (३३-८) ने संवरण ऋषि का १० घोड़े दिये। (३३-२९, ३०) लक्ष्मण के पुत्र ध्वन्य तथा मारुताश्व ने भी संवरण ऋषि को घोड़े दिये। (४०-५) स्वर्भानु ने सूर्य को अन्धकार से भेद दिया। यही पीछे राहु हुआ। (४५-६) मनु ने विशिशिपु को जीता। (१४-५) च्यवन बूढ़े से जवान हुये।

ऋग्वेद—छठवाँ मण्डल

इसमें ७५ सूक्त हैं जो मुख्यतया भरद्वाज कृत हैं। कवियों का लेखा निम्नानुसार है:—भरद्वाज (४३), भरद्वाज या वीत हव्य (१३), सुहोत्र (२), शुनहोत्र (२), नर (२), शम्य (४), गर्ग (१), रिजिश्वन (४), और पायु (१)। इसमें छन्द मुख्यतया त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती और गायत्री हैं। इस मंडल में विशेषतया अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस्, पूषन, उषस् और मरुत के वर्णन हैं। एक सूक्त में गौओं का कथन है किन्तु पूजनात्मक नहीं। केवल इतना कहा गया है कि वे वध स्थान को कभी नहीं ले जायी जातीं और कवि ने यह भी कहा है कि मुझको वे भग, सोम और इन्द्र समझ पड़ती हैं। इससे प्रकट है कि सब लोग इन्हें पूजते नहीं थे, किन्तु यह कवि पूज्य दृष्टि से देखना चाहता था। अतः इस काल तक गो-पूजन स्थापित न [illegible] था, किन्तु अथर्ववेद के समय तक स्थापित था। इस मण्डल में मुख्य घटनाएं निम्नानुसार हैं:—अग्नि पर [illegible] था। भरत और देवदास के नाम आए हैं। [illegible] ने अग्नि को [illegible] और उनके पुत्र दधीच ने [illegible]। [illegible] शत्रु के दुर्ग थे जिन्हें इन्द्र ने नष्ट किया। [illegible] [illegible] है। [illegible] और [illegible] इन्द्र ने [illegible] [illegible]। [illegible] और [illegible] [illegible] इन्द्र ने [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] इन्द्र [illegible]

की सहायता की तथा राजा तुज और देवदास को बल प्रदान किया और प्रथीनस को कन्यारत्न दी। देववाढ के पुत्र अभ्यावर्तिन् चायमान को इन्द्र ने जिताया तथा वार्षिक को हराया और वृचनों को मारा। अभ्यावर्तिन् चायमान पृथु के वंशज थे। इन्द्र यदु और तुर्वश को दूर से ले आए। इस मण्डल मे गंगा तट का वर्णन आया है और राजा ऋत्तो, दत्त, द्रुह्यु और पुरु के नाम है। शम्बर के किले पहाड़ पर थे। नहुष वशी पराक्रमी कहे गए हैं। इस मण्डल मे भी सरस्वती और पजाब की अन्य नदियो के नाम आये है। इस मण्डल से कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनायें मिलती है। १५...२, वीतहव्य अग्नि की प्रशसा करते हैं (१५-३) वीतहव्य और भरद्वाज को धन दो। इससे इन दोनों का समकालीन होना प्रकट है। वीतहव्य हैहयवंशी नरेश, ३७, थे जो पीछे भरद्वाज के साथी ऋषि हो गए। १६,४.५,१९,४,५, भारतों की अग्नि का कथन है। अग्नि ने दिवोदास को वर दिए। दिवोदास भरद्वाज को दान करते थे। भारतों की खोज की गई, १७,८,१४, भरद्वाज को वीर आश्रयदाता दो। प्रतर्दन का कथन २२,१०, नाहुषो के अस्त्र प्रवल हो, २६,५ शम्वर को मार कर देवता ने दिवोदास की सहायता की।

२७,५ से ८ तक दैववात अभ्यावर्तिन चायमान ने यव्यावती नदी पर वृचीवनो को हराया तथा सृंजय को तुर्वश (देश) दिया। चायमान ने २० घोड़े तथा दासियाँ भरद्वाज को दी। चायमान पृथु वंशी थे।

३१,४, इन्द्र ने दिवोदास को सहायता करते हुए शम्वर के १०० (४३,१) क़िले तोड़े। दिवोदास ने भरद्वाज को अमीर किया।

४५,१. गंगानदी का कथन।

४८.२१ से २५ तक, पानी के निकट दिवोदास ने वर्चिन और शम्वर नामक दासो को मारा। प्रस्तोक ने दान दिया। दिवोदास अतिथिग्व ने शम्वर के धन से भरद्वाज को दान दिया। अशाथ ने पायु को दिया। सृंजय के पुत्रों ने भरद्वाजो का मान किया।

५०,१५ भरद्वाज के पुत्र वेदर्पि थे।

६३.३, वध्रश्व दिवोदास के पिता थे।

इस प्रकार इस मण्डल से दिवोदास सृंजय, प्रस्तोक, तथा अभ्यावर्तिन चायमान भरद्वाज के समकालीन सिद्ध होते हैं। ये भरद्वाज भरत के पुत्र विदथिन भरद्वाज से पृथक थे, क्योंकि भारतों, (भरतवंशियों) की आप प्रशंसा प्रायः करते हैं, और उन्हें अपना आश्रयदाता सा मानते हैं। इनके कथनों से भारत लोग इन्हीं के वंशज नहीं सिद्ध होते। भरत और दिवोदास में पीढ़ियों का भी अंतर काफी है। यही भरद्वाज रामायण के अनुसार प्रयाग में राम और भरत से मिलते हैं।

ऋग्वेद—सातवां मण्डल

इसमें १०४ सूक्त हैं। इनमें से २९ के ऋषि मैत्रावरुणि वशिष्ठ कहे गए हैं और शेष के वशिष्ठ। इनमें से एक के ऋषि वशिष्ठ और शक्ति दोनों हैं और एक अन्य के वशिष्ठ तथा उनके पुत्र। देवताओं में यहाँ अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस्, मित्र, सूर्य. आश्विन. उषस्, सरस्वती और विष्णु की प्रधानता है तथा सुदास की महिमा बहुत गायी गयी है। छन्दों में त्रिष्टुप्, बृहती, जगती तथा गायत्री की मुख्यता है। मुख्य घटनाओं में निम्न बातें आयी हैं :—जरूथ को अग्नि ने जलाया तथा नहुष वशियों को हराकर उन्हें सुदास को कर देने पर बाध्य किया। सुदास ने नदियों के पार होकर सिम्यु लोगों को हराया। विजय के लिये परमोत्सुक तुर्वश पुरोदास, भृगु लोग और द्रुह्यु लोगों ने सुदास की आज्ञा मानी। पक्थ, भलान, अलिन, शिव और विषाण लोगों ने तृत्सुओं के नेता सुदास का सामना किया किन्तु उन्हें बहुत जल्द भागना पड़ा। सुदास ने २१ जातियों के वैकर्ण लोगों को पराजित किया। सुदास के वैरियों ने नदी से एक नहर निकालकर उसे पार करना चाहा, किन्तु वे नदी में डूब गए। इन डूबने वालों में कवष और द्रुह्यु वंशी भी थे। भृगु, द्रुह्यु, तुर्वश आदि ने परुष्णी नदी को पारकर उस नदी के दो टुकड़े करके सुदास पर धावा [illegible] किन्तु वे स्वयं डूब गए। सुदास की सहायता तो बहुत से [illegible] उसने वैरियों के ७ किले तोड़े और अनु के धनों [illegible] अनु और द्रुह्यु जातियों के ६००० योद्धा [illegible] को दिया। अनु और द्रुह्यु [illegible] पुरुष मारे गए, किन्तु पुरुष भी नहीं हारे। [illegible]

लूट लिया गया। यमुना के किनारे सुदास ने भेद का सब खजाना लूटा और उसे प्रजा बना लिया। युध्यामधि को सुदास ने अपने हाथ से मारा। दस राजाओं से युद्ध करने मे इन्द्र ने सुदास की सहायता की। राजा वर्चिन के एक लाख आदमी युद्ध मे मारे गए। विष्णु ने राजा मनु को यह पृथ्वी दी। अज, सिगरु और चत्तु ने सुदास को कर दिया। पराशर, वशिष्ठ और सत्ययात को सुदास ने बहुत सा दान दिया। सुदास के पिता दिवोदास थे।

इन्द्र ने अर्जुन के वशज कुत्स की सहायता करके कुयव और सुस्न को जीता। पराशर, वशिष्ठ और सत्ययात सुदास के नौकर कहे गए है। आर्य्य राजा पासद्युम्न सुदास के समकालिक थे। सिमदा एक राक्षसी का नाम था। दीर्घक्रावसा घुड़दौड़ के घोड़े को कहते थे। शाल्मली रेशमी रुई का पेड़ कहा गया है। इससे सेमल का प्रयोजन है। कहते है कि वशिष्ठ छोटे से छोटे देवता को भी कभी नही भुलावेगे। सूर्य्य के घोड़ो मे से एक का नाम इतस है। उषस् आकाश की पुत्री है। आर्य्यों की पाँच शाखाएँ कही गयी हैं। जो दस राजे सुदास से हारे थे वे पूजन न करते थे। वशिष्ठ समुद्र मे नाव पर चलना पसन्द करते थे। इसी दशा मे वरुण ने उन्हे ऋषि बनाया। नहुष और सरस्वती नदी के नाम आए है। पुरुवंशी सरस्वती नदी के दोना किनारो पर रहते थे। जमदग्नि का नाम प्रशंसा से लिया गया है। इससे प्रकट है कि यद्यपि जमदग्नि विश्वामित्र के सहायक थे, तथापि उन्होने कोई बुरा बर्ताव कभी नही किया, जिससे विश्वामित्र के शत्रु वशिष्ठ भी उनसे प्रसन्न रहे। राक्षस के अर्थ मे यातुधान शब्द आया है और दस्यु लोग जादूगर तथा बेईमान कहे गए है। वशिष्ठ ने विश्वामित्र का नाम लेकर कभी उनकी बुराई नहीं की, किन्तु अपने द्वेषियो का इस प्रकार वर्णन किया जिससे विश्वामित्र का अभिप्राय समझ पड़ता है।

इस मण्डल से प्रकट होता है कि वशिष्ठ के समय मे आर्य्य लोग सरस्वती नदी के पूर्व भी थे और उनकी सख्या ऐसी बढ़ चुकी थी कि उनमे आपस मे भी भारी युद्ध होने लगे थे। राजा पुरूरवस का राजस्थान प्रयाग के निकट प्रतिष्ठानपुर था, किन्तु सुदास के युद्ध के

को एक घोड़ा दिया। इन्द्र अनुवंशियों, तुर्वश तथा राजा रुम पर भी कृपा करते थे। तुर्वश और यदु की प्रशंसा योग्य है। पज्र और कण्व से शत्रुता थी। राजा कुरंग का नाम आया है। सुदेव एक बड़े भक्त थे। तुग्रपुत्र भुज्यु को अश्विनीकुमारों ने बचाया। चेदि पुत्र कसु ने कवि को १०० भैंसें और दस हज़ार गाएँ दीं। चेदि लोग बड़े उदार थे। नहुपवंशियों के अच्छे अच्छे घोड़े थे। सरयानीवान कुरुक्षेत्र में एक झील थी। पर्श और तिरिन्दिर के पास के नाम आये हैं। कुकुर लोग यादवों के समान थे। उन्होंने भैंसें दान दिये। यश और दशव्रज को त्रसदस्यु ने सहायता दी। अथर्वण एक ऋषि थे। कक्षीवान और दीर्घतमा नामक ऋषियों के नाम आए हैं। वेन पुत्र पृथु का वर्णन है। आयु पुरुरवा के पुत्र थे। प्रदाकु साम यज्ञ करने वाला था। क्रिवि पञ्जाब के युद्धकर्ता थे। पांचालों में भी इनका होना कहा गया है। चिनाब नदी के चन्द्रभागा और असिक्नी भी नाम थे। पक्थ, अधिग्र, बभ्रु और चित्र राजा थे। व्यास्व एक ऋषि थे। गोमती नदी का नाम आया है (२५, ३०)। दक्ष के पुत्रों का कथन है। उक्षतयान, हरयान, और सुपामन को एक एक घोड़ा मिला।

इस मण्डल में ३३ देवताओं के नाम आए हैं। इन्द्र ने अनर्शनि, श्रीविन्दु, पिप्रु और ऊर्णवाभ को मारा। पारावत एक वंश था जिसने ऋषियों को खूब दान दिया। युवनाश्व पुत्र मान्धाता का (३९-८) नाम दस्युवों के मारने में आया है। एक मान्धाता राजा थे और दूसरे ऋषि। ४९ वें सूक्त की तीसरी ऋचा में स्पष्ट [illegible] जहाज़ का कथन हुआ है। दास बल्बूथ एक दानी और [illegible] पृथुश्रवा के साथी थे। मनु का वर्णन पितामह रूप से हुआ है। सूक्त ५६ की पहली ऋचा में राजपुत्रों का [illegible] कहा है। [illegible] के विषय में लिखा है कि वे बाज़ की तरह उड़ गए। भृगुवंश ने गंगा नदी के किनारे यज्ञ किया। इस मण्डल में जहाज़ का वर्णन कई बार आया है। एक स्थान पर लिखा है कि जैसे समुद्र की लहरें [illegible] थपेड़े लगाती हैं, इस प्रकार [illegible] कोई भय न लगावे। [illegible] और उनके पुत्र [illegible] के [illegible] थे। [illegible] नेट की [illegible] थी। इन्द्र [illegible] स्थानों पर [illegible] है। [illegible]

दस देश कहे गए हैं। शिष्ट लोगों का वर्णन आया है। सूक्त नं० २७ से ३२ तक वैवस्वत मनु के रचे हुए है। इन में कोई ऐसा वर्णन नहीं है कि जो मनुओं के विषय मे पौराणिक कथनों के प्रतिकूल हो। (४-१) इन्द्र मुख्यतया आनवों और तुर्वशों के साथ हैं। (९-१०) कण्व वंशी दीर्घतमस पूर्व कालीन कहे गये हैं। (१०-५) द्रुह्यु, अनु, यदु और तुर्वश के नाम इन्हीं वंशा के लिये आये हैं। (१९-३६, २७ ७; ३६-७) पुरकुत्सात्मज त्रसदस्यु ने सोभरि ऋषि को ५० दासियां दीं। त्रसदस्यु के पुत्र तृक्षि थे। त्रसदस्यु विजयी तथा दानी थे।

ऋग्वेद—नवाँ मण्डल

इसमे ११४ सूक्त है जिनके ऋषियो से मुख्य निम्नानुसार हैः—मधुच्छन्दा, मेधातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, असित, कुत्स, देवल, विन्दु, गोतम, रहूगण, कवि, उचथ्य, अवत्सार, काश्यप, भृगु, भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, पवित्र, रेणु, ऋषभ, हरिमन्त, कक्षीवान, वसु, प्रजापति, वेन, उशना, कण्व, प्रस्कण्व, उपमन्यु, व्याघ्रपाद, वशिष्ठ-शक्ति, पराशर, अम्बरीष, ऋजिश्वन, ययाति, नहुष, मनु, नारद, शिखण्डी, अग्नि, चाक्षुषमनु, प्रतर्दन, और शिशु। इन सब मे रहूगण, वेन, उपमन्यु, अम्बरीष, ययाति, नहुष और चाक्षुपमनु की कई कारणो से मुख्यता समझनी चाहिये। इस मंडल भर मे प्रायः सब ऋचाएँ सोम पवमान ही के विषय मे है, केवल एक मे आप्रिय का वर्णन है और दो मे सोम पवमान के साथ कुछ और देवताओ का भी कथन है। ६७ वें सूक्त मे विद्यार्थियो की भी प्रशंसा की गयी है। छन्दों मे ६७ सूक्त पर्य्यन्त गायत्री ही चलती है। इसके पीछे जगती, त्रिष्टुप् और उष्णिक् भी आए है। नई उपमाएँ ५० वे सूक्त मे बहुत हैं। इस मंडल की मुख्य घटनाओं का हाल सक्षेपतया नीचे लिखा जाता हैः—ध्वस्र और पुरुपान्ति दानी राजा थे। सोम पवमान ने दिवोदास के कारण यदु, तुर्वश और शम्बर को (६१-२)मारा। जैसा कि आठवें मण्डल मे यदु, तुर्वश आदि के नाम उन के वंशधरो के लिये आये हैं, वही हाल यहां

भी समझ पड़ता है. क्योंकि ये दोनो दिवोदास से बहुत पहले हुये थे। इस मंडल में जमदग्नि वंशियो का वर्णन बहुत है और च्यवन ऋषि का नाम बहुतायत से आया है। उत्तर पश्चिम मे आर्जीक नाम्नी एक अनार्य्य जाति रहती थी। उशना बड़े बुद्धिमान कहे गये हैं। पेदु के घोड़े ने बहुत से नागो को मारा। इस मंडल मे सिंह, धनुष और सप्तर्षि के वर्णन आये हैं। मख एक राक्षस था। दधीचि अथर्वण के पुत्र थे। अथर्वण ने सब से पहले अग्नि पायी और उसे सोमपान कराया। ब्राह्मण पूजा करने वालो को ढूंढ़ता है। चाक्षुष मनु के वेदर्षि होने से प्रकट है कि चाक्षुष मन्वतर मे वैदिक ऋचायें बन चली थीं।

ऋग्वेद—दसवाँ मण्डल

इसमे १९१ सूक्त हैं जिनके प्रधान ऋषियो का ब्योरा निम्नानुसार है:–त्रित, त्रिशिरा, सिन्धुद्वीप, यम, यमी, बृहदुक्थ, हविर्धान, विवस्वान्, शंख, दमन, देवश्रवा, च्यवन, विमद, वसुक्र [illegible], कवष, अक्ष, लुश, घोषा, कृष्ण, इन्द्र, वैकुण्ठ, गौपायन लोग और उनकी माता, गय, अयास्य, सुमित्र, बृहस्पति, अदिति, [illegible], जरत्कर्ण, विश्वकर्मा, मन्यु, सूर्या इन्द्र, इन्द्राणी, वृषाकपि [illegible], रेणु, नारायण, अरुण, शार्यात, तान्व, अर्बुद, पुरूरवा, उर्वशी, देवापि, वम्र, बुध, मुद्गल, अप्रतिरथ, अष्टक, दक्षिणा, दिव्य, सरमा, पणि, जुहू, जमदग्नि या राम, भिक्षु, लव, हिरण्यगर्भ, [illegible], वाक, कुशिक या रात्रि, प्रजापति, परमेष्ठी, [illegible], [illegible], मान्धातार, गोधा, कुमार, सप्तमुनि (जूति, वात जूति, विप्रजूति, [illegible], एतश, करिक्रत, ऋष्य शृंग) सर्प, अंग, [illegible], अग्नि तापस, जरितर, द्रोण, सारिसृक्व, [illegible], ऊर्ध्वकृशन, पृथु वैन्य, [illegible], [illegible], पौलोमी, [illegible], प्रचेतस, कपोत, ऋषभ, [illegible], अनिल, शबर, विभ्राट्, [illegible], [illegible], शिवि, प्रतर्दन, वसुमनस, [illegible], [illegible] और [illegible]। [illegible] और [illegible] के नाम आये हैं। [illegible]

का प्रयोजन हो, क्योंकि वहाँ जमदग्नि या राम लिखा है। वेदर्षि जरितर, द्रोण, सारीसृक और स्तम्बमित्र शार्ङ्गी शूद्रा से उत्पन्न मन्दपाल ब्राह्मण के वे पुत्र थे जो अर्जुन के खाण्डव दाह से बचे थे। पुरुष सूक्त (न० ९०) के ऋषि नारायण ने नारद को वासुदेव का ऐश्वर भाव बतलाया। उसे नारद से जान कर व्यास ने युधिष्ठिर से कहा (शान्ति पर्व)। इस प्रकार वेद के ये भाग महाभारत काल के पड़ते है। इन ऋषियो मे कई प्रसिद्ध राजा अथवा महापुरुष है, यथा विवस्वान्, गय, अदिति, पुरुरवा, देवापि, राम, लव, कुशिक, सुदास, मान्धाता, पृथु, केतु, ऋषभ, चाक्षुष मनु, ध्रुव, शिवि आदि। ऋषियो मे कई देवताओ के भी नाम आये है जैसे इन्द्र, अग्नि आदि। अग्नि, प्रजापति विश्वकर्मा आदि देवताओ के नाम अवश्य हैं, किन्तु समझ पड़ता है कि इन्हीं नामों के मनुष्य भी थे। ध्रुव भी एक वेदर्षि जान पड़ता है। यह ध्रुव नाम के प्रसिद्ध राजा हो सकते है। कई स्त्रियाँ भी वेदर्षि है। प्राचीनतम वेदर्षियो मे वेन, ध्रुव और पृथु-वैन्य है।

इस मंडल के देवताओ मे अग्नि, इन्द्र, यम, पितर, जल, गय, विश्वेदेवस्, बृहस्पति, विश्वकर्मा, सूर्य्य आदि की प्रधानता है। देवताओ के अतिरिक्त इसमे कई अन्य विषयो पर भी सूक्त है, यथा जल, पितृ, मृत्यु, गाय, पांसा, खेती, जीवात्मा, सुबन्धु का पुनर्जीवन, हाथ, सावर्ण्य की उदारता, ज्ञान, देवता लोग, नदियाँ, दबाने का पत्थर, सूर्या के विवाह पर आशीर्वाद, पुरुष, उर्वशी-पुरुरवा, इन्द्र के घोड़े, वनौषधि, गदा, सरमा, पनिस, उदारता, वेन, वायु, रात्रि, जगदुत्पत्ति, केशी, प्रतिद्वन्दी (हाड़ करने वाले) का हराना, सपत्नीबाधन, अरण्य, श्रद्धा, नवजीवन, दुर्भाग्य निराकरण, पौलोमी, क्षयीरोग निराकरण, गर्भपात से बचाव, दुःस्वप्नो से बचाव, गोगण, उषा, राजा, माया भेद, तार्क्ष्य, यज्ञकर्त्ता और उसकी स्त्री के गर्भ को आशीर्वाद, अदिति और मेल। इतने विषयो का वर्णन होने से प्रकट होता है कि यह मंडल बहुत ही गम्भीर और सांसारिक सभ्यता की ऐतिहासिक उन्नति जानने मे परमोपयोगी है। इस एक मंडल के पढ़ने से विविध विषयो पर वैदिक विचारो का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

इस में व्यवहृत मुख्य छन्द निम्नानुसार हैं:—त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती, अनुष्टुप्, आस्तार पंक्ति, प्रस्तार पंक्ति, उष्णिक्, महापंक्ति, बृहती और द्विपदीविराट्।

यम यमी भाई बहन थी। कुछ योरोपीय पण्डितों का विचार है कि स्त्री पुरुष का यह पहला जोड़ा था, किन्तु इनकी बातचीत ही से प्रकट होता है कि संसार में अन्य पुरुष भी थे। यमी ने यम के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। इस पर यम ने उत्तर दिया कि वह बहिन के साथ विवाह करना उचित नहीं समझता और इसलिये यमी को उचित है कि वह किसी और को अपना हृदय प्रदान करे और प्रीति भाजन बनावे। जान पड़ता है कि यह उस काल का वर्णन है कि जब तक भाई बहनों में विवाह का निषेध तो नहीं हुआ था किन्तु निषेधात्मक विचार उठने लगे थे। यम ने यमी के विचारों को लज्जाहीन न कहकर उनमें केवल अपनी असम्मति प्रकट की और कहा कि लोग इसे पातक समझते हैं। किसी सूर्या का विवाह इस मंडल में लिखा है। यमी भी सूर्य्य की कन्या होने से सूर्य्या कही जा सकती थी।

इस मंडल में घटनाओं का वर्णन बहुतायत से आया है। विवाह एवं मृत्यु के कथन आये हैं और कहा गया है कि मरने के पीछे मनुष्य यम के यहाँ जाता है। कहा गया है कि हमारे चारों ओर दस्यु लोग रहते हैं जो यज्ञादिक नहीं करते और पृथक धर्मों पर चलते हैं। इस मंडल में मित्र का वर्णन कई बार आया है। कुरुश्रवण एक राजा था जिसने त्रसदस्यु के पौत्र कुरुश्रवण को हराया। दिवोदास के मुकाबले में शांबर लोग मारे गये। साप्य ने दिवोदास की सहायता की। श्रुतर्वण ने मृगय और साप्य को हराया। [illegible] देवगापा ने अग्नि की पूजा की। उशीनर लोग मध्यदेश में रहते थे। इक्ष्वाकु एक राजा और मनु बड़े दानी थे। यदु और तुर्वश ने दो दास मार दिये। ययाति नहुष के पुत्र थे। गंगा, यमुना का वर्णन आया है और पञ्जाब की नदियों का भी। बैल गाड़ी में आते जाते थे और खेती से अन्न पैदा करते थे। ९० वें सूक्त में ईश्वर के मुख, भुजा, जंघा और पैर से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति कही गयी है।

चन्द्रमा ईश्वर के मन से निकला। समझ पड़ता है कि ऋग्वेद के समय मे जाति भेद कर्म से था, किन्तु यजुर्वेद के समय वह जन्म से माना जाने लगा। पुरुषसूक्त नारायण ऋषि का है। यह अच्छे कवि समझ पड़ते है। दुःसीम, प्रार्थिवान्, वेन, राम और तान्वापार्थ्य यज्ञकर्त्ता कहे गये है। सम्भव है कि यह राम वही दशरथ पुत्र प्रसिद्ध राम हों। पुरूरवा की स्त्री उर्वशी थी। राजा उसको अधिक प्यार करते थे किन्तु उसे परवाह न थी। यह मनुष्य थे और वह अप्सरा। उर्वशी ने कहा कि स्त्री पूरा प्रेम नहीं कर सकती और अपने विषय मे कहा, "मै हवा के समान उड़ती हूँ सो मेरा पकड़ना कठिन है।" उर्वशी की ये बाते स्त्री जाति के विषय में वैदिक सम्मति प्रकट नहीं करती। उर्वशी स्वयं प्रेमहीना थी और इसीलिये सभी स्त्रियो को ऐसी समझती थी। पुरूरवा इला के पुत्र थे। इस मडल मे स्वर्ग का वर्णन आया है। शान्तनु को देवापि ने यज्ञ कराया। भारत वाले शान्तनु के देवापि भाई थे और इन दोनों के पिता प्रतीप थे, किन्तु वैदिक देवापि के पिता ऋषत्सेन लिखे हैं। जान पड़ता है कि थोड़े ही काल राज्य करने अथवा पिता के आगे मरने से इनका नाम महाभारत से छूट गया। यह भी सम्भव है कि देवापि के ब्राह्मण होने मे ऋषत्सेन उनके दत्तक पिता बने हो।

इस मंडल मे जल के विषय मे एक अच्छा सूक्त है। उसमे जल को शक्तिप्रदायक, पुत्रोत्पादक, बलप्रदायक, स्वास्थ्यकर और पातक-निराकरण करने वाला कहा गया है और यह भी लिखा है कि पानी मे सभी दवाएँ रहती है। पितरों के वर्णन मे लिखा है कि वे यमलोक मे रहते हैं। वहाँ यम ने उनके लिए ऐसा स्थान नियत किया है जो जल और ज्योति से शोभित है और पितृ लोग यम के साथ प्रसन्न रहते है। ५८ वे सूक्त मे जीवात्मा का कथन किया गया है और मृत अथवा मूर्छित मनुष्य से कहा गया है कि जो तेरा जीवात्मा बहुत दूर विवस्वान् के पुत्र यम के यहाँ चला गया था, उसे हम फिर तेरे पास लाते है कि तू जीवित रह कर यही रह। इस प्रकार शेष ११ मन्त्रो मे पृथ्वी और स्वर्ग, चार कोने की पृथ्वी, ससार के चारो स्थानो, तरगित समुद्र, चमकने और बहने वाली ज्योति,

जलो, पौधों, सूर्य्य और उषा, ऊँचे पहाड़ों, सब जीवधारी और चलने वाले पदार्थों, हमारे दृष्टिक्षेत्र से बाहर दूर देशों और अन्त मे सब वर्तमान और भूत जीवधारियों मे जीवात्मा का जाना लिखा है।

उशीनरानी, ५९, १०, और ६०, ४, इक्ष्वाकु के कथन । ६०, ६ अगस्त्य के कई भागिनेय थे । ६०, ७, में सुबन्ध का कथन है । ६१ वॉ सूक्त नाभानेदिष्ठ का है । ६२ मे सावर्ण्य मनु के यज्ञो की प्रशंसा तथा चिरायु होने का आशीर्वाद है । ६३, गय का सूक्त है । ६३,१,३,६, १७, विवस्वान के वंशधर मनुष्यों को बहुत प्रिय हैं, तथा दूर तक राज्य फैलाते हैं । ययाति नहुष के पुत्र थे । नाहुषों तथा वैवस्वतो की साथ ही प्रशंसा है । मनु ने सात पुरोहितो द्वारा सब से पहले यज्ञ किया । गय प्रति के पुत्र थे । यही बात, ६४, १७ मे भी है । ६४,९, सरयू नदी तथा ६५, १४ मनु के देवतो के कथन है । ५९, १ तथा ६१,१, वध्य्रश्व सरस्वती और अग्नि के पूजक थे । सूक्त, ६९ का ऋषि सुमित्र अपने का बराबर उनका सगोत्री कहता और उनसे प्रसन्नता प्रकट करता है । वे प्राचीन समय में थे । ७२, २,३, देवताओं के प्राचीन समय मे असत्ता से सत्ता हुई । ७५, ३,५,६, सिन्धु, गंगा, यमुना, शतद्रु, परुष्णी, सरस्वती, असिक्नी, वितस्ता, कुभा और गोमती नदियों के नाम आये है । ८१, से जगदुत्पत्ति और एक ईश्वर के कथन हैं । ८२, ईश्वर पिता है, उसी ने सब कुछ बनाया है । एक ही विश्व-कर्मन कर्त्ता है । वह देवताओं तथा असुरो से पहले का तथा अज है । ९० से पुरुष सूक्त है । यह सूक्त यजुर्वेद मे भी है । ९३, १४, दुःशीम पृथवान, वेन और राम सब यज्ञ कर्त्ता थे । ९५, पुरूरवस उर्वशी का है । ९८, ऋष्टिषेण का पुत्र देवापि अपने भाई शान्तनु के लिए पानी बरसाने की प्रार्थना इन्द्र से करता है ।

१०२, मुद्गल का सूक्त है । इन्द्र सेना मुद्गलानी ने रथ हाँक कर पति को विजय दिलाई । पहले यह उसका [illegible] ... [illegible] पीछे प्रसन्न हो गया । १२१, हिरण्यगर्भ सारे संसार के स्वामी [illegible] ... [illegible] से पहले हुए । १२५, में [illegible] ... [illegible] ... १२९, १३०, में [illegible] ... १३०,२, में [illegible] है ।

इसी स्थान पर ऋग्वेद का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण समाप्त होता है। जो ऐतिहासिक घटनाएँ इसमे कही गयी है उन सब का पूर्वापर क्रम केवल वेदों के सहारे से स्थिर नहीं हो सकता। इसीलिए ऐसा करने का प्रयत्न न करके हमने यहाँ पर ऋग्वेद के संहिताविभाग से जितना कुछ मुख्य ऐतिहासिक मसाला प्राप्त हो सकता है उसका सक्षिप्त विवरण ऊपर लिख दिया है। यों तो भगवान वेद से हजारों प्रकार के ऐतिहासिक एवं अन्य बहुमूल्य भाव प्राप्त होते है, किन्तु हमने उन पर ध्यान न देकर केवल राजनैतिक इतिहास का जो मुख्य मूल ऋग्वेद सहिता से प्राप्य है उसे यहाँ पर कहा है। इन ऐतिहासिक घटनाओ का पूर्वापर क्रम जो ब्राह्मणों, इतिहासो, पुराणो आदि के सहारे कहा जा सकता है, उसे दिखलाने का प्रयत्न आगे किया जायगा। यहाँ पर केवल सहिता का सहारा लेकर जो ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है उसका विवरण किया गया है। इसी प्रकार शेष तीनों वेदा के सहिता विभाग का सहारा लेकर हम अपना ऐतिहासिक वर्णन लिखेंगे। इसके पीछे अन्य ग्रन्थो के सहारे इतिहास का क्रम बाँधा जायगा।

सामवेद

यह वेद गणना मे तीसरा किन्तु महिमा मे नम्बर २ समझा जाता है। सामवेद मे कुल १५४९ मन्त्र है। इनमे से केवल ७२ इसके और शेष सब ऋग्वेद के है। इसके दो भाग है, जिनमे से पहले मे ६ काण्ड है और दूसरे मे ९। एक एक काण्ड की भी कई कई कण्डिकाये हैं जिन्हे सूक्त कह सकते है। सामवेद मे कुल मिलाकर ४५९ सूक्त हैं। ये प्राय: सब ऋग्वेद से लिए गये है, किन्तु कुछ नये भी हैं। कुल मिलाकर सामवेद का प्राय: २० वाँ भाग नया होगा, शेप सब ऋग्वेद से लिया हुआ है। इसके जो पाठ है उसमे ऋग्वेद से कही कही थोड़ा बहुत अन्तर है। कई स्थानो पर अन्तर अर्थ समझाने के लिये किया गया है, किन्तु अधिकतर दशाओं मे यह बात घटित नही होती। कुछ पाश्चात्य पंडितो का मत है कि सामवेद मे लिखित मन्त्र बहुत स्थानो पर वर्तमान ऋग्वेद के प्राचीन पाठो पर अवलम्बित हैं, अर्थात् जिस

काल वे ऋचाएँ सामवेद में रक्खी गयी तब ऋग्वेद में भी उनका वही पाठ चलन में था, किन्तु पीछे से बदल गया। जान पड़ता है कि ऋग्वेद की ऋचाएँ सदा से इतनी ही नहीं थीं, वरन संख्या में वर्तमान ऋचाओं से कुछ अधिक थीं। उन्हीं में से वर्तमान ऋचाएँ सामवेद में रक्खी गयीं। पीछे से ऋग्वेद के सम्पादक व्यास भगवान ने ऋग्वेद वाली वर्त्तमान ऋचाओं को चुन लिया और शेष को छोड़ दिया। उन्ही छोड़ी हुई ऋचाओं में से, जो सामवेद में आगयी थीं वे तो रक्षित रहीं और शेष नष्ट हो गयीं।

सामवेद को किसने संकलित किया इसका पता नहीं है, केवल इतना ज्ञात है कि चारों वेदों के सम्पादक व्यास भगवान थे। सामवेद के आदि में लिखा है कि "ओं सामवेद की जय, गणेश की जय।" यह असली सामवेद का भाग नहीं है वरन हाल के लेखकों ने लगा दिया होगा। सामवेद में विशेषतया सोम पवमान का वर्णन है। इनके अतिरिक्त अग्नि, इन्द्र, उषा, आश्विन आदि पर भी कुछ कथन आए हैं। जल, वात और वेन के भी कुछ वर्णन हैं। इसमें कुछ ऋचाएँ मनु वैवस्वत की भी हैं। जिन दधीचि की हड्डी से वज्र बना था वे अथर्वण के पुत्र एक ऋषि थे। पुराणों में राजा दधीचि के विषय में यही बात कही गयी है। इन्द्र को राम कहा है। वय्य के पुत्र सत्यश्रव ऋषि का नाम आता है। नहुष की एक ऋचा है जो ऋग्वेद में नहीं है। कुछ ऋचाएँ नहुष, ययाति, मनु, अम्बरीष तथा ऋजिश्वा की भी हैं तथा कुछ आप्सव मनु की। रसा नामक एक नदी है जो पृथ्वी के चारों ओर बहती है। सोम पवमान ने दिवोदास के लिए शम्बर, यदु और तुर्वश को मारा। ऐसी विजय वर्णन कई देवताओं के विषय में किये गए हैं, जैसे शम्बर का मारना इन्द्र, अग्नि और सोम पवमान के विषय में कहा गया है। [illegible], ऋजिश्वा और अम्बरीष इन्द्र के उपासकों में से थे। [illegible] एक असुर था। ईश्वर का वर्णन [illegible] पुरुष के नाम से आया है। [illegible] ईश्वर का भाव प्रकट किया गया है। [illegible] पुत्र थे। [illegible]

कहा गया है किन्तु कहीं कहीं ११६ और १२० वर्षों का भी वर्णन है।

यजुर्वेद

यजुर्वेद का शाब्दिक अर्थ यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान का है। इसमे जाति भेद की उन्नति देख पड़ती है, मिलित जातियो का भी वर्णन है तथा दस्तकारी, विज्ञान, व्यापार आदि का कुछ बढ़ा-चढ़ा कथन है। इन बातो से ग्रिफिथ महाशय का विचार है कि यह वेद अथर्ववेद से भी नया है। इसके शुक्ल और कृष्ण नामक दो विभाग हैं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। कुल मिलाकर इसमे ४० अध्याय और प्रायः २००० छन्द है और बहुत कुछ भाग गद्य मे भी है। इसका बहुत सा भाग ऋग्वेद से लिया गया है और कुछ अथर्व से मिलता है। यज्ञ आर्यो मे सदैव से होते रहे थे, सो उनके विधानो का वर्णन भी बहुत पुराना होना निश्चित है। इसीसे यजुर्वेद का प्रारम्भकाल पुराना समझ पड़ता है। बलि के यज्ञ मे वामन भगवान् ने प्रचलित यज्ञ रीतियों मे कुछ विशेषता दिखलायी। इससे रीतियो पर विचार उस काल से ही चले थे ऐसा निश्चित है।

पहले और दूसरे अध्यायों मे नवेन्दु और पूर्णेन्दु सम्बन्धी यज्ञों के वर्णन है और तीसरे मे अग्निहोत्र का कथन आया है। अध्याय नम्बर ४ से ८ तक सोमयज्ञ का विधान है और नवम एव दशम मे वाजिपेय और राजसूय यज्ञो का कथन हुआ है। ११वें से १८ वें अध्याय पर्य्यन्त वेदी आदि बनाने के विधान कहे गये हैं। १६वे मे शतरुद्रीय का विधान है। १९वे से २१वे तक सौत्रामणि यज्ञ का कथन है और २२वें से २५वें तक अश्वमेध का। २६वे से २९वे अध्याय पर्य्यन्त चान्द्रयज्ञो का विधान है और ३०वें तथा ३१वे मे नरमेध का। शतपथ ब्राह्मण के देखने से प्रकट होता है कि नरमेध मे मनुष्य का बलिदान नही दिया जाता था, वरन् एक पुतले का। ३२वे से ३४ वे अध्याय पर्य्यन्त सर्वमेध का वर्णन है और ३५वें मे पितृ यज्ञ का। ३६वें अध्याय मे दीर्घजीवी आदि होने की विनतियाँ हैं और ३७वे से ३९वे अध्याय तक प्रवर्ग का विधान है। ४० वाँ अध्याय एक उपनिषत् है, जिसमे ईश्वर का वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद के अध्याय

१६ और ३० में व्यवसायों के ये नाम दिये हुए हैं:—(१) चोर.(२) सवार. (३) पदाती, (४) नर्तक (५) कानति.(६) रथवाहक .(७) रथबनानेवाले,(८) बढ़ई,(९) कुम्हार. (१०) सुनार. (११) कृषक. (१२) जाल बनानेवाला. (१३) धनुष बनाने वाले. (१४) बौने. (१५) कुबड़े. (१६) अंधे.(१७) गूँगे.(१८)वैद्य (१९) ज्योतिर्विद. (२०) हाथीवान. (२१) लकड़ी काटनेवाले.(२२) घोड़ा और जानवर रखने वाले (२३) नौकर, (२४) बावर्ची. (२५) फाटक बरदार, (२६) चित्रकार,(२७) नक़्क़ाश.(२८) धोबी.(२९) रंगरेज़. (३०) नाऊ.(३१) विद्वान.(३२) विविध प्रकार की स्त्रियाँ. (३३) चमड़ा कमाने वाले. (३४) मछुआ, (३५) शिकारी. (३६)चिड़ीमार. (३७) जेवर बनाने वाले. (३८) नाजिर. (३९) चक्रवाले. (४०) कवि.(४१) अंगूठी बनाने वाले. (४२) वाद्य शास्त्री. (४३) खानी. (४४) और भाषण करनेवाले । इससे तत्कालीन समाज विस्मित समझ पड़ता है ।

ऋक् और सामवेदों के नाम आये तथा आयु और पुरुरवा के वर्णन हुये है। इस मे ऋग्वेद की अपेक्षा विष्णु का वर्णन बहुत आया है। रुद्र की यहां महिमा बहुत कुछ बढ़ी है और वे शिव, शङ्कर, महादेव आदि नामों से पुकारे जाकर ईश्वर हो गये है। सन्द और मर्क शुक्राचार्य्य के लड़के थे। यह मर्क राक्षसो के पुरोहित कहे गये है। एक स्थान पर तो यह भी कहा है कि सन्द हराये और मर्क भगाये गये। राजा शर्याति का नाम आया है। यह कहा गया है कि आज मुझे ऐसा ब्राह्मण मिले जो पुनीत बाप दादों से उत्पन्न हुआ हो। अच्छा पुरोहित वह है जो स्वयं ऋषि हो और ऋषियों की सन्तान भी। इन बातों से बपौती की विचार-वृद्धि का पता चलता है। सिन्धु नदी का वर्णन इस वेद मे हुआ है और क्षत्रियो को बल मिलने की प्रार्थना की गयी है। भारतीय क्षत्रियों का भी कथन और जहाज़ चलने के वर्णन हैं। पुरु एक राक्षस था जिसे भरत ने हराया। उनके लिए १०० वर्षों का जीवन माँगा गया। विश्वकर्म्मा का कथन प्रायः आया और सिंह का भी वर्णन हैं। कहते है कि पुरोहितों की जाति पैदा हुई तथा शूद्र और आर्य्य एवं तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि उत्पन्न हुए। इस वेद मे प्रासंगिक छोड़ अप्रासंगिक बाते कम आई हैं। कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चारो को ज्योति प्रदान हो। बिना हाथों का कुनार नामक एक दैत्य दानवो के साथ रहता था। भेड़िया और चीते के कथन कई जगह पर आये है। एक अध्याय मे महादेव की बहुत दूर तक प्रशंसा है। सुभद्रा कम्पिला के एक राजा की स्त्री थी। अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका के नाम हैं, किन्तु महाभारत वाले नही। अग्नि को तनूनपात् असुर कहा गया है। मागध नाम है जिससे प्रकट है कि मगध देश उस काल तक बस चुका था। लिखा है कि ईश्वर का जाननेवाला ब्राह्मण अपने देवता को स्ववश मे रक्खेगा। ईश्वर का वर्णन बहुत साफ है। व्यन्स को इन्द्र ने मारा। कहते हैं कि आर्य्य और दास दोनो ईश्वर ही के हैं। पवीरु एक अच्छा राजा था। सातों नदियों तथा दधिक्रवन और सप्त ऋषियो के कथन हैं। शतानीक और सुरभि के नाम आए हैं।

अथर्ववेद

अथर्व ऋग्वेद के साथ ही अथवा कुछ पूर्व प्रारम्भ हुआ और पीछे तक बनता रहा। इसको अथर्वाङ्गिरस और भृग्वाङ्गिरस भी कहते हैं। अथर्वण पहले ऋषि थे जिन्होंने लकड़ियों को रगड़ कर आग पैदा की। अङ्गिरस और भृगु भी प्राचीन ऋषि थे। इन तीनों ऋषियों और इनके वंशधरों का वर्णन ऋग्वेद में कई बार आया है। कहा जाता है कि इन्हीं तीनों ऋषियों के वंशधरों को यह वेद भासित हुआ। ऋग्वेद अन्य वेदों की सहायता लेकर नहीं चलता, वरन स्वावलम्बी और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा लाभकारी है। यही दोनों गुण अथर्ववेद में भी पाये जाते हैं। ऋक् और अथर्ववेदों में प्रधान अन्तर यह है कि पहले में ब्राह्मणत्व की महिमा स्थापित नहीं हुई थी, किन्तु दूसरे के समय में ऐसा भली भाँति हो चुका था। ऋग्वेद में प्राकृतिक वर्णनों की प्रधानता है। उस काल हमारे ऋषिगण प्रकृति देवी ही पर मुग्ध थे। अथर्ववेद में वे टोना टनमनों आदि पर भी बहुतायत से विश्वास करते थे और भूत प्रेतों आदि का भी भय मानते थे। भारतीय आयुर्वेद शास्त्र का भी पहला प्रादुर्भाव अथर्व ही से हुआ। ऐसे अन्तरों को छोड़ देने से ये दोनों वेद प्रायः सम हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि अथर्ववेद के बहुत से अंश हैं तो ऋग्वेद के समकालिक, किन्तु ऋक् की अपेक्षा वे कुछ नीचे दर्जेवालों में प्रचलित थे। ऋग्वेद में भी लिखा है कि अङ्गिरसवंशी मायावी थे। इस वंश से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के कारण भी अथर्ववेद में तन्त्र मन्त्रों का बाहुल्य हुआ होगा, ऐसा सम्भव है। मोटे प्रकार से ऋग्वेद में प्राचीन हिन्दूपन का चित्र खिंचा हुआ है, किन्तु अथर्व में समय के साथ उसमें कुछ विकास देख पड़ता है। अतः प्राचीन हिन्दूपन में नवीन सिद्धान्तों का विकास [illegible] हुआ, [illegible] इन दोनों अमूल्य वेदों का मिलान करने से प्रकट हो सकता है। [illegible] पाश्चात्य पण्डितों का मत है कि [illegible]
[illegible]
[illegible]

अथर्ववेद में २० काण्ड, प्राय: ७६० सूक्त और ६०१५ छन्द हैं। इनमे से १२०० ऋचायें ऋग्वेद से ली गई है । अथर्ववेद के ऋषियों के नाम पृथक् पृथक् नहीं दिये गये है । इसके प्रत्येक मण्डल मे कई अनुवाक है और प्रत्येक अनुवाक मे कई सूक्त तथा प्रत्येक सूक्त मे कई ऋचाएँ है । ऋग्वेद आदिम हिन्दूसमाज का वर्णन करता है किन्तु अथर्ववेद मे वर्द्धमान समाज देख पड़ता है । स्त्रियो का वर्णन इसमे कम है तथा झाड़ने फूँकने के मन्त्र बहुत से हैं । उस काल हम लोगों मे द्यूतक्रीडा का बहुत प्रचार था । अथर्व में जुए मे जीतने के लिए सूक्त कहे गए है। जगत के रचयिता के विषय मे विश्वकर्मा का नाम आया है। काण्ड ३ सूक्त २२ में गाय और बैल के मांस खाने का कथन हुआ है। लड़का पैदा होना अच्छा माना जाता था और लड़की की उत्पत्ति कम माँगी जाती थी । कुटुम्ब में सुमति रहने और सब के कुशलपूर्वक निर्वाह होने के विषय मे सूक्त हैं । भेड़िया, बाघ आदि दुष्ट जीवों के हटाने के विषय में ऋचाएँ हैं । ब्राह्मण जब पैदा हुआ तब उसके दस हाथ और दस पैर थे । इस कथन से प्रकट है कि उस काल से ही पोपलीला का आरम्भ हो चला था । ऐसे वर्णन ऋग्वेद मे नहीं आए हैं। स्वर्ग का वर्णन सब वेदो मे है, किन्तु इस वेद मे उसकी बहुत प्रचुरता है, यहाँ तक कि एक पूरे सूक्त मे विशेषतया स्वर्ग का ही कथन है। लिखा गया है कि तेरहवाँ महीना अर्थात् लौद इन्द्र का पैदा किया हुआ है। वभ्रु एक राजा थे । अरात का वर्णन एक सूक्त मे आया है। सूमो की निन्दा और उदार लोगों की प्रशंसा है। ब्रह्मचारी और सप्तर्षि के वर्णन है । लिखा है कि शूद्र अपनी गुरुता से आर्य्य का अपमान न करे । यदि १० अब्राह्मण किसी स्त्री को चाहते हों और एक ब्राह्मण उसे चाहे तो वह उसी की होगी। जो कोई ब्राह्मण का निरादर करता अथवा उसे लूटता या दुःख पहुँचाता है उसकी दुर्गति होती है।

मूजवन, महावृष और वाल्हीक जातियाँ उत्तर-पश्चिम में रहती थीं। कहा गया है कि हे ज्वर, तू मूजवन, वाल्हीक, महावृप, आंगो (वर्तमान भागलपुर) और मागधो की ओर जा। इससे प्रकट है कि उस काल अङ्ग और मगध मे भी अनार्य्यों का निवास था । यह

है। लिखा है कि हे गाय ! तू ब्राह्मणों को दुख देनेवालों का सिर फोड़ दे। अग्नि को क्रव्याद कहा है। सविता ने अपनी पुत्री सूर्य्या को उसके पति को दान से दिया। स्त्री से कहते है कि तुम अपने घर जाओ और सबसे अच्छी तरह बातचीत करो, अपने लड़को से प्रसन्न रहो और सब के ऊपर आज्ञा चलाओ, अपने पति से अलग न हो और हँस खेल कर रहो, पति के साथ पूरा प्रेम करो, अपने पति के बाप, भाई और माता को वश मे रक्खो। सब वस्तुओं की मालकिन बनो। हे स्त्री तुम्हे मैंने अपने घर का मालिक बनाया है, सबके ऊपर दया करो और सबसे मृदुता का व्यवहार रक्खे। पति के बाप से स्नेह रक्खो और सास ससुर से मृदुता का बर्ताव करो, गाय बैलों से ख़ुश रहो, घर की सब चीज़ो को ढङ्ग से रक्खो, घर के सब जीवधारियो को प्रसन्न रक्खो, प्रातःकाल पति के साथ एक ही पलंग पर हँसी ख़ुशी से जागो; वीर पुत्र उत्पन्न करो। इन आज्ञाओं से प्रकट है कि उस काल स्त्रियो का पद बहुत ऊँचा था। उनके अधिकार और भार भी बहुत गम्भीर थे।

व्रात्य लोग अनार्य्य थे। वे व्रात्य स्तोम के द्वारा हिन्दू बनाए गए। १०० पतवारो के जहाज़ो का वर्णन है। एक स्थान पर हज़ार वर्ष जीने की इच्छा प्रकट की गई है (काण्ड १७ सूक्त १)। यम यमी की बातचीत इस वेद मे भी है। प्रार्थना की गयी है कि हे दर्भ! तू मुझको ब्राह्मण, आजन्म शूद्र, और आर्य्य सब का प्यारा बना। मत्स्यदेशियो का कथन आया है। मत्स्य देश पूर्वीय राजपूताना को कहते है। इक्ष्वाकु और व्यास नामक दो राजा थे। समय को सात लगाम वाला घोड़ा कहा है। कदाचित् इसी से सूर्य्य के रथ मे ७ घोड़े माने गये। सफेद किरण ७ रङ्गो से बनती है। इसी से ७ लगामो और ७ घोड़ो के विचार उठे हुए जान पड़ते हैं। समझ पड़ता है कि उस काल के आर्य्य तत्वसम्बन्धी यह ज्ञान रखते थे। कहा गया है कि हम १०० वर्ष जीएँ, वरन् इससे कुछ अधिक हमारा जीवन हो (काण्ड १९ सूक्त ६७)। करञ्ज और परञ्ज के नाम आये हैं। इन्द्र ने २० राजाओं को हराया। रोहिण राक्षस मारा गया। इन्द्र ने सुश्रव और तूर्वयान को बचाया, तथा दधीच की हड्डी से

हथियार बना कर सरयानीवान झील के निकट ९९ एवं ७ दनुओं को मारा। उशना इन्द्र के मित्र थे। रुम, रुशम और श्यावक के नाम आये हैं। रुशमों के राजा कौरम और ऋणञ्चय थे। इन दोनों की प्रशंसा हुई है जिससे जान पड़ता है कि ये दोनो आर्य थे। राजा परीक्षित का नाम आया है और लिखा है कि कौरव्य लोग इनकी प्रशंसा करते हैं। रज नामक एक राक्षस था। उच्चैश्रवा इन्द्र का घोड़ा था। प्रतीप प्रातसुप्त्यन का नाम आया है। लिखा है कि दधिक्रवन घोड़ा विजयकर्ता है। कृष्ण दस हजार साथियों के साथ अंशुमती के किनारे रहता था। वहीं बृहस्पति, इन्द्र और मरुत् ने उसे मारा। कृष्ण, नमुचि और शम्बर भारी राक्षस थे। इनका सामना कोई नहीं कर सकता था। तब इन्द्र ने इन्हे मारा। राजा पृथु के साथ उनके पिता वेन का नाम प्राय: आता है यहाँ तक कि वे वैन्य पृथु लिखे जाते हैं। आदि पुरुष का वर्णन आया है। सूर्य, इन्द्र, अग्नि आदि मे भी ईश्वर का भाव कहा गया है। कुत्स अर्जुन के पौत्र थे। दैन्य, दानव आदि शब्द कई बार आये हैं तथा अगस्त्य का नाम भी कई बार है। वीतहव्य लोगों का कथन है। सोभरि ऋषि का नाम आया है। इनका वर्णन विष्णु पुराण में बहुत है। अथर्ववेद मे रोग शान्ति, मृत्यु से बचना, सर्पविष निवारण आदि के विषय मे बहुत से मन्त्र हैं। यह वेद कहता है कि मगध और अंग आर्य्य सभ्यता के किनारों पर थे (Rapson)। अंग वर्तमान मुँगेर और भागलपुर जिलों पर था।

आठवाँ अध्याय

चारों वेद (प्रायः २००० से ७०० बी० सी० तक)।

छठवें अध्याय मे हम वेदो का कुछ विस्तृत वर्णन कर आये हैं और सातवे मे उनका सूक्ष्म ऐतिहासिक ज्ञान कहा जा चुका है। अब चारो वेदो को मिलाकर जो मुख्य निष्कर्ष निकलते है उनका कथन होगा। योग्य समझ पड़ता है कि अपने विचार लिखने के पूर्व कुछ योरोपीय पंडितो के भी सिद्धान्तो का थोड़ा-सा विवरण कर दिया जावे। रैप्सन कृत कैम्ब्रिज इतिहास (सन् १९२२ वाले संस्करण) के प्रथम अध्याय मे यह विषय कथित है। उसके अनुसार ब्राह्मी भाषा द्वारा द्राविड़ बलूचिस्तान से सम्बद्ध है। ब्राह्मण पुस्तकों के मनन करने वालो का विचार है कि यजुर्वेद मे जाति बहुत कर के वर्तमान थी। यह कथन कुरु पांचाल से सम्बद्ध है। बौद्ध पुस्तको के पंडित कहते है कि बुद्ध के समय तक पीछे वाले दृढ़ जाति भेद का पता नहीं है। यह कथन कोशल और विदेह से सम्बद्ध है। ब्राह्मण और बौद्ध धर्मो का मुख्य अन्तर सामाजिक और धार्मिक विचारो के सम्बन्ध मे है। उत्तरी भारत मे पाषाण और लौह युगो के बीच मे ताम्र युग था, किन्तु दक्षिणी भारत मे ऐसा न था।

पन्द्रहवी शताब्दी बी० सी० मे आर्य्य जातियो वाले लोगो का प्रभाव उत्तरी लघु एशिया से उत्तर पश्चिमी वैबिलोनिया तथा मीडिया तक भारी देश मे था। डाक्टर पी० कीथ के अनुसार ऋग्वेद दूसरे से सातवे मण्डलो तक से प्रारम्भ हुआ, अनन्तर प्रथम मण्डल का द्वितीय भाग बना, फिर उसका प्रथम भाग और आठवाँ मण्डल बना। तब प्रथम आठो मण्डलो से सोम पवमान सम्बन्धी ऋचाये निकाल कर नवाँ मण्डल बनाया गया और तब दसवे मण्डल का गान हुआ। बालखिल्य मुख्य संहिता का अंश नहीं है। दान-स्तुति भी पीछे जुड़ी। आर्य्यों ने समय पर अफगानिस्तान पर अधिकार जमाया। वे कुभा

(काबुल नदी), सुवस्तु (स्वात), क्रुमु (कुरेण), गोमती (गुमल) और परुष्णी (रावी) के किनारे वसे। ऋग्वेद मे विन्ध्य, नर्मदा, चीता और चावल के कथन नहीं हैं यद्यपि सिंह तथा मृगहस्तिन (हाथी) के हैं। पीछे के समय सोम का प्रचार कम हो गया। सुदास तृत्सु भारत थे। उनके युद्ध मे कम ज्ञात पाँच वंश थे: अलिन (उत्तर पूर्वी काफिरिस्तान), पक्थ (अफ़ग़ान फ़ग़ाथून से मिलता है), भलान (शायद वोलन घाटी से सम्बद्ध हो), शिव और विशाति (इन सब के कथन महाभारतीय युद्ध मे है)। इनसे इतर पाँच वंशों मे निम्न हैं :—अनु (परुष्णी पर), द्रुह्यु, तुर्वश, यदु और पुरु। युद्ध मे जीत कर पूरब की ओर पलट कर सुदास भेद का सामना करता है। भेद के साथ अज, शिग्नु और पक्थ लोग भी थे। ये सब यमुना के निकट विकराल क्षय के साथ पराजित हुये। दिवोदास अतिथिग्व के भी युद्ध तौर्वश, यादव और पौरव लोगो से हुये थे। वे शम्बर से भी लड़ते रहे थे अथच पणि, पारावत और वृसयो से भी। भरद्वाज इनके पुरोहित थे। कुरु और क्रिवि मिले हुये लोग थे तथा भारत और सृंजय मिले थे।

ऋग्वेद मे लिङ्ग पूजा की दो बार निन्दा है। दास अनास कहे गये हैं। शूद्र शब्द का पहला कथन पुरुष सूक्त मे है। दासो के पास ढोरों के समूह और पुर (क़िले) थे। वलवूथ की उदारता की प्रशंसा है। सुदास के युद्ध मे आर्यों को कुछ दासो ने भी सहायता दी अथच दासो को कुछ आर्यों ने। पनि का नाम है। ईरान (फ़ारस) से कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं है। कुटुम्ब पैत्रिक था मात्रिक नहीं। स्त्री चरित्र ऊँचा था। उसके बहु विवाह अज्ञात थे। भाई, बहन तथा पिता पुत्री के विवाह अनुचित थे। पिता के पीछे पुत्री भाई की संरक्षता मे जाती थी। तलाक़ न थी। कभी कभी विधवा भावज से देवर विवाह करता था। पिता सदैव कृपालु लिखा है। उसके अधिकार अनिश्चित किन्तु भारी थे। ऋजिराश्व को पिता ने नेत्रहीन कर दिया। पिता सम्पत्ति का स्वामी था। ढोर डंगर, गाड़े, सोना, अलंकार, अश्व, दास आदि उसी की सम्पत्ति थे। कभी कभी तीन पुश्त तक एक मे रहती थीं। जुदा हो भाई भी निकट रहते थे। इसमें प्राय

की उत्पत्ति है। इससे बढ़कर विश है तथा उससे भी बढ़कर जन। ग्रामणि ग्राम का अफसर था। सब समूह आर्य्य थे और एक दूसरे से सौहार्द्र रखते थे। वेद मे पुरुष सूक्त से इतर जाति भेद नहीं है। यद्यपि ऋग्वेद मे जाति-भेद बनता हुआ ही देख पडता है, तथापि उसका पूर्व रूप प्रस्तुत है।

समूहो का अधिपति राजा था। राजपद साधारणतया वंश परम्परागत था, किन्तु कभी कभी निर्वाचन भी होता था। प्रजा की रक्षा करना उसका कर्तव्य था। ग्रामणि, व्रजपति और पुरोहित एक दूसरे से बड़े थे। समय पर पुरोहित से ही ब्राह्मण राजनीतिज्ञ का पद निकला। इस काल तक भूमिदान अज्ञात था, यद्यपि उसका होना सम्भव है। राजा के यहाँ समिति और सभा थीं। समिति शायद असेम्बली को कहते हो। सभा उसके एवं सामाजिक समूहों के जुड़ने के स्थान को कहते थे। समिति मे राजा भी जाता था। चोरी, सेंध का लगना और मार्ग की लूटो के कथन हैं। ऋग्वेद मे चोर को प्राण-दण्ड नही लिखा है। चोर से चोरी की हुई वस्तु मँगा ली जाती थी। कुछ व्यभिचार के होते हुए भी आचार ऊँचा था। वृद्धो या कन्याओ का वध नहीं होता था।

व्यापार मे अदला-बदली थी और गाय का व्यवहार सिक्के की भाँति भी होता था। कोई और सिक्का न था। निश्क शायद अलंकार हो। पीछे सोने का सिक्का चला। दायज तथा शुल्क के कथन हैं। ठहराव केवल धन ऋण के रूप मे था। जुवे का प्रचार था। मध्यमशी सरपंच या राजा था। रथी सारथी के बायें रहता था। पदाती भी थे। धनुष, बरछे, भाले और तलवार के कथन हैं। कवच और शिरस्त्राण भी हैं। घोड़ा दधिक्रवण था। निशित बाण कभी कभी चलते थे। आर्य्यो मे नागरिक जीवन का अभाव था। ग्राम मे कई घर होते थे। पुर मिट्टी का धुस था। गृहाग्नि प्रज्वलित रहती थी। घुड़दौड होती थी। भेड़ी, बकरे, गधे, कुत्ते और बिल्ली तब तक पाली न गई थी। खेती और सिचाई का प्रचार था। यव बोये जाते थे। धनुष बाण, फन्दो आदि से शिकार खेलते थे। कारीगरी मे बढ़ई, लोहार आदि के काम अलग हो रहे थे। लोहार आयस से बतन

बनाता था। नावें पतवार से भी चलाई जाती थीं। लंगड़, डाँड, बादवान और मस्तूल के नाम नहीं हैं।

पोशाक मे दो या तीन कपड़े पहनते थे। भेड़ के ऊन और खालों का भी चलन था। घी का बहुत व्यवहार था। गो-मांस खाते थे। गाय अध्न्य कहलाती थी। सोम का चलन था। नशे की आधिक्य के कारण सुरा कम पीते थे। रथदौड़, नाच, बाजा, नगाड़ा, सारंगी और बाँसुरी के चलन थे।

कीथ का मत—सामवेद ऋक पर बहुत कुछ आश्रित एवं ऐतिहासिक दृष्टि से सारहीन है। यजुर्वेद का गद्य प्राचीनतम वैदिक गद्य है। शायद पचविंश ब्राह्मण का गद्य इससे भी प्राचीन हो। यह सामवेद का ब्राह्मण है। ऋग्वेद के ब्राह्मण पीछे के हैं। गोपथ ब्राह्मण कौशिक और वैतान सूत्रों से पीछे का है। अब आगे से इतर विचारानुसार कथन होते हैं।

वेद हम लोगों के सबसे पवित्र ग्रन्थ हैं। इनकी प्राचीनता और यथार्थभाषिता के कारण इनमे कथित ऐतिहासिक घटनाएँ प्रामाणिक मानी गई हैं। इसीलिए भारत के साधारण इतिहास मे भी इनका इतना भारी वर्णन करना उचित समझा गया। इनके धार्मिक ग्रन्थ होने पर भी ऐतिहासिक मूल्य बहुत है। वेदों में बहुत से देवताओं का वर्णन होते हुए भी इनमे ईश्वर का विचार मुख्य रक्खा गया है। सूर्य, मेघों का राजा इन्द्र और अग्नि की प्रधानता होने हुए भी यह प्रकट है कि आर्यों ने इनकी पूजा नहीं की, वरन इन सबके अन्तर्गत जो एक शक्ति है उसीको प्रधान माना। बहुतों का विचार है कि वेदों ने अग्नि, सूर्य, इन्द्रादि को एक ईश्वर के अधीन उपदेवता माना है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है और वेद भगवान उन सबको एक ईश्वर की शक्तिमात्र मानते हैं। पुरुषसूक्त में इस विचार का पुष्टीकरण मिलता है और यत्र तत्र भी इसको पुष्ट करनेवाली ऋचाएँ बहुतायत से प्रस्तुत हैं। वैदिक ऋषि लोग बहुतायत से उस देश में रहते थे जो सप्त सिन्धु कहलाता था। उन्होंने समुद्र पर जलयान चलाये। वे छोटे छोटे गाँवों में रहते थे जिनमें एक मुखिया भी होता था। उनकी सभ्यता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। सड़कों के किनारे उन्होंने विश्रामगृह बनवाये,

जिनमे भोज्य पदार्थ प्रस्तुत रक्खे जाते थे। सोने का भी सिक्का चलता था जिसे निष्क कहते थे। इनमे सुरापान और जुए की भी कुछ कुछ लत थी। विनष्ट ज्वारी की स्त्री अन्य पुरुषो का लक्ष्य हो जाती थी। पीछे से सुरा के विषय मे लिखा है कि उसे न पीना चाहिए, न लेना चाहिए और न देना चाहिए।

ससार भर का साहित्य जोड़ने से भी आर्य जाति का सबसे पुराना गद्य यजुर्वेद ही मे मिलता है। उसके पीछे का गद्य ब्राह्मण ग्रन्थो मे पाया जायगा। सबसे पहला पद्य ऋग्वेद मे मिलेगा। ऋग्वेद की सब से पुरानी प्रति शाकल शाखा की मिलती है जिसमे कुल मिलाकर १०२८ सूक्त है। मैकडानल महाशय का मत है कि ऋग्वेद के दसों मण्डलो में से दूसरे से सातवे तक पहले बने और शेष चारों मण्डल धीरे धीरे बढ़े। कहते हैं कि जब आठ मण्डल पूरे बन चुके थे तब नवाँ मण्डल बना। फिर भी अब तक वैज्ञानिक खोज ने इन मण्डलों का पूर्वापर क्रम दृढ़ नही कर पाया है। पाश्चात्य पण्डितो का मत है कि जब पहले नौ मण्डल पूरे हो चुके थे, तब दसवे मण्डल के सूक्त बने। इस मण्डल मे प्रथम नौ मण्डलो के उषा आदि देवता छूट गये है और इन्द्र, अग्नि आदि बड़े बड़े देवता मात्र रह गये है। उधर विश्वदेवस् का प्रभाव बढ़ा हुआ है, जिनमे ससार के सारे देवताओं का विचार आ जाता है। क्रोध, भक्ति आदि विचारो का देवताओं के स्वरूप मे इसी मण्डल मे व्यक्तीकरण भी हुआ है। संसार, विवाह, अन्त्येष्टि, यन्त्र, मन्त्र, दार्शनिक विचारो आदि के विषय मे सूक्त होने से भी यह मण्डल नया समझा गया है।

दूसरे से सातवे मण्डल पर्य्यन्त ऋषियो मे एक एक घरानो का प्राधान्य अवश्य है, और इनमे से प्रत्येक मण्डल का थोड़े ही थोड़े समय मे बनना निश्चित है, किन्तु पूरे दसवे मण्डल का इनके पीछे बनना समझ मे नही आता। दसवे मण्डल मे बहुत से बड़े पुराने पुराने ऋषि है जैसे चाक्षुषमनु, वैवस्वत मनु आदि। तीसरे और सातवें मण्डल मे राजा सुदास का वर्णन आया है जो पुरु के वंशधरो मे ४० वी पीढ़ी पर थे। चाक्षुषमनु वैवस्वत मनु से भी पहले के है। सुदास का तीसरे और सातवे मण्डलो के अनुसार ययाति के

वंशधरों से युद्ध हुआ था। इधर दसवें मण्डल में स्वयं ययाति की रचनाएँ प्रस्तुत हैं। अतः पौराणिक साक्षी पर न विचार करने से भी वेदों ही के आधार पर सिद्ध होता है कि दसवें मण्डल की कम से कम कुछ ऋचाएँ तीसरे और सातवें मण्डलों से भी पुरानी हैं। पहले आठवें नवें और दसवें मण्डलों की वर्तमान स्थिति भगवान् वेद-व्यास के सम्पादकत्व से हुई। अतः इनमें बहुतेरी नयी और पुरानी ऋचाएँ सभी कहीं मिली हुई हैं। अतः केवल थोड़ी ऋचाओं के सहारे इन पूरे चारों मण्डलों का समय निर्धारित करना भूल है। सम्भव है कि भगवान् वेदव्यास ने व्यक्तीकरण, दर्शनशास्त्र, रस्म-रिवाजों आदि से सम्बन्ध रखनेवाली ऋचाओं को एक ही मण्डल में रखना उचित समझा हो, जैसा कि सम्पादकों के लिए ठीक भी है। इसलिए पाश्चात्य पण्डितों के उपर्युक्त विचार हमें ग्राह्य नहीं समझ पड़ते। इन चार मण्डलों का पूर्वापर क्रम स्थिर करना ठीक नहीं है, क्योंकि इनमें सम्पादक का भी हाथ बहुतायत से लगा हुआ है। इनकी ऋचाएँ नयी और पुरानी सब प्रकार की हैं। राजा सुदास के समय से आर्यों का समाज भारत में बहुत बढ़ चुका था। इस काल में आर्यों का केवल अनार्यों से युद्ध नहीं होता था, वरन आर्यों के आपस में भी घोर संग्राम होने लगे थे।

रामचन्द्र काल के इधर उधर सूक्त मात्रा में बहुत बने। दसवें मण्डल का बृहदंश नवीन है।

अब यह प्रश्न उठता है कि सहिता को उसका वर्तमान रूप कब मिला, अर्थात् चारो वेदो का सम्पादन कब हुआ? वेदो के व्याकरण और उनके विषय मे उच्चारण सम्बन्धी नियमो पर विचार करके पाश्चात्य पण्डितो ने स्थिर किया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माणोपरान्त संहिता को वर्तमान रूप मिला। यही बात हमारे शास्त्रो के अनुसार भी समझ पड़ती है। वेदो के सम्पादक भगवान् वेदव्यास युधिष्ठिर के पितामह थे। वेदो का पहला सम्पादन अथर्वण ऋषि ने किया। अन्तिम सम्पादन व्यास ने जनमेजय के समय किया। विष्णु पुराण मे २८ व्यास लिखे हैं जिनमे स्वयं पराशर और द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के भी नाम है। सम्पादन चला व्यास का ही। पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ और घनपाठ के द्वारा जैसे हमारे ऋषियों ने वेदों का शुद्ध रूप स्थिर रक्खा, उसका वर्णन पिछले एक अध्याय मे हो चुका है।

अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि संहिता का शुद्ध अर्थ किस प्रकार लगाया गया है। हमारे यहाँ सुधारकों ने अपने नव-विचारो को नये न कहकर प्राचीन ग्रन्थो के नवीन अर्थो से पुष्ट करने का बहुधा प्रयत्न किया। इसी लिए संहिता का शुद्ध अर्थ लगाना बहुत स्थानो पर कठिन कार्य्य हो गया है। यास्क एक बहुत बड़े प्राचीन वेदार्थकार है। इन्होने निरुक्त शास्त्र की रचना करके ससार मे विशुद्धार्थ-प्रचार का प्रयत्न किया। आपका समय मैकडानल महाशय के अनुसार चौथी शताब्दी बी० सी० है। यास्क ने अपने पूर्व के १७ वैदिक टीकाकारो के नाम लिखे हैं। उस काल भी वैदिक टीकाकारो मे इतना गड़बड़ था कि कौत्स ने, जो इन १७ टीकाकारो मे से एक थे, लिखा कि वैदिक अर्थ सम्बन्धी विज्ञान वृथा है क्योंकि वैदिक सूक्त एवं ऋचाएँ अर्थहीन, गूढ़ और एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी तैत्तिरीय को परम प्राचीन उपनिषदो मे मानते हैं। उसमे प्रत्येक वैदिक ऋचा के पॉच पॉच प्रकार के अर्थो का होना कहा गया है। यास्क ने कही कही ऋचाओ के एकाधिक अर्थ लिखे हैं। यद्यपि रावण, उव्वट, महीधर आदि अनेक वैदिक टीकाकार हैं, तथापि

पाश्चात्य पंडितों ने यास्क और सायण की ही प्रधानता रक्खी है। सायण चौदहवीं शताब्दी में हुए। यह महाराजा विजयनगर के दीवान थे। इन्होंने ऋग्वेद का बड़ा ही उत्कृष्ट अर्थ किया जिससे किसी शब्द का अर्थ नहीं छूटा। कहा जाता है कि असंख्य गुणगण रखते हुए सायण में इतना दोष भी है कि उन्होंने प्रत्येक ऋचा के अर्थ लगाने में औरों पर ध्यान नहीं रक्खा। अतः उनकी पूरी टीका पढ़ने में कहीं कहीं प्रतिकूलता देख पड़ती है। पाश्चात्य पंडित राथ महाशय ने टीकाकारों का आँख बन्द करके प्रमाण नहीं माना। आपका विचार है कि वेदों को अपनी ज्योति से चमकना चाहिए, अर्थात् हमें टीकाकारों के पीछे न चल कर स्वयं वैदिक ऋषियों का शुद्ध भाव खोज निकालना उचित है। इसलिए उन्होंने वह टीका विधान चलाया जिसे ऐतिहासिक कहते हैं। तुलनात्मक शब्दार्थ शास्त्र एवं अवस्ता से आपने सहायता ली। अवस्ता पार्सियों का धर्मग्रन्थ है। इनके पूर्व पुरुष आर्य्यों के प्राचीन स्थान में हमारे पूर्व पुरुषों के साथ रहते थे। इसलिये अवस्ता के शब्द और अर्थ ऋग्वेद से बहुत कुछ मिलते हैं। सब भारतीय पंडितगण पाश्चात्य टीकाओं का प्रमाण नहीं मानते। फिर भी इनका सायणाचार्य्य से बहुत थोड़ा मतभेद है। इसलिये हमारे ऐतिहासिक प्रयोजनार्थ वेदार्थ जानने में विशेष गड़बड़ नहीं समझ पड़ता।

वेदों का साहित्य भद्दा अथवा साधारण नहीं है, वरन हमारे ऋषियों ने सूक्तनिर्माण में बहुत बड़ा चातुर्य्य दिखलाया है। उनके विचार बहुत स्थानों में सुन्दर और महत्तापूर्ण हैं, ऐसा पाश्चात्य पंडितों ने भी माना है।

वैदिक देवता बहुत करके प्राकृत शक्तियों के [illegible] हैं। हमारे यम और मित्र वाले भाव पार्सियों के इम और मिथ्र सम्बन्धी विचारों से मिलते हैं। वेदों में एक ईश्वर का कथन हुआ है। इन्द्रादिक उसी की शक्ति प्रकट करते हैं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। वैदिक देवताओं में इन्द्र, अग्नि, सूर्य्य और वरुण की प्रधानता है। विष्णु और शिव साधारण वैदिक देवता हैं जिन्होंने पीछे भारी [illegible] पाई। ऋग्वेद में बहुत करके ३३ देवताओं का कथन है, किन्तु [illegible]

विश्वामित्र ने यह संख्या बढ़ा कर ३३३९ कही। पौराणिक समय में यही संख्या बढ़ कर कहीं कहीं तैंतीस करोड हो गयी है। प्रतिमाओं का वर्णन वेदों मे नहीं पाया जाता और विशेषतया सूत्र काल से चलता है। प्राचीन काल मे वरुण की महत्ता इन्द्र से बढ़ी हुई थी, किन्तु वैदिक समय मे कुछ काल सम रह कर वह पीछे से बहुत गिर गयी। देवियों की महिमा वेदो मे बहुत कम है। सरस्वती नदियो मे सबसे पुनीत मानी गयी है। समय पर ब्राह्मण काल मे सरस्वती वाग्देवी हो गयी। पीछे से पौराणिक समय मे वह बुद्धि विद्या आदि की अधिष्ठात्री देवी हुई और ब्रह्मा की स्त्री मानी गयी। साम पहले एक प्रकार का रस मात्र था जो एक पहाड़ी पौधे से निकाला जाता था। चन्द्रमा के सुधाकर होने से धीरे-धीरे साम सम्बन्धी विचार चन्द्रमा से मिल गए, यहा तक कि समय पर सोम चन्द्रमा का ही नाम हो गया। पार्सियों की अवस्ता मे लिखित सोम-सम्बन्धी भाव वैदिक विचारो से बहुत अधिक मिलते है। पौराणिक समय मे सप्तर्षि का कथन बहुत अधिकता से आता है, यहाँ तक कि नक्षत्रो मे भी सप्तर्षि है। ऋग्वेद मे भी सप्तर्षि सम्बन्धी थोड़ा सा कथन है। नागों का वर्णन वेदो मे थोड़ा सा हुआ है और सूत्रो मे उनकी महिमा कुछ बढ़ी है। पुराणो मे इनका वर्णन अधिकता से है। इनके विषय में अपने विचार हम ऊपर लिख आए है। ऋग्वेद मे सिंह, वृक, व्याघ्र, भल्लुक, हस्ती, अश्व, गौ, भेड़, अजा, श्वान, गर्दभ, महिषी, हस, शुक, मयूर, काक, सर्प आदि के उल्लेख है।

आजकल पौराणिक आधार पर हिन्दुओं मे यह विश्वास है कि युद्ध मे मर कर वीरगण स्वर्ग प्राप्त करते है। यह विचार वेदो मे भी पाया जाता है। गङ्गा यमुना के नाम ऋग्वेद मे कुछ बार आये है। इनमे यह भी लिखा है कि यमुना के किनारे वैदिक आर्य्य रहते थे। ऋग्वेद मे मछलियो का वर्णन एक ही बार, किन्तु यजुर्वेद मे अधिकता से है। कहते है कि पंजाब की नदियो मे मछलियाँ कम हैं, इसी से ऐसा है। पाश्चात्य पंडितो का मत है कि ऋग्वेदकार समुद्र नही जानते थे किन्तु यजुर्वेद के रचयिता उससे अभिज्ञ थे। हाप्किन्स महाशय का मत है कि वरुण, उषा आदि से सम्बन्ध रखनेवाले

प्राचीन सूक्त मात्र उस काल बने थे जब ऋषि लोग सिन्धु और सतलज नदियों के बीच बसते थे । इनके अनुसार शेष सूक्त उस काल के हैं जब आर्य्य लोग वर्तमान अम्बाला के दक्षिण सरस्वती के किनारे बस चुके थे । ऋग्वेद मे अश्वत्थ वृक्ष की महिमा है, जिसे अब पीपल कहते हैं । बरगद का वर्णन अथर्ववेद मे केवल दो बार आया है और ऋग्वेद मे कहीं भी नहीं । ऋग्वेद मे सिंह का वर्णन कई बार है, विशेषतया उसकी गरज का । ऋग्वेद मे चीते का बिलकुल वर्णन नही किन्तु अन्य वेदों मे कई बार है । चीता विशेषतया पूर्वी जानवर है और सिंह पश्चिमी, इसलिए सोचा जाता है कि आर्य्य लोग ऋग्वेद के काल से अथर्ववेद के समय पर्य्यन्त धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते आए । हाथी का वर्णन ऋग्वेद मे दो बार आया है । इनमे से एक वर्णन से यह भी जान पड़ता है कि आर्य्य लोग हाथी पकड़ते थे । जंगली हाथी हिमालय की तराई मे पाये जाते है । इनकी बहुतायत बंगाल मे है, किन्तु गोंडा और हरदोई के उत्तरी भागों तक इनका निवास है । कुछ हाथी जिला पीलीभीत तक के जंगलों मे हैं । गऊ आर्य्यों की मुख्य सम्पत्ति थी । उसकी कुछ महिमा अवस्ता मे भी पायी जाती है । ऊपर के अध्याय मे हम दिखला आये है कि ऋग्वेद के समय से अथर्ववेद पर्य्यन्त आर्य्यों में गऊ की महिमा धीरे-धीरे किस प्रकार बढ़ती गयी । ऋग्वेद मे वह कृपापात्र थी, किन्तु विवाहादि के समयों मे उसका वध भी हो सकता था और बैलो का बहुतायत से होता था । यजुर्वेद के समय गोहिंसक को प्राण-दण्ड देने का विधान हो गया, किन्तु फिर भी कुछ यज्ञों मे वह बलि दी जाती थी । अथर्ववेद मे उसकी पूजा होने लगी । कविवर भवभूति के ग्रन्थ मे भी गोभक्षण लिखा है । अब किसी हिन्दू के लिए गोभक्षक कहे जाने से बढ़ कर कोई गाली नहीं है । आर्य्यों और अनार्य्यों मे मुख्य भेद वर्ण का था और जाति भेद का पहला रूप वर्णभेद ही हुआ । आर्य्यों की कई शाखाएं वेदों मे लिखी है । राजा ययाति के पाँचों पुत्र यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु और पुरु के नामों पर आर्य्यों की पाँच शाखाएं वेदों मे बहुधा बार लिखी हैं । इनके अतिरिक्त गांधार, सृञ्जय, मत्स्य, कृत्नु, भरत, भृगु, उशीनर, चेदि, त्रित्सु आ

नाम पांचाल, कुरु, सृंजय, कट, पारावत आदि शाखाएँ भी प्रधान हैं। तृत्सु रावी नदी के पूर्व रहते थे। भरत स्वायम्भुव मनु के वंशधर थे और पुरुवश मे भी दुष्यन्त पुत्र विख्यात भरत हो गए है। इन्हीं के वशधर भारत कहे गये। द्वितीय भरत के वशधर कौरव भी थे। उशीनर, सृंजय, मत्स्य और चेदि नाम पुराणो के समय मे भी जैसे के तैसे बने रहे। यही चेदिवंश समय पर कलचुरि भी कहलाया। इसके कुछ और नाम भी हुए जिनका वर्णन वर्त्तमान इतिहास मे होगा। पौराणिक समय मे चेदिवंशियो का राज्य मध्य भारत मे था। मत्स्य लोग पूर्वी राजपूताना मे राज्य करते थे और इसी देश को मत्स्य देश कहा भी गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के समय उशीनर लोग उत्तरीय भारत मे रहते थे। सृंजय तृत्सु लोगो के मित्र थे। इससे जान पड़ता है कि वे भी रावी नदी के इधर उधर रहते थे, परन्तु यह बात निश्चित नहीं है। कट लोग सिकन्दर के समय मे पञ्जाब मे रहते थे और पीछे से कश्मीर भी गए। अब वे कश्मीर ही मे है। पारावत लोग पञ्जाब में रहते थे। गान्धार और मूजवन्त उत्तर पश्चिम के निवासी थे। शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है कि पाञ्चालों का पुराना नाम क्रिवि था। मैकडानल महाशय ने अथववेद के आधार पर लिखा है कि आङ्ग और मागध लोग आर्य थे। पुराणो के अनुसार पाञ्चाल राजा पुरुवशी थे। पुराणो के अनुसार कौरव, कौशिक, पौरव आदि सब पुरुवंशी थे। वेदो मे पौरवो और यादवों का ययातिवशी होना बहुत बार लिखा है किन्तु कौरवो और कौशिको की यादवो आदि से एकता नहीं प्रकट होती है। पुराणो के अनुसार ययाति के पांचो वशधरो मे पौरवो की प्रधानता थी। यही बात ऋग्वेद से भी सिद्ध होती है, क्योकि अन्यो का विजेता सुदास स्वय पौरव था। यादवो का वंश बहुत बड़ा था। इसकी दो प्रधान शाखाएँ थीं जिनमे से एक मे हैहय वंश है और दूसरे में भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। ऋग्वेद मे मनुवशी प्रसिद्ध राजा इक्ष्वाकु का नाम लिखा है किन्तु वेदो में इनका वंश नहीं कहा गया है।

वैदिक समय मे घर बहुधा लकड़ी के बनते थे। राजा का पद प्रायः पैतृक होता था किन्तु कभी कभी प्रजाओं द्वारा राजा निर्वाचित हुआ

है। वेदों से यह नहीं प्रकट होता कि प्रजा किन घरानों से राजा का निर्वाचन करती थी। राजा को कर अवश्य नहीं देना पड़ता था, वरन् प्रजा स्वेच्छा से सामर्थ्यानुसार कर देती थी। राजा की इच्छा पर सब कुछ न था क्योंकि समितियों द्वारा निश्चित किये हुए प्रजाओं के मन्तव्य उस पर बाध्य थे। प्रत्येक जनसमुदाय में वेदज्ञ लोग भी होते थे। जो वेदज्ञ किसी राजा के लिए यज्ञादि करने पर नियुक्त होते वही पुरोहित थे। इन लोगों को दान में प्रचुर धन मिलता था। पहले प्रत्येक मनुष्य युद्धकर्त्ता था और शान्ति के साधारण काम भी चलाता था। समय के साथ धार्मिक क्रियाओं, जनसंख्या, युद्धविद्या, व्यापार आदि सभी की वृद्धि होती गई। इसी हेतु प्रत्येक कार्य के लिए पृथक् पृथक् समुदाय नियत हो गये। यही जातिभेद की पहली जड़ थी। आर्य अपने को आर्य तथा काले आदिम निवासियों को दस्यु कहते थे। ऋग्वेद में जातिभेद का कथन केवल पुरुष सूक्त में है, किन्तु वहाँ यह नहीं कहा गया है कि यह भेद जन्मज था या कर्मज। यजुर्वेद में ऐसी ऋचाएँ मिलती हैं जिनसे प्रकट होता है कि उस काल इसके जन्मज होने की ओर झुकाव था। वहाँ ऐसे ऋषि की श्रेष्ठता कही गई है जिसके पूर्व पुरुष भी ऋषि हों। यजुर्वेद में जन्मज जातिभेद बढ़ते बढ़ते दृढ़ हो चुका था। अथर्ववेद में ब्राह्मणों की महिमा बहुत बढ़ गई। ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य नामक आर्यों की तीन जातियाँ हुई और अनार्य लोग तथा कुछ आर्य्य शूद्र कहलाए जिनका काम सेवा करना था।

प्रत्येक कुटुम्ब का नेता पिता था। उसी की आज्ञा लेकर भावी जामाता उसकी पुत्री से विवाह करता था। पुत्री का विवाह पिता के घर पर होता था। ऋग्वेद में बहुत सी ऐसी कन्याओं का भी कथन है जिन्होंने कभी विवाह नहीं किया और जो पिता के घर में बूढ़ी हो गईं। स्त्रियों की महिमा ऋग्वेद के समय में बहुत थी। [illegible] में [illegible] ऊपर लिख चुके हैं कि स्त्रियों का ऊँचा मान था। [illegible] बहुत कम था। हिंसा करने वाले घोर दंड के भागी होते थे और शासन के सम्मान [illegible] जाते थे। चोरी प्रायः गउओं की होती थी। उन्हें खोजने के लिए [illegible] का भी वर्णन है। [illegible]

समय मे हाथीवानो का कथन आया है। इससे जान पड़ता है कि हाथियों का उस काल मे अच्छा चलन हो चुका था । रथा की दौड़ होती थी। नृत्य और गान की स्त्री और पुरुष दोनो मे प्रधानता थी। परदा इत्यादि की चाल स्त्रियो मे उन दिनो न थी और पति के चुनने मे उन्हे बहुत कुछ स्वच्छन्दता रहती थी।

वैदिक आर्य्यो का विवरण देखने से सब से बड़ा गुण जो उनमे दृष्टिगत होता है वह स्वच्छन्दता है। प्रत्येक ऋषि अपना ही निश्चय लिखता है और उसी निश्चय के अनुसार कार्य्य करता है। उसके लेखो से यह कहीं नहीं भासित होता है कि वह प्राचीन प्रथा, कुलाचार, देशाचार आदि के कारण स्वनिश्चय पर गमन न कर रहा हो। प्रत्येक ऋषि अपने ही विचारानुसार कार्य करने मे स्वच्छन्द सा देख पड़ता है। ऋषिगण जङ्गलो मे बैठ कर शिष्यो को विद्यादान मात्र नहीं करते थे, वरन् युद्धकर्त्ताओ के साथ रणस्थल मे भी भाग लेते थे। जातिभेद के अभाव से प्रत्येक मनुष्य अपनी ही इच्छा के अनुसार ऋषि, युद्धकर्त्ता अथवा व्यापारी हो सकता था। ऋषियों की कन्याएँ युद्धकर्त्ताओ और व्यापारियो को भी ब्याही जाती थी। सम्पूर्ण आर्य्यसमाज मे विवाह, भोजन, व्यापार आदि के विषय मे पूर्ण स्वच्छन्दता थी। माँस-भक्षण यज्ञो के ही सम्बन्ध मे होता था, सदैव नही। आचार-शास्त्र के लिए नियमो का बाहुल्य न था और प्रत्येक भद्र पुरुष उचित रीति से जीवन निर्वाह कर सकता था।

उस समय युद्ध नियम इस प्रकार थे कि पराजित देश को तत्काल अभय प्रदान किया जाता था, देश के धार्मिक-नियमो का मान होता था तथा विश्वास होने पर पूर्व राजवंश का पुरुष ही राजा बना दिया जाता था। धनुषवाण, तलवार, ढाल, शरीर त्राण, शिला प्रक्षेपक, अग्न्यस्त्र आदि से युद्ध होता था।

कचहरी का कर स्वीकृत ऋण के लिए ५ प्रतिशत एवं अस्वीकृत तथा अन्य ऋण पर १० प्रतिशत लिया जाता था। व्यभिचार महापाप माना जाता था। घूस लेने वाले मन्त्री की सब सम्पत्ति जब्त की जाती थी। आत्मघात करनेवाले के लिए दाह कर्म आदि वर्ज्य थे। भ्रातृहीना कन्या का प्रायः पुरुषो के समान नाम रक्खा जाता था।

घोड़ी से भी हल जोता जाता था। सती बहुत कम होती थीं। महाराज पृथु की रानी अरुचि सती हुई। ऋग्वेद के १० वें मंत्र में संकुशुक ऋषि एक स्त्री को सती होने से रोकते हैं। मृत पुरुष की भस्म, अथवा हड्डी या समस्त शरीर गाड़ दिया जाता था। बहुत लोग राजाओं से अधिक धनवान थे।

वेद भगवान् सैकड़ों विषयों के लिए प्राचीनतम इतिहास के भाण्डार हैं। हमें केवल सामाजिक तथा राजनैतिक इतिहास पर विशेषतया ध्यान देना है। इस लिए उपर्युक्त वैदिक विवरण में इन्हीं दो विषयों की प्रधानता रक्खी गई है। अब वेदों में लिखित राजनैतिक इतिहास को यथासाध्य संक्षिप्त प्रकारेण क्रमबद्ध कर हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे। ऊपर कहा जा चुका है कि वेदों में ऐतिहासिक घटनाएँ अप्रासंगिक रीति से आई हैं। अतएव उनमें से अधिकांश का वेदों ही के सहारे पर क्रमबद्ध करना कठिन है। इसलिए हम यहाँ पर मुख्य-मुख्य घटनाओं को मोटे प्रकार से सक्रम कहेंगे। आर्यों और अनार्यों के सैकड़ों नाम वेद में आये हैं। अनार्यों में वृत्र, दनु, पिप्रु, शुष्ण, शम्बर, वंगृद, बलि, नमुचि, मृगय, अर्बुद प्रधान समझ पड़ते हैं। दनु के वंशधर दानव थे जिनका कई स्थानों पर वर्णन है। यह दनु वृत्रासुर की माता थी। वृत्र के ९९ क़िले इन्द्र ने तोड़े। ९९ और १०० पुरों का कई स्थानों पर वर्णन आया है। शम्बर और वंगृद के सौ-सौ किले ध्वस्त किये गए। शम्बर के किले पहाड़ी थे और दिवोदास के कारण इन्द्र ने उसे मारा। दिवोदास सुदास के पिता थे। शुष्ण का चलनेवाला किला ध्वस्त हुआ। चलने वाले किले से जहाज का प्रयोजन समझ पड़ता है। पिप्रु के ५०००० सहायक मारे गये। बलि के ९९ पहाड़ी किले थे। ये सब जीते गये। सिवा शम्बर के और सब का पूर्वापर क्रम ज्ञात नहीं है। आर्यों में ऋषियों के अतिरिक्त मनु, नहुष, ययाति, इला, पुरूरवा, दिवोदास, मान्धाता, दधीचि, सुदास, त्रसदस्यु, ययाति के यदु आदि पाँचों पुत्र और पृथु की प्रधानता है। ययाति के यदु आदि पाँचों पुत्रों के वर्णन कई स्थानों पर आये हैं। दिवोदास और सुदास के सब से अधिक, क्रमबद्ध वर्णन हैं। इस विषय के [illegible] का भावार्थ [illegible]

बहुत उपयोगी है। इस के पीछे विश्वामित्र का तीसरा मंडल भी अच्छी घटनाओं से पूर्ण है। दिवोदास तृत्सु लोगो के स्वामी थे। वैदिक समय मे कुछ पौरवों की सज्ञा तृत्सू थी, ऐसा समझ पड़ता है।

राजा दिवोदास बहुत बड़े विजयी थे। इन्होने कुछ तुर्वश वंशियो, द्रुह्यु वंशियो और शम्बर को मारा तथा गगु लोगो को भी पराजित किया। कुछ नहुषवशी इनको कर देने लगे थे। इनके पुत्र सुदास ने इनके विजयो को और भी बढ़ाया। सुदास का युद्ध वैदिक युद्धों में सबसे बड़ा है। नहुषवंशो यदु, तुर्वश, अनु और द्रुह्यु के सन्तानो ने भारतों से मिलकर तथा बहुत से अनार्य्य राजाओ की सहायता लेकर सुदास को हराना चाहा। नहुष वशियों की सहायतार्थ भार्गव लोग, परोदास, पक्थ, भलान. अलिन, शिव, विशात, कवम, युध्यामधि, अज, सिगरु, और चक्षु आये तथा २१ जाति के वैकर्ण लोग भी पहुँचे। दस्यु राजा वर्चिन एक बहुत बड़ी सेना लेकर इनका नेता हुआ। कितने ही सिम्यु लोग भी नाहुषो की सहायतार्थ आए। पुरु-वंशी इस युद्ध मे सम्मिलित न हुए। नाहुषों ने रावी नदी के दो टुकड़े करके एक नहर निकाल कर नदी को पार करना चाहा, किन्तु सुदास ने तत्काल धावा बोल दिया जिससे गड़बड़ मे नाहुषों की बहुत सी सेना नदी में डूब मरी। कवष और बहुत से द्रुह्यु वंशी डूब गये। महा विकराल युद्ध हुआ, जिसमे सुदास ने अपने सारे शत्रुओ को पूर्ण पराजय दी। अनु और द्रुह्यु वशियो के ६६ वीर पुरुष और ६००० सैनिक मारे गये तथा आनवो का सारा सामान लूट लिया गया, जो सुदास ने तृत्सुवो को दे दिया। सात किले भी सुदास के हाथ लगे और उन्होने युध्यामधि को अपने हाथ से मारा। राजा वर्चिन के एक लाख सैनिक इस युद्ध मे मारे गये। अज, सिगरु और चक्षु ने सुदास को कर दिया। इस प्रकार रावी नदी पर यह विकराल युद्ध समाप्त हुआ। इसके पीछे सुदास ने यमुना नदी के किनारे भेद को पराजित कर के उसका देश छीन लिया था। इस प्रकार भेद सुदास का प्रजा हो गया। आर्य्यों का नागो से वेद मे कोई युद्ध नही लिखा गया है, केवल एक बार इतना लिखा हुआ है कि पेदु नामक एक वीर पुरुष के घोड़े ने बहुत से नागो को मारा। इससे जान पड़ता है कि आर्य्यों का नागो

महाराज ही थे। चाक्षुष मनु भी वेदर्षि थे। चाक्षुष मन्वन्तर में घटनायें बहुत सी लिखी हैं, जिससे इस वंश के कई राजाओं का होना इस मन्वन्तर में समझा जाता है। वैवस्वत मनु भी वेदर्षि थे। इन बातों से प्रकट है कि यद्यपि ऋग्वेद निर्माण काल २००० से १८०० या १७०० बी० सी० से चला, किन्तु कुछ वैदिक ऋचायें चाक्षुष मन्वन्तर से ही बनने लगी थीं। प्रधान पार्जिटर तथा रायचौधरी ने पौराणिक समय पर विशाल श्रम कर के अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं, किन्तु इन छवों मन्वन्तरों को उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया है, यद्यपि पुराणों में इनका बराबर कथन आता है और कुछ योरोपीय विद्वानों के अनुसार भी भारत में आर्यों का आगमन प्राय: २५०० बी० सी० से आरम्भ हुआ अथच वैदिक समय बहुत पीछे चला। प्रधान तथा राय चौधरी के विषय वैवस्वत मनु से भी बहुत पीछे से चलते हैं, सो उनका वैवस्वत मनु से पहलेवाले मन्वन्तरों का कथन न करना योग्य ही है। पार्जिटर महोदय ने शायद यह समय बहुत अनिश्चित माना हो, किन्तु प्राय: सभी पुराणों में इसका कथन बराबर मिलता है। वैदिक साहित्य में भी इसके कथन हैं। हम इन छवों मन्वन्तरों का नि:कारण छोड़ देना उचित नहीं समझते। यही हमारा पहला युग है। पहले पाँचों मन्वन्तरों में ४० पीढ़ी होने से उनका भोगकाल ७५० वर्षों के निकट आता है। पार्जिटर और प्रधान दोनों पंडितों ने राजवंशों पर अच्छा श्रम किया है। प्रधान का विषय रामचन्द्र से महाभारत पर्यन्त है। उन्होंने इस काल के राजवंशों को बहुत पक्का कर दिया है। महाभारत के ही पीछे परीक्षित का समय आरम्भ होता है। उनका इतिहास रायचौधरी महाशय ने बहुत दृढ़ किया है। अतएव रामचन्द्र से पहले का ही इतिहास संदिग्ध रह जाता है। महाभारत के पीछे भी प्रधान ने तीन मुख्य घरानों के राजवंश दृढ़ कर दिए हैं। मनु वैवस्वत से रामचन्द्र तक का वंशवृक्ष पुराणों, पार्जिटर तथा प्रधान के कथनों से मिला कर हमने ऊपर दे दिया है। इतना मानना ही चाहिए कि जो [illegible] के काल से [illegible] तक के समय के [illegible] में है, वह आधी [illegible] पूर्व वालों से नहीं पाई है। फिर भी साधारण [illegible] मान लिए गए हैं।

इस काल के मुख्य घराने सूर्य और चन्द्रवंश हैं। दोनों चलते मनु वैवस्वत से ही है, पहला उनके पुत्र इक्ष्वाकु से और दूसरा कन्या इला से।

मनु-राम के समय इन वंशों में निम्न शाखायें थीं :—

मनु-राम (त्रेतायुग) का चक्र

नाम वंश	नाम शाखा	नाम राम के समकालीन का	मनु से कितनी पीढ़ी नीचे	विवरण
सूर्य	अयोध्या,	रामचन्द्र,	३६	सब पीढ़ियाँ मिलती हैं।
,,	मिथिला,	भानुमन्त जनक,	३६	१२ पीढ़ियों के नाम अज्ञात। ये जनक राम के साले थे। इनके पिता सीरध्वज और चचा कुशध्वज थे।
चन्द्र	(हस्तिनापुर) मुख्य पौरव.	कुरु या सार्वभौम,	३६	सब पीढ़ियाँ मिलती हैं।
पौरव	उत्तर पांचाल,	सुदास,	३६	,, ,,
,,	दक्षिण पांचाल,	रुचिराश्व,	३६	,, ,,
,,	मागध,	सुहोत्र,	४०	,, ,,
,,	काशी,	अलर्क,	४०	,, ,,
,,	कान्यकुब्ज,	विश्वामित्र के पौत्र का पौत्र,	३६	इस काल विश्वामित्र भी वर्तमान थे।
चन्द्र यादव	माथुर,	सात्वन्त,	४२	सब पीढ़ियां प्राप्त। ,, ,,

नाम वंश	नाम शाखा	नाम राम के समकालीन का	मनु से कितनी पीढ़ी नीचे	विवरण
यादव	हैहय,	वीतहव्य का पौत्र,	२६	१५ पीढ़ियों के नाम अज्ञात।
चन्द्र आनव	अंग,	चतुरंग,	४१	१४ पीढ़ियों के नाम अज्ञात। चतुरंग दशरथ के मित्र लोमपाद के पुत्र थे।
”	उत्तर पच्छिम,	केकय के दौहित्र भरत,	२६	२० पीढ़ियों के नाम अज्ञात, कैकेयी राम की सौतेली तथा भरत की सगी माँ थी।

उपरोक्त शाखाओं मे राम के वंशवृक्ष मे २६ नाम उन तीन घरानों के निकाल डाले गए हैं, जो थे तो सूर्यवंशी किन्तु राम के सीधे पूर्वपुरुष नहीं प्रकट होते, वरन इसी वंश के होने से इस शाखा के पूर्व पुरुषों मे गुप्तकालीन सम्पादकों के ज्ञानाभाव से आ गए। ये शाखायें दक्षिण कोशल, हरिश्चन्द्र और सगर की हैं। यदि सम्पादकों के इन कथनों को अक्षरशः सत्य मानें तो उन्हीं की कही हुई अन्य समकालीनतायें ठीक नहीं बैठती। इन २६ नामों के जुड़े रहने से इतने ही काल में दस ऐल राजघरानों में प्रायः ३९, ४० पीढ़ियाँ आती हैं, तथा अयोध्या में ६३। फल यह निकलता है कि चाहे इन वंशों को अशुद्ध मानें, चाहे उस वंश को। फिर जहाँ अयोध्या की शाखा में २६ नाम बढ़ा दिए गए, वहीं मैथिल में १५ घट गये हैं। यही दशा हैहयों, आनवों और उत्तरी पश्चिमी आनवों की है। मगध शाखा में [illegible] पीढ़ियाँ घटी हुई समझ पड़ीं। इनमें नं० ३५ दशरथ के [illegible]

में रथवर और एकादशरथ जो इन्हीं के नाम माने गए हैं, वे कहीं-कहीं इनके वशधरो के लिखे हैं। नाम एक से होने से एक ही के माने गए है। यही दशा नं० ३८ देवराट की है। उनके आगे देवक्षेत्र और देवन के भी नाम कहीं कहो वंशधरों के लिखे हैं। यदि इन चार नामों को भी पीढ़ियो मे जोड़ ले, तो अर्जुन, पौरव नं० ५३, के पिता पांडु का समकालीन कस ५४ वीं से ५८ वीं पीढ़ी पर पहुँचेगा और यह मानना पड़ेगा कि यदु के बड़े पुत्र होने तथा इस वंश मे छोटे भाइयो के राजा प्रायः न होने से उतने ही काल मे इसकी पुश्तें छ बढ़ गईं। ऐसी कल्पना कुछ अयुक्त भी न होगी। फिर भी कोष्टको वाले चार नाम हमे स्वतन्त्र नहीं समझ पडे। दोनो दशाओ मे अधिक मतभेद का प्रश्न नही है।

उपरोक्त १२ वंशो मे से चार की पुश्तें पूरी नही मिलती, किन्तु शेष आठ दृढ़ बैठते है। उनमे सारी पुश्तें मिलती है, तथा उनके अनुसार पौराणिक कथनों की समकालीनताये भी ठीक बैठ जाती हैं। जिनमे पुश्तें बढ़ाई गई है, उनमे बिना ऐसा किए पौराणिक अन्य कथनों के तारतम्य नही बैठते। प्रधान ने भी दक्षिण कोशलो को अलग माना है। सगर और हरिश्चन्द्र के वंश वंशावली मे दिए हुए कारणो से अलग हो गए है। पार्जिटर महाशय ने ये २६ नाम अलग नही किए, जिससे उनको रामवाले को छोड़ कर सारे पौराणिक वशो से प्रायः २४, २५ पुश्तो के छूट रहने की कल्पना करनी पड़ी है, जो प्रकट ही अनुचित है, क्योकि वह सारे पौराणिक वश वृत्तो को केवल एक के कारण अधूरा बतलाती है।

उपर्युक्त वंशावलियो को दृढ़ मानने से सारे पौराणिक कथनो का सामजस्य बैठता है, जैसा कि इसी अध्याय मे आगे दिखलाया जावेगा। वहाँ समकालीनताओं का विवरण कुछ विस्तार से होगा। यहाँ काल निरूपण के लिए हम आगे बढ़ते हैं। वैवस्वत मनु से रामचन्द्र तक यह दूसरा समय प्रायः ३९ पीढ़ियो का मिलता है। यदि मन्वन्तर काल को सत्ययुग कहे, तो इसे त्रेता कह सकते हैं। ये सतयुग और त्रेता नाम पौराणिक विचारो से असम्बद्ध हैं, अर्थात् जो जो घटनाये पुराणो मे जिन जिन युगो मे लिखी हैं, उनके

अनुसार ये हमारे युग नहीं चलते। हैं चार युगों के समान चार समय हमारे भी, जो उन्हीं नामों से पुकारे जा सकते हैं, किन्तु हमारे राज-काल उनके अनुसार चलते नहीं, सो पाठकों या समालोचकों के चित्त में भ्रम पड़ सकता है। अतएव युगों ही के नाम न लेकर हम पहले को सतयुग या मन्वन्तर काल, दूसरे को त्रेतायुग अर्थात् मनु-राम काल, तीसरे को द्वापर युग और चौथे को आदिम कलिकाल कहेंगे। दूसरा समय ३९ पीढ़ियों का होने से प्रायः ६५० वर्षों का माना जा सकता है, क्योंकि इसमें राजकाल है। अब हम तीसरा काल उठाते हैं, जिसका रूप भी एक चक्र द्वारा दिखलाया जावेगा।

शाखाओं के नाम	किस से प्रारम्भ		किस तक		कितनी पीढ़ियाँ	विवरण
	नाम	नं०	नाम	नं०		
श्रीवस्ती का लव (सूर्य) वंश	लव	४०	बृहद्बल	५३	१४	ये दोनों राम के पुत्र हैं। वंश पूर्ण मिलते हैं।
अयोध्या का कुश ,,	कुश	४०	श्रुतायुस	५४	१५	
विदेह ,,	शत्रद्युम्न	४०	बहुलाश्व	५३	१५	सब पुश्तें मिलती हैं।
,, दूसरी शाखा	शत्रद्युम्न	४०	उपगुप्त	५५	१६	उपगुप्त पर राज्य समाप्त। पूर्ण वंश प्राप्त है।
युधिष्ठिर पौरव	जयत्सेन	४०	अर्जुन	५३	१४	पूर्ण प्राप्त। वंश युधिष्ठिर का न चल कर अर्जुन का चला।
द्विमीढ़ विदर्भ ,,	धृतिमन्त	४०	नृपंजय	५५	१६	पूर्ण प्राप्त। नृपजय के पुत्र बहुरथ पर समाप्त।
उत्तर पांचाल ,,	सोमक	३१	धृष्टकेतु	५२	१४	७ पुश्तें अज्ञात, शेष ज्ञात।
दक्षिण पांचाल ,,	पृथुषेण	४०	जनमेजय का पौत्र	५३	१४+२	महाभारत युद्ध से दो पुश्त पूर्व जनमेजय पर समाप्त।

शाखाओं के नाम	किस से प्रारम्भ		किस तक		कितनी पीढ़ियाँ	विवरण
	नाम	नं०	नाम	नं०		
मागध पौरव	च्यवत	४१	सोमाधि	५४	१४	पूर्ण प्राप्त।
चेदि ''	सुहोत्र	४०	शिशुपाल	५२	१३	४ पुश्तें अज्ञात हैं।
काशी ''	मत्तति	४१	भद्रसेन	५५	१५	इन्हीं पर वश समाप्त है, पूर्ण प्राप्त।
माथुर यादव	भीम	४३	श्रीकृष्ण	५५	१३	नं० ५४ कंस के भागिनेय थे। पूर्णवश प्राप्त।
अंग आनव	पृथुलाश्व	४२	कर्ण	५२	११	पूर्ण वश प्राप्त, शायद दो तीन पुश्तें छूट रही हों।
१३ वंश	१३	१३	१३	१३	१८५	१३ वंशों में से २ अधूरे मिलते हैं' और शेष पूर्ण।

इन तेरह वंशों मे से इस काल कुल १८५ पीढ़ियाँ हुईं, अर्थात् प्रति वश प्रायः १४ पुश्तों का पर्ता बैठता है। ये सब पुत्रों के अनुसार हैं। जहाँ कही भाई उत्तराधिकारी हुए हैं, वहां पीढ़ी जोड़ से निकाल दी गइ है। हाती तो है शताब्दी मे ५ से कम पुश्तें, किन्तु ५ ही जोड़ने से इस युग का भाग काल २८० वर्ष आता है। कई वंश त्रेता वाले चक्र मे है, किन्तु द्वापर वाले मे नहीं। उनका राज्य बीच ही में समाप्त होकर उनके वंश वृत्त बन्द हो गए। अब आदिम कलि-काल पर विचार होता है।

आदिम कलिकाल का समय

इस विषय पर श्रीयुत पार्जिटर, डाक्टर प्रधान और डा० रायचौधरी ने विचार किये है, सो अपने को कुछ अधिक कहने की आवश्यकता न पड़ेगी।

श्रीयुत पार्जिटर का तर्क

चन्द्रगुप्त मौर्य ३२२ बी० सी० में गद्दी पर बैठे। उनसे पूर्व महापद्मनन्द और उसके पुत्रों ने ८० वर्ष राज्य किया। अतएव महापद्म ४०२ बी० सी० मे गद्दी पर बैठा। उसने तत्कालीन सारे क्षत्रियों के राज्य नष्ट कर दिए; अपने समय का परशुराम ही कहा जाता है। यह कार्य यदि २० वर्षों मे समाप्त माने, तो इसका समय ३८२ बी० सी० मे आता है। प्राचीन भूपालो मे पुराणो के अनुसार पौरव (नं०, ५९) अधिसीम कृष्ण, ऐक्ष्वाकु (नं० ५८) दिवाकर, और बार्हद्रथ (नं० ६०) सेनजित समकालीन थे। अतएव महाभारतीय युद्ध के पीछे अधिसीम कृष्ण के समय तक ४ ऐक्ष्वाकु, ५ पौरव और ६ मागध नरेश पड़ते है। इस काल को १०० वर्षों का मान सकते है। इससे महापद्म द्वारा भूपाल विनाश पर्यन्त निम्न संख्या मे राजे लिखे हैं:— २४ ऐक्ष्वाकु, २७ पाँचाल, २४ काशी, २८ हैहय, ३२ कलिंग, २५ अशमक, २६ कौरव-पौरव, २८ मैथिल, २३ सूरसेन, और २० वीतिहोत्र। इस प्रकार दस राज्यो मे कुल २५७ राजे आते है, अर्थात् प्रति राज पर्ते से २६ भूपाल। प्रति राजा का समय १८ वर्ष मानने से हमे ३८२ बी० सी० से ४६८ वर्ष मिलते हैं, अर्थात्

महाभारत युद्ध का समय आता है ३८२+४६८+१०० = ९५० बी० सी० । इसी काल मगध में १६ बार्हद्रथ राजे हुए, ५ प्रद्योत और १० शिशुनाग, जोड़ ३१ ।

इस तर्क मे विचार योग्य भी कुछ बातें हैं । पुराणों में केवल मागध, पौरव, तथा ऐक्ष्वाकु वंश तो दिए हैं, किन्तु शेष सातों की पुश्त संख्या मात्र दी हुई है । इन तीनों के विषय में भी जो पीढ़ियों के विवरण पार्जिटर महोदय ने दिए हैं, वे प्रधान से कुछ भिन्न हैं, किन्तु यह अन्तर थोड़ा ही सा है। मुख्य मतभेद प्रति पीढ़ी के मान्य समय का है।

डाक्टर राय चौधरी का कथन

आपने इस काल का निर्णय नहीं किया है, वरन् इस विषय पर एक प्रमाण मात्र उद्धृत कर दिया है। पुराणों का कथन है कि परीक्षित का जन्म महापद्म नंद से १०५० वर्ष पूर्व हुआ। उधर कौशीतकि, सांख्यायन आरण्यक, अध्याय १५ वें में लिखा है कि सांख्यायन उद्दालक आरुणि से दो पीढ़ी नीचे थे, तथा शतपथ ब्राह्मण, XIII ५,४,१ में इन्द्रोत देवापि या दैवापि शौनक जनमेजय के समकालीन थे। इनके शिष्य थे धृति ऐन्द्रोत जिनके शिष्य पुलुश प्राचीन योग्य बने, जिनके चेले पौलुशि सत्ययज्ञ हुए। छान्दोग्य इन्हें बुडिल आश्वतराश्वि तथा उपर्युक्त उद्दालक आरुणि का समकालीन मानता है। अतएव (उद्दालक आरुणि के समकालीन) पौलुशि के (जनमेजय के समकालीन) शौनक प्रपितामह गुरु मात्र थे। शांख्यायन आरुणि से केवल दो पीढ़ी नीचे होने से छः पीढ़ियां मिलीं। कौशीतकि शांख्यायन आरण्यक में गौतम बुद्ध के समकालीन पौष्कर सादि तथा लौहित्य के नाम हैं, जो शांख्यायन से दो ही तीन पीढ़ी नीचे थे। अतएव गौतम बुद्ध से जनमेजय तक आठ ही नौ पीढ़ियां बैठती हैं, जिनमें गुरु शिष्य की भी कुछ पुश्त शामिल हैं।

(अपना विचार) इन गुरु शिष्यों वाली पीढ़ियों के समय [illegible] घटे भी हो सकते हैं, सो इन तालिकाओं से कोई निश्चित [illegible] नहीं निकलता। ब्राह्मणों का पीढ़ियां लिखने में न्याय [illegible] कुछ भी [illegible]

जाते थे, अर्थात् पुश्तें छोड़ जाते थे। राम के समय वाले गौतम पुत्र शरद्वन्त और अहल्या के पुत्र शतानन्द के आत्मज सत्य धृति हरिवंश मे लिखे हैं। उन्हीं के पुत्र शन्तनु के समकालीन कृपाचार्य आ जाते है, यद्यपि अहल्या से कृप तक १०,१२ पीढ़ियां होगी।

डाक्टर सीतानाथ प्रधान आदि के विचार

प्रधानजी ने अपने कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा मुद्रित और सत्कारित ग्रथ मे चन्द्रगुप्त मौर्य से बिम्बिसार तक का समय ३२५ बी० सी० से ५२७ बी० सी० तक माना है। इन दस राजाओं में प्रत्येक का समय उन्होने दिया है, जो इस ग्रंथ मे यथास्थान आवेगा। आपने मागध (नं० ५४) सोमाधि से रिपुंजय,(नं० ७५ तक) २१ पीढ़ियो का भोगकाल प्रति पीढ़ी २८ वर्ष के हिसाब से ५८८ वर्ष माना है। रिपुजय ५६३ बी० सी० मे गद्दी पर बैठे और ५१३ मे मारे गए। अतएव सोमाधि का समय ५८८+५६३=११५१ बी० सी० आता है, जो महाभारत युद्ध का समय है। इसी प्रकार पौरव परीक्षित, (नं० ५५) से उदयन न० ७७ तक २२ पीढ़ियों का समय २२×२८=६१६ वर्ष हैं। उदयन ५०० बी० सी० मे राजा हुए, तथा परीक्षित से ३६ वर्ष पूर्व महाभारतीय युद्ध हुआ, जिसका समय ५००+६१६+३६=११५२ बी० सी० आता है। इसी प्रकार ऐक्ष्वाकु उरुक्षय, (नं० ५५) से प्रसेनजित, (नं० ७६ तक) २२ पीढ़ियो का भोगकाल ६१६ वर्ष है, तथा ५३३ बी० सी० मे प्रसेनजित गद्दी पर थे, सो उपर्युक्त महाभारतीय युद्ध का समय ५३३+६१६=११४९ बी० सी० आता है। प्रति पीढ़ी २८ साल जोड़ने के कारण आपने एक अध्याय भर मे दिए हैं, जो गड़बड़ नहीं है, अतएव महाभारत काल आप बी० सी० १२ वी शताब्दी मे मानते हैं और यह भी कहते है कि तिलक महाशय की ज्योतिषीय गणना भी इस निष्कर्ष से टक्कर खा जाती है। श्रीयुत काशी प्रसादजी जायसवाल पुरातत्व विभाग के भारी पंडित थे। आपने पुराणो के कथनानुसार महाभारतीय युद्ध का समय १४२४ बी० सी० माना है। यही समय लखनऊ विश्वविद्यालय के इतिहासज्ञ डाक्टर राधा कुमुद मुकुर्जी मानते है।

अपने को इस विषय में मत प्रकाशन की आवश्यकता नहीं। प्राचीन भारतीय इतिहास के समय विभाग पर पाश्चात्य पडितों का इतरों से बहुत मतभेद है, परन्तु यह गहन प्रश्न न तो अपने निर्णय के योग्य है, न अधीन। अतएव निर्णय करना भी निरर्थक है। अतः विना मत प्रकाशन के ही हम यहाँ दिखलाये देते हैं कि यदि महाभारतीय युद्ध १० वीं शताब्दी बी० सी० का हो, तो वहीं द्वापर का अन्त होगा। त्रेताकालारम्भ प्रायः २८० वर्ष पुराना होने से तेरहवीं शताब्दी बी० सी० में पड़ेगा, तथा त्रेताकालान्त उससे प्रायः ३९ पीढ़ी ऊपर होने से इससे साढ़े छः सौ वर्ष पुराना अर्थात् १९वीं या २०वीं शताब्दी बी० सी० का है और सत्ययुग या मन्वन्तर कालारम्भ प्रायः साढ़े सात सौ वर्ष और पुराना होने से २७ वीं शताब्दी बी० सी० तक पड़ेगा। यदि यह भारतीय युद्ध काल १२ वीं या १५वीं शताब्दी बी० सी० का मानें, तो वे तीनों समय भी आगे बढ़ जावेंगे। इन कथनों से न हटते हुये भी हम एक समय देने के विचार में अपने अध्यायों आदि में महाभारतीय युद्ध दसवीं शताब्दी बी० सी० का मान कर चलेंगे, जिससे समय बढ़ाने की ओर अनुचित रुचि न मानी जाय।

अब सम सामयिक महानुभावों और घटनाओं पर विचार किया जाता है, जिससे अपनी वंशावलियों की दृढ़ता पर प्रकाश पड़े।

१—मनु वैवस्वत की पुत्री इला चन्द्रपुत्र बुध को ब्याही थी। इन्हीं इला और मनु से दोनों वंश चले हैं (महाभारत)।

२—ययाति नं० ६ के भाई यति सूर्यवंशी, (नं० ४) ककुत्स्थ की पुत्री गो से ब्याहे थे।

ह० वं० ३०, १६०२, वायु० पु० ९३, [illegible]

३—पौरव, (नं० २०,) मतिनार की पुत्री गौरी इक्ष्वाकु, (नं० २१) मान्धाता की कुछ पुराणों के अनुसार माता (हरिवंश [illegible] अनुसार [illegible]) थी। ब्रह्माण्ड पु० ६३, ६६, ८, वायु पु० ८८, ६४, ७, [illegible] ५, ९०, ७, ह० वं० १२, ७०९ [illegible] शि० पु० ६०, ७४।

४—यादव, (नं० २०) शशबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती [illegible] उपर्युक्त मान्धाता को ब्याही थी। वायु ८८, ७०, ब्रह्माण्ड [illegible]

इनका द्रुह्यु वंशी अंगार (न० २१) से युद्ध हुआ। ह० व० ३२. १८३७, म० भा० १२६, १०४६५।

५—कान्यकुब्ज (न० ३०) जह्नु ने मान्धातृ की पौत्री से विवाह किया। अतः जह्नु त्रसदस्यु सूर्य वंश (न० २३) के समकालीन अर्थात् बहनोई थे। त्रसदस्यु मान्धातृ के पौत्र थे। सम्भवतः जह्नु अपनी वंशावली मे चार पाँच नम्बर ऊँचे थे।

६—ऋचीक ऋषि ने गाधि पुत्री सत्यवती से विवाह किया, जिससे परशुराम के पिता जमदग्नि पुत्र हुए। गाधि पुत्र प्रसिद्ध विश्वामित्र जमदग्नि के समवयस्क और प्रगाढ़ मित्र थे। जमदग्नि का विवाह किसी सूर्यवंशी प्रसेनजित की कन्या रेणुका कामली से हुआ। इसी की बहिन का विवाह हैहयार्जुन (नं० ३४) से हुआ था, हरिवंश, (म० भा०)। प्रसेनजित राजा ऐक्ष्वाकु नं: १९ थे। वे इस सम्बन्ध के लिए बहुत प्राचीन थे। अतएव कोई अन्य प्रसेनजित सूर्यवंशी को ये कन्याये होगी, अथवा इन्हीं का स्थान वंशावली मे नीचा होगा। विश्वामित्र कान्यकुब्ज (न० ३५) हैहयार्जुन, सुदास [उत्तर पांचाल (३९)]. तृशंकु (सूर्यवंश ३६), हरिश्चन्द्र (सूर्यवंश ३७) मित्रसह कल्माषपाद (दक्षिण कौशल, ३९) और राम (सूर्यवंश ३९) समकालीन थे। वशिष्ठ भी इन्हीं सभों के समय मे थे। जान पड़ता है कि ये दोनो ऋषि दीर्घजीवी थे। इन नामो के कई ऋषि मानने से काम नही चलता, क्योकि हरिश्चन्द्र के यज्ञ मे विश्वामित्र, जमदग्नि शुनःशेप और वशिष्ठ ये चारो ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार मौजूद थे। उधर वैदिक ऋचाओं मे शुनःशेप की उपर्युक्त घटनाओं के अनेक विवरण है। वही शुनःशेप वैदिक विश्वामित्र के दत्तक पुत्र थे। इन्ही वशिष्ठ और विश्वामित्र ने ऋग्वेद मण्डल सात और तीन मे सुदास को अपना समकालीन होना कहा है। रामायण में भी ये दोनों हैं। वशिष्ठ के म्लेच्छ दल से हार कर ही विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के पिता तृशंकु के मित्र और पुरोहित बने (म० भा०)। अतएव इन ऋषियो का दीर्घजीवी होना ही मानना पड़ेगा। प्रायः सवा सौ वर्षों के होगे। आजकल भी एक व्यक्ति जारो आगा १६० वर्ष के थे, सो इन ऋषियों

की ऐसी अवस्थायें असम्भव नहीं हैं। इनके विशेष आधार कान्यकुब्ज के वंश विवरण मे मिलेंगे।

७—भद्रश्रेण्य हैहय, (न० ३०) ने काशीपति दिवोदास प्रथम (नं० ३४) को हराया। तालजंघ हैहय (न० ३६) ने बाहु, सूर्यवंशी (नं० ३८) को हराया। काशी के प्रतर्दन (नं० ३८) ने वीतिहोत्र हैहय (नं० ३७) को हराया तथा बाहु पुत्र सगर ने वीतिहोत्र के वंशजों को नष्ट किया। सगर ने विदर्भ के किसी वैदर्भ राजा की कन्या केशिनी से विवाह किया। पहले धावे मे हैहयों ने काशी का राज्य गिराया था। अनन्तर परशुराम द्वारा अर्जुन मारे गए। तब अर्जुन के पौत्र तालजंघ ने म्लेच्छों की सहायता से पौरव (न० ३५ से ३७ तक किसी) का सूर्यवंशी बाहु का तथा विश्वामित्री (३६, ३७) कान्यकुब्ज राज्य नष्ट किए। समझ पड़ता है कि जैसे वशिष्ठ ने म्लेच्छों की सहायता से कान्यकुब्ज राज्य को हराया था, वैसे ही तालजंघ ने काम निकाला। अनन्तर प्रतर्दन और सगर द्वारा हैहय और म्लेच्छ दोनों नष्ट हुए, तथा पौरव राज्य भी स्थापित हो गया, किन्तु कान्यकुब्ज उस काल फिर न पनपा। महाभारत शान्ति पर्व मे लिखा है कि सगर भी तालजंघ से हारे। अनन्तर बहुत काल बीतने पर सगर ने अश्वमेध किया। इससे जान पड़ता है कि वे दीर्घजीवी थे। उपर्युक्त कथनों के अधिक प्रमाण काशी, हैहयों और सगर के विवरणों में मिलेंगे।

८—उत्तरी बिहार के तुर्वशवंशी (न० २२) मरुत्त ने राज्यच्युत पौरव वंश के राजकुमार दुष्यन्त, पौरव (नं० २३) को गोद लिया (महाभारत)। मरुत्त भारी सम्राट थे, सो दुष्यन्त, पौरव राज्य भी प्राप्त करके, दोनो के शासक हुए। इसी लिए वे वंशकर कहलाये। आंगिरस के तीन पुत्र थे, अर्थात् उचथ्य (महाभारत के उतथ्य) बृहस्पति और संवर्त। मरुत्त ने संवर्त को ऋत्विज करके यज्ञ किया और उन्हें अपनी पुत्री भी ब्याह दी। उचथ्य के ममता से अन्धे दीर्घतमस हुए। उसी ममता में बृहस्पति द्वारा वितथित भरद्वाज हुए। दीर्घतमस ने आनव बलि (न० २४) की रानी में नियोग द्वारा अंग, वंग, कलिंग, सुह्म और पुण्ड्र नामक पांच पुत्र पैदा किए (म० भा०)।

अनन्तर नेत्रवान होकर वे गोतम या गौतम कहलाये। वायु ९९, ९२, मत्स्य ४८, ८३, बृहद्देवता. IV १५। पीछे दीर्घतमस ने दुष्यन्त पुत्र भरत (नं० २४) का ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ऐन्द्र महाभिषेक किया। इन्ही के कहने मे भरत ने विदथिन भरद्वाज को गोद लिया होगा। ये विदथिन भरद्वाज वैदिक ऋषि भरद्वाज से भिन्न थे, क्योंकि वे विदथिन के वशधरो का वर्णन अपनी कुछ ऋचाओं मे करते हैं।

९—रामायण के अनुसार राम के पिता दशरथ (नं० ३८) मैथिल सीरध्वज (नं० ३८) आंग लोमपाद (नं० ४०) वैशाली के ऋष्य शृंग प्रमति (जो दशरथ के दामाद थे) उत्तर पश्चिमी आनव केकय (नं० ३७) उत्तर पांचल दिवोदास (नं० ३८) तथा वैदिक तिमिध्वज शम्बर के समकालीन थे। रामचन्द्र के समकालीन ऊपर चक्र मे दिये हुए हैं। राम और दशरथ अयोध्या नरेश थे। इस राज्य को कालिदास ने उत्तर कोशल कहा है; यथा,

नमे ह्रिया शंसति किंचि दीप्सित स्पृहावतो वस्तुपु केषु मागधी।
इतिस्म पृच्छत्यनुवेलमाद्रत: प्रिया: सखीरुत्तर कोशलेश्वर:॥ रघुवंशे॥

उधर महाभारत वनपर्व मे दक्षिण कोशल मे ऋतुपर्ण (नं० ३६) राजा नल (नं० ३५ उत्तर पांचाल भृम्यश्व के समधी तथा नं० ३४ यादव भीमरथ के दामाद) के मित्र थे। इनके प्रपौत्र मित्रसह-कल्माषपाद राम के समकालीन पड़ते हैं।

१०—दक्षिण पांचाल नरेश (नं० ४८) अणूह के पुत्र पितृवर्तिन, पौरव (नं० ४८) प्रतीप के मित्र थे। (म० भा०)

११—ह० वं० २०, १०८३, ११११, २, द्विमीढ़ वशी वैदर्भ उग्रायुध (नं० ५२) ने उत्तर पांचाल नरेश (नं० ४९) प्रषत को राज्यच्युत किया, तथा दक्षिण पांचाल राजा (नं० ५३) जनमेजय को मारकर वह वंश समाप्त कर दिया। उग्रायुध को पौरव (नं० ५१) भीष्म ने युद्ध मे मारा।

१२—काशीपति अलर्क (नं० ४०) को अगस्त्य ऋषि की स्त्री लोपामुद्रा ने आशीर्वाद दिया (वायु पु० ९२, ६७) तथा स्वयं अगस्त्य ने राम से भेट की (रामायण)।

१३—यादव सजवान (नं० ४५) ने उत्तर पांचाल सृंजय (नं० ३६) की दो कन्याओं से विवाह किया आधार यादव वंशावली में कथित है। सजवान के पितामह सत्वत राम के समय में थे, तथा सृंजय के पौत्र सुदास भी राम ही के समकालीन थे। अतएव यहाँ दो पुश्तों का बीच पड़ता है। सम्भवतः सृंजय की पुत्रियाँ वृद्धावस्था की हों और सजवान भीमसात्वत की प्रथम युवावस्था के पुत्र हों।

१४—उत्तर पांचाल नरेश सुदास (नं० ३९) ने पौरव (नं० ३७) संवरण को राज्यच्युत किया। अनन्तर संवरण ने सुदास को हरा कर अपना राज्य फिर प्राप्त किया (आधार इन राज्यों के विवरण में है)।

१५—कैम्बे की खाड़ी के निकट इक्ष्वाकु के भाई शर्याति का आनर्त राज्य था। उनकी पुत्री सुकन्या के साथ च्यवन का विवाह हुआ (महाभारत)। अनन्तर आनर्तों के पतन पर च्यवन या उनके वंशधर भार्गव ऋषि हैहयों के गुरु हुए। वेद में आता है कि च्यवन इन्द्र से हारे, किन्तु महाभारत में उनका इन्द्र से जीतना लिखा हुआ है।

१६—भार्गवों का हैहय ने नाश किया। पीछे झगड़ा हो गया। भार्गव और्व के पुत्र ऋचीक शास्त्री हुए। उन्हीं के पुत्र जमदग्नि और पौत्र परशुराम हुए।

विश्वामित्र और जमदग्नि ने हरिश्चन्द्र के यज्ञ से शुनःशेप को बचाया और वह देवरात होकर विश्वामित्र के [illegible] पद से उठ कर प्रमुख हो गया। अनन्तर परशुराम द्वारा हैहयार्जुन मरा। इसने वसिष्ठ की भी तपोभूमि जलाई थी। फिर पांचाल सुदास, पौरव संवरण, दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद और तब दशरथ एवं राम के गुरु वसिष्ठ बने (आधार इन राज्यों के विवरणों में है)। पहले वसिष्ठ सुदास के पुरोहित हुए और पीछे उन्हें हटा कर विश्वामित्र इनके पुरोहित बने। [illegible] और [illegible] इनके दोनों में है। वसिष्ठ, तत्पुत्र शक्ति और शक्ति पुत्र पराशर भी वैदिक हैं। इन तीनों ने मिल कर एक ही ऋचा भी बनाई। उधर महाभारत में लिखा है कि [illegible] ही [illegible] शक्ति का निधन हुआ। [illegible] के पद से [illegible] शक्ति ने एक बार विश्वामित्र को [illegible] [illegible] [illegible] जमदग्नि की सहायता से ही इन्हें [illegible] [illegible]

और ऋग्वेद पर वेदार्थ मे लिखा है कि इस पर जब शक्ति जंगल मे गए, तब विश्वामित्र के कहने से राजसेवको ने इन्हे आग में जला डाला। पाँचवीं शताब्दी बी० सी० का शौनक कृत ग्रन्थ बृहद्देवता कहता है कि वशिष्ठ वारुणि के सौ पुत्रो को शाप के कारण राक्षस होने से सुदास या सौदासो ने मारा। उधर महाभारत मे आया है कि सूर्यवंशी कल्मापपाद ने ऐसा किया। वहाँ यह कथन है कि इन्हे दो शाप राक्षस हो जाने के मिले, तथा विश्वामित्र ने किंकर नामक एक राक्षस इनके हृदय मे बसा दिया, अर्थात् अन्तरंग मित्र बना दिया। यह कल्माषपाद दक्षिण कौशल नरेश (न० ३९) था, जो सुदास और रामही के समय मे पड़ता है। वहां के राजा सुदास का पुत्र होने से यह भी सौदास था। इसी लिए सौदास शब्द के कारण वशिष्ठात्मजों के निधनकर्ता मे भ्रम पड़ गया है। शक्ति के वैदिक मंत्रो मे मुख्य घटनाये नही है। महाभारत मे आया है कि शक्ति एक उद्धत पुरुष थे और मुख्यतया यही उनके बध का कारण हुआ।

जान पड़ता है कि किसी कारण से पाँचाल सुदास शक्ति से अप्रसन्न होकर विश्वामित्र पर कृपालु हुए। अनन्तर विश्वामित्र के समझाने से राजसेवको ने शक्ति का बध कर डाला और वशिष्ठ दक्षिण कोशलेश कल्माषपाद के यहाँ चले गए। वहाँ राक्षसो के संग से वह राजा नरमांस भक्षी हो गया था। अतएव वाशिष्ठो से उसका बिगाड़ हो गया। विश्वामित्र उसके यहाँ रहे तो नहीं, किन्तु उन्होने किंकर राक्षस को उसका मित्र बना दिया, तथा वाशिष्ठो के प्रतिकूल उसे उत्तेजना दी, जिससे उसने सारे वशिष्ठात्मजों को नरमांस के लिए मरवा डाला। अनन्तर वशिष्ठ का उससे मेल हो गया। इसके पीछे वशिष्ठ कहाँ रहे, सो पता नही है। एक वशिष्ठ दशरथ के यहाँ थे और राम के भी पुरोहित रहे। जब विश्वामित्र राम को मांगने दशरथ की सभा मे गए, तब वशिष्ठ का उनसे कोई विरोध न था, वरन् पूरा मेल था (रामायण)। इससे प्रकट है कि या तो यह कोई दूसरे वशिष्ठ थे, या दक्षिण कोशल से कभी कभी उत्तर कोशल भी आते थे, और उस काल तक वहीं रहने लगे थे, तथा विश्वामित्र का उनसे मेल हो चुका था। राम और कल्मापपाद के समकालीन होने से दूसरा

ही विचार ठीक समझ पड़ता है और दो वशिष्ठों की कल्पना अनावश्यक प्रतीत होती है। सगर के पुरोहित भी वशिष्ठ ही हुए। (सगर का विवरण देखिये)। ऊपर के वर्णनों से प्रकट है कि हरिश्चन्द्र सगर और कल्माषपाद राम के थोड़े ही इधर उधर हुये। पार्जिटर महाशय ने पौराणिक वंशावलियों का समकालीनेताओं से मिलान कम किया और कई सामञ्जस्यपूर्ण कथाओं को ब्राह्मणों की कल्पना बतला कर इन लोगों में शताब्दियों का अन्तर माना, अथच सभी चन्द्रवंशी वंशावलियों को अधूरा कहा। इसी लिए उन्हें कई वशिष्ठो की निराधार कल्पना करनी पड़ी। पुराणों मे केवल दो वशिष्ठ हैं, अर्थात् एक मैथिल निमि द्वारा मरने वाले और दूसरे उपयुक्त व्यक्ति। हरिश्चन्द्र के देवराज और सवर्ण के सुवर्चस वशिष्ठ चाहे दो हो, किन्तु समझ एक ही पड़ते हैं। पराशर अवश्य एकाधिक हैं। एक पराशर राम के समय वाले शक्ति पुत्र हैं, और दूसरे परीक्षित (पौरव नं० ५५) को भागवत सुनाने वाले शुकदेव के पितामह तथा कृष्ण द्वयपायन व्यास के पिता। दक्षिण पांचाल (नं० ४८) अणूह (मत्स्य ४९, ५६) के श्वसुर कोई दूसरे शुकदेव थे, क्योंकि उनका समय परीक्षित से बहुत पूर्व है और इस काल भी शुकदेवजी लड़के ही थे।

१७—अब भार्गवों का वंश उठाया जाता है। भृगु ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों मे से एक और बड़े मान्य प्राचीन ऋषि थे। आपने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनो का अपमान परीक्षा लेने को किया, किन्तु इनको इससे क्षति न पहुँची। कथा दार्ष्टान्तिक मात्र है। प्रयोजन इनकी प्राचीन महत्ता से है। इनके पुत्र च्यवन ऊपर आ चुके हैं। एक शुक्राचार्य (हरिवंश) हिरण्यकशिपु तथा वलि के पुरोहित थे, जिनके पुत्र सन्द और मर्क प्रह्लाद के शिक्षक थे। इन दोनों का कथन ऋग्वेद में भी है। दूसरे शुक्राचार्य भृगु के दूसरे पुत्र थे जो ययाति (पौरव नं० ६) के समकालीन (म० भा०) वृषपर्वा के पुरोहित थे। इन दोनों की कन्यायें देवजानी तथा शर्मिष्ठा ययाति को व्याही थीं। पहली के यदु और तुर्वश नामक शुक्र के दौहित्र हुए और दूसरी के अनु, द्रुह्यु और पुरु नामक वृषपर्वा के दौहित्र। इन पाँचो वंशों के

कथन वेद में बहुत अधिकता से हैं। शुक्राचार्य ययाति (नं० ६) के श्वसुर थे, तथा इनके बड़े भाई च्यवन (नं० २) आनव नरेश शर्याति के दामाद जान पड़ते हैं। शायद भृगु दीर्घजीवी और शुक्र वृद्धत्रय के पुत्र थे। सुकन्या ने च्यवन की सेवा तो अच्छी की, किन्तु बिना राजसी ठाटबाट के स्त्री की भाँति रहने से इनकार किया, अथवा अनिच्छा प्रकट की। अनन्तर किन्हीं दो वैद्यों (म० भा० में आश्विनो) ने इस नियम पर वृद्ध च्यवन को युवा करने का वचन दिया कि उनके युवा होने पर सुकन्या उन तीनो मे से जिसे पसन्द करे वही उसका पति हो। च्यवन युवा हो गये और सुकन्या के पसन्द करने पर राजसी ठाट से उसके साथ रहने लगे। च्यवन की भी महत्ता कम न थी। आपने इन्द्र तक का सामना किया, जिसमें वेदानुसार पराजय तथा महाभारतानुसार विजय पाई। वेद मे आपका वृद्ध से युवा होना कई बार लिखा है। पार्जिटर महाशय ने साधार कथन किया है कि आनर्त राज्य के पतन पर च्यवन हैहयो के यहाँ रहने लगे। हैहय का नं० २५ है, तथा शर्याति स्वयं वैवस्वत मनु के पुत्र लिखे हैं। हरिवंश मे आया है कि सूर्यवंशी युवनाश्व के भाई हर्यश्व को उनके श्वसुर मधु दैत्य ने आनर्त का राज्य दिया, जहाँ उनके पीछे उनका दत्तक पुत्र यदु राजा हुआ। हर्यश्व की बहिन अग्निवर्णा नामक नागराज को ब्याही थी, जिसकी पाँच पुत्रियो के साथ यदु का विवाह हुआ। इन्ही यदु के वंशधरो ने गिरि गोमन्त (गोवा) की ओर करवीरपुर तथा क्रौंचपुर बसाये थे, जिनके तत्कालीन स्वामियो के समय श्रीकृष्णचन्द्र उधर गये। यह सूर्यवश शर्याति ही का समझ पड़ता है, अथवा सम्भव है कि उनके पीछे का हो। शायद कथित मधु दैत्य वास्तव मे यदुवशी (नं० ३९) मधु नरेश थे। यही बात ठीक समझ पड़ती है, क्योकि लवणासुर को मार कर जब रामानुज शत्रुघ्न ने मथुरा मे अपना राज्य जमाया और फिर स्वपुत्र को वहाँ का शासक बनाया, तब हरिवंश के अनुसार मथुरा को अपनी समझ कर यदुवंशी नरेश (नं० ४३) भीमसात्वत ने उस पर अधिकार कर लिया। यदि वह मधु दैत्य की होती, तो उसे वे अपनी कैसे समझते ? यह प्रकट है कि शार्यातों के पीछे पुण्यजन

राक्षसो ने आनर्त पर अधिकार किया, तथा भार्गव हैहयो के पुरोहित हुए, एवं शार्यात क्षत्रिय हैहयो मे मिल गए। भार्गवों का खास मान हुआ और उन्हें धन भी अच्छा प्राप्त हुआ। कुछ दिनो मे धनाभाव से हैहयो ने भार्गवों से द्रव्य माँगा। उन्हाने भी अपने पास धनाभाव बतलाया, किन्तु खोदने से उनके यहाँ प्रचुर द्रव्य निकला (म० भा०)। इस पर क्रुद्ध होकर हैहयो ने गर्भ तक फाड़ फाड़ कर उनके वंश का नाश किया, केवल और्व नामक एक भार्गव बच रहे। उन्ही के पुत्र ऋचीक ऋषि प्रकट कारणो से शस्त्री हुए। महाभारत शान्ति पर्व दान धर्म मे ऋचीक का और्वात्मज होना लिखा है। उनका विवाह विश्वामित्र की बहिन सत्यवती से हुआ। सत्यवती पुत्र जमदग्नि और विश्वामित्र के जन्म प्रायः साथ ही हुए। जमदग्नि के पाँचवे पुत्र परशुराम ने पुराना और पिता का नया वैर निकाल कर हैहयवशी (नं० ३४) अर्जुन का युद्ध में वध किया। अर्जुन और उनके पिता कृतवीर्य दोनो बड़े प्रतापी और विजयी थे। समझ पड़ता है कि वृद्धावस्था मे अर्जुन मारे गए। यदि यादव (२९) मधु के दौहित्र यदु के एक ही पुश्त पीछे आनर्त राज्य राक्षसो ने जीता हो, तो भी यह समय दशरथ के समकालीन सत्वन्त का पड़ता है। उधर भार्गवो की कम से कम चौथी पीढ़ी वाले परशुधर अर्जुन (३४) के समकालीन थे, सो भार्गववश का यदु से कुछ पहले ही साहंज या महिपमन्त के समय हैहयों का पुरोहित होना समझ पड़ता है। इस सम्बन्ध मे निकट ऊपर का नोट १५, भी देखिए।

१८--द्रुपद के पिता पृषत् (उत्तर पाँचाल नं० ४९) गंगा द्वारवासी, द्रोण के पिता, आंगिरस भरद्वाज के मित्र थे। भरद्वाज ही ने अग्निवेश को आग्नेयास्त्र सिखलाया और उन्होने द्रोण को (म० भा०)।

१९--दत्तात्रेय ने हैहयार्जुन ३४, पर कृपा की जिससे उसका प्रताप बढ़ा। उनके पुत्र निमि ने पहला श्राद्ध किया। जमदग्नि ने भी यही किया।

२०—नरनारायण और बादरायण विश्वामित्र के पुत्र कहे गए

हैं। नरनारायण युधिष्ठिर के समकालीन तथा बादरायण बुद्ध के पीछे वाले होने से विश्वामित्र के वंशधर मात्र हो सकते हैं।

२१—वैशाली के (नं० २२) मरुत्त का पुत्र दम हुआ। उसका आठवाँ वशधर त्रिणविन्दु त्रेता मे राजा था। उसकी पुत्री इलविला के पुत्र पुलस्त्य ऋषि के पुत्र वैश्रवण हुए। (वायु ७०, २९, ५६, ब्रह्माण्ड, III ८, ३४, ६२, म० भा०, लिंग ६३, ५५, ६६, कूर्म I ९, ७, १५, पद्म २६९, १५, १९, भागवत IX २, ३२ रामायण, VII २, ५, ९, III २२,) इनकी कुलीनास्त्री के पुत्र कुबेर नर्मदा पर हुए (शतपथ ब्राह्मण XIII ४, ३, १०) और पौत्र नलकूबर। कुबेर ने सुमाली राक्षस से लंका जीती। माल्यवन्त और माली उसके भाई तथा पुष्योत्कढ़ा, मालिनी और राका नाम्नी तीन कन्यायें थीं। यही तीनो वैश्रवण को मिली। इनमे पहली के पुत्र रावण तथा कुम्भकरण हुए, दूसरी के विभीषण और तीसरी के खर तथा शूर्पणखा (कन्या)। इसके पति को रावण ने बे जाने हुए थोड़ी ही अवस्था मे मार डाला। इसी से शूर्पणखा का वह बहुत मान करता था (म० भा०)। रावण ने दक्षिण पाँचाल नरेश (नं० ४१) अनरण्य को युद्ध मे मारा (रामायण)। पौलस्त्यो की तीन शाखाये प्रसिद्ध हैं, अर्थात् आगस्त्य, कौशिक या वैश्वामित्र तथा अन्य पौलस्त्य। पौलह और ऋतु भी आगस्त्य थे। पुलस्त्य ने पुत्रवान होकर भी अगस्त्य वंशी एक बेटे को गोद लिया था. जिससे उनकी आगस्त्य शाखा चली। अगस्त्य का वश बहुत बड़ा था।

२२—युधिष्ठिरी राजसूय के सम्बन्ध मे भीम ने उत्तर कौशलेश श्रावस्ती नरेश वृहद्बल तथा अयोध्या नरेश पुण्यात्मा दीर्घयज्ञ को हराया (म० भा० सभा पर्व)।

२३—विदेह वंशी धृति (नं० ५२) और बहुलाश्व, न० ५३, यादव श्रीकृष्ण, (नं० ५५) के समकालीन थे (भागवत)।

२४—निषद. विदर्भ, दक्षिण कोशल, चेदि और दशार्ण मिली हुई रियासतें थी (प्रधान)। निषदराज वीरसेन के पुत्र नल वैदर्भ भीमरथ (३४) के दामाद थे। भीम रथ और चेदि राज सुबाहु दोनो दशार्ण नाथ सुद्युम्न के दामाद थे (म० भा० वन पर्व)। दमयन्ती-

भैमी नल की रानी थीं। उत्तर पांचाल नरेश भृम्यश्व (नं० ३५) के पुत्र वेदर्षि तथा राजा मुद्गल को नलायनी इन्द्रसेना ब्याही गई (ऋग्वेद तथा म० भा०।)

२५—अर्जुन पौरव नं० ५३ के भाई सहदेव ने विदर्भनरेश भीष्मक तथा दक्षिण कौशलेश को हराया (सभापर्व म० भा०।)

महाभारत आदि मे और भी बहुतेरी समकालीनतायें मिलेंगी। इन सब की टक्कर उपर्युक्त वंशावलियों से बैठ जाने से उनकी दृढ़ता प्रमाणित होती है। आगे के वर्णनों में और भी सम सामयिक विवरण आवेंगे। यहाँ मुख्य कह दिए गए हैं।

———

दसवाँ अध्याय

मनु-रामचन्द्र काल (त्रेतायुग)

प्रायः १९००--१२५० बी० सी० सूर्य्यवंश

त्रेतायुग के विषय मे दसवे से १३ वे अध्यायो तक जितने कथन है, उनके आधार बहुधा वहीं है, तथा शेष १२ वें अध्याय के अन्त मे और छठवे से आठवें अध्यायों मे है। पूर्ववाले तीनों वैदिक अध्यायों से प्रकट है कि वेदो मे ऐतिहासिक घटनाओं का कथन प्रचुरता से है, किन्तु सामूहिक क्रमबद्ध वर्णन का अभाव है। इससे केवल वेदों के सहारे सक्रम इतिहास का लिखना कठिन है। ऐसा करने मे बहुत करके अनुमानो का ही सहारा लेना पड़ेगा। फिर भी वेदों मे घटनाओ के जो कथन है वे ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत लाभदायक हैं। पुराणो और इतिहासो में कथित घटनाओ को पाश्चात्य लोग कभी-कभी अनिश्चित कथा कहानी मात्र मानते थे। कुछ पौराणिक गाथाएँ अनिश्चित हैं भी किन्तु उनके मुख्य कथनो को ध्यानपूर्वक पढ़ने और उनमे से साहित्य तथा माहात्म्य सम्बन्धी अत्युक्तियाँ निकाल डालने से निश्चित इतिहास ज्ञात हो सकता है। पुराणो के सब से अधिक निश्चित भाग वंश वृक्ष हैं। प्रत्येक राजकुटुम्ब अपनी वंशावली को बड़ी युक्ति के साथ रक्षित रखता था। राजपुरोहितादि भी राजकुल के वंशवृक्ष का बड़ी सावधानी से रक्षण करते थे। पुराणों मे वंशावलियो के विवरण बहुत स्वल्प अन्तर के साथ एक दूसरे से मिलान भी खा जाते है। इन कारणो से वंशावलियाँ दृढ़ समझ पड़ती हैं। केवल इन्हीं को दृढ मान लेने मे हम वैदिक घटनाओ के आधार पर क्रमबद्ध इतिहास लिख सकते हैं। पुराणो के अनिश्चित भागों का सहारा न लेने से भी यह इतिहास अच्छा बन सकता है। इसलिए वैदिक समय का इतिहास लिखने में हम पुराणो में लिखित वंशवृक्षों

का सहारा लेकर अन्य घटनाओ मे वेदों ही को प्रधानता देगे और पुराणों की दृढ़ तथा लोकमान्य बातों को ही मिला कर ऐतिहासिक शुद्धता का पूरा ध्यान रक्खेंगे। चौथे अध्याय मे पौराणिक राजवशो का कथन हो चुका है और ५ वे मे पहले वंश का भी सहारा लेकर इतिहास कहा जा चुका है। अब वंश नं० २ व ३ के सहारे पर यहाँ वैदिक समय का इतिहास लिखा जावेगा। न० २ सूर्यवश है और न० ३ चन्द्रवश।

ऊपर कहा जा चुका है कि चाक्षुष मन्वन्तर की मुख्य घटनाएँ समुद्रमन्थन और बलिबन्धन है, जिनका वर्णन ५वे अध्याय मे हो चुका है। बलिबन्धन के पीछे मगध पर्य्यन्त देशो मे आर्य्यों की राजधानियाँ स्थिर होने लगी। चाक्षुष मनु के पीछे पहला राजघराना जो महत्ता को प्राप्त हुआ वह सूर्य्यवंश ही था। स्वायम्भुव और वैवस्वत मन्वन्तरो के बीच मे कुछ राजघरानों के नाम अवश्य मिल सकते हैं, किन्तु उनके विजयो, वशवृत्तो आदि का पूरा पता नहीं चलता। आर्य्यों के शत्रुओं मे दैत्य दानवो आदि का हाल कुछ विस्तार से लिखा है। आर्य्य नेताओ मे पाँचो मनु, नृसिंह और वामन के नाम मिलते हैं। स्वायम्भुव मनु के वशधरों के पीछे हमको सब से बड़ा राजकुल सूर्य्यवंश का मिलता है, जिसके पहले स्वामी वैवस्वत मनु स्वय किसी सूर्य्य नामक व्यक्ति के पुत्र कहे गये हैं।

आर्यों की दूसरी भारतीय धारा—मनुवश—उत्तर कोशल महाजनपद। फारस के उत्तर पूर्व से अफग़ानिस्तान और पामीर तक किसी स्थानमे आर्य सम्राट्, इन्द्र का राज्य था। उनके युद्ध दैत्य दानवों आदि से हुआ करते थे। बृहस्पति उनके पुरोहित थे तथा चन्द्र औषधियों और वनस्पतियों के स्वामी। एक बार चन्द्र गुरु पत्नी तारा को भगा ले गए। वे दोनो एक दूसरे को चाहते थे। बृहस्पति के प्रयत्नो से इन्द्र ने चन्द्र से तारा फेर देने को बहुत कहा सुनी की और उनके न मानने पर सेनासन्धान भी कर दिया। चन्द्र ने दैत्य-दानवो की सहायता से उन्हे हरा दिया। अनन्तर सन्धि होकर तारा गुरु को मिल गई, तथा बृहस्पति ने यहाँ कुछ ही पीछे उत्पन्न तारा पुत्र बुध, चन्द्र की वास्तविक पितृत्व

के कारण उन्हें मिला। वैवस्वत मनु नामक एक दूसरे प्रधान आर्य थे, जिनकी पुत्री इला का समय पर बुध से विवाह हुआ। जो इन्द्र चन्द्र की मन मैली हुई थी, वही शायद मनु और बुध के भारत आने की कारण हुई, अथवा यह भी सम्भव है कि उनका इधर आना अन्य कारणो पर अवलंबित हो (हरिवंश और महाभारत)। हमारे पाँचवे अध्याय मे इसका कुछ कथन हो चुका है। दलाल के कथनो तथा मन्वन्तरो मे आया है कि आर्य लोग किन दशाओं मे भारत मे आये। यहाँ दूसरी विजयिनी आर्य धारा का विवरण हो रहा है। पार्जिटर महाशय का मत है कि यह धारा तिब्बत की ओर से आई। जो हो, हम वैवस्वत मनु को अयोध्या तथा बुध को प्रतिष्ठानपुर (भूँसी प्रयाग के इस पार) मे स्थापित होते देखते है। सम्भवतः इनके इलाव्रत से आने से चन्द्रशाखा ऐल कहलाई। बुध की स्त्री इला थी, जिस के वंशधर भी सारे ऐल थे।

इला के कारण भी ऐल नाम हो सकता था, अथवा इस नामकरण की इला और इलाव्रत दोनो कारण हो। मनु के एक पुत्र सुद्युम्न भी किम्पुरुष कहे गए है। वे इलाव्रत चले गए। उनके तीन पुत्र उत्कल, विनताश्व और गय थे। उत्कल को उत्कल देश (गया के दक्षिण पच्छिमी बंगाल) मिला, विनताश्व उपनाम हरिताश्व को कोई पच्छिमी देश तथा गय को गया और पूर्वी प्रान्त (मत्स्य १२,१८ पद्म V ८, १२३)। कही कही यह भी लिखा है कि हरिताश्व ने उत्तरी कुरु तथा पूर्वी देश पाये (म० भा० ७५.३१,४२,३)। सुद्युम्न के ५० और पुत्र थे जो आपसी युद्ध मे कट मरे। अयोध्या का बसाना बाल्मीकि ने मनु द्वारा लिखा, तथा कही कही उनके पुत्र इक्ष्वाकु द्वारा इस पुरी का बसाया जाना भी कथित है। जान पड़ता है कि यह कार्य मनु ने प्रारम्भ किया और इक्ष्वाकु ने पूरा। मनु के मुख्य उत्तराधिकारी इक्ष्वाकु अयोध्या के राजा हुए। उनके अन्य पुत्रों मे नाभाग या नृग, धृष्ट, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभानेदिष्ठ, करूष, शर्याति, प्रषध्र आदि थे। नाभाग नृग को कहा है। इधर इसी वंश के राजा न० २८ का नाम भी नाभाग था। नृग का महादानी होना प्रसिद्ध है। इसी गड़बड़ मे उन्हे एक बार शाप भी मिला। शर्याति ने कैम्बे की खाड़ी के पास

राज्य स्थापित किया, जो कई पीढ़ी चला। इसका कथन आगे होगा। धृष्टि के विषय में कुछ विशेष कथन नहीं है। शिवपुराण का कथन है कि धार्ष्टों को बाह्लीक देश मिला। कारूषों का आधिपत्य रीवां तथा पूर्वी सोन पर हुआ। कारूप क्षत्रियों की वीरता प्रसिद्ध है। श्रीकृष्ण बलराम से युद्ध करने वाले मुष्टिक, चाणूर कारूष थे। नरिश्यन्त अनिश्चित हैं। प्रषध्र शाप वश शूद्र होगए। नाभाग और तत्पुत्र अम्बरीष का अधिकार उत्तरी यमुना पर भी लिखा है। इसका विवरण यथा समय होगा। नाभानेदिष्ठ से वैशाली राज्य और वंश चले। इसका भी विशेष कथन यथास्थान आवेगा।

इक्ष्वाकु और तद्वंश

इनके सौ पुत्र कहे गए है, जिनमे शकुनि, वशाति, निमि और विकुक्षि की मुख्यता है। विकुक्षि अयोध्या के राजा हुए। कहते हैं कि निमि ने मिथिला प्राप्त करके जयन्त में राजधानी बनाई। पहले जयन्त राजधानी बनी और बहुत काल पीछे मिथिला (वायु पु० ८९,१,२,६ ब्रह्माण्ड iii ६, ४, १, ६)। यह ठीक है किन्तु निमि इन्हीं इक्ष्वाकु के पुत्र थे, सो अनिश्चित है। कारण यथास्थान आवेगा। शकुनि के नेतृत्व मे ४५ ऐक्ष्वाकु उत्तरापथ पंजाब में राज्य करने लगे तथा वशाति के नेतृत्व मे ४८ भाई दक्षिणापथ में स्थापित हुए। इनमें दंडक भी एक थे। इन्हीं के नाम पर महाकान्तार दंडक वन कहलाया। समझ पड़ता है कि उधर जाने पर यातो वशाति के स्थान पर या उनके मरने पर दंडक की प्रधानता हुई होगी। इनके पुरोहित शुक्राचार्य थे। इनकी अनुपस्थिति मे राजा ने इनकी कन्या से व्यभिचार कर डाला। पलटने पर जब शुक्र ने हाल सुना तो शाप दिया कि प्रजा समेत राजा नष्ट हो जावे। अनन्तर वे तो अन्य ऋषियों सहित जनस्थान चले गए और इधर यह उपनिवेश नष्ट होकर जैसा का तैसा जंगल होगया। सम्भवतः शुक्र के प्रयत्नों से ऐसा हुआ होगा।

मुख्य ऐक्ष्वाकु विकुक्षि ने यज्ञार्थ शिकार खेलने जाकर मारे हुए पशुओं मे से मार्ग में खाना बना कर एक शशक का भक्षण कर लिया, जिससे वे शायद शशाद कहलाये। इस उपाधि से उस काल यज्ञ का

गौरव समझ पड़ता है। ये राजर्षि भी कहलाये थे। इनके पुत्र पुरंजय ने इन्द्र की सहायता करके ककुत्स्थ की उपाधि पाई, जिससे इनका वंश ऐक्ष्वाकु के साथ काकुत्स्थ भी कहलाया। विश्वगश्व का हयदल किसी युद्ध से पराजित होकर न पलटा। इन राजाओं के समय उधर चन्द्रवंशी भारी उन्नति कर गये। इनमें नहुष, ययाति, यदु, पुरु, आदि सम्राट हुए, जिनके कथन आगे आवेंगे। सूर्यवंशी (नं० १०) श्रावस्त ने श्रावस्ती पुरी बसाई। कुवलयाश्व ने पराक्रमी धुन्ध राक्षस को मार कर धुन्धमार की उपाधि पाई। इस युद्ध में राजा के कई पुत्र काम आये। इस काल अश्व नाम पर कई राजे हुए। इनमें हयदल की मुख्यता समझ पड़ती है। दृढ़ाश्ववीर, लोकप्रिय और शान्तिरक्षक हुआ। निकुम्भाश्व ने युद्धों तथा यज्ञो के बाहुल्य से अपना कोष बिगाड़ा। इनके पुत्र दूसरे युवनाश्व, धार्मिक, वीर और यज्ञकर्ता थे। वे घर में शशकवत सीधे किन्तु युद्ध में सिंहवत् प्रचण्ड थे। प्रसिद्ध मांधातृ इन्हीं के पुत्र थे।

मान्धातृ और वंशज

इस काल तक यादवो का प्रभाव बढ़ चुका था और यादव नरेश शशिबिन्दु ने पौरवो को राज्यच्युत किया; तथा द्रुह्यु वंशियो को भी दबाया। अनन्तर उनके वंशज छोटे-छोटे राजा होकर बलहीन हो गए। मान्धाता का विवाह शशिबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से हुआ। आप केवल १६ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे। यह गौरवर्ण, अच्छे डील-डौल युक्त और बलवान थे। बिन्दुमती और गौरी के मान्धाता से सम्बन्ध के आधार नवे अध्याय मे आ चुके हैं। मान्धाता की कथा महाभारत III १२६, १०४, ६२ VII ६२, २२८१, २ मे है। अन्य आधार आगे के एक अध्याय मे हैं। कहते हैं कि मान्धाता की सेना दस लाख थी, जिससे आपने सारा भारत, लंका तथा महासागर के टापुओ को जीत कर सम्राट् की उपाधि पाई। इनका सम्राट् होना सिद्ध है किन्तु इतनी सेना तथा विजयो के कथन असिद्ध। आपके द्वारा आनव जनमेजय (नं० १९), द्रुह्यु वंशी (नं० २१) अगार, तुर्वश वशी (न० २२) मरुत्त, सुधन्वा, गय, आंग (न० ४६)

बृहद्रथ, पुरु, राम आदि का जीता जाना लिखा है। जनमेजय अंगार और मरुत्त इनके समय में पड़ते भी हैं। एक सुधन्वन (नं० २९) मागध थे, जिनका समय इनके पीछे पड़ता है। गय स्वयं मनु-वैवस्वत के पौत्र (नं० २ सुद्युम्न पुत्र) तथा पुरु (नं० ७) दोनों मान्धाता से बहुत पहले के हैं। ऊपर दिखलाया गया है कि ऋग्वेद में हारे हुए वंशजों के स्थान पर स्वयं यदु, अनु, द्रुह्यु आदि का हारना (मारा जाना तक) लिखा है। वैसे ही यहाँ गय वंशियों तथा पुरुवंशियों के हराने के स्थान पर स्वयं गय और पुरु के नाम लिखे हैं। प्रयोजन इनके वंशधरों के हारने का है। अंग बृहद्रथ मान्धातृ से प्रायः २५ पीढ़ी नीचे हुए हैं। इनका यहाँ नाम लिखा जाना पौराणिक सम्पादकों की भूल है। राम इस काल कोई प्रसिद्ध राजा न थे। सम्भव है कि वैदिक यज्ञकर्ता राम से प्रयोजन हो। सुधन्वन, असित और बृहद्रथ कोई अज्ञात साधारण राजे हो सकते हैं, जो मान्धाता से हारे हों। किसी पच्छिमी नरेश अरुद्ध को जीत कर आपने गान्धार प्राप्त किया, यह भी कथन है। अनन्तर मान्धाता द्वारा पराजित द्रुह्यु वंशी अंगार के पुत्र गन्धार गान्धार में स्थापित हो गए। अयोध्या नरेश को इस दूरस्थ प्रान्त को स्ववश रखने में मान्धाता के पीछे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। मान्धाता न्यायी और सबल शासक थे, जिन्होंने चोरों की लूट मार बन्द कर दी। उत्तर पच्छिमी भारत में घोर अकाल का भी आपने अच्छा प्रबन्ध किया, तथा कुरुक्षेत्र में अनेक यज्ञ किए। प्रसिद्ध सौभरि ऋषि आपके दामाद थे। सौभरि पुत्र गौर ने पूर्व में एक राज्य स्थापित करके अपने नाम पर बसाये हुए गौर नगर को उसकी राजधानी बनाया। शायद इसी नाम पर उत्तरी बंगाल गौड़ देश कहलाता हो। मथुरा में इस काल एक प्रतापी राक्षस राज्य करता था। एक बार वृद्धावस्था में थोड़े ही से साथियों सहित मान्धाता उस ओर होकर निकले। राक्षस राज प्राचीन पराजय से इनसे रुष्ट था, सो उसने बड़े भारी दल की सहायता से युद्ध में इनका बध कर डाला।

तदनन्तर अयोध्या में इनका पुत्र कुत्स राजा हुआ। गान्धारों का एक बार तो आप दमन कर सके, किन्तु दूसरे बार पराजित होकर

बन्दी होगए। इसी से आपका नाम पुरुकुत्स (बहुत बदनाम) पड़ा। तब आपके भाई मुचकुन्द ने ससेन जाकर गन्धर्वों (अफग़ानों) को पराजित करके इनका मोचन किया। पलटने पर बन्दी होने के कारण प्रजा ने इन्हें न माना और इनका पुत्र दुधमुहां बच्चा त्रसदस्यु राजा हुआ, तथा उसके चचा अम्बरीष और मुचकुन्द बली हुए। तरुण होने पर त्रसदस्यु ने गन्धर्वों पर कई आक्रमण किए और उनका बल चूर्ण कर दिया। उसके प्राय: ७० वर्षों के राजत्व काल में उत्तर कौशल की दशा बहुत अच्छी रही। पुरुकुत्स और तत्पुत्र त्रसदस्यु वैदिक नरेश भी हैं। वहाँ भी पुरुकुत्स के बंदी होने की दशा में त्रसदस्यु का जन्म लिखा है, तथा उनकी बड़ी प्रशंसा है। फिर भी कुछ पंडित लोग वैदिक त्रसदस्यु को इस कारण पौरव मानते हैं कि उनके द्वारा पौरवों को कुछ मिलना लिखा है। इनका पौरव होना असिद्ध है। पौराणिक पौरव वंश में कोई पुरुकुत्स और त्रसदस्यु नहीं है। शतपथ ब्राह्मण उन्हें ऐक्ष्वाकु कहता है (XIII ५,४५)। अतएव इस नाम के एक नरेश सूर्य्यवंशी अवश्य है। पुरुकुत्स राज्यच्युत होने पर नर्मदा नदी की ओर चले गए। मुचकुन्द ने माहिष्मती (वर्तमान मांधाता) पुरी बसाई। इन्होंने मान्धाता ही नाम रक्खा होगा, किन्तु पीछे हैहय महिष्मन्त ने इसे माहिष्मती कहा होगा।

त्रसदस्यु के पीछे नं० २४ सम्भूत (वेद में तृत्त) से नं० २७ श्रुत पर्यंत कोई मुख्यता न हुई; केवल रुरुक शान्तिप्रिय कहे गए हैं और वृक भयानक। तालजंघ हैहय ने अपनी म्लेच्छ सेना के बल से जब उत्तरी भारत के नरेशों पर आक्रमण किया, तब उत्तर कोशल राज्य रक्षित रहा। वृक का समय तालजंघ से पहले का था। जान पड़ता है कि उन्होंने कभी हैहय दल को हराया होगा जिससे ताल जंघ ने इधर कोशल के प्रतिकूल प्रयत्न न किया।

अनन्तर (नं० २८) नाभाग एक बड़े राजा हुए। नाभाग ने एक वैश्या स्त्री से विवाह किया, जिससे पहले तो इनके पिता अप्रसन्न हुए, किन्तु पीछे उन्होंने क्षमा करके इन्हें युवराज के पद पर प्रतिष्ठित किया। इससे जान पड़ता है कि ऐसा जाति सम्बन्धी प्रश्न इस काल गौरवपूर्ण न था। नाभाग और अम्बरीष के राज्य यमुना तट पर भी

राज्य जमाया। कहते हैं कि लङ्का में उस काल भी राक्षस लोग रहते थे। इन्हीं को जीत कर कुबेर ने वहाँ का राज्य प्राप्त किया। इसमें माल्यवान् और सुमाली नामक दो भाई प्रधान थे। सुमाली की पुष्योत्कढ़ा, मालिनी तथा राका नाम्नी तीन परम सुन्दरी कन्यायें थीं। कुबेर ने अपने पिता से उतना व्यवहार नहीं रक्खा जितना पितामह से। इस बात से वैश्रवण उनसे अप्रसन्न हुए। इनको प्रसन्न करने के विचार से कुबेर ने सुमाली की तीनो कन्याये इन्हे ला दीं। इनमे वैश्रवण ने पुत्र उत्पन्न किये। पुष्योत्कढ़ा के पुत्र रावण और कुम्भकर्ण हुए, मालिनी के विभीषण और राका के खर पुत्र तथा शूर्पणखा कन्या। जब ये बालक समर्थ हुए, तब इन्होंने नाना से मिल कर भाई कुबेर से लङ्का छीन ली तथा पुष्पक नामक व्योमचारी विमान भी ले लिया। इस प्रकार राक्षसो का राज्य लङ्का मे फिर स्थापित हो गया।

रावण को होनहार समझ कर मय दानव ने अपनी कन्या मन्दोदरी उसको व्याह दी। रावण ने अपने तीनो भाइयो तथा बहिन के भी उचित रीति से विवाह किये। रावण के मेघनाद नामक बड़ा प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त अक्षयकुमार, नरान्तक सुबाहु आदि कई अन्य प्रतापी रावणात्मज हुए। सुबाहु गन्धर्व-कन्या चित्राङ्गदा से हुआ था। कुम्भकर्ण के पुत्रो का नाम कुम्भ और निकुम्भ था। विभीषण का पुत्र तरणीसेन था और खर का मकराक्ष। रावण के पुत्रो और भतीजो मे मेघनाद और मकराक्ष प्रतापी और प्रसिद्ध थे। मेघनाद ने इन्द्र को पराजित करके इन्द्रजीत की पदवी पाई। रावण के आधिपत्य मे राक्षसो का प्रताप बहुत बढ़ा। इन लोगों का वंश-विस्तार भी ख़ूब हुआ। रावण ने दिग्विजय के विचार से सारे भारतवर्ष को पराजित करके समग्र देश मे अपना आतङ्क जमाया। दक्षिण मे किष्किन्धा नामक स्थान मे वानरराज बालि राज्य करता था। उससे द्वन्द्व युद्ध मे स्वय रावण पराजित हो गया। इस बात से वह बालि के शौर्य पर इतना मोहित हुआ कि सेना लेकर उसे जीतने का प्रयत्न छोड़ आजीवन उसका मित्र बन गया। बालि ने भी यह मित्रता का सम्बन्ध सदैव पुष्ट रक्खा। बालि के भाई सुग्रीव से

उसका विरोध हो गया था। इसलिये सुग्रीव हनुमान् आदि पाँच मन्त्रियो सहित ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था। रावण ने एक युद्ध में बिना जाने अपनी बहिन शूर्पणखा के पति को मार डाला। इस बात का उसे आजीवन पश्चात्ताप रहा और वह शूर्पणखा का सदैव मान करता रहा। दक्षिण मे उस काल दण्डकारण्य नामक बडा भारी जङ्गल था। उसी को महाकान्तार भी कहते है। रावण ने खर को एक छोटी सी सेना समेत दण्डकारण्य मे स्थापित किया और अपने नाना के भाई माल्यवान को वहाँ का प्रबन्ध सौपा। ताड़का नाम्नी एक यक्षिणी भी इन्हीं राक्षसो मे मिल गई। उसके पुत्र मारीच और सुबाहु थे। इन दोनों को ताड़का समेत रावण ने विश्वामित्राश्रम (बक्सर, जिला शाहाबाद, बिहार) के समीप स्थापित किया। इस प्रकार लङ्का के बाहर की भारत मे रावण की दो सेनाये रहा करती थी अर्थात् दण्डकारण्य और विश्वामित्राश्रम मे। ये लोग ब्राह्मण धर्म के पूर्ण विद्वेषी थे और यज्ञादिक का सदैव विरोध किया करते थे। रावण का भी वास्तविक नाम राम ही जान पड़ता है। राम को आज भी मद्रास की ओर "रामन" कहते है और इसी को सस्कृतज्ञो ने "रावण" कर लिया होगा।

सूर्यवश, रावण और अगस्त्य के कथन रामायण, महाभारत और अन्य पुराणो मे बहुतायत से मिलते है। बारहवे अध्याय के अन्त मे भी आधारो का कुछ कथन किया जायगा।

सूर्यवंशी, शार्यातशाखा, आनर्त राज्य।

शर्याति मनु के एक पुत्र थे। इन्होंने कैम्बे खाड़ी के पास उस देश मे अपना राज्य स्थापित किया जो पीछे से आनर्त कहलाया। भृगुपुत्र च्यवन इनके दामाद थे और पुरोहित भी। इनके वर्णन ऋग्वेद, महाभारत और पुराणो मे बहुतायत से मिलते हैं। शर्याति के भारी सम्राट् होने से इनका या किसी वशधर का ऐन्द्र महाभिषेक हुआ। च्यवन, इनके भाई उशना कवि उपनाम शुक्राचार्य और शर्यातिवंशी कोई शार्यात सब वेदर्षि थे। इस वंश के विवरण मत्स्य ६९,९ पद्म V २३,१० विष्णु VI १.३४, म० भा० II १३.३१३. ४० III XII २५

XIV और XV में हैं। शर्याति के पुत्र आनर्त एवं कन्या सुकन्या हुई। सुकन्या च्यवन ऋषि को ब्याही गई। आनर्त के नाम पर वश आनर्त कहलाया। आनर्त के पुत्र रोचमान, पौत्र रेव और प्रपौत्र रैवत हुए, जिनके पुत्र ककुमिन थे। इनका वंश आनर्त पर २४ या २५ पुश्तों तक प्रतिष्ठित रहा और तब पुण्यजन राक्षसों से पराजित होकर हैहयो मे मिल गया। हैहय का पुश्त नं० २५ है। वायु पुराण ८८,१,४ ब्रह्मांड III ६३, १, ४७, ३७, ४१ ह० व० ११,६५३,७ मे यह कथा वर्णित है। हैहयो के साथ भार्गव लोग भी जाकर उनके द्वारा सम्मानित हुए तथा उनको धन भी खूब मिला। हैहयो की पाँच मुख्य शाखायें हुई, जिनमे एक शार्यात भी थे। समय पर बाहरी प्रान्तो पर विजय के कारण हैहयो को धन की आवश्यकता विशेष हुई, किन्तु माँगने पर भी भार्गवों ने अपने पास द्रव्याभाव बतलाकर कुछ न दिया। इससे भार्गवों का हैहयों से बिगाड़ हो गया और समय पर हैहयों के साथ शार्यात वंश भी पुनर्बार हतप्रभ होकर पहाड़ियो मे मिल गया। हैहय पतन का कथन यथास्थान होगा। यह रामचन्द्र से कुछ आगे पीछे का घटनाचक्र है। हैहय वंश प्रतर्दन, अलर्क और सगर के प्रयत्नों से गिरा। इसमे भार्गव वंशी परशुराम और अग्नि और्व तथा दूसरे वंश के भरद्वाज के भी प्रयत्न हैहयो के प्रतिकूल सम्मिलित थे।

पुण्यजन आनर्त देश पर कितने दिन प्रतिष्ठित रहे सो पता नहीं, किन्तु रामचन्द्र से कुछ ही पूर्ववाले मधु यादव (नं ३९) को हम वहाँ का शासक पाते है। हरिवंश मे यह कुन्त राज्य कहा गया है। किसी सूर्यवंशी राजा युवनाश्व का भाई हर्यश्व मधु का दामाद था। इन दोनो भाइयों में बिगाड़ होने से अपनी पत्नी की सलाह से हर्यश्व उसके पिता मधु के यहाँ चले गए। सूर्यवंशी नरेशो मे नं० ९ व २०, के नाम युवनाश्व थे, किन्तु वे मधु से बहुत पहले के थे। ये युवनाश्व कोई साधारण सूर्यवंशी नरेश समझ पड़ते हैं। मधु ने जामाता हर्यश्व को आनर्त का राज्य दे दिया तथा पुत्र लवण को मधुपुरी (मथुरा) का राज्य दिया। इन्होंने अपने राज्य मे आनर्तपुर बसाया। इस प्रान्त को अब कच्छ कहते हैं। मधु द्वारा स्थापित यह सूर्यवंश शायद शार्यात ही हो और उन्होंने अपने दामाद का पुराना वंशाधिकार समझ कर

ही उसे यह राज्य दिया हो। यह सूर्यवंशी शर्याति से पृथक भी हो सकता है। हर्यश्व ने किसी यदु को अपना दत्तकपुत्र बनाया। हरिवंश मे ये यदु ययाति के पुत्र ही कहे गए हैं, यद्यपि समय का भारी अंतर होने से ये कोई दूसरे सूर्यवंशी यदु होंगे। जान पड़ता है कि मधुपुरी इसी मधु की बसाई हुई होगी। यदु के सन्तानो का बहुत शीघ्र वह प्रान्त छोडना नहीं समझ पड़ता। उधर मधु के पीछे भार्गवो का भी हैहयो मे मिलना नहीं ठीक बैठता; क्योकि इस घटना की कई पीढ़ियो के पीछे परशुराम का जन्म हुआ। अतएव हर्यश्व चाहे शार्यात हो या न हो, शार्यातो का हैहयो मे मिलना यदु और मधु से पूर्व की घटना बैठेगी।

सूर्यवंशी, हरिश्चन्द्र वंश, उत्तर कोशल राज्य।

मुख्य सूर्यवंशी नं० ३० सिन्धु द्वीप के समय अथवा पीछे अनरण्य या उनके वंशियो का एक और सूर्यवंशी राज्य स्थापित हुआ। अनरण्य न० ३० थे। हम नं० ३५ त्रैयारुण को राजा पाते है। इनके सूर्यवंशी होने से राजस्थान पुराणो मे अयोध्या ही कहा गया है, यद्यपि उस काल वहां दीर्घबाहु, रघु आदि का राज्य था। समझ पड़ता है कि त्रैयारुण का राज्य कान्यकुब्ज के निकट कहीं पर था।

सत्यव्रत, विश्वामित्र, देवराज और वशिष्ठ की कथा निम्न पुराणो मे है:

वायु ८८,७८,११६, हरिवंश १२,७१७, से १३,३ ५३ तक—विष्णु ३,१३,१४। त्रैयारुण राजा बड़ा वेदज्ञ और प्रतापी हुआ। सत्यायन ब्राह्मण मे लिखा है कि सूर्यवंशी राजा त्रैयारुण एक बार अपने पुरोहित वृष के साथ रथारोही होकर कही जा रहा था कि एक नवयुवक ब्राह्मण उसके नीचे दब गया। राज-वंश के वृद्धों ने निश्चित किया कि इसका अपराधी पुरोहित ही था, सो वृष ने उस ब्राह्मण की चिकित्सा करके उसे आराम कर दिया पर अपने पद से भी त्याग-पत्र दे दिया। इस पर राजा क्षमा मांगकर उसके पैरो पर गिर पड़ा, तब पुरोहित ने उसका अपराध क्षमा किया।

त्रैयारुण का पुत्र सत्यव्रत उपनाम त्रिशंकु युवराज था। इन्होंने

एक ब्राह्मण की नवविवाहिता स्त्री का अपहरण किया, चांडालो का साथ किया तथा कुल गुरु देवराज वशिष्ट की धेनु का वध कर डाला। इन्हीं तीनों पापों के कारण ये त्रिशंकु कहलाए और वशिष्ट की सलाह से पिता द्वारा अधिकारच्युत किए गए। पिता के मरने पर भी त्रिशंकु को अधिकार न मिला और वशिष्ट ही राज्य चलाते रहे। अनन्तर द्वादश वार्षिक अकाल पड़ा और प्रजा की श्रद्धा इन पर शायद कम हुई, जिस पर इन्होंने म्लेच्छ दल रखकर प्रबन्ध किया। किन्हीं राजनीतिक कारणों से कान्यकुब्ज नरेश विश्वामित्र का वशिष्ट से बिगाड़ हुआ और म० भा० के अनुसार वशिष्ट के सतगुने शवर और म्लेच्छ-दल ने विश्वामित्री सेना को हराया। इस पर पुत्र को राज्य देकर विश्वामित्र तप करने लगे। वशिष्ट ने इनका आतिथ्य तो अच्छा किया था, किन्तु शायद मामले मे नाही कर दी। जंगल मे त्रिशकु ने मृगया द्वारा विश्वामित्र के कुटुम्ब का पालन किया, जिस उपकार के उपलक्ष मे महर्षि ने भविष्य मे नेक चलन रहने का वचन लेकर इन्हे पिछले पापो से मुक्त कर दिया और सिंहासन पर विठलाया। अब त्रिशकु ने यज्ञ करना चाहा, किंतु वशिष्ट ने यज्ञ कराने से इनकार कर दिया जिस पर इन्होंने विश्वामित्र द्वारा यज्ञ प्रारम्भ किया। कहते हैं कि त्रिशंकु-कृत पापो के कारण देवताओ ने मख भाग न ग्रहण किया जिस पर विश्वामित्र ने नए देवता बना देने की धमकी दी और तब देवताओं ने विवश होकर भाग स्वीकार किया। यह वर्णन दार्ष्टान्तिक है। वशिष्ट १०,००० विद्यार्थियो को पढ़ानेवाले कुलपति भी थे और उनके प्रभाव से त्रिशंकु के यज्ञ मे शायद ब्राह्मण लोग नही आते थे, जिससे उसमे त्रुटि रही जाती थी, पर विश्वामित्र ने आत्म-प्रभाव मे उसे पूर्ण किया। अब इस राज्य से वशिष्ट की पुरोहिताई उठ गई और विश्वामित्र अपनी प्राचीन इच्छानुसार पुरोहित हुये।

त्रिशंकु के पुत्र सुप्रसिद्ध महाराजा हरिश्चन्द्र हुए जो बड़े ही रूपवान और युद्ध-प्रिय थे। इन्होंने सारे भारतवर्ष का विजय करके अश्वमेध किया। आप बड़े ही प्रसिद्ध दानी थे। कहते है कि कोई याचक आपके दरबार से विमुख नही लौटा। वास्तव मे वैवस्वत मनु और मान्धाता के पीछे इस कुल मे ऐसा प्रतापी और सुयशी राजा और

कोई नही हुआ था। सत्यप्रियता और दानशीलता को अतः पर सीमा तक पहुँचाने के लिए हरिश्चन्द्र का नाम ससार में सदा अटल रहेगा। इन्होंने सौभपुर उपनाम हरिश्चन्द्र पुर बसाया। हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र की पुरोहिताई मे राजसूय करनी चाही, किन्तु वशिष्ठ ने उन्हे राजर्षि ही माना। यह आपत्ति शायद हरिश्चन्द्र ने भी मान ली। इस पर विश्वामित्र तप करने पुष्कर चले गये और वशिष्ठ फिर पुरोहित हुए। हरिश्चन्द्र के बहुत काल पर्यन्त कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ। अतः आपने प्रतिज्ञा की कि यदि मेरे वश होगा तो प्रथम पुत्र को मै वरुण पर बलिदान चढ़ा दूँगा। कुछ काल मे इनके पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रोहिताश्व पडा। राजा सत्यप्रियता के कारण बलिदान वाले संकल्प से विमुख न हो सकता था एव पुत्र-प्रेम वश उसे पूरा भी न कर सकता था। कुछ स्याना होने पर राजकुमार उक्त प्रतिज्ञा के विमोचनाथ देवराज वशिष्ठ की सलाह से जगल को चला गया और थोड़े दिनो मे लौट आकर उन्हीं के समझाने पर फिर वही वापस गया। इसी प्रकार सात बार राजकुमार जगल से घर आया और हर बार देवराज वशिष्ठ के हठ द्वारा वहीं वापस किया गया। बाईस वर्ष पीछे हरिश्चन्द्र मांस वृद्धि (जलोदर) रोग से पीड़ित हुआ और कुछ लोगो को भ्रम हुआ कि यह संकल्प छेदन का ही परिणाम था। अन्त मे रोहित की युक्ति से यह स्थिर हुआ कि राजकुमार के स्थान मे कोई ब्राह्मण बालक बलिदान दिया जाय, पर बहुत खोजने पर भी कोई ब्राह्मण अपना पुत्र बेचने को प्रस्तुत न हुआ। होते करते अजीगर्त भार्गव नामक एक वेदर्षि ने अपना मॅझला लड़का शुनःशेप १००० गौवो के बदले रोहित के हाथ बेच डाला। इसी गर्हित कर्म के कारण उनकी अजीगर्त (सर्वभक्षी) उपाधि हुई और उनके असली नाम का अब कही पता भी नही लगता।

यह बालक विश्वामित्र का भागिनेय था और उसे मार्ग मे वे मिल गए। शुनःशेप उनके पैरो पडा जिस पर उन्होंने उसे चिरजीवी होने का आशीर्वाद दिया। अभागा बालक बोला कि मै तो बलिदान दिए जाने के लिए बेचा गया हूँ जिस पर विश्वामित्र ने अपना वचन पूरा करने के लिए अपने पचास पुत्रो को आज्ञा दी कि उन मे से एक

उसके बदले वलिदान हो जावे, पर कोई भी इस पर राजी न हुआ, जिससे क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने उन्हें देश निकाला का दण्ड देकर आर्य्यसभ्यता ग्रहीत देश की सीमा पर बसने को विवश किया। तब ये बेचारे दण्डकारण्य में जा बसे। वहाँ इनकी शवर, पुलिन्द आदि जातियाँ स्थिर हुई, अर्थात् ये लोग आर्य्यों से पृथक् हो गये।

जब पुत्रों ने शुनःशेप को बचाने से इनकार किया तब विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के यज्ञ मे पधारे। अयास्य अंगिरस की प्रधानता मे यह यज्ञ हो रहा था। शायद बदनामी से बचने को वशिष्ठ प्रधान न बने हो। वहाँ इस ब्राह्मण कुमार को यज्ञ स्तूप मे बाँधने पर कोई राजी न हुआ जिससे सौ गौवे और लेकर अजीगर्त ही ने उसे बाँधा। अनन्तर कोई उसकी वलि करने पर भी तैयार न हुआ। अन्त मे अजीगर्त ने १०० गौवें और लेकर पुत्र के मारने का भी काम अगीकार किया, किन्तु विश्वामित्र के प्रभाव से सभो ने विना वलि के ही यज्ञ की पूर्णता मान ली और शुनःशेप बच गया। अब इसने अजीगर्त को पिता मानने से इनकार किया होगा और तभी से यह विश्वामित्र का पुत्र माना जाने लगा। यह कथा ऐतरेय ब्राह्मण तथा कई पुराणों मे वर्णित है। नर वलि का कोई उदाहरण प्राचीन भारत मे नहीं मिलता, केवल यही एक उदाहरण उसके प्रयत्न का लिखा है। शतपथ ब्राह्मण मे आया है कि नरवलि कभी नहीं होती थी, केवल मनुष्य का पुतला वलिदान मे चढ़ाया जाता था। शुनःशेप के वलि दिये जाने मे लोगों की भारी अश्रद्धा से इस कथन को पुष्टि मिलती है। कहते हैं कि इस यज्ञ के पीछे हरिश्चन्द्र रोग मुक्त हुए और रोहिताश्व राजधानी मे विराजे।

वचन पालन का इतना उत्कट उदाहरण दिखलाने के पीछे महाराज हरिश्चन्द्र को अपने सत्यपालन पर अहंकार हो गया। उदारता और सत्यप्रियता इनके पुनीत जीवन मे योंही परम प्रचुरता से मिली हुई थी, अतः राजा का अभिमान और भी दिनों दिन चढ़ता ही गया, यहाँ तक कि आपके साधारण व्यवहार में धृष्टता और दर्प की मात्रायें विशेष हो गई अथच आप ब्राह्मणों, ऋषियों एवं भविष्य-भाषियों का भी अपमान करने लगे। नरवलि करने की

तत्परता से इनकी लोक में कुछ पहले ही से अपकीर्ति फैल चुकी होगी, सो उपर्युक्त कारणों से लोगों को इनके प्रति और भी अश्रद्धा और कुछ रुष्टता पैदा होने लगी। महर्षि विश्वामित्र शुनःशेप के कारण इनसे रुष्ट थे ही, सो इनकी दर्पोक्ति से तंग आकर उन्होंने राजा की सत्यप्रियता की कड़ी परीक्षा लेने का निश्चय किया। विश्वामित्र परीक्षा लेने को आ ही रहे थे कि राजा ने दैववश ऐसा स्वप्न देखा कि अपना राज्य उन्हें दान दे दिया है। स्वप्न में दिये हुए राज्य को भी फिर ग्रहण करने की इच्छा न करके इन्होंने प्रतिग्रह ग्रहीता के नाम पर राज्य का स्वत्व स्थिर किया। इसी बीच में विश्वामित्र ने आकर राजा की इच्छा से राज्य-भार अपने हाथ में लिया और साङ्गता में हरिश्चन्द्र से प्रचुर धन मांगा। उन्होंने यह भी कहा कि राज्य के साथ राज्यकोष भी उनका हो चुका था, सो राजा को यह धन बाहर से देना चाहिये। इस पर राजा हरिश्चन्द्र ने काशी जी में जाकर वहाँ स्त्री, पुत्र और स्वयं अपने को बेच कर यह ऋण चुकाया। इनको शव-दहन की चुङ्गी वसूल करने का काम मिला।

थोड़े दिनों में इनका पुत्र रोहिताश्व सर्पदंश से मूर्छित हो गया और मृत समझ कर इनकी रानी उसे शवागार ले गई। वहाँ पर कर में कुछ न मिलता देख इन्होंने अपने पुत्र का कफन कर स्वरूप लेना चाहा। यह दशा विश्वामित्र से भी न देखी गई। वे हरिश्चन्द्र का राज्य वास्तव में नहीं चाहते थे वरन् राजा को सत्यभ्रष्ट करना मात्र उनको अभीष्ट था। जब इस कड़ी जाँच में भी राजा का सत्य न डिगा तब विश्वामित्र ने हार मान कर अयोध्या का राज्य हरिश्चन्द्र को लौटा दिया। दैववश उसी समय रोहिताश्व की मूर्छा भंग हो गई और जब हरिश्चन्द्र ने दान किया हुआ राज्य स्वयं लेना न चाहा, तब विवश होकर विश्वामित्र ने रोहिताश्व को राजा बनाया। इस कड़ी जाँच में पूरे उतरने के कारण राजा का यश फिर से जाज्वल्यमान हो गया और लोक श्रद्धा इनमें बढ़ी। इस प्रकार उदारता और सत्य का परमोज्वल उदाहरण दिखाकर महाराज हरिश्चन्द्र ने अपना नाम अमर कर लिया। इनके पवित्र चरित्रों के नाटक अब तक खेले जाते हैं। यद्यपि पराक्रम तथा विजयों में हरिश्चन्द्र मान्धाता के सम न थे

तथापि चरित्र गौरव के कारण आपका महत्व उनसे बहुत बढ़ गया। संस्कृत के 'चंडकौशिक' नाटक में इस कथा का सविस्तार वर्णन है। यह चण्डकौशिक वाली कथा देवी भागवत, स्कन्द पुराण आदि में आई तथा अनिश्चित है। यह निश्चित रूप से किसी मान्य पुराण में नहीं है।

रोहिताश्व ने रोहतास गढ़ बसाया। इनके पुत्र हरित उपनाम चन्प ने चम्पापुरी (वर्तमान भागलपुर) बसायी, ऐसा कहीं-कहीं कथित है, किन्तु आनव चम्प द्वारा उसके बसाये जाने का पौराणिक विवरण अधिक मान्य है क्योंकि वहाँ उसी वंश का राज्य था। चन्प पुत्र चंचु उपनाम सुदेव एक अच्छा शासक था। चंचु पुत्र विजयनन्दिन वीर पुरुष था। जैन पंडित हेमचन्द्र ने इन्हें प्राचीन भारत के ६३ महापुरुषों में से एक माना है। इसके पीछे इस वंश का विवरण अप्राप्त है। पुराणों में विजयनन्दिन मुख्य शाखा में रख दिये गये हैं, किन्तु इस वंश के अलग माने जाने से इसका पीछे का हाल अप्राप्त हो गया है। शायद सगर इन्हीं के वंशधर हों।

सूर्यवंशी सगर वंश, मध्य भारत में कोई स्थान।

मुख्य सूर्यवंशी शाखा वाले (नं० ३८) दशरथ के समय में या उससे कुछ इधर उधर प्रायः मध्य प्रदेश में या उससे कुछ उत्तर (नं० ३८) बाहु नामक एक सूर्यवंशी राजा हुए। सम्भवतः ये हरिश्चन्द्र के वंशधर हों। पुराणों में ऐसा लिखा भी है। इस काल नं० ३६ हैहय नरेश तालजंघ ने म्लेच्छ सेना बना कर उत्तरी भारत पर आक्रमण किया। उसमें अयोध्या नरेश पर तो आक्रमण न हुआ, किन्तु काशी, पौरव, तथा कान्यकुब्ज राज्य गिरे। इन्हीं के साथ बाहु का भी राज्य गिर गया और वे अग्नि और्व ऋषि के आश्रम में रहने लगे। वहीं पर यादवी रानी से सगर नामक उनका प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। बाहु का शरीर पात उसी आश्रम में हुआ। अग्नि और्व का सगर से सम्बन्ध मत्स्य १२-४०, तथा पद्म V ८-१४४ में कथित है। सगर द्वारा हैहयों का जीता जाना निम्न आधारों पर अवलंबित है। ब्रह्माण्ड II, ४८.९,१०, म० भा० III १०६ ८-१० । महाभारत में बाहु और सगर के अन्य विवरण भी हैं।

अग्नि और्व-ऋषि शरणागतवत्सल होने के अतिरिक्त हैहयो के वंश-परम्परागत शत्रु भी थे। अतएव उन्होने सगर का पालन-पोषण किया और उसको अच्छी शिक्षा दी। अनन्तर सगर के युवक होने पर और्व ने यत्न करके उसे एक भारी सेना का स्वामी बनाया। सगर स्वय भी अच्छा प्रबन्धकर्त्ता एवं शूर था। हैहय वीतिहोत्र को काशी-नरेश प्रतर्दन पराजित कर ही चुके थे। उनके वंशधर अनन्त, दुर्जय और सुप्रतीक थे। इस वश की एक और शाखा तालजंघ के पीछे स्थापित हुई थी। सगर ने इन दोनो हैहय शाखाओ को युद्ध मे नष्ट करके अपना विशाल राज्य स्थापित किया। यह समय राम से कुछ ही पीछे का है। इस प्रकार सगर ने अपने पिता के शत्रुओ को पराजित करके यश फैलाया। इनका विवाह वैदर्भी केशिनी से हुआ। इनके चुने हुये ६०००० योद्धा बड़े ही स्वामिभक्त और प्रचंड युद्धकर्त्ता थे। सगर इनको अपना पुत्र कहते थे। इनकी सहायता से उन्होने सारे भारतवर्ष पर विजय पाई और कई यज्ञ किये। एक बार अश्वमेध करने मे सगर के इन वीर पुत्रो ने ऋषिधर्षण का पातक कर डाला, अर्थात् कपिल ऋषि के आश्रम मे यज्ञाश्व देखकर उन्ही को घोड़े का चोर माना और भारी उपद्रव मचाया। यह देख ऋषि ने उन्हे अपने क्रोधानल मे भस्म कर दिया। यह सैन-वध किस प्रकार हुआ सो पुराणो मे अमत्त प्रकार से कथित नही है। ऋषिधर्षण के कारण इन सैनिको की मरने पर भी भारी अपकीर्ति हुई। सगरात्मज असमंजस एक उपद्रवी बालक था। खेलते खेलते एक बार उसने प्रजा के कुछ बालको को नदी मे डूबो दिया। इस पर न्यायप्रिय सगर ने उसे पदच्युत करके देश निकाले का दंड दिया था। अब उसी के पुत्र अंशुमान् ने कपिलाश्रम मे जाकर ऋषि को अपने पितामह की ओर से सन्तुष्ट किया तथा सैनिको के सुगति की भी प्रार्थना की। सर्व सम्मति से यह स्थिर हुआ कि प्रायश्चित्तार्थ सगरवंशी पृथ्वी पर गंगाजी के लाने का प्रबन्ध करे। इस वर्णन से समझ पड़ता है कि गंगाजी से कोई भारी नहर खोदवाकर कही लाने का प्रबन्ध हुआ होगा। अंशुमान्, तत्पुत्र दिलीप और पौत्र भगीरथ तक ने बराबर तीन पुश्तो तक इस प्रयत्न को जारी रक्खा और तब जाकर राजा

भगीरथ इस शुभ कार्य्य मे सफल-मनोरथ हुये। अंशुमान् राजर्षि कहे गये हैं। दिलीप का राजत्वकाल छोटा ही था। गंगावतरण से महत्कार्य्य के साधन करने से भगीरथ का बहुत बड़ा यश हुआ।

महाराजा भगीरथ ने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किये। इससे जान पड़ता है कि आपने भी भारतीय राजमंडल को इन यज्ञों के साधन मे पराजित किया होगा। भगीरथ के पीछे इस वंश का पता नही है। इसका वर्णन बाल्मीकीय रामायण मे भी है। महाभारत शान्ति पर्व मे आया है कि सगर पहले तालजंघ से हारे और फिर शत्रुओं को जीत कर अश्वमेध कर्त्ता सम्राट् हुये।

सूर्यवंशी, दक्षिण कोशल वंश।

खट्वांग दिलीप के पुत्र महाराजा दीर्घबाहु वाले समय के आस पास हम दक्षिण कोशल मे सूर्यवंशी ऋयुतायुस को शासक पाते हैं। प्रधान ने कई पुराणों से खोज करके इन्ही का नाम भगस्वर लिखा है। उनके पुत्र ऋतुपर्ण प्रसिद्ध निषधनाथ नल के मित्र थे। नल से अश्व ज्ञान लेकर आपने उन्हे संख्या शास्त्र बतलाया। वही समय विदर्भनाथ (नं० ३४) भीमरथ यादव का था। नल उत्तर पांचाल नरेश (नं० ३६) मुद्गल के श्वसुर एव उनके पिता भृम्यश्व (न० ३५) के समधी थे। भीमरथ नल के श्वसुर थे। इन्ही सम्बन्धो से नल के आधार पर ऋतुपर्ण का समय दृढ़ होता है (आधारो का कथन ऋग्वेद X १०२, २, इन्द्र सेना मुद्गलानी ने अपने पति मुद्गल का रथ युद्ध मे हाँका। म० भा० III ५७,४६, नल की कन्या इन्द्र सेना मुद्गल की पत्नी थी। म० भा० वनपर्व मे नल की कथा है, तथा उनसे ऋतुपर्ण, भीमरथ आदि से सम्बन्ध कथित है)। ऋतुपर्ण के पौत्र सुदास तथा प्रपौत्र कल्मापपाद थे। महाभारत मे लिखा है कि राक्षसो के साथ ये नर-भक्षी हो गए थे। वशिष्ठ इनके पुरोहित थे। विश्वामित्र के भड़काने से इन्होने वशिष्ट पुत्र शक्ति को खा डाला, तथा उनके ९९ भाई भी मार कर खाये। इधर ऋग्वेद पर वेदार्थ अनुक्रमणी तथा बृहद्देवता मे इन पुत्रो का विश्वामित्र के कहने से पांचाल सुदास या सोदासों द्वारा मारा जाना लिखा है। जान पड़ता है कि जब विश्वामित्र वशिष्ट ने

प्रयत्नों से हरिश्चन्द्र की पुरोहिताई से अलग हुए और पीछे किन्हीं कारणों से वशिष्ठ उत्तर पांचाल नरेश सुदास के पुरोहित हुये, तब अपना बदला चुकाने को इन्हों (विश्वामित्र) ने सुदास के पुरोहित होकर वशिष्ठ के कुछ पुत्रों का वध करवाया। सम्भवतः वशिष्ठ का सुदास से भी विगाड़ हो गया हो। अतएव सुदास को छोड़ वे दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद के यहां पुरोहित हो गए। यहां विश्वामित्र राज्य में अधिकारी तो न हुए, किन्तु किंकर नामक राक्षस को उन्होंने राजा का अन्तरंग मित्र बना दिया, जिससे वशिष्ठ के शेष पुत्र राजा द्वारा मारे गए। ऐसा समझ पड़ता है कि इनके कुछ पुत्र पांचाल में मारे गए और कुछ दक्षिण कोशल में (म० भा० आदि पर्व)। अनन्तर वशिष्ठ ने नियोग से कल्माषपाद की रानी में पुत्र उत्पन्न किया। इसके पीछे वे शायद राम के यहां उत्तर कोशल में चले आये। इसके पूर्व भी दशरथ के यहां शायद आते जाते थे। अयोध्या में वशिष्ठ का विश्वामित्र से शत्रुता शेष न थी। कल्माषपाद के पीछे दक्षिण कोशल में दो शाखायें हो गईं, अर्थात्

(३९) कल्माषपाद { ....अश्मक...उरकाम मूलक (४२)
{ ...सर्व कर्मन...अनरण्य...निघ्न...अनमित्र(४३)

दक्षिण कोशल राज्य का विस्तार चौथे अध्याय में दिया जा चुका है। प्रधान महाशय ने लिखा है कि निषध, विदर्भ, दक्षिण कोशल, चेदि और दशार्ण रियासतों की हदें एक दूसरे से मिली हुई थीं। राजा युधिष्ठिर के यज्ञार्थ सहदेव ने वैदर्भ भीष्मक तथा दक्षिण कोशलेश को हराया। अश्मक ने पौण्डन्य बसाया। बौद्ध काल में अश्मकों की राजधानी यहीं पोतन थी। मूलक ने अपने नाम पर मूलक नगर बसाया। पोतन के पीछे यही अश्मकों की राजधानी हुई। इन अंतिम कथनों के आधार आदिम कलिकाल वाले अध्याय में हैं।

हरिश्चन्द्र, सगर तथा दक्षिण कोशल वंशों पर विचार।

पुराणों के अनुसार चल कर पार्जिटर महाशय ने हरिश्चन्द्र को वैवस्वत मनु का ३३वां वंशधर माना है, सगर को ४०वां, सगरवंशी

भगीरथ को चौवालीसवां, कल्माषपाद को ५२वाँ, मूलक को ५५वां, तथा राम को ६३ वां। इस प्रकार थे राम के सीधे पूर्व पुरुष हो जाते हैं और इनके समयों मे राम से भारी अन्तर पड़ता है। इधर उनके अनुसार उत्तर पांचाल नरेश सुदास मनु से केवल ४३वी पीढ़ी पर पड़ते है। पुराणो के ही कथन मिलाने से इन्हीं सुदास के सगे पितामह सृंजय की दो पुत्रियां राम के समकालीन सात्वन्त यादव के पौत्र भजमान को व्याही थी (यादव वंशावली देखिए)। राम के मित्र अलर्क के पितामह प्रतर्दन ने वीतिहोत्र हैयय को जीता तथा सगर ने वीतिहोत्र के पौत्र और प्रपौत्र को (काशी और सगर के वर्णन मे देखिए) । वही विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु का यज्ञ कराते, स्वयं हरिश्चन्द्र के यज्ञ से शुनःशेप को बचाते और ऋग्वेद मे सुदास का यश गाते तथा राम को अस्त्र विद्या सिखलाते हैं। ऊपर अनेक प्रसगो मे इस विषय पर अनेकानेक अन्य कारण भी दिए गये है। अतएव इन तीन सूर्यवशी कुटुम्बो का उत्तर कोशल की वंशावली मे मिलाना पौराणिक कथनो का तारतम्य बिलकुल बिगाड़ता है। समझ पड़ता है कि गुप्तकालीन पौराणिक सम्पादको के ज्ञानाभाव से सूर्य की वशावली वढ़ गई है।

सूर्यवंशी मैथिल शाखा

शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है कि रावी नदी के किनारे से चल कर माथव नामक राजर्षि अपने पुरोहित रहूगण की सलाह से राप्ती नदी के पूर्व मिथिला प्रान्त मे स्थापित हुए। उस काल राजधानी जयत हुई (वायु ८९, १.२,६, ब्रह्माण्ड ।।। ६४.१,६)। इधर पुराणो के अनुसार इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने ऐसा किया। इन्ही निमि के पुत्र मिथि थे। इनका नाम माथव से मिलता है। सम्भव है कि मिथिला प्रान्त माथव के नाम पर बना हो, अथवा मिथि के। यह भी हो सकता है कि माथव नाम प्राकृत मे मिथि के कारण निकला हो। इधर विदेह के सूर्यवंश से १० नाम छूट भी रहे हैं। इनको जोड़े बिना राजा दशरथ और सीरध्वज जनक की समकालीनता नहीं मिलती। समझ पड़ता है कि सम्भवतः मिथिला मे पहले माथव का वश आनर

रहा हो और दस बारह पुश्तो के पीछे निमि और मिथि ने वहाँ सूर्यवंशी राज्य जमाया हो। राजा निमि यज्ञ करने लगे। इसमें पुरोहिताई के सम्बन्ध मे किसी वशिष्ठ से लडाई हो गई, जिसमें दोनों ने एक दूसरे को शरीर त्याग का शाप दिया। प्रयोजन यह निकला कि दोनो ने द्वन्द्व युद्ध मे एक दूसरे का बध कर डाला। मिथि ने मिथिलापुरी बसाई। इसके पीछे सीरध्वज के समय तक इस वंश मे कोई मुख्यता नहीं कथित है। सीरध्वज ने सांकाश्य राज्य को जीत कर अपने भाई कुशध्वज को वहां का राजा बनाया। सांकाश्य और मैथिलवंशों के कथन रामायण बालकाण्ड मे हैं (७० वां अध्याय)। कुशध्वज का राज्य सांकाश्य मे चार पीढ़ी चला। इस वंश मे खांडिक्य ब्रह्मज्ञानी थे, ऐसा पुराणों मे आया है। मितध्वज के पुत्र खाण्डिक्य से कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज का युद्ध हुआ और फिर ज्ञान चर्चा हुई (भागवत IX १३, २१)। भागवत के अनुसार सीरध्वज का मुख्यवंश युधिष्ठिर काल तक चलता गया। जो जनक बृहदारण्यकोपनिषत् मे सम्राट और याज्ञवल्क्य के शिष्य तथा ब्रह्मज्ञानी कहे गए है, वे युधिष्ठर के बहुत पीछे के है। उनका कथन यथा स्थान होगा। सीरध्वज का कुछ विवरण १३वे अध्याय मे भी आवेगा। आप राम के श्वसुर थे।

सूर्यवंश, वैशाली शाखा।

मनु वैवस्वत के पुत्र नाभानेदिष्ट ने एक वैश्या स्त्री से विवाह किया, जिससे इस वंश की संज्ञा क्षत्रिय वैश्य की है, जैसे पौरव भरत के ब्राह्मण दत्तक पुत्र विदथिन भरद्वाज के कारण उस वंश की बहुत दिनो तक ब्रह्मक्षत्रिय संज्ञा रही। इसी प्रकार पल्लव और वाकाटक नरेश ब्राह्मण से क्षत्रिय होगए, सो उनकी संज्ञा बहुत काल तक ब्रह्मक्षत्रिय थी, तथा गुप्त नरेश जाट क्षत्रिय थे। ये सब थे क्षत्रिय और रहे अन्त मे क्षत्रिय ही, किन्तु कुछ दिनो तक दूसरी जाति का भी विचार उनमे लगा रहा। नाभानेदिष्ट काशी के उत्तर पूरब विहार प्रान्त मे स्थापित हुए। नामो के साम्य से अयोध्या शाखा वाले (नं० २८) नाभाग सम्बन्धी कथन नाभानेदिष्ट वालों से मिल से जाते हैं।

इन दोनो के विषय मे वैश्या से विवाह के कथन है, जो सम्भवतः एक ही के विषय मे लागू हो। नाभानेदिष्ठ (नं० २) से खनीनेत्र (नं० ११) तक कोई विशिष्ट घटना नही है। इनके पुत्र करन्धम पर कई राजाओ ने असफल चढ़ाई की। इन्होने विदिशापति को हराया, तथा इनके पुत्र अवीक्षित का उन्हीं विदिशा वाला से युद्ध हुआ। अवीक्षित के पुत्र मरुत्त बड़े प्रतापी सम्राट् हुए। आपका नं० १४ था। मरुत्त ने हिमालय मे सोने की खान पाकर भारी यज्ञ किया। जो धन बच रहा, उसे आपने वही गाड़ दिया। उसी को पाकर द्वापर मे पौरव युधिष्टिर ने यज्ञ किया। मरुत्त ने बृहस्पति के भाई सम्वर्त के द्वारा यज्ञ कराया था। यह कथा अश्वमेध पर्व महाभारत मे लिखी है और द्रोण पर्व मे आया है कि युधिष्ठिर के पूर्ववर्ती १६ मुख्य भारतीयो मे मरुत्त भी थे। तुर्वश वंशी (नं० २२) मरुत्त के विषय मे भी संवर्त द्वारा यज्ञ होना पुराणो मे लिखा है। दोनो सम्राट भी लिखे है। सम्भवतः एक ही नाम के कारण दोनो के चरित्र एक ही मे कह दिए गये हो। तौर्वश मरुत्त का समय भी संवर्त ऋषि से मिलता है, तथा वैशाल मरुत्त का नही मिलता। इससे यज्ञ और साम्राज्य के वर्णन वैशाल मरुत्त के विषय मे ठीक नही समझ पड़ते। इस वंश के २६ वें नरेश विशाल ने विशालपुरी बसाई, जो इस रियासत की राजधानी हुई। काशी नरेश (नं० ३५) हर्यश्व के समय मे हैहय तालजंघ ने काशी जीती। उस काल के निकट प्रमति अन्तिम वैशाल नरेश थे। शायद इनका राज्य हैहयो ने छीना हो। विशाल और वैशाली के कथन निम्न आधारो मे प्राप्त है। वायु ८६, १५. १७, विष्णु IV १, १८, रामायण I ४७, १२ भागवत IX २, ३३, ब्रह्माण्ड III ६. १, १२।

सम्मिलित विवरण।

मनु वैवस्वत के समय कई सूर्यवंशी रियासतें स्थापित हुईं। उत्तर कोशल, शर्याति, हरिश्चन्द्र, सगर, दक्षिण कोशल, विशाल तथा मिथिलावाली इन सात रियासतो का ऊपर कुछ विशेष विवरण हो चुका है, तथा दक्षिण मे रावण का भी वर्णन आ गया है। यह निः-

हास वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, हरिवंश, विष्णु पुराण, श्री भागवत् आदि के आधार पर लिखा गया है। जहाँ वैदिक साहित्य का सहारा लिया गया है, वहाँ मुख्य रूप से ऐसा कह दिया गया है। उपर्युक्त कथाये प्रायः सभी पुराणो मे आई है और उनके हवाले हम देते भी आये हैं। पौराणिक कथन बहुतो को ज्ञात है तथा आगे एक स्थान पर भी उनके हवाले १२ वे अध्याय मे दे दिए जावेगे। अब इन सूर्यवशो के विषय मे वैदिक तथा अन्य ग्रन्थो मे क्या विशेष कथन है, सो भी यहाँ कहा जाता है। इस निम्न कथन मे हमे रायचौधरी से विशेष सहायता मिली है।

ऋग्वेद, ४, ३०, १८, सरयू नदी के निकट आर्य बस्ती बतलाता है। कोशल प्रायः अवध प्रान्त है। विदेह मे पहले दलदल था। माथव ने उसे देश बनाया। कोशल के उत्तर हिमालय है, पूर्व सदानीर, दक्षिण स्यन्दिका (सई नदी) और पच्छिम पांचाल देश। शाक्य कोशल मे थे (सुत्तनिपात)। अयोध्या साकेत और श्रावस्ती शहर थे। बौद्ध काल मे अयोध्या तथा साकेत दोनो थे। श्रावस्ती राप्ती के निकट सहेत माहेत है। शतपथ ब्राह्मण मे कोशल राज्य कुरु पांचाल के पीछे किन्तु विदेह के पूर्व महत्ता युक्त है। इक्ष्वाकु वंश के राजे विशाला या वैशाली (रामा० I ४७, ११, १२) मिथिला (वायु पु० ८९, ३) तथा कुसिनारा (जातक न ५३१) मे राज्य करते थे।

ऋग्वेद के ऋषियो मे मनु वैवस्वत, शर्याति, त्रसदस्यु, अम्बरीष और मान्धातृ थे। ऋग्वेद X ६०.४ मे इक्ष्वाकु है। अथर्ववेद XIV ३९, ९, मे वे या कोई इक्ष्वाकु हैं। मान्धातृ यौवनाश्व गोपथ ब्राह्मण I २, १०, मे है। पुरुकुत्स के कथन ऋग्वेद मे बहुत हैं, जैसा कि वैदिक अध्यायो मे आ चुका है।

ऋग्वेद I ८३.७.VI २०.१० शतपथ ब्रा० XIII ५.४५ मे वे ऐक्ष्वाकु है। त्रसदस्यु (ऋग्वेद IV ३८.१, VII १९,३) पुरुकुत्स के पुत्र थे। इनका भी वर्णन ऋग्वेद मे बहुत है, जैसा कि ऊपर वैदिक अध्यायो मे आया है। त्रैयारुण, ऋग्वेद V २७ पंचविश ब्रा० XIII ३.१२ ऐक्ष्वाकु थे। त्रिशंकु, तैत्तिरीय उ० I १०.१, हरिश्चन्द्र, ऐतरेय ब्राह्मण VII १३,१६ और रोहित, ऐतरेय ब्राह्मण VII

उपब्राह्मण IV २, १२) ऐक्ष्वाकु थे। ऋग्वेद X ६०२ में वे भाजेरथ थे। अम्बरीष ऋग्वेद I १००,१७, ऋतुपर्ण, बोधायन श्रौतसूत्र XX १२, दशरथ (ऋग्वेद, I १२६,४) और राम (ऋग्वेद X ९३,१४) में सशक्त पुरुष है। दोनों अयोध्या से असम्बद्ध हैं। दशरथ जातक में दशरथ और राम वाराणसी नरेश है, तथा राम के कथन है, किन्तु यह नहीं आया है कि वे कोशलेश या रावणारि थे। राम यज्ञकर्ता है और इन्द्र भी कई बार राम कहे गए है। त्रसदस्यु ऋग्वेद IV ३८,१, VII १९,३, ऋतुपर्ण शर्यात नरेश, शुद्धोदन कपिलवस्तु के तथा प्रसेनजित श्रावस्ती के विविध देशो के राजा थे। पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, हरिश्चन्द्र, रोहित ऋतुपर्ण आदि रामायण की अयोध्यावाली वंशावली मे नही है, तथा वैदिक साहित्य कहता है कि इनमे से कई उत्तर कोशल से बाहर अन्य देशो के शासक थे (राय चौधरी)।

कोशल और मिथिला के बीच सदानीर (राप्ती) नदी थी। मिथिला के कथन जातकों तथा पुराणो मे हैं। वर्तमान जनकपुर नैपाल मे है। वैदिक तालिका, न० I ४३६, मे नमीसाप्य मैथिल राजा है। शतपथ ब्राह्मण मे विदेह राज्य विदेघ माथव द्वारा स्थापित है। प्रसिद्ध बौद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ मंजुश्री मूल कल्प मे दशरथ और दाशरथी राम के नाम प्राचीन महीपो मे हैं।

उपरोक्त वर्णन से प्रकट है कि सूर्यवंश मे ७ मुख्य राज्य स्थापित हुए, तथा एक धार्ष्ट एवं तीन सौद्युम्न राज्य बने। मुख्य कथन मध्य-देश वाले राज्यों के हुए। इतर कथाओं के सम्बन्ध मे दक्षिण कोशल का भी विवरण आ गया है। सूर्यवंशी नरेशो मे इस काल मुख्यता निम्नों की है:—मनु, इक्ष्वाकु, पुरंजय, मान्धातृ, त्रसदस्यु (इनकी ऋग्वेद मे भी भारी प्रशंसा है), वृक, नाभाग, अम्बरीष, दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, (मुख्य शाखा के), हरिश्चन्द्र, रोहित, सगर, भगीरथ, ऋतुपर्ण, कल्मापपाद, अश्मक, मूलक, अनरण्य, निमि, निमि, सीरध्वज, नाभानेदिष्ठ, करन्धम, अवीक्षित, मरुत्त, विशाल, शर्याति, और यदु। इनमे बहुत प्रसिद्ध मनु, इक्ष्वाकु, मान्धातृ, त्रसदस्यु, दशरथ, राम, हरिश्चन्द्र, सगर, भगीरथ और सीरध्वज थे। इन लोगों ने उत्तरी भारतवर्ष मे स्थायी प्रभाव फैलाया, तथा दोनों रामायण

राज्य स्थापित किया, और लङ्का को भी जीत कर रावण द्वारा आर्य सभ्यता पर जो प्रचंड आघात हो रहे थे, उन्हें शान्त किया। रामचन्द्र इन सब मे उत्तम थे। इनके बराबर इस काल तक कोई भारतीय न हुआ था। दशरथ ने तिमिध्वज शम्बर के जीतने में दिवोदास की सहायता की, तथा सुदास ने वर्चिन को जीता। शम्बर, वर्चिन और रावण के पराभव से अनार्यों का तत्कालीन बल चूर्ण हो गया। सुदास ने अनार्य भेद को भी हराया। दिवोदास और सुदास पौरव नरेश थे, जिनके कथन आगे आवेंगे। रावण की इन्द्रिय लोलुपता के कारण उनका अपने साढ़ू तिमिध्वज शम्बर से बिगाड़ हो गया, जिससे जब शम्बर दिवोदास और दशरथ द्वारा मारा जा रहा था, तब रावण ने उसकी सहायता न की। फल यह हुआ कि पीछे वह भी जैचन्द के समान मारा गया। नवे अध्याय में (नं० २१) रावण का वंश विवरण आ गया है। वहाँ वंश के हिसाब से उनका (नं० ३५) बैठना है। रावण के द्वारा दक्षिण कोशल नरेश अनरण्य (नं० ४१) का मारा जाना रामायण मे है ; तथा. राम (नं० ३९) द्वारा रावण का निधन है। इससे समझ पड़ता है कि वैशाली का वंश (न० ३५) मुख्य सूर्यवश के (नं० ३९) के निकट पड़ता है। इस प्रकार रावण की वंशावली से भी उत्तर और दक्षिण कोशल की वंशावलियो का समर्थन होता है। रावण का वंश नम्बर कुछ ऊँचा होने का यह भी कारण है कि उस शाखा मे सभी पूर्व पुरुषो के नाम हैं, राज्यो के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में भाइयो आदि के नहीं।

———

ग्यारहवाँ अध्याय

मनु-रामचन्द्रकाल (त्रेतायुग)।

१९०० से १२५० बी० सी०

पौरव वंश (पौरवों की कथा मुख्यतया महाभारत में है)

मुख्य शाखा हस्तिनापुर की।

गत अध्याय मे कहा जा चुका है कि मनु के साथ बुध भी भारत मे आकर प्रतिष्ठानपुर प्रयाग के निकट स्थापित हुए। आप चन्द्रात्मज थे। इन्ही से प्रसिद्ध चन्द्रवंश चला। मनु पुत्री इला बुध को ब्याही थीं। इन्हीं दोनो का पुत्र परम रूपवान प्रसिद्ध राजा पुरूरवस हुआ। कहते हैं कि पुरूरवस ने १३ या १४ द्वीपो पर अधिकार जमाया। उस काल किसी दूर देशस्थ राज्य को भी द्वीप कह देते थे।

राजा पुरूरवस ने ब्राह्मणों से बैर कर के (म० भा० के अनुसार) उनका धन छीन लिया। इस के पीछे समय पर चन्द्रवंशियों का मुख्य राज्य इनके पौत्र नहुष को मिला। नहुष ने प्रायः समस्त भारत को जीत कर सम्राट् की उपाधि पाई। आपने एक भारी यज्ञ किया, किन्तु राज्य सम्बन्धी बातों में इतनी कड़ाई रक्खी कि ऋषियों तक से कर लिया। मध्य एशिया से नाटक खेलने का प्रचार आपने भारत मे भी बढ़ाया या स्थापित किया। इस काल शायद मध्य एशिया के सम्राट् इन्द्र के यहाँ राज्य क्रान्ति का समय आया। वृत्र नामक कोई ब्राह्मण कुमार इन्द्र का घोर विरोधी हो पड़ा। इन्द्र ने छल से उसका वध किया। इस ब्राह्मण हिंसा से उनकी इतनी अपकीर्ति हुई कि उन्हें राज्य छोड़ कर निकल जाना पड़ा। वेद मे वृत्र वध का कथन आलंकारिक है। वहाँ बिजली द्वारा बादलों से पानी निकलने का प्रयोजन कहा जाता है। यह भी लिखा है कि वृत्र को मार कर इन्द्र भयातुर हो कर भागे। या देव इन्द्र के सरदारों ने एक मत से महाराजा नहुष को

इन्द्रासन पर बिठलाया। इन्द्र का बड़ा पद पाकर सम्राट् नहुष मदोन्मत्त हो गये। इन्हों ने इन्द्राणी शची से विवाह करने की ठानी। पहले तो वे इनकार करती रहीं किन्तु पीछे से कहने लगीं कि उनके पति की दुर्दशा करनेवाले ब्राह्मणो का यदि नहुष मान मर्दित करें तो वे (शची) उनके साथ विवाह करना स्वीकार करेंगी। नहुष भारत मे भी ऋषियों तक से कर वसूल करते थे सो इस बात को इन्होने सहर्ष मान लिया और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ऋषियो को अपनी सवारी की पालकी मे जोत कर आप शची के महल की ओर प्रस्थित हुए। नहुष की इस कार्य्यवाही से इन्द्र के सारे सरदार उनसे अप्रसन्न हो गए। ब्राह्मणों ने नहुष का तत्काल बध किया और राज्यच्युत इन्द्र फिर से बुलाये जाकर गद्दी पर बिठलाये गये।

नहुष के ज्येष्ठ पुत्र यति ब्राह्मण हो गये (म० भा०, ह० वं० ३०, १६०१; वायु पु० ९३, १४) और दूसरे पुत्र प्रसिद्ध महाराजा ययाति सम्राट् हुये। ये नहुष के पुत्र और बड़े भारी धर्मात्मा थे। वेदो मे पुरूरवा, नहुष, ययाति और इनके पाँचो पुत्रो के नाम बहुत बार आये हैं। महाराजा ययाति ने कई यज्ञ किये और उचित पात्रो को बहुत दान दिया। ययाति सबल और लोकप्रिय थे। आपने भारी सेना एकत्र करके समस्त भारतवर्ष को जीता और सम्राट् पद को स्थिर रक्खा। पुत्रो के प्रति आपकी ये तीन प्रधान आज्ञाएँ थीं कि किसी से बदला न लो, नीच युक्तियो से शत्रु का दमन मत करो और किसी से कुछ मत मांगो। असख्य गुणगण रखते हुए ययाति मे अभिमान का अवगुण भी था। इन्होंने दो विवाह किये। बड़ी रानी शुक्राचार्य की कन्या देवयानी थी और दूसरी दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा। देवयानी से यदु और तुर्वश नामक दो पुत्र हुए और शर्मिष्ठा से अनु, द्रुह्यु और पुरु उत्पन्न हुए। पुराणो मे ययाति का दौहित्रों द्वारा स्वर्गच्युत होने से बचाये जाने का हाल कहा गया है, किन्तु इसका अभिप्राय राज्यच्युत होने से बचाव का समझ पड़ता है। इनका राज्य अभिमानाधिक्य के कारण ही छूटता था। शायद यह दुर्गुण इन्होंने अपने पिता से पाया था। पुरूरवा, नहुष और ययाति वेदर्षि भी थे। सब बातो पर ध्यान देने से प्रकट है कि ययाति एक बहुत बड़े शासक थे। मानसिक दृढ़ता

भी इनमे बहुत थी। चार बड़े पुत्रों द्वारा अपनी आज्ञा भंग होते देख इन्होंने उन सबको राज्यच्युत कर दिया और छोटे बेटे पुरु को सम्राट् बनाया। बड़े पुत्रों मे से इन्होंने तुर्वश को प्रजा (पुत्र) नाश का शाप दिया। पुराणों मे लिखा है कि तुर्वश वंशी यवन हो गये। द्रुह्यु को यह शाप हुआ कि तुम्हें प्रियकामना न होगी। अनु को यह शाप दिया गया कि तुम्हारे पुत्र जवान हो-हो कर मर जायँगे। पुराणों से विदित होता है कि अनु को म्लेच्छ देश का राज्य मिला। द्रुह्यु के वंशधर भोज कहे गये हैं। पुराणों में ययाति के वंशधरों का सुदास से पराजित होना नहीं लिखा है परन्तु इन शापो से इस दुर्घटना की झलक मिलती है। ऋग्वेद से विदित होता है कि दिवोदास ने ययाति पुत्र अनु और द्रुह्यु के कुछ सन्तानों को मारा और तत्पुत्र सुदास ने आनवो तथा शेष नाहुषो का घोर संहार किया। इस युद्ध में केवल पौरव सम्मिलित न थे। महाराजा ययाति के पीछे इनके मुख्य घराने के शासक पुरु हुये।

राज्य का बटवारा ययाति ने इस प्रकार किया:—(वायु ९३,८८,९० ब्रह्माण्ड III ६८,९०,२, कूर्म I २२.९.११. लिंग I ६७.११.२) पुरु प्रतिष्ठान में रक्खे जाकर गंगा यमुना वाले दक्षिणी द्वाबे के स्वामी बनाये गए; यदु के राज्य में चम्बल, वेतवै और केन के देश मिले; द्रुह्यु को चम्बल के उत्तर यमुना के पश्चिम वाला देश मिला, अनु को गंगा, यमुना के द्वाब का उत्तरी भाग, तथा तुर्वश को रीवां। तुर्वश द्वारा सम्भवतः करूष और नाभाग वंशी पराजित किए गए। विष्णु पुराण के अनुसार पुरु को मध्य देश मिला, एव यदु, तुर्वश, अनु और द्रुह्यु को क्रमशः दक्षिण, दक्षिण पूरब, उत्तर तथा पश्छिम। मुख्य उत्तराधिकारी पुरु के पुत्र जनमेजय लिखे हैं। इन नं० ८, से मतिनार नं० २० तक कोई विशेषता नहीं वर्णित है। इससे भी आगे नं० २३ दुष्यन्त पर्यन्त जो कुछ वर्णन भी है, वह इतरों से हारने के सम्बन्ध में। यादव नं० २० शशिविन्दु ने बढ़ कर पौरव राज्य पर भी अधिकार जमाया। उनके वंश की निर्बलता से जब पौरवों ने लाभ उठाना चाहा, तो उनके दामाद सूर्यवंशी मान्धातृ ने उन्हें हराकर राज्यच्युत कर दिया। उधर तुर्वश वंशी मरुत्त, नं० २२, प्रसिद्ध सम्राट् हुआ।

उस अपुत्र राजाधिराज ने राज्यच्युत किन्तु होनहार पौरव राजकुमार दुष्यन्त को अपना दत्तक पुत्र बनाया।

महाराजा दुष्यन्त और भरत (म० भा० VII ६८, I ७४, XII २९)।

महाराजा दुष्यन्त ने दत्तक पिता मरुत्त की सेना से अपना खोया हुआ पौरव राज्य भी प्राप्त करके दोनो राज्यों का भोग किया। उस काल सूर्यवंशी नरेश त्रसदस्यु बाप का बदला लेने को गान्धार नरेश द्रुह्यों पर धावा करने वाले थे। अतएव उत्तर कोशल के निकटवर्ती प्रतापी मरुत्त के उत्तराधिकारी दुष्यन्त से भी बिगाड़ ठीक न समझ कर उन्होंने जीता हुआ राज्य दुष्यन्तको प्रेमपूर्वक वापस दिया होगा, ऐसा अनुमान है। त्रसदस्यु द्वारा पौरवों को कुछ दिया जाना ऊपर ऋग्वेद के अध्याय मे भी आया है। जो हो, दुष्यन्त को खोया हुआ पौरव राज्य मिल गया। वेदो मे यह दान करके लिखा हुआ है। म० भा०, दुष्यन्त और भरत को हस्तिनापुर मे बतलाता तथा उनका राज्य सरस्वती से गगा तक मानता है। यद्यपि दुष्यंत तुर्वश वंशी हो गए थे, तथापि कहलाये पुरुवशी ही, तथा राज्य फिर पाने से वश कर। एक दिन मृगायार्थ जाने मे कण्व ऋषि के आश्रम मे किसी विश्वामित्र और मेनका की पुत्री रूपराशि शकुन्तला इस सम्राट् को प्राप्त हुई, जिससे भरत नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। कालिदास ने शकुन्तला नाटक मे इस रुचिर कथा का वर्णन किया है। भारतीय उच्च सभ्यता का पहला प्रमाण योरोप को इसी नाटक द्वारा मिला। इसके अनुवाद अनेक भारतीय और योरोपियन भाषाओ मे हुए। भरत ने गंगा और यमुना के निकट अनेक यज्ञ किए। दीर्घतमस ऋषि ने आपका ऐन्द्र महाभिषेक किया (ऐतरेय ब्राह्मण)। इनके छोटे चचा सवर्त ने दुष्यन्त के दत्तक पिता मरुत्त को यज्ञ कराया था। इनकी माता ममता ने इनके चचा बृहस्पति से विदथिन भरद्वाज नामक पुत्र उत्पन्न किया था। भरत अपुत्र थे, सो इन्होने शायद दीर्घतमस के कहने से विदथिन भरद्वाज को गोद लिया। इन बातो मे प्रकट है कि यद्यपि दुष्यन्त अपने पौरव राज्य पर आगए थे तथापि इनका व्यवहार दत्तक

पिता मरुत्त के लोगों से जैसे का तैसा बना रहा। दुष्यन्त और भरत के समय में पौरव राज्य सरस्वती से गगा तक फैल गया था। भरत दौष्यन्त का वर्णन (ऋग्वेद VI १६,४) मे, तथा शतपथ XIII ५, ४, ११, एव ऐतरेय ब्राह्मण VII, २३ अथच कुम्बकोनम महाभारत III ८८, ८, मे आया है कि इन्होने जमुना के किनारे युद्ध जीते तथा ७४ यज्ञ किए।

सुहोत्र, हस्तिन और उनके वंशधर।

भरत पुत्र विदथिन भरद्वाज राजा न हुए वरन् वितथ पुत्र (मत्स्य ४९, २७, ३४, वायु ९९, १५२, ८,) उत्पन्न करके मृत हुए या जङ्गल चले गए। सम्भवत: वह भरत के सामने मर गए और वितथ राजा हुए। इनके प्रपौत्र, (नं० २९) सुहोत्र ऐसे पराक्रमी थे कि द्रोणपर्व मे १६ मुख्य भारतीयो मे इनका भी नाम है। इनके पुत्र हस्तिन पौरव राज्य पर स्थापित रहे। काशिक ने काशी का राज्य स्थापित किया, तथा बृहत् ने कान्यकुब्ज का। हस्तिन के समय मे इस राज्य वंश का और भी विस्तार हुआ। इनके पुत्र अजमीढ़ और द्विमीढ़ मुख्य थे। अजमीढ़ मुख्य पौरव राज्य पर रहे, तथा नं० ३१, द्विमीढ़ ने विदर्भ मे नवीन पौरव राज्य बनाया, जो नं० ५६, बहुरथ पर्य्यन्त स्थापित रहा। अजमीढ़ात्मज ऋषभ पौरव राज्य पर रहे तथा सुशांति और बृहद्वसु ने उत्तर तथा दक्षिण पांचाल राज्य स्थापित किए। हस्ती ने हस्तिनापुर बसा कर या उन्नत करके उसे अपनी राजधानी बनाया।

हस्तिनापुर वर्तमान मेरठ से २२ मील उत्तर पश्चिम गंगा के किनारे अब खंडहर मात्र है। हस्तिन के चचेरे भाई रंतिदेव सांकृत ने चम्बल पर दशपुर राज्य प्राप्त किया।

उपर्युक्त नवीन राज्यों के साधारण विवरण आगे आवेंगे।

ऋक्ष नं० ३२, से नं० ३७, सवर्ण पर्यंत कोई विशेषता कथित नहीं है। उत्तर पांचाल नरेश नं० (३९) सुदास ने इन्हें हरा कर बाहर कर दिया। संवर्ण के पुरोहित सुवर्चस (म० भा० I ९६, ३७३३) वशिष्ठ थे। इन वशिष्ठ का नाम देवराज था और सुवर्चस तथा

अथर्वनिधि इनकी उपाधियां मात्र समझ पड़ती है । जान पड़ता है कि सुदास का आश्रय छोड़ने पर वशिष्ठ संवर्ण के यहां गए होंगे और इसी पर इन दोनो मे युद्ध हुआ होगा। संवर्ण की पराजय पर गुरु वशिष्ठ दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद के यहाँ पहुॅचे होंगे। अनन्तर संवर्ण ने सुदास को पराजित किया और उत्तर पांचाल का बल गिर गया। संवर्ण तथा तत्पुत्र कुरु ने हस्तिनापुर फिर से उन्नत किया तथा कुरु ने दक्षिण पांचाल पर भी अधिकार जमाया। कुरुक्षेत्र और कुरु जांगल इनके नाम पर थे। इस हार के गडबड़ मे प्रतिष्ठान-पुर भी इस वंश से निकल गया था और उस पर काशी नरेश (न० ३९) वत्स का अधिकार जमा था। वह प्राचीन प्रान्त फिर कुरु को प्राप्त हुआ।

कुरु पुत्र सार्वभौम तो हस्तिनापुर मे रहे, किन्तु सुधन्वन (नं० ३९) ने बढ़ कर चेदि प्रान्त मे राज्य जमाया। इनके वंशधर (न० ४२) कृतज्ञ के पुत्र चेदि और उपरिचरवसु थे । चेदि पुत्र वसुचैद्य राजा हुए। उनके चचा वसु चैद्योपरिचर ने उनकी सहायता से मगध प्रान्त छीन कर प्रसिद्ध मागध बार्हद्रथ राज्य की नींव डाली। इस वंश का राजत्व काल आगे भी चलता है, किन्तु राम काल इसी स्थान पर समाप्त होता है। आगे का विवरण द्वापर युग मे दिया जावेगा। ऊपर के वर्णन से प्रकट है कि ययाति के पीछे वाली प्रायः १४ पुश्तो तक तो कोई महत्ता न हुई, किन्तु जब से तुर्वश वंश का भी बल इसी मे मिल गया, तब से पौरव कुल ने खासी उन्नति की । अब शेष पौरव राज्य कुलो के कथन होते हैं। अन्तिम पौरव नरेश कुरु बड़े प्रतापी थे। इन्ही के नाम पर यह वंश पौरव से कौरव कहलाने लगा। इनके वंशधरो ने कई अन्य राज्य भी जमाये । संवर्ण से सुदास वाले युद्ध के आधार उत्तर पांचाल के विवरण मे मिलेगे।

विदर्भ का द्विमीढ़वंश।

पौरव कुल के उपर्युक्त हस्तिन के पुत्र द्विमीढ़ ने विदर्भ मे एक नवीन पौरव राज्य स्थापित किया। ये मनु से ३१ पीढी नीचे थे। इस वंश ने यादवो से लड़ कर अपना राज्य स्थापित किया होगा। इनके

वंशधर (नं० ४०) धृतिमत रामचन्द्र के समय में हुये होंगे। द्विमीढ़ से धृतिमंत तक सात राजाओं के नाम अज्ञात हैं। उस काल तक राज्य स्थापन के अतिरिक्त कोई विशेष घटना द्विमीढ़ों की नहीं लिखी है। आगे का हाल द्वापर के विवरण मे आवेगा।

उत्तर पांचाल का वैदिक सुदासवंश।

उपर्युक्त द्विमीढ़ के भाई,अजमीढ़ मुख्य पौरव शाखा के भूपाल थे। इन्हीं के पुत्र सुशान्ति ने उत्तर पांचाल राज्य स्थापित किया। सुदास के समय ऋग्वेद मे इस वंश का राज्य रावी नदी के दोनो किनारो पर लिखा है तथा यह श्वेतवस्त्रो से भूषित तृत्सु वंश कहा गया है। महाभारत के समय उत्तर पांचाल की राजधानी, अहिछत्र में बरेली के निकट थी और दक्षिण की काम्पिल्य में। सुशान्ति के पौत्र ऋक्ष उपनाम तृक्ष के पुत्र भरत और भृम्यश्व हुए। भरत पौत्र सृंजय के पुत्र प्रस्तोक, च्यवन, पिजवन और सहदेव हुए। पिजवन प्रचण्ड युद्धकर्ता थे। इनके पुत्र प्रसिद्ध वैदिक नरेश राज्य वर्द्धक सुदास हुए। सहदेवात्मज सोमक के वश मे यह राज्य अन्त मे चला। भृम्यश्वात्मज मुद्गल और कांपिल्य हुए। मुद्गल प्रसिद्ध निषध नरेश नल के दामाद थे और स्वय भूपाल एव वेदर्षि भी थे। इसके आधार ऊपर आ चुके हैं। प्रसिद्ध वैदिक विजयी दिवोदास मुद्गलात्मज वध्यूश्व के पुत्र थे। इन्हीं की वहिन वे अहल्या थीं जो गौतमात्मज शरद्वन्त को व्याही गई और जिन्हे राम ने पवित्र किया। शरद्वन्त के पुत्र सत्यधृति के वश मे महाभारत काल के कृपाचार्य थे। प्रसिद्ध वैदिक ऋषि भरद्वाज ने अपनी ऋचाओ मे दिवोदास, प्रस्तोक, पिजवन तथा अभ्यावर्तिन चायमान से अपना दान पाना लिखा है। वायु और शुनहोत्र भरद्वाज के पुत्र थे। शुनहोत्रात्मज गृत्समद प्रसिद्ध वैदिक ऋषि थे। हरिवश मे आया है कि मुद्गल, सृंजय, बृहदिषु, क्रिमिलाश्व और जयीनर का बसाया हुआ देश पांचाल था। समझ पड़ता है कि मुद्गल, कांपिल्य, प्रस्तोक, पिजवन और सहदेव मे पांचाल राज्य बँट कर बलहीन हो गया। अनन्तर राम के पिता दशरथ की सहायता से प्रसिद्ध वैदिक विजयी दिवोदास ने शिम्बिज के युद्ध में वैजयन्त के

तिमिध्वज शम्बर को मार कर अपने कुल का यश बढ़ाया। इनका पिजवन पुत्र सुदास से इतना भारी मेल था कि ऋग्वेद मे ये दूर के चचा के स्थान पर सुदास के पिता कहे गए है। ऋग्वेद मे दिवोदास द्वारा शम्बर का मारा जाना लिखा है, तथा रामायण मे आया है कि दशरथ ने शम्बर के मारे जाने मे किसी भारी नरेश की सहायता की। उत्तर पांचाल के अन्य विवरण हरिवंश और विष्णु पुराण मे है। अनन्तर सुदास ने दस राजाओ को पराजित करक भारी यश कमाया। इन दोनो के युद्धो के विस्तृत विवरण ऋग्वेद मे है, और हमारे ऊपर के वैदिक अध्यायो मे आ चुके हैं। कोई वैदिक राजा त्रसदस्यु भी सुदास से हारे थे, ऐसा ऋग्वेद (VII १९—३) मे आना, कोई-कोई मानते है, किन्तु यह बात मन्त्र से समथित नही है। वहाँ इन्द्र द्वारा सुदास तथा त्रसदस्यु दोनो को विविध समयो मे सहायता मिली है। सुदास ने वशिष्ठ तत्पौत्र पराशर और सत्ययात को प्रचुर दान दिया। ये ऋषि लोग वेद मे सुदास के नौकर कहे गए है। सुदास द्वारा ययाति वशियो का पराजित होना ऐतरेय ब्राह्मण मे भी आया है। पहले इन्होने सवर्ण को जीता, फिर माथुर यादव, आनवशिवि, गान्धार द्रुह्यु, शूरसेन के मत्स्य, रीवा के तुर्वशराज्य, अनार्य्य वर्चिन, वैकर्ण, भेद आदि कई नरेश मिल कर पुरुष्णी नदी पर सुदास से लड़ कर हारे। यही प्रसिद्ध दस राजाओ का वैदिक युद्ध है। इसका विशेष विवरण वैदिक अध्यायों मे ऊपर आ गया है। अनन्तर संवर्ण ने युद्ध मे सुदास को पराजित कर दिया और कुरु सवर्णात्मज ने पौरव राज्य को वर्द्धमान किया। दिवोदास के तीनो वशधर साधारण थे। सुदास के वंश का वर्णन नही है। सोमक के पुत्र अर्कदन्त साधा-रण थे। इनके पीछे इस वश मे सात पीढ़ियों के नाम पुराणों मे अकथित हैं, जिससे उनका साधारण या राज्यहीन होना प्रकट है। इस वंश के वर्णन वेदादि मे वहुत हैं। इसलिए उनका कुछ यहाँ भी कथन योग्य है। ऋग्वेद X १०२ मे आया है, कि इन्द्रसेना मुद्गलानी ने युद्ध मे रथ संचालन करके अपने पति को विजयी बनाया तथा उसका खोया हुआ प्रेम प्राप्त किया। म० भा० III ५७, ४६, मे कथित है कि निषधनाथ नल की पुत्री इन्द्रसेना मुद्गल को व्याही थी।

उपर्युक्तानुसार ये मुद्गल राजा और वेदर्षि दोनो थे। म० भा० वनपर्व में नल का भारी विवरण है, जिसमे उनका भीमरथ यादव का दामाद होना लिखा है। नल दक्षिण कोशल नरेश ऋतुपर्ण के मित्र थे। सुदास के पितामह सृंजय की दो कन्याय यादव भीमसात्वन्त के पुत्र भजमान को व्याही थी। भीमसात्वन्त राम के समकालीन थे। इन कथनो के आधार यादवों के वर्णनो मे हैं। दिवोदास के सहायक दशरथ थे ही। दिवोदास की बहिन अहल्या को राम ने पवित्र किया (रामायण)। अहल्या के पुत्र शतानन्द सीरध्वज जनक के पुरोहित थे (रामायण)। वेदर्षि भरद्वाज कहते है कि दिवोदास, सुदास, अभ्यावर्तिन चायमान आदि ने उनको दान दिए। इन्ही भरद्वाज ने काशीपति प्रतर्दन की सहायता की (आधार काशी के कथन मे आवेगा) तथा राम और उनके भाई भरत की पहुनाई की (रामायण)। प्रतर्दन से पराजित होकर हैहय नरेश वीतहव्य इन्हीं के साथ रह कर ऋषि हो गए। यह ध्वनि ऋग्वेद के छठवे मण्डल की भरद्वाज वाली कुछ ऋचाओं से निकलती है। ऋग्वेद VI २६. ८. मे प्रतर्दन के पुत्र क्षत्रश्री भी भरद्वाज के समकालीन लिखे हैं। रामायण मे काशीपति प्रतर्दन राम के अभिषेक मे आते है। प्रतर्दन के पौत्र अलर्क को अगस्त्य की स्त्री लोपामुद्रा आशीर्वाद देती हैं (वायु पुराण ९२, ६७), तथा लंका मे अगस्त्य राम की शस्त्रास्त्र से सहायता करते है (रामायण)। भरद्वाज, काशी राज (दूसरे) दिवोदास, नं० ३३, के भी पुरोहित थे (म० भा० XIII ३०, १९६३)। अहल्या का गोतमात्मज शरद्वन्त से विवाह हुआ. म० भा० I १३०, ५०७७, V १६५, ५६४८, वायु ९९, २०१,५ मत्स्य. ५०, ८, १२, ह० वं० ३२, १७८४, ८. विष्णु IV ११६, ७८। वशिष्ठ ने सुदास को गद्दी पर बिठलाया (ऐतरेय ब्राह्मण. VIII ४. २१)! वशिष्ठ सुदास को छोड़ कर संवर्ण के यहाँ चले गए। (पार्जिटर १९२२, पृष्ठ २३७)। त्रसदस्यु का सुदास का समकालीन होना सिद्ध नहीं है वरन केवल इतना है कि इन्द्र ने सुदास तथा त्रसदस्यु की सहायता की (ऋग्वेद VII १९—३). [illegible] समय मे होना प्रकथित है। दिवोदास ने [illegible] नदी पर पत्थरों [illegible] नगरों का [illegible]। ऋग्वेद १०. ३३. १९. वैदिक अनुक्रमणिका [illegible]

४९९. म० भा० ९४, ३७२५, ३९ के अनुसार किसी पांचाल नरेश ने संवर्ण को हस्तिनापुर से निकाल दिया। यह पांचाल नरेश सुदास ही होंगे। अनन्तर संवर्ण ने अपना राज्य फिर से पाकर सब क्षत्रिय नरेशों को पराजित किया। इससे पांचाल सुदास के भी हारने का प्रयोजन निकलता है। मनु ४१ मे आया है कि सुदास अवगुण के कारण नष्ट हुए। इससे ध्वनि निकलती है कि दस राजाओं को हराने से सुदास को गर्व विशेष हो गया और संवर्ण द्वारा उनका वध हुआ। सम्भवतः इस विजय में सुवर्चस वशिष्ठ का भी हाथ हो। उपर्युक्त प्रमाणों से सुदास तथा दिवोदास के विवरण प्राप्त हैं तथा इनका दशरथ और राम का समकालीन होना सिद्ध है।

दक्षिण पांचाल का नीप वंश।

५उत्तर पांचाल मे कथित अजमीढ़ के पुत्र बृहद्वसु ने दक्षिण पांचाल राज्य स्थापित किया। इनका वंशावली वाला नं० ३२ है। इस काल से नं० ४० पृथुषेण पर्यन्त राजे त्रेतायुग मे माने जा सकते हैं। इस काल तक इस वंश के कोई विशेष कथन नही मिलते, जिससे इसमें महत्ता का अभाव समझ पड़ता है। वंशावली ऊपर आ चुकी है।

काशी का पौरव वंश।

पौरव कुल के सम्राट्, नं० २४, भरत के पौत्र वितथ का पुत्र सुहोत्र एक प्रसिद्ध बलवान था। उसी ने अथवा उसके पुत्र काशिक ने काशी का पौरव राज्य स्थापित किया। इनके प्रपौत्र धन्वन्तरि (नं० ३१) प्रसिद्ध वैद्य थे। पीछे (नं० ३४) दिवोदास, प्रथम के समय मे इस राज्य पर हैहय भद्रश्रेण्य (नं० ३०) का आक्रमण हुआ। दिवोदास ने पराक्रमी भद्रश्रेण्य को करारी पराजय देकर युद्ध मे उसके कई पुत्र भी मारे, तथा बालक जान कर केवल दुर्दम को छोड़ दिया। सयाने होकर दुर्दम ने हैहयों का आक्रमण फिर से जीवित किया। पूर्वीय राज्यों को जीतते हुये हैहयों ने काशी पर यह दूसरा आक्रमण किया। अब भीमरथ के पुत्र दिवोदास प्रथम काशी छोड़ गोमती के निकट

कुछ पच्छिम हट कर जा बसे। हैहयों ने काशी प्राप्त की किन्तु किसी कारण से वहां क्षेमक राक्षस का राज्य हो गया, परन्तु दुर्दम ने फिर वहां प्रभुत्व प्राप्त किया (वायु ९२,२३,८, ह० व० २९,१५४,१,८)। कुछ काल में काशी नरेश का वहां फिर से अधिकार हो गया और हैहयों ने फिर आक्रमण करके (न० ३५) हर्यश्व को मारा, (न० ३६) सुदेव को हराया और काशी लूटी। अनन्तर सौदेव दिवोदास दूसरे राजा हुए। इनका हैहयों से १०० दिनों तक युद्ध हुआ और ये (सौदेव) हार कर भरद्वाज आश्रम चले गए। इन्हीं के पुत्र प्रतर्दन हुए, जिनका शिक्षण एवं सत्कार भरद्वाज ने किया। समय पाकर प्रसिद्ध पराक्रमी प्रतर्दन ने तालजंघात्मज वीतिहोत्र उपनाम वीतिहव्य को हैहय राजधानी में घुस कर हराया। वीतिहव्य शौनक भार्गव ऋषि हो गए। ऋग्वेद के छठवें मंडल में इनका भरद्वाज के साथ रहना पाया जाता है। म० भा० XIII ३०, ५८, ९ के अनुसार प्रसिद्ध वैदर्षि गृत्समद वीतिहव्य के दत्तक पुत्र थे। उनके पिता आंगिरस शुनहोत्र थे (सर्वानुक्रमणी)। गृत्समद अतिथिग्व-दिवोदास का कथन शम्बर वध में करते हैं। रामचन्द्र के राज्यारोहण में प्रतर्दन अतिथि हो कर अयोध्या गए थे (रामायण)। एक प्रतर्दन वेदर्षि भी थे। उनकी ऋचाओं से यह नहीं प्रकट है कि वे ये ही प्रतर्दन थे या कोई और?

प्रतर्दन के पुत्र वत्स ने प्रतिष्ठानपुर के कौशाम्बी प्रान्त को भी अपने राज्य में मिला लिया। इनके पुत्र अलर्क ने क्षेमक राक्षस को मार कर काशी फिर से प्राप्त की। इस काल से बहुत पूर्व भी काशी में क्षेमक का अधिकार कहा गया है। समझ पड़ता है कि इस वंश के राजों की क्षेमक उपाधि होगी। अलर्क को अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने आशीर्वाद दिया (वायु ९२, ६७, ह०, वं०, २९, १५९०, ३२, १७४८)। प्रतर्दन, वत्स और वत्स देश के कथन निम्न आधारों में भी हैं:— (विष्णु IV ८, ५, ७ भागवत IX १७, ६ वायु ९२, ६५, ७३ ब्रह्माण्ड ११, ५० ६०, १३, ६८, ७८, ह० व० २९, १५८७, १५९७, ३२, १७४१, १७५३, म० भा० XIII ३०, १९४६)। पार्जिटर का कथन है कि अलर्क का राज्य काल लम्बा था। उपर्युक्त घटनाओं से प्रकट है कि काशी का पौरवराज्य महत्तायुक्त था। इसमें धन्वन्तरि श्रेष्ठ वैद्य हुए, तथा

दिवोदास, वत्स, प्रतर्दन और अलर्क प्रसिद्ध भूपाल थे, जिन्होंने बढ़ते हुए हैहय बल को ध्वस्त किया। इस वंश के आगे का हाल द्वापर के विवरण मे आवेगा (आधार वायु ९२, ६७, ह० व० २९, १५९०, ३२, १७४८)।

कान्यकुब्ज की पौरव शाखा।

काशी के विवरण मे कथित नं० २७, सुहोत्र के अन्य पुत्र वृहत् ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) मे पौरव राज्य स्थापित किया। इनके पौत्र जह्नु (न० ३०) बड़े प्रतापी राजा कहे गये हैं। आपको सूर्यवंशी मान्धाता, (नं०, २१) की पौत्री विवाही थी (वायु ९१,५८,९, ह वं० २७,१४२१,३)। सम्भवतः इनका स्थान अपनी वंशावली मे ६,७ पीढ़ी ऊँचा हो। जह्नु के प्रपौत्र कुशिक, (न० ३३) बड़े प्रसिद्ध राजा और वेदर्षि थे। इन्हीं के नाम पर विश्वामित्र कौशिक भी कहलाते थे। उनका विवाह पुरुकुत्स के वंश मे उत्पन्न पुरुकुत्सी से हुआ था (वायु ९१,६३,६, ह० व० २७,१४२६,३०)। पुरुकुत्सी मे कुशिक से उत्पन्न पुत्र गाधि (वैदिक गाथिन) पुराणो मे इन्द्र के अवतार कहे गए है। वेद मे भी इन्द्र कौशिक थे। गाधि भी राजा और वेदर्षि दोनो थे। गाधि की ऋचायें विश्वामित्र के तीसरे मण्डल मे तथा कुशिक की दसवे मे हैं। गाधि की पुत्री सत्यवती से भार्गव-वंशी और्वात्मज शस्त्री ऋचीक का विवाह हुआ।

गाधि के पुत्र विश्वामित्र और सत्यवती के पुत्र जमदग्नि समवयस्क और एक दूसरे के प्रगाढ़ मित्र, एवं वेदर्षि भी थे। जमदग्नि के पाँचवे पुत्र विख्यात शूर परशुधर राम थे। ऋषि विश्वामित्र का आदिम राज्य पद निरुक्त तथा ऐतरेय और पंचविंश ब्राह्मणो से प्रमाणित है। विश्वामित्र किसी राज काज का निर्णय करने त्रयारुण राज्य के प्रबन्धक वशिष्ठ ऋषि से मिलने गए। आतिथ्य तो इनका अच्छा हुआ, किन्तु मामले पर संतोषप्रद बात न हुई और युद्ध मे देवराज वशिष्ठ के म्लेच्छ सैनिको ने कान्य-कुब्ज की आर्य सेना को पूर्ण पराजय दी। सख्या मे म्लेच्छ आर्य सेना मे सतगुने थे। (म० भा०) मे केवल एक

गाय के कारण युद्ध लिखा है, किन्तु वास्तव में किसी राजकीय प्रश्न पर समझ पड़ता है। अब विश्वामित्र राजकीय बल को तुच्छ मान कर बेटे को राज्य दे, स्वयं तपस्या करने चले गए। यह समय द्वादश वार्षिक अकाल का था। जिस राज्य के प्रबन्धक बन कर देवराज वशिष्ठ ने विश्वामित्र को हराया था, उसका वास्तविक स्वामी सत्यव्रत त्रिशंकु इनके द्वारा अपने अधिकारों से च्युत एवं निर्वासित होकर जंगलों में मृगया से समय काटता था। उसने तपस्या के समय शिकार द्वारा विश्वामित्र के वंश का जंगल में पालन किया। ये दोनों पहले से भी वशिष्ठ के शत्रु थे। अतएव विश्वामित्र ने स्वप्रभाव से उसे राज्य पर प्रतिष्ठित करके स्वयं पुरोहित का उच्च पद लिया और देवराज वशिष्ठ अधिकारच्युत हो गए (वायु ८८.७८.११६, ह० वं० १२, ७१८ से ३, १३, ७५३ तक, विष्णु IV ३.१३,४, भागवत IX ७.५.३ म० भा० XIII १३७.६२२८)। उन्होंने विश्वामित्र को ब्रह्म ऋषि मानने से इन्कार किया, किन्तु फिर भी इनके द्वारा त्रिशंकु का यज्ञ सफल हुआ। अनन्तर उसके पुत्र हरिश्चन्द्र के समय में वशिष्ठ ने फिर इनके प्रतिकूल ब्रह्मर्षिपन का बखेड़ा उठाया और इस बार पराजित होकर उन्हें पुष्कर पर तप करने जाना पड़ा। जान पड़ता है कि हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र के प्रतिकूल निर्णय किया होगा, जिससे वे पराजित हुये होंगे। इधर देवराज वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुरोहित हो गए। अनन्तर शुनःशेप वाली नरबलि के सम्बन्ध में विश्वामित्र का प्रताप फिर बढ़ा और वशिष्ठ वहां से हट कर उत्तर पांचाल नरेश सुदास के पुरोहित हुए। इनका हरिश्चन्द्र के यहाँ से हटना क्यों हुआ, सो कथित नहीं है। या तो वह राज्य ही निर्बल हो गया होगा, या नरबलि की तत्परता के कारण वशिष्ठ का अपयश हुआ होगा, जिससे उन्हें वहाँ से फिर हटना पड़ा। अनन्तर सुदास के यहाँ भी पहुँच कर विश्वामित्र ने वशिष्ठ को वहाँ से हटाया। वशिष्ठ की शत्रुता सुदास से क्यों हुई सो अज्ञात है, किन्तु हुई अवश्य। इनका तपस्वी पुत्र शक्ति वहाँ मारा गया, विश्वामित्र पुरोहित बने और सुवर्चस वशिष्ठ पौरव नरेश संवर्ण के पुरोहित हुए। सम्भव है कि हरिश्चन्द्र के पुरोहित देवराज वशिष्ठ संवर्ण के

पुरोहित सुवर्चस वशिष्ठ से पृथक हो। वास्तव में समझ पड़ता है कि सुवर्चस देवराज ही की उपाधि मात्र थी। यही विचार पार्जिटर का भी है।

किन्हीं कारणों से सुदास ने संवर्ण का राज्य छीन लिया और वशिष्ठ दक्षिण कोशल नरेश कल्मापपाद के पुरोहित बने। वहाँ राक्षसों का प्रवेश समझ कर विश्वामित्र ने राजा द्वारा वशिष्ठ के शेष पुत्र भी मरवा डाले, केवल पौत्र पराशर बच गया। अब वशिष्ठ राजा दशरथ के यहाँ जमे। उधर संवर्ण ने सुदास को पराजित कर दिया। अनन्तर विश्वामित्र दशरथ के यहाँ यज्ञ रक्षणार्थ राम को माँगने आये। इस बार पुरानी शत्रुता भुला कर वशिष्ठ ने इनका समर्थन किया। या तो इन दोनो की शत्रुता पहले ही कभी मिट चुकी थी, या वशिष्ठ ने भलाई करके इस प्राचीन शत्रु को सीधा करना चाहा। जो हो इस काल से इन दोनो की प्राचीन शत्रुता मिट कर मित्रभाव स्थापित हुआ। ये दोनो ऋषि प्राय: सवा-सवा सौ वर्ष तक जिये होंगे। राम के पीछे यही अथवा दूसरे वशिष्ठ सगर के भी पुरोहित हुए। अवस्था के विचार से यही वशिष्ठ सगर के यहाँ भी हो सकते थे। मेल हो जाने से वहाँ उनसे विश्वामित्र ने कोई विरोध नहीं किया। ऐतरेय ब्राह्मण मे नरबलि के प्रयत्न सम्बन्धी यज्ञ मे विश्वामित्र, जमदग्नि और वशिष्ठ का होना लिखा है। ऋग्वेद मे शुन: शेप की ऋचाओ मे उनका यज्ञ मे बाँधा जाना आया है। वैदिक साहित्य मे शुन: शेप ही के मामा तथा दत्तक पिता विश्वामित्र हैं। त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र के यहाँ पौराणिक साक्षी से कान्यकुब्ज नरेश ऋषि विश्वामित्र थे। यह साक्षी ऊपर आ चुकी है। ऐतरेय ब्राह्मण तथा ऋग्वेद दोनो मे विश्वामित्र जमदग्नि के मित्र तथा वशिष्ठ के शत्रु है। अतएव त्रिशंकु और सुदास के यहाँ वही विश्वामित्र और वशिष्ठ थे। यही सुदास का समय कल्माषपाद, संवर्ण, रामचन्द्र और सगर का बहुत थोड़े अन्तर के साथ था। अतएव इन सब के यहाँ वाले वशिष्ठ और विश्वामित्र वही व्यक्ति माने जा सकते हैं। केवल शकुन्तला के पिता समय के विचार से अन्य व्यक्ति थे।

विश्वामित्र के ब्राह्मण वंशधरों का विवरण ऊपर वंशवृक्ष मे आ-

चुका है। इनके भागिनेय के पुत्र परशुधर ने शायद कान्यकुब्ज और सौर राज्यों की सहायता से हैहयार्जुन का युद्ध मे वध किया था। इसी अथवा अन्य कारणों से हैहय तालजघ ने अपने उत्तर के आक्रमण मे विश्वामित्र के क्षत्रिय पुत्र लौहि को राज्यच्युत कर दिया। इसके पीछे इनका क्षत्रियवंश वेपता हो गया। इसी स्थान पर पौरवों के राज्यवंशो का पौराणिक विवरण समाप्त होता है।

इस वश के विषय मे पुराणेतर ग्रन्थो मे क्या कथित है, इसका भी कुछ दिग्दर्शन कराना उचित है।

मंजु श्री मूल कल्प आठवी शताब्दी का एक साधार बौद्ध ग्रथ है, जिसमे नहुप और पार्थिव नामक प्राचीन राजाओं के नाम लिखे हैं।

वैदिक साहित्य मे निम्न पारव नाम हैं :—

परुच्छेप (दिवोदास वंशी), विश्वामित्र (तृतीय मण्डल इनका है), गाथिन, देवश्रवस, शुनःशेप, देवव्रत, ऋषभ, उत्कील, कठ, प्रजापति, मधुच्छन्दस (विश्वामित्र के मण्डल वाले गाथिन उनके पिता हे, कुशिक पितामह तथा शेप लोग उनके वशधर) पुरु, सन्वर्ण, नीपातिथि, आयु, ययाति, नहुप, प्रतर्दन, बृहद्रथ, पुरुरवस, उर्वशी, कुशिक (वेदर्षि तथा विश्वामित्र के पितामह), जमदग्नि, परशुराम, सुकीर्ति, सुदास और खाण्डवदाह से उबारे हुए चार ऋषि (जरितर, द्राण, सारिसृक्त स्तम्ब मित्र)। चन्द्रवशी इतर वेदर्षियो के नाम आगे के अध्याय मे आवेंगे।

पुरुरवस ऐल, ऋग्वेद X ९५, शतपथ ब्रा० XI ५,१,१ ।

आयु, ऋग्वेद I ५३,१०, II १४,७.

ययाति नाहुष्य, ऋग्वेद I ३१, X ६३,१, ।

पुरु ऋग्वेद VII ८,४,१८,१३ ।

भरत दौष्यन्ति सौद्युम्नि, शतपथ ब्रा० XIII ५,४, ११,१२ ।

अजमीढ़, ऋग्वेद IV ४४,६.

[illegible], ऋग्वेद VII ३८,[illegible] ।

कुरु ऋग्वेद X ३३, ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत. ।

उच्चैः श्रवस, जैमिनीय उपनिषद् ब्रा० III २९,१,१२ ।

पुरुरवस ऐल के पिता बुध राजा थे, जो वाङ्लीक या बैक्ट्रिया से आये थे, रामायण VII १०३,२१, २२। पपञ्च सूदनी के अनुसार ऐल लोग उत्तर कुरु से आये है। पांचाल देश वर्तमान बरेली, बदायू, फरुखाबाद जिलों तथा अन्य स्थानों पर विस्तृत था। प्राचीन राज काम्पिल्य या कम्पिल बदायूँ फरुखाबाद के बीच गङ्गा तट पर थी। शतपथ ब्राह्मण XIII ५,४,७, मे परिचक्र या परिचक्रा महाभारत का एक चक्रा है। पांचाल के पांच वश कृवि, तुर्वश, केशिन, सृंजय, और सोमक थे। कृवियों का कथन ऋग्वेद मे है। शतपथ ब्राह्मण मे ये पांचाल कहे गए हैं।

मोटे प्रकार से पांचाल रुहेलखण्ड तथा मध्य द्वाबा का भाग था,। उत्तरी और दक्षिणी पांचाल गङ्गा के आरपार थे। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र या छत्रवती (राम नगर जिला बरेली) थी। दक्षिण पांचाल गङ्गा से चम्बल तक था, म० भा० १३८,७३,७४। महाभारत और जातकों से प्रकट है कि उत्तर पांचाल कभी कुरुवो का रहा, और कभी दक्षिण पांचालों का।

Ancient Indian historical tradition

मे आया है कि मरुत्त के पीछे तुर्वश की शाखा पौरवों मे मिल गई। यही बात मरुत्त द्वारा दुष्यन्त के गोद लिए जाने से पुराणों से भी प्रकट है। महाभारत मे उत्तमौजस तथा सृंजय दोनों पांचाल थे। धृष्टद्युम्न सोमकों मे मुख्य थे (म० भा० आदि पर्व १४,३३)। दिवोदास, सुदास और द्रुपद पांचाल थे। उत्तर पांचाल द्रोण को मिला।

चेदि बुंदेलखण्ड तथा निकट का देश था। कभी नर्मदा तक भी फैलता था। राजधानी शुक्तिमती थी। कशु चैद्य ऋग्वेद VIII ५,३७,३९ का कथन दान स्तुति मे है। चेतिय जातक यो राजवंश देता है:—१ महा सम्मत—रोज — वरराज—कल्याण ५—वर कल्याण—उपोस्थ—मान्धाता—वरमान्धाता—चर—१०, उपचर या अपचर। शायद महाभारतके पौरव चेदिराज उपरिचरवसु यही हो। जातक तथा महाभारत इन दोनो के पांच-पांच पुत्र बतलाते हैं। जातक ४८ कहता है कि काशी से चेदि के मार्ग मे डाकू लगते थे।

ऊपर हम पौरव वंश मे हस्तिनापुर वालो से इतर विदर्भ के द्विमीढ़ों, उत्तर पांचालों, दक्षिण पांचालों, काशी वालो और कान्यकुब्जों के इतिहास लिख आये हैं। इन वंशों मे ययाति, दुष्यंत, भरत, सुहोत्र. हस्तिन, अजमीढ़, सवर्ण, कुरु, द्विमीढ, मुद्गल, दिवोदास, सुदास, वृहद्वसु, धन्वन्तरि, प्रतर्दन, वत्स, जह्नु और विश्वामित्र प्रधान पुरुष थे। ययाति मनु से छठी पीढ़ी मे थे। इनसे २३ वीं पीढ़ी वाले दुष्यन्त के बीच में पौरव कुल मे कोई मुख्यता न थी। इसी भांति सूर्य्य वंश में भी नं० ४ पुरंजय के पीछे तथा मान्धातृ नं० २१ के पहले जो १६ राजे थे, इनमे विशेष मुख्यता न थी। अतएव प्रकट है कि पुरंजय और ययाति इन दोनो के पीछे सूर्य और पौरव दोनो वशो में प्राय: तीन सौ वर्षों तक विशेषता न थी। इसके पीछे दोनों वंशों मे मुख्यता का फिर प्रारम्भ हुआ। दोनों वशों मे वेदर्षि राजे थे, किन्तु वेदो का गायन विशेषतया पौरव राज्य मे हुआ। इसी कुल मे वेदर्षि भी अधिक थे। इन्ही कारणों से वेद मे सूर्य वंशियों के सामने चन्द्रवंशियो का बहुत अधिक कथन है। अनार्यों का आर्यों से अन्तिम महायुद्ध राजा वर्चिन की अध्यक्षता में उत्तर पांचाल नरेश सुदास से हुआ। उस काल यह राज्य रावी नदी तक फैला था। उस युद्ध में कई आर्य राजाओं ने भी वर्चिन का साथ दिया, किन्तु अनार्यदल ने करारी पराजय खाई और वर्चिन के एक लाख से ऊपर सैनिक मारे गये। इसके पीछे अनार्यों का आर्यों से प्राचीन काल मे कोई भारी युद्ध न हुआ और अनार्य दब गए। उस काल रावण (लंका वाला), तिमिध्वज शम्बर, वर्चिन और भेद प्रधान अनार्य नरेश थे। तिमिध्वज की राजधानी वैजयन्त थी। उसकी स्त्री रावण की स्त्री मन्दोदरी की बहिन थी। अतिथि रूप से वैजयन्त जाकर रावण ने एक बार इन्द्रिय लोलुपता के कारण शम्बर की रानी मायावती से व्यभिचार करना चाहा। यह जान कर शम्बर ने उसे वहीं कैद कर दिया और मन्दोदरी तथा मायावती के पिता मयदानव के कहने से कठिनता से छोड़ा (शिवपुराण)। इससे इन दोनों में मन मैली हो गई और जब पांचालपति दिवोदास तथा अयोध्या नरेश दशरथ ने शम्बर से युद्ध किया, तब उसके मारे जाने तक भी रावण ने उसकी सहायता न की। फल यह हुआ कि

समय पर दशरथात्मज राम ने रावण का भी सत्यानाश कर डाला। यदि दोनों रावण और शम्बर मिल कर लड़ते, तो शायद दोनों के दोनो बचे रहते। इधर दिवोदास के उत्तराधिकारी सुदास ने वर्चिन को नष्ट किया तथा भेद उनका प्रजा होगया। इस प्रकार राक्षसों और दानवो का बल उस काल चूर्ण हुआ।

———

बारहवां अध्याय

मनु-रामचन्द्र काल, त्रेतायुग प्रायः १६०० से १२५० बी० सी० तक।

चन्द्रवंश की इतर शाखायें तथा सम्मिलित विवरण।

यदुवंश—वैदर्भ, और माथुर शाखायें।

पौरवों के पूर्व पुरुष ययाति के बड़े पुत्र शुक्राचार्य के दौहित्र यदु ही थे, किन्तु आज्ञोलंघन के कारण चारों जेष्ठ बन्धु अधिकारच्युत हुए तथा पंचम पुरु सम्राट बने। तो भी ययाति द्वारा जीता हुवा चम्बल बेतवै और केन वाला देश यदु को मिला। इनके दो पुत्र थे अर्थात क्रोष्टु और सहस्रजित। पहले में मुख्य यादव वंश चला, और दूसरे में हैहयवंश। यदु वाले देश के उत्तरी भाग में सहस्रजित स्थापित हुये और दक्षिणी में क्रोष्टु या क्रोष्टा। ऋग्वेद में यदु के विषय में भले और बुरे दोनों प्रकार के कथन हैं। हरिवंश में जो इनका आनर्त देश में गोद जाना लिखा है वह किसी अन्य यदु में सम्बद्ध है, क्योंकि वह गोद लेने वाला हर्यश्व यदुवंशी ३९ वें नरेश मधु का दामाद था। ऋग्वेद में एक स्थान पर यदुवंशियों के यज्ञादि न करने के कथन हैं तथा अन्यत्र इनके दान की प्रशंसा है। पुराणों में भी इस कुल की प्रशंसा होते हुए यह भी लिखा है कि ये नरेश दुराचारी थे तथा इनके कारण अन्य क्षत्रियों में भी दुराचार फैला। सूर्य और पौरव वंशों की भांति यदु पुत्रों के पीछे इस शाखा में भी (नं० २०) शशिबिन्दु के पूर्व कोई विशेष महत्ता न आई और वंशावली में नरेशों के नाम ही नाम हैं। शशिबिन्दु प्रसिद्ध यज्ञकर्ता और सम्राट् थे। इन्होंने पौरवों को राज्यच्युत किया, किन्तु इनके पीछे यदु वंश कुछ पीढ़ियों तक फिर निर्बल हो गया। शशिबिन्दु का वर्णन वायु ९५, १९, मत्स्य ४४, १८ विष्णु ४, १२, १, अग्नि २७४, १२, भागवत ९, २३, ३२ में आया है।

इनके पौत्र (नं० २२) परावृत के दो पुत्र विदिशा मे स्थापित हुए। इनके मुख्य पुत्र ज्यामघ दक्षिण जाकर मृत्तिकावती, ऋक्षपर्वत आदि मे राज्य करने लगे। समझ पड़ता है कि कारणवश ज्यामघ का पैत्रिक राज्य शायद हैहयों के फैलने से छूट गया। इनके पुत्र विदर्भ ने इसी नाम का प्रान्त जीत कर वहाँ मुख्य स्थान बनाया। इस राज्य की विदर्भ और कुंडिन राजधानियाँ थी, (म० भा० ३१, २७७२. V १५७, ५३६, ३, ह, वं, ११७, ६५८८. ६६०६, १०४, ५८०४, १०६, ५८५५, ११८, ६६६२. ६६९३)। नं० २४ विदर्भ से नं० ३३ विकृति तक कोई विशेष घटना नही मिलती है। (न० ३५) भीमरथ निषधनाथ नल के श्वसुर एव दमयन्ती के पिता थे (म० भा० वन पर्व)। नल दमयन्ती पर अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखे गए है, जो कई योरोपियन भाषाओ तक में अनुवादित हो चुके है। भीम वैदर्भ का कथन ऐतरेय ब्राह्मण VII ३४, मे है। इनके पीछे (३९) मधु को हम आनर्त और मथुरा का स्वामी पाते हैं। ये आनर्त राज्य अपने जामाता हर्यश्य को देते है और मथुरा बेटे लवण को; ऐसा हरिवंश मे लिखा है। इनके प्रपौत्र सत्वन्त का पुत्र न० ४३, भीम सात्वत था। इसके या सत्वन्त के समय मे राम के भाई शत्रुघ्न ने मथुरा छीन कर वहां राज्य जमाया किन्तु राम और शत्रुघ्न के पीछे भीम सात्वत ने मथुरा (मधुपुरी) फिर से प्राप्त की। सम्भवतः यह पुरी उपर्युक्त मधु की बसाई हुई थी। जान पड़ता है कि मथुरा खोने के पीछे यदुवंश उसी के निकट कही कालक्षेप करता रहा होगा। समझ पड़ता है कि विदर्भ मे इस वश की एक शाखा स्थापित रही होगी जिसके प्रतिनिधि श्रीकृष्ण के समय में भीष्मक और रुक्मी थे, तथा उस वंश की एक शाखा मथुरा और आनर्त की अधिकारिणी हो गई होगी। यही शाखा मध्यदेश मे आ जाने से वंशावलियों मे मुख्य समझी गई तथा विदर्भ की मुख्य शाखा अमुख्य हो गई। यह भी सम्भव है कि (नं० ३१) द्विमीढ़ ने जब विदर्भ मे पौरव राज्य भी स्थापित किया, तब विदर्भ के तत्कालीन वंशधरों का प्रभाव कुछ कम हो गया हो।

विदर्भ न० २४ के क्रथभीम और क्रथ कैशिल नामक दो पुत्र थे।

क्रथभीम के वंश का ऊपर वर्णन हो चुका है। उधर क्रथ कैशिक के वंशधरों में चिदि, वीरबाहु और सुबाहु के नाम लिखे हैं। ये सुबाहु राजा नल की रानी के मौसिया थे (म० भा०)। नल का नं० ३५ बैठता है, सो सुबाहु का ३४ होना चाहिए। फिर भी वंशावली में वह नं० २८ है। इससे जान पड़ता है कि इस वंश के केवल मुख्य नाम लिखे हैं। सम्भवत: क्रथभीम की शाखा मथुरा चली आई हो और क्रथ कैशिक की विदर्भ में रह गई हो तथा उसी वंश में उपर्युक्त भीष्मक (श्रीकृष्ण के ससुर) हो। माथुर तथा अन्य हैहएतर यादवों का वर्णन द्वापर युग में होगा। ऊपर के विवरण से प्रकट है कि यदु वंश की यह शाखा पहले अपने पैत्रिक देश में रही। फिर ज्यामघ के काल मृत्तिकावती में आकर विदर्भ के आधिपत्य से विदर्भ में स्थापित हुई और इन्हीं के पीछे देश का नाम पड़ा। अनन्तर कुछ काल में एक शाखा वहीं रह गई तथा वहाँ द्विमीढ़ का पौरव राज्य भी जमा (पार्जिटर) और दूसरी यादव शाखा मथुरा चली आई। इस शाखा का आनर्त प्रान्त वाला अधिकार प्रसन्नतापूर्वक सूर्य्य वंशियों में चला गया। जिस काल हैहयों का अधिकार सगर के प्रभाव से गिरा और उनका वैदर्भों से वैवाहिक सबंध हुआ, तब से इन्हीं वैदर्भों ने उत्तर की ओर बढ़कर कुछ हैहय राज्य पर भी अधिकार कर लिया। यह भूभाग शायद इन लोगों के पूर्व पुरुषों का वह देश होगा जो हैहयों ने इन से छीना होगा। पार्जिटर का विचार है कि वैदर्भ चिदि ने यमुना तट का चेदि राज्य चलाया। वास्तव में वह चेदि राज्य पौरव वंशी सुधन्वन या सुहोत्र का कमाया था तथा सुहोत्र के प्रपौत्र पौरव चिदि के कारण चेदि कहाया। यादव चिदि का उस राज्य से सम्बन्ध नहीं समझ पड़ता। पार्जिटर का यह भी कथन है कि विदर्भ के तीसरे पुत्र लोमपाद ने भी एक अज्ञात राज्य जमाया। वह कहते हैं कि कुछ कैशिक लोगों के साथ विदर्भ में भी रहे। वास्तव में क्रथ कैशिक सदा विदर्भ ही में समझ पड़ते हैं और चेदि में पौरव राज्य था। भीष्मक तक क्रथ कैशिक के विदर्भ ही में अतिथि रहे थे (इनका विवरण आगे आवेगा)।

यादवों की हैहय शाखा।

उपर्युक्त यदु नं० ७ की चौथी पीढ़ी पर हैहय का नाम लिखा है, किन्तु इस वंश की प्रायः १६ पुश्तें पौराणिक वंशावलियों से छूट गई है। ऐसा निष्कर्ष पौराणिक विवरणों की समकालीनतायें मिलाने से निकलता है। इस प्रकार हैहय का नम्बर २५ वां पड़ता है। उनके समय इस वंश की इतनी उन्नति हुई कि यादव छोड़ कर ये लोग हैहय कहलाने लगे। समझ पड़ता है कि हैहय से ही हार कर ज्यामघ यादव नं० २३, ने अपना पैत्रिक प्रान्त छोड़ कर मृत्तिकावती में, विदर्भ के निकट, शरण ली और तब उन के पुत्र विदर्भ ने अपने नाम पर प्रान्त स्थापित किया, जिसे अब बरार (विदर्भ) कहते है। उधर यादवों का पैत्रिक देश हैहय को मिल गया जिससे इनका प्रभाव और भी बढ़ा। इनके प्रपौत्र साहज (नं० २८) ने साहजनी पुरी बसाई तथा इनके पुत्र महिष्मान ने माहिष्मती। सूर्यवंशी मुचकुन्द ने भी एक माहिष्मती बसाई थी। सम्भवतः दोनों एक ही थीं। हैहय के पीछे किसी समय सूर्यवंशी शार्यात् क्षत्रिय भी आनर्त खोकर हैहयों में आ मिले, जिससे दोनों का प्रभाव बढ़ा। महिष्मानात्मज नं० ३०, भद्रशेण्य ने पूर्वी राज्यों को जीतते हुए काशी पर भी आक्रमण किया। काशी नरेश नं० ३४ दिवोदास (प्रथम) ने भद्रशेण्य के कई पुत्रों को मारा। सम्भवतः भद्रशेण्य भी इसी युद्ध मे काम आये। काशी राज्य ने इनके एक मात्र पुत्र दुर्दम को बालक समझ कर छोड़ दिया। अनन्तर कुछ दिनों मे बल बढ़ा कर दुर्दम ने फिर काशी पर आक्रमण किया, और काशी नरेश, पहले दिवोदास (नं० ३४) को हराया। वे काशी छोड़ कर पच्छिम की ओर भागे। यहाँ उन्होंने गोमती के तट पर राजधानी बनाई। उधर काशी को लूट कर दुर्दम तो चल दिए और वहां क्षेमक राक्षस का अधिकार होगया। कुछ दिनो मे उसे भी हरा कर दुर्दम ने काशी हैहय राज्य मे मिला ली। इन कथनों के आधार ऊपर काशी के राज्य-कथनों मे आये हैं जहां यह कथा भी कथित है। शायद भद्रशेण्य के समय आक्रमणों के कारण हैहयों को धन की बहुत आवश्यकता हुई। किसी हैहय नरेश ने अपने अथच पूर्व पुरुषों द्वारा सम्मानित उस भार्गव

वंश से धन माँगा, जो शार्यातो का पुराना पुरोहित था और नर्मदा के दक्षिण रहता था, अथच शार्याती के सम्बन्ध से हैहयों द्वारा भी पूजित था। उन्होंने धनाभाव बतलाया किन्तु खोदाई होने से उनके पास प्रचुर द्रव्य निकला। तब क्रोध करके हैहयों ने गर्भ तक फाड़-फाड़ कर उस वंश का नाश किया, केवल और्व नामक एक बच्चा किसी प्रकार बच गया। अनन्तर सयाने होने पर और्व नर्मदा को छोड़कर मध्यभारत में रहने लगे। इनके पुत्र ऋचीक प्रकट कारणों से शस्त्री हुए। ऋचीक का विवाह कान्यकुब्ज नरेश गाधि (वैदिक गाथिन) की पुत्री सत्यवती से हुआ, जिससे जमदग्नि का जन्म हुआ। उधर प्रायः उसी समय गाधि पुत्र विश्वामित्र उत्पन्न हुए। जमदग्नि के रेणुका से पांच पुत्र हुए, जिनमें सब से छोटे परशुराम थे। रेणुका सूर्यवंशी किसी प्रसेनजित की पुत्री थी। अतएव कान्यकुब्ज तथा सूर्यवंशो की जमदग्नि से सहानुभूति थी। उधर हैहय नरेश दुर्दम का पौत्र कृतवीर्य प्रतापी राजा हुआ (महाभारत)। हैहयों का वर्णन निम्न अन्य पुराणों में भी है—ब्रह्माण्ड, वायु, ब्रह्म, हरिवंश, मत्स्य, पद्म लिंग, कूर्म, विष्णु, अग्नि, गरुड़, और भागवत्। वीतिहोत्र, अवन्ति, भोज, शार्यात और तुण्डिकेर नामक इनकी पांच शाखायें आगे चलकर हुईं।

शान्ति पर्व में यह लिखा है कि भार्गवों द्वारा जब हैहयों का पराभव हुआ, तब वैश्य और शूद्र ब्राह्मणों तक पर अत्याचार करने लगे जिस पर इन्हों (भार्गवों) ने फिर हैहयों को राजा बना कर उनका दमन कराया। इससे ज्ञात पड़ता है कि पहले भार्गवों ने इनसे मिल कर हैहयों को पछाड़ा, और जब अपने पुरुषार्थ से मदोन्मत्त होकर वे अनीति करने लगे, तब हैहयों के द्वारा भार्गवों ने उनका दमन कराया। पण्डित लोग यह भी कहते हैं कि हैहयों के विरोध में कान्यकुब्जों तथा सूर्यवंशियों ने भी भार्गवों की सहायता की होगी।

हैहयार्जुन को जमदग्नि की स्त्री रेणुका की बहिन ब्याही थी। पर साधारण कारणों से इन साढुओं में मन मैली हो गई, और अर्जुन ने जमदग्नि के आश्रम पर आक्रमण किया। इस पर पिता की आज्ञा मान कर राम ने विद्रोही प्रजा के नेता बन कर युद्ध में अपने मौसिया एवं प्रसिद्ध सम्राट् अर्जुन को अपने हाथ से वध किया। अनन्तर

अर्जुनात्मजों ने राम की अनुपस्थिति मे निरस्त्र जमदग्नि को मार डाला। कहते हैं कि इस पर क्रोध करके राम ने २१ बार भारत मे सभी युद्धोत्साही क्षत्रियों का बध किया। यह कथन पुराणों में कथित है किन्तु तत्कालीन राजमंडल की स्थिति के देखने से अनैतिहासिक समझ पड़ता है। स्वय राम की माता तथा पितामही क्षत्रियात्मजा थीं। एक क्षत्रिय वश के कारण वे सारे क्षत्रिय वंशों पर क्रोध कर भी नहीं सकते थे। जान पड़ता है कि उन्होंने अर्जुन के दोषी पुत्रों का बध किया होगा। परशुधर राजा होना तो चाहते न थे, सो विजय प्राप्त करके पहले तो आप कुछ दिन कोकण मे बसे और फिर पूर्वी घाट के महेन्द्र पर्वत पर रहने लगे। विचार किया जाता है कि उनके प्रतोत्साहन से दक्षिण मे ब्राह्मणों की बस्ती बहुत स्थापित हुई। पीछे रामचन्द्र के समकालीन अगस्त्य ने भी उधर बहु-संख्या मे ब्राह्मण जनता बढ़ाई। मध्यदेश में परशुधर के भाई चारे मे पीछे अग्नि और्व महत्ता युक्त हुए। इन्हीं की सहायता से सगर का प्रताप बढ़ा। हैहयों के विषय मे कुछ और आधारों का कथन करके हम कथा के डोर को आगे चलावेंगे। इनके तथा भार्गव ब्राह्मणों के कथन पुराणों मे बहुतायत से है। सहस्रार्जुन का कर्कोटक नागों से माहिष्मती लेना (म० भा० VIII ४४,-२०६६, III ६६, २३११ VIII ३४, १४८३, ह० व० १६८, ९५०२, पद्म VI २४२,२) मे लिखित है। कर्कोटक नागराज था। अर्जुन का नर्मदा से हिमालय तक जीतना (म० भा० III ११६, ११०८९, ११७,-१०२०९) तथा हैहयो का शकों, यवनों, काम्बजो, पारदों और पल्लवो की सहायता से मध्य देश जीतना (वायु ८८, १२२,४३ ब्रह्माण्ड III ६३,१२०,४१ VIII २९, ५१, ह० वं० १३,७६०, विष्णु IV ३, १५,७२) मे कथित हैं।

इसी स्थान पर वीतिहव्यादि हैहय तथा भार्गवो के सम्बन्ध मे भी आधार लिख दिए जाते हैं जिसमे आगे के कथनों मे स्थान स्थान पर विवरण छोड़ कर वे न लिखने पड़े।

काशी की शाखा वाले प्रतर्दन ने हैहय राजधानी जीतकर वीतिहव्य (तालजंघ हैहय के पुत्र) को हराया। वीतिहव्य शौनक भार्गव ऋषि होगए। इन्होने आंगिरस शुनहोत्र के पुत्र गृत्समद वेदर्षि को गोद

लिया। यही गृत्समद शंबर वध से अतिथिग्व दिवोदास का कथन करते हैं। वीतिहव्य भरद्वाज ऋषि के साथ भी रहे। गृत्समद का दूसरा ऋग्वेद वाला मंडल है, और भरद्वाज का छठवां। इस छठे मण्डल में वीतिहव्य का कथन ऋषि की भांति है। वीतिहव्य वीतिहोत्र भी कहलाते थे (म० भा० XIII ३०,५८,९.३०.१९८३, ९६. सर्वानुक्रमणी) वीतिहव्य को महाभारत के अनुसार एक भार्गव ऋषि ने बचाया। इसी से ये भार्गव ऋषि बने। म्लेच्छों की सहायता से वीतिहव्य के पिता तालजंघ हैहय ने राजा बाहु को पराजित किया था। अनन्तर बाहु के पुत्र सगर ने हैहयों का दल नष्ट किया। (आधार वायु ८८, १२१. ४३. ह० व० ६३. ७३० से १४. ७८४ तक. विष्णु IV ३. १५. २१ महाभारत में कई जगह।)

भार्गवों के विषय में आधार।

ऊपर कहे हुए हैहयों के पौराणिक विवरणों में भार्गवों का भी हाल मिलेगा। सगर की पालना अग्नि और्व ने की (वायु ८८. १२७. मत्स्य १२, ४०. ३)।

पुराणों में कहीं-कहीं कृतवीर्य का भार्गवों को अमीर करना लिखा है और फिर उनके पीछे हैहयों द्वारा भार्गव संहार कथित है। इसी संहार से और्व का बचना तथा उनके प्रपौत्र परशुराम का कार्तवीर्य अर्जुन को मारना लिखा है। इससे जान पड़ता है कि भार्गव संहार कार्तवीर्य के पहले हुआ होगा। सम्भव है कि कार्तवीर्य ने भार्गवों का मान किया हो, किन्तु यह संहार के पीछे की बात थी।

ऋचीक और्व धनुर्धर एवं शास्त्री थे (म० भा० XIII ५६. २९१० XII ३३४. ८६०७. रामायण I ५७. ३३. ७)।

जमदग्नि भी शास्त्रों तथा धनुष विद्या में निपुण थे, किन्तु इन्होंने शान्त स्वभाव के कारण युद्ध छोड़ दिया। ये नर्मदा के किनारे रहते थे. (म० भा० III ११७, १००३९-४०, XIII ५६, २९१०. १२, III ११६, ११०३१. XII ४९, १७४४, रामायण I ५१, ३३, ३. पद्म VI २६८, २१)। अग्नि और्व ने सगर की सहायता की (मत्स्य १२, ४०, पद्म V ८. १४४). जामदग्नि राम ने कार्तवीर्यार्जुन को मारा.

उसके पुत्रों का भी ध्वंस किया तथा २१ बार पृथ्वी निःक्षत्र की। अब हैहयों का इतिहास फिर से उठाया जाता है।

अर्जुन के पीछे तत्पुत्र जयध्वज राजा हुये। शूर और शूरसेन इनके भाई थे। जयध्वज का कोई प्रभाव न बढ़ा, किन्तु इनके पराक्रमी पुत्र तालजंघ (राजा न० ३६) ने फिर हैहय बल को बढ़ाया। शार्यात इनमे मिल ही चुके थे, अब आवन्ति, तुण्डिकेर और भोज भी मिल गये। हैहयो की एक शाखा तालजघात्मज के नाम पर वीतिहोत्र भी कहलाती थी। तालजंघ ने विश्वामित्र को म्लेच्छो द्वारा हरानेवाली वशिष्ठ की युक्ति को ठीक समझ स्वदेशाभिमान छोड़ कर म्लेच्छो से भी सहायता ली। इधर प्रजा का विद्रोह भार्गवों से मेल हो जाने से टूट ही चुका था, सो पराक्रमी भूपाल तालजंघ ने हैहय राज्य के बढ़ाने मे मन लगाया। ये पुराणो मे बृहद्बाहु (बड़ी भुजावाला) कहे गए है। इनका राज्य आनर्त (कैम्बे की खाड़ी के निकट) से बनारस तक फैला। इनके आक्रमणो से पराजित हो कर सूर्यवशी राजा बाहु उपर्युक्त अग्नि और्व ऋषि के आश्रम मे गए, तथा काशी नरेश दूसरे दिवोदास (न० ३७) भरद्वाजाश्रम मे जा छिपे। विश्वामित्र के पुत्र लौहि का कान्यकुब्ज राज्य नष्ट हुआ और केवल अयोध्या का सूर्यवंशी राज्य इस ओर बच रहा। पौरवो, पांचालो आदि से हैहयो का बिगाड़ न हुआ। जान पड़ता है कि परशुधर के नाना प्रसेनजित सगर के पूर्वपुरुषो मे कोई थे और इस वश ने तथा कान्यकुब्जो ने भार्गवो की अवश्य सहायता की होगी, जिससे हैहयो ने अपने पुराने शत्रु काशी नरेश के अतिरिक्त इन्ही दो मुख्य राज्यो से वैर निकाला। तालजघ ने काशी के पूर्व वाले राजाओं को भी जीता होगा, किन्तु पुराणो मे उनके नाम नही है, केवल वैशाल नरेशो मे नं० ३५ प्रगति अन्तिम नरेश लिखे है। उनका राज्य तालजंघ ही ने छीना होगा, ऐसा समझ पड़ता है। इनके युद्धो मे क्षत्रियो का संहार बहुत हुआ तथा इनके द्वारा म्लेच्छ सेना के भी प्रयोग से अथच हैहयों के भार्गवो से अनुचित विरोध करने से, इन क्षत्रियो का भारी विजेता होने पर भी भारतीय ग्रन्थो मे अधिक समादर नही है।

तालजंघ के समय तो कोई हैहयों से आँख मिला न सका, किन्तु

इनके पीछे इस वंश पर विपत्ति आई। इनके पुत्र वीतिहोत्र (नं० ३७) तथा उनके एक भाई में यह राज्य बट गया। वीतिहोत्र के प्रपौत्र, (नं० ४०) सुप्रतीक इस शाखा के अन्तिम नरेश थे। इसी काल दूसरी शाखा के अन्तिम राजा वीतिहोत्र के पौत्र वृष्ण थे। दिवोदास के पुत्र राजा (नं० ३८) प्रतर्दन ने वीतिहोत्र को वह करारी पराजय दी कि वे राज्य छोड़ कर भार्गव वंशी वेदर्षि हो गए। इन्हीं वीतिहोत्र ने उत्तर पांचाल नरेश दिवोदास द्वारा पूजित वेदर्षि भरद्वाज के साथ वैदिक ऋचाओं का गान किया। इनके पुत्र और पौत्र दुर्जय फिर भी किसी न किसी रूप में हैहयराज्य चलाते रहे। काठक संहिता में आया है कि भरद्वाज ने प्रतर्दन को राज्य दिया। ये वही भरद्वाज थे, जिनका वीतिहव्य से भी सम्बन्ध हुआ, सो यही निष्कर्ष निकलेगा कि प्रतर्दन ने वीतिहव्य को पकड़ कर अपने गुरु भरद्वाज के हवाले किया तथा उसका पुत्र हैहयराजा हो गया। अनन्तर और्व के आश्रित बाहु के पुत्र प्रसिद्ध नरेश सगर ने हैहयों की दोनों शाखाओं को नष्ट करके इस वंश को पूर्णतया राज्यच्युत कर दिया। हैहयों ने अपना राज्य बढ़ाने में दूसरों के अधिकारों का उचित मान नहीं किया, जिससे भार्गवों पर विपत्ति आई, वैशाल और कान्यकुब्ज राज्य नष्ट हो गए, तथा काशी और बाहु के राज्य डगमगाये, किन्तु अन्त में भार्गवों तथा इन्हीं दोनों द्वारा हैहयराज्य अशेष हुआ। कालिदास ने राम की पितामही इन्दुमती के स्वयंवर में हैहयवंशी प्रतीप की उपस्थिति लिख कर उन्हें वृद्ध सेवी बतलाया है। सम्भवतः प्रतीप उपर्युक्त वृष्ण के पिता या पितामह हों। उज्जयिनी हैहयों के ही राज्य में थी। त्रेतायुग में अयोध्या वंश के अतिरिक्त हैहयों के वंशी ही सर्वोत्कृष्ट थे, किन्तु रामचन्द्र के समय में अथवा उनके कुछ ही पीछे निर्मूल हो गये।

तुर्वश वंश, उत्तरी बिहार।

यदु के सगे भाई तुर्वसु को ययाति द्वारा किये हुये बटवारे में प्राग्-सीमां प्रान्त मिला। उस प्रान्त से यह वंश उत्तरी बिहार में कब आया सो पता नहीं, किन्तु मरुत्त (नं० [illegible]) को हम यहां पाते हैं। [illegible]

मरुत्त को तौर्वंश मरुत्त का बहुत कुछ यश पुराणों मे मिला है, यहाँ तक कि इनके पिता करन्धम का नाम भी वैशाल मरुत्त के पितामह का है। करन्धम भी प्रतापी लिखे हुए हैं। मरुत्त चक्रवर्ती सम्राट हुए। (अश्वमेध पर्व महाभारत) आपने दीर्घतमस के चचा संवर्त से यज्ञ कराई। इन्हे भारी खज़ाना भी हिमालय मे मिला। संवर्त के भाई बृहस्पति का वही नाम था, जो देव पुरोहित का। शायद इसी से संवर्त का सम्बन्ध महाभारत के अश्वमेध पर्व में देव पुरोहित बृहस्पति से जुड़ा है और इन्द्र की मरुत्त पर ईर्ष्या कही गई है। देव पुरोहित बृहस्पति इस काल से बहुत पूर्व के थे। उनका संवर्त और उचथ्य के भाई बृहस्पति से सम्बन्ध नहीं समझ पड़ता है। दैत्य दानवों के शत्रु इन्द्र का ऐतिहासिक वर्णन मनु और चन्द्र के समय मे होकर (सूर्यवंशी नं० ४) पुरंजय के समय तक चलता है, जहाँ वह नाम किसी सम्राट् वंश की पदवी है। वृत्र को मार कर जब इन्द्र भागते हैं, तब (चन्द्रवंशी नं० ५) नहुष इन्द्र बनते है। अनन्तर उनके पतन पर शायद पुरंजय की सहायता से पुराने इन्द्र फिर गद्दी पर बैठ जाते है। इसके पीछे (योग वाशिष्ठ के अनुसार) किसी दैत्य सरदार प्रह्लाद को विष्णु इन्द्र बनाते है। यह प्रह्लाद बलि के पितामह से इतर कोई अन्य दैत्य सरदार भी हो सकते है, किन्तु समझ बलि के ही पितामह पड़ते है। योग वाशिष्ठ मे विष्णु कहते है कि आज से दैत्यों का रुधिर पात युद्ध मे न होगा। पुराणों मे लिखा है कि प्रह्लाद भविष्य में इन्द्र होगे। इन कथनो से फारस मे अन्त मे दैत्य साम्राज्य के स्थापित होने की ध्वनि मिलती है। इसके पीछे सब से पहले जब इन्द्र का ऐतिहासिक विवरण आता है तब वे युधिष्ठर के अनुज अर्जुन के स्नेही पिता के रूप मे हिमालय के किसी प्रान्त के सम्राट् देख पड़ते हैं, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। बलि को वामन की सहायता से जीतनेवाले इन्द्र शायद फारसी सम्राट् थे। यश वंश नहुष के समय मे डगमगा कर अन्त मे अधिकारच्युत हुआ और प्रह्लाद नामक किसी दैत्य की अध्यक्षता मे उस वंश मे फारसी इन्द्र पद स्थापित हुआ। दूसरा इन्द्र घराना युधिष्ठिर के समय हिमाचल मे था। रावण के समय मे भी एक इन्द्र थे। इन तीनो वंशो के अतिरिक्त कोई चौथा ऐतिहासिक

इन्द्र वंश नहीं समझ पड़ता है। अतएव मरुत्त से होड़ करनेवाले इन्द्र केवल माहात्म्यवर्द्धक अथच काल्पनिक समझ पड़ते हैं। मरुत्त के कुछ ही पूर्व मान्धाता ने पौरव कुल को राज्यच्युत कर दिया था। अब इन्हीं (मरुत्त) ने पौरव वंशी राजकुमार दुष्यन्त को गोद लिया। मरुत्त का उत्तराधिकार पाने से दुष्यन्त का प्रभाव बढ़ा जैसा कि पौरव कुल में कथित है। तुर्वश वंश यहीं से पौरव कुल में मिल जाता है। कहते हैं कि दाक्षिणात्य राजकुल पांड्य, चोल, और केरल तुर्वश वंशी थे। महाभारत आदि पर्व में यवन भी तुर्वश वंशी कहे गये हैं।

द्रुह्यु वंश, पंजाबी नरेश।

ययाति के बटवारे में द्रुह्यु को यमुना के पच्छिम तथा चम्बल के उत्तर वाला देश मिला। इनके २७ वें वंशधर पर्यन्त, बीच के कुछ नाम छोड़ कर, पुराणों में लिखे हैं। द्रुह्यु वंशी नं० २१. अङ्गार को सूर्यवंशी मान्धाता ने हराया, जिससे इन लोगों को और भी पच्छिम हटना पड़ा। इनके पुत्र गान्धार में थे। सूर्यवंशियों ने वहां भी इनका पीछा न छोड़ा, किन्तु इन्होंने मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स को बन्दी बना लिया। ऋग्वेदानुसार कारागार में ही पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु का जन्म हुआ। अनन्तर प्रतापी मुचकुन्द ने अपने भाई पुरुकुत्स का मोचन किया। सयाने होने पर पिता के बन्दी होने का बदला लेने को त्रसदस्यु ने दुष्यन्त से प्रेम स्थापित रखने को उनका पैत्रिक पौरव राज्य सम्भवतः बिना युद्ध किए फेर दिया तथा गान्धारों पर आक्रमण करके द्रुह्युवों को करारी पराजय दी। तब ये लोग और भी पच्छिम हट कर म्लेच्छ देश को चले गए। कुछ द्रुह्यु वंशी मध्यभारत में भी बसे, जहाँ इन को भोज संज्ञा हुई। इसके पीछे बहुत काल तक द्रुह्यु वंशियों का पता नहीं लगता। इनके वंशधरों में (नं० ३६) प्रचेतस प्रतापी थे। उनके वर्णन पुराणों में हैं। अनन्तर उत्तर पांचाल नरेश नं० ३९, सुदास के समय में हम फिर द्रुह्यु वंशियों का पंजाब में पाते हैं। ये कब इधर स्थापित हुए, सो पता नहीं, [illegible] तो प्रो. भार्गवों आदि के साथ परुष्णी नदी के किनारे हम इन्हें भी ऋग्वेद में सुदास से हारते देखते हैं। इसके पीछे द्रुह्यु वंश के नाम

से इनका पता नही है किन्तु भोज वश के नाम से इन्होने जो काम किये उनके विवरण यथा स्थान मिलेगे। महाभारत आदि पर्व केवल भोजो को द्रुह्यु वशी कहता है।

आनव व श, उत्तर पच्छिमी शाखा।

सम्राट् ययाति के बटवारे मे अनु को गङ्गा यमुना द्वाब का उत्तरी भाग मिला। इनके पीछे (न० २१) महामनस पजाब मे बढ़े। वायु ९९, १६, ७, तथा मत्स्य ४८, १४ मे महामनस चक्रवर्ती नरेश तथा सात समुद्रो के स्वामी कहे गए है। इनको सप्तद्वीप पति कहा है। समझ पडता है कि जब इनके पितामह जनमेजय को मान्धातृ ने हराया तब अपने पैत्रिक प्रान्त मे ठहरना असम्भव समझ कर कुछ आनव पूरब की ओर चले गए और कुछ पच्छिम को। समय पर पच्छिम जाने वालो के नेता महामनस हुए। वहाँ पीछे इन लोगों ने सिन्धु, सौवीर, कैकेय, मद्र, वाल्हीक, शिवि और अम्बष्ट राज्य स्थापित किए। इनमे से कैकेयों की टूटी-फूटी वशावली दी हुई है, तथा इतरो के कथन मात्र हैं। हमारे पौराणिक व्यास लोग मध्यप्रदेश की वशावली देते तथा उनके कथन करते थे। इतरो के मध्यदेश वालों से जैसे कुछ सम्बन्ध रहे, वैसे उनके विवरण आये अथच शेष छोड़ ही दिए गए। महामनस के पुत्र उशीनर और तितिक्षु थे। तितिक्षु पूर्व की ओर चले आये। इनके व श का कथन आगे होगा। उशीनर ने पच्छिम काशी उपनाम अटक बनारस अपनी राजधानी बनाई। इनके राज्य मे यौधेय, अम्बष्ट, नवराष्ट्र और कृमिला शहर भी थे। इनके पुत्र शिवि की पुराणो में शरणागत वत्सल होने की भारी प्रशंसा है। कहते हैं कि आपने केवल एक कपोत के कारण प्राण दिए। शिवि औशीनर से शिवपुर का शिवि वश चला, तथा चार पुत्रों द्वारा पच्छिम की ओर बढ़ कर आपने वृषदर्भ, केकय, मद्र, और सौवीर के राज्य जमाये। पजाब इनके अधिकार में आ गया। केकय की पुत्री कैकेयी (राम की सौतेली माँ और भरत की सगी माता) तथा पुत्र युधाजित थे। जब इस वश का राज्य गन्धर्वों ने नष्ट कर दिया, तब अयोध्या से दलबल समेत आकर भरत ने गन्धर्वों को पराजित

करके अपने दो पुत्रों मे नाना का राज्य बाँट दिया। तक्ष को तक्षशिला मिली और पुष्कर को पुष्करावती (आधार वायु ८८, १८९, १९०, विष्णु IV ४, ४७, अग्नि ११, ७, ८. रघुवंश XV ८८, ९, पद्म V ३५, २३. ४, VI २७१, १०)।

इसके आगे पुराणों में यह वंश वर्णित नहीं है। या तो यह लोग उसी ओर के क्षत्रियों मे मिल गए होंगे, या समय पर शत्रुओं द्वारा जीते जाकर इनके वंशधर राज्यच्युत हुए होंगे। पहला अनुमान सुसंगत समझ पड़ता है क्योंकि इनकी दोनो राजधानियां (तक्षशिला और पुष्करावती) के नाम बहुत काल तक चले। कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि कुछ आनव म्लेच्छ देशों में जा बसे। महाभारत आदि पर्व म्लेच्छों को अनुवंशी कहता है।

आनववंश, पूर्वी अंग शाखा।

उपर्युक्त नरेश नं० २२, तितिक्षु पूर्व मे आकर अंग (वर्तमान भागलपुर) मे स्थापित हुये। इनके पौत्र हेम के पौत्र (नं० २६) बलि एक प्रसिद्ध और विजयी राजा थे। इनकी सुदेष्णा रानी से इन्हीं की आज्ञा से तंवरा मरुत्त का यज्ञ कराने वाले संवर्त के भतीजे तथा उचथ्य और ममता के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक ऋषि अन्धे दीर्घतमस ने पांच पुत्र उत्पन्न किए, जिनके नाम अंग, वंग, कलिंग, सुम्ह और पौण्ड्र थे। अनन्तर इन्हीं मामतेय ने नेत्रवान होकर गौतम नाम धारण किया, तथा दुष्यन्त पुत्र पौरव सम्राट् भरत का ऐन्द्रमहाभिषेक कराया। बलि के पाचों पुत्रों ने बढ़ कर पूर्वी प्रान्तों मे राज्य किया। इनके द्वारा शासित देश इन्हीं के नामों से प्रख्यात हुए। ये सब पूर्वी बिहार से बंगाल तक पर फैले थे। बंग (वर्तमान वीरभूमि मुर्शिदाबाद बर्दवान, और नदिया), पुण्ड्र (छोटा नागपुर), सुम्ह (बांकुरा और मिदनापुर), और कलिङ्ग (उड़ीसा) Rapson के अनुसार आनवों के थे। बलि पुत्र अंग (नं० २७) ने पिता ही की राजधानी मालिनी से राज्य किया। इन्हीं के नाम पर देश अंग (वर्तमान मुंगेर तथा भागलपुर) कहलाया। इनके वंशधर प्रसिद्ध नरेश लोमपाद (नं० ४०) राम के पिता दशरथ के मित्र थे। कौसल्या की पुत्री

शान्ता को गोद लेकर इन्होंने उसका ऋष्य शृंग से विवाह किया। इनके प्रपौत्र चम्प ने चम्पापुरी बसाई, जो अङ्ग की राजधानी हुई। इसी वंश के किसी राजकुमार उद्र का राज्य उड़ीसा में जमा। लोमपाद के वंशधर जयद्रथ (नं० ४८) ने एक ऐसी कन्या से विवाह किया, जिसकी माता ब्राह्मणी और पिता क्षत्रिय था। इस कारण यह वंश सूत कहलाने लगा। आगे का वर्णन यथा स्थान आवेगा। इस वंश का विवरण महाभारत, रामायण तथा पुराणों में है। दीर्घतमस का वर्णन म० भा० के अतिरिक्त ऋग्वेद, वायु ९९, मत्स्य ४८ तथा बृहद्देवता IV १५ में भी है। इस काल के उपर्युक्त महापुरुषों के विवरण जो पुराणों से अन्यत्र मिलते हैं, उनके भी कथन यहाँ किए जाते हैं। इनमें वेदर्षि निम्न हैं :—

दीर्घतमस, वीतिहव्य, जमदग्नि, राम परशुधर और शिवि। यदु, द्रुह्यु, अनु और तुर्वश के नाम ऋग्वेद में बार-बार आये हैं। गन्धार में बहुत करके रावलपिण्डी और पेशावर के जिले लगते थे। उसमें तक्षशिला और पुष्करावती शहर थे। अन्तिम को अब प्रेग और चारसद्द (पेशावर से उत्तर पच्छिम १७, मील) कहते हैं। ऋग्वेद I १२६, ७, में गान्धारियों की ऊन की प्रशंसा है। अथर्ववेद V २२, १४, में गन्धारी लोग निन्द्य होकर मूजवन्तों के साथ कथित हैं। पीछे वहाँ विद्वत्ता की प्रसिद्धि हुई, जहाँ वेदों तथा १८ विद्याओं की शिक्षा होती थी। छान्दोग्य, VI १४, में उद्दालक, आरुणि, गान्धारी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हैं। उद्दालक जातक नं० ४८७, में उद्दालक तक्षशिला जाकर विद्या सीखते हैं। सेतुकेतु जातक नं० ३७७ कहता है कि उद्दालक पुत्र सेतुकेतु ने तक्षशिला में विद्या पढ़ी। कौटिल्य भी वहीं के विद्यार्थी थे। जातक (४०६) में कश्मीर और तक्षशिला गान्धार में थे। गन्धार राज द्रुह्यु वंशी थे। ऋग्वेद में गन्धार वाले उत्तर पच्छिमी लोग थे।

केकय लोग गन्धार और व्यास नदी के बीच में थे, (रामायण, II ६८, १९, २२, VII ११३, १४)। राजधानी राजगृह या गिरिव्रज जलालपुर झेलम पर थी। एक मागध गिरिव्रज भी था। मत्स्य और वायु पुराण कहते हैं कि उशीनर केकय और मद्रक लोग

आनव थे। ऋग्वेद VIII ७४, कहता है कि आनव मध्यपञ्जाब मे थे।

मद्र के दो भाग है, अर्थात् उत्तर और दक्षिण मद्र। ऐतरेय ब्राह्मण मे उत्तर माद्र हिमालय के उस पार लिखे है। कश्मीर के निकट उत्तर कुरु मे दक्षिण माद्र मध्यपञ्जाव में थे। केकय तथा इरावती के बीच मे (महाभारत VIII ४४, १७) यह राज्य सियालकोट और निकट के जिलो पर था। यह गुरु गोविन्दसिंह के समय तक मद्र कहलाता था। राजधानी सांकल थी (महाभारत)। कलिङ्ग जातक ४७९ और ५०१ कुश जातक मे वहां राजकीय सत्ता एक राजाधीन है। पहले मद्र अच्छा था, किन्तु कर्णपर्व मे माद्रो की निन्दा है।

उशीनर का प्रान्त मध्यदेश मे था। ऐतरेय ब्राह्मण VIII १४,कहता है कि मध्यदेश में कुरु, पांचाल, वश एक वश का नाम था तथा उशीनरो का राज्य था। कौशीतकि उपनिषत् में उशीनरों का साथ मत्स्य, कुरु, पांचाल और वशों से हैं। कथा सरित्सागर मे उशीनर कनखल के पास हैं। पाणिनि भी इनका कथन करते हैं। महाभारत मे राजधानी भोज नगर है तथा ऋग्वेद, X ५९, ७, १०, मे उशीनरानी। अनुक्रमणी और जातको मे उशीनर और तत्पुत्र शिवि के कथन हैं। मत्स्य में अलवर, जैपुर तथा भरतपुर के भाग थे। राजधानी वैराट जैपुर मे थी। ऋग्वेद VII १८, ६ में मत्स्य लोग सुदास से हारते हैं। अङ्ग मगध के पूर्व मे है। राजधानी चम्पा थी, तथा चन्दन नदी हद।

मथुरा शूरसेनो की राजधानी थी। इसका नाम ऋग्वेद मे नहीं है। ग्रीक लेखक मथुरा तथा शूरसेनों के कथन करते हैं। यादवों में वीतिहोत्र, सात्वत आदि के नाम हैं, तथा सात्वतो में देवावृद्ध, अन्धक महाभोज और वृष्णि के। शतपथ ब्राह्मण VIII ६, ४३, मे शौनकि भरत सात्वतों को हराकर उनका अश्वमेध बिगाड़ते हैं। ये सात्वत भीमसात्वत के पहले हुए होंगे। ऐतरेय ब्राह्मण में सात्वत दक्षिणात्य हैं (VIII १४, ३) जिनके राजा भोज हैं। माहिष्मती, विदर्भ आदि यादवों की राजधानियाँ थी। ऐतरेय ब्राह्मण VII ३४, में विदर्भराज भीम तथा गान्धार राज नग्नजित के समकालीन सब [illegible] हैं। अवन्ती में मालवा, नीमार तथा निकट की भूमि लगती थी। उसकी

राजधानी उज्जैन थी तथा दक्षिणी अवन्ती। आजकल उज्जैन और अवन्ती एक ही शहर के नाम हैं। सम्भवतः उस काल दो हों। दक्षिणापथ की राजधानी माहिष्मती (मान्धाता) नर्मदा पर थी। महाभारत में अवन्ती के विन्द अनुविन्द नर्मदा के निकट के थे। ऐतरेय ब्राह्मण VIII १४, दक्षिणी भागों से यादवों तथा भोजों का सम्बन्ध बतलाता है। पहला घराना हैहयों का था। इनका कथन कौटिल्य करते हैं। इन्होंने नागोंको जीता। मत्स्य पुराण इनमे पाँच भाग मानता है, अर्थात् वीतिहोत्र भोज, अवन्ती, कुडिकेर या तुण्डिकेर और तालजंघ।

काम्बोज उत्तरापथ में गन्धार के निकट था। राजपूर काम्बोजों का केन्द्र था; यथा, "कर्णराजपूरे गत्वा काम्बोज निर्जितस्त्वया।"

राज्यों की पाँच श्रेणियाँ थीं, अर्थात् साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य, और राज्य। भोज पहले यदुवश के अंग थे। पीछे भौज्य से दाक्षिणात्य राज्य का प्रयोजन मिलने लगा। शतपथ ब्राह्मण XIII ५, ४, ६, मे मरुत्त अवीक्षित अयागव थे, अर्थात् शूद्र पिता और वैश्या माता से उत्पन्न।

महिषी, परिवृक्ता, वावाता और पालागली नाम्नी चार रानियाँ होती थीं। मुख्य महारानी महिषी थी, प्रेमहीना परिवृक्ता, मुख्य प्रेमिका वावाता और अन्तिम, मन्त्री की कन्या, पालागली। भारी सम्राट् का ऐन्द्रमहाभिषेक होता था। शर्यात, विश्वकर्मा, सुदास, मरुत्त और भरत के ऐसे अभिषेक हुए। ग्रामिक आदि राजा को सलाह देते थे।

विष्णु पुराण का कथन है कि बाहु तालजंघ से हार कर और्व के आश्रम गये। सगर ने शक, यवन, काम्बोज, परद और पल्लवों को जीता। वशिष्ठ ने उन्हे बचा कर प्रजा के रूप मे बसने दिया। महाभारत आदि पर्व मे वशिष्ठ ने शबरों तथा म्लेच्छों के द्वारा विश्वामित्र को जीता। जनमेजय के सर्पसत्र मे आस्तीक ने, म० भा० आदि पर्व मे गय, शशिविन्दु, अजमीढ़, रामचन्द्र और युधिष्ठिर के यज्ञों की प्रशसा की। द्रोण पर्व मे व्यास ने युधिष्ठर के समझाने मे निम्न १६ प्राचीन भारतीयों कोश्रेष्ठ कहा:—मरुत्त (यज्ञकर्ता सम्राट्),

सुहोत्र (भारी वीर, यज्ञकर्ता, राजधानी में स्वर्ण बाहुल्य), अङ्ग. (यज्ञकर्ता), शिविऔशीनर (दानी, यज्ञकर्ता), दाशरथी राम. भगीरथ (सार्वभौमराजा, हज़ारों कन्यायें विप्रों को दीं), दिलीप इल्वलात्मज (यज्ञ कर्ता), मान्धातृ (युवनाश्वात्मज. विजेता, यज्ञकर्ता), ययाति (यज्ञकर्ता). अम्बरीष नाभागात्मज (विजयी, रण, मख दान यही तीन काम थे), शशिबिन्दु (अश्वमेध में स्वपुत्र दान में दिए), गय (यज्ञकर्ता), रन्तिदेव (संकृतपुत्र, भोजन दान, यज्ञ), दुष्यन्त पुत्र भरत (दाँत पकड़ कर सुप्रतीक हाथी वश किया; कई अश्वमेध तथा विश्वजित यज्ञ किए), पृथु (पृथ्वीपुत्री. यज्ञकर्ता). परशुराम (विजयी)।

त्रेतायुग का सम्मिलित वर्णन।

चाक्षुम मन्वन्तर के पीछे मनु वैवस्वत और बुध ने भारत में सूर्य और चन्द्रवंशों के राज प्रायः साथ ही साथ स्थापित किए। ये दोनों ससुर दामाद थे। मनु अयोध्या में जमे, और बुध प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग के निकट झूँसी) में। मनु की मुख्यता थी और उन्हीं के नाम पर मन्वन्तर चला। उनके पुत्र सुद्युम्न के तीन पुत्र पूरब में गंगा और सोन पर जमे, शर्य्याति आनर्त में तथा नाभानेदिष्ट वैशाली में। मनु पुत्र धृष्ट का प्रभाव वाल्हीक देश की ओर कहा जाता है। इक्ष्वाकु मनु के ज्येष्ठ पुत्र थे। ये अयोध्या में राजा हुए। इनके पुत्र शकुनि की अध्यक्षता में बहुतेरे ऐक्ष्वाकु उत्तरापथ (पंजाब की ओर) गए। वशाति और दंडक के नेतृत्व में इसी प्रकार कुछ ऐक्ष्वाकु दक्षिणापथ गए। वहाँ इनका उपनिवेश दंडक के व्यभिचार से असफल रहा। इक्ष्वाकु के समय में रावी नदी के निकट से आकर माथव नामक सरदार ने रहूगण को पुरोहित बना कर मिथिला में राज्य जमाया। उनकी राजधानी जयन्त हुई। इस बारह पुश्तों के पीछे इक्ष्वाकु वंशी निमि और तत्पुत्र मिथि मिथिला में स्थापित हुये। ऐक्ष्वाकु (नं० ४) पुरंजय ककुत्स्थ इन्द्र के मुख्य सहायक और भारी नरेश थे। इन्हीं दिनों चन्द्रवंश में नं० ४. पुरूरवस और नं० ५, नहुष महान हुए। विश्वरूप और वृत्रवध के पीछे [illegible] में इन्द्र का [illegible]

छोड़ना पड़ा, और नहुष इन्द्र हुए। इन्द्र का स्थान भारत के बाहर कहीं समझ पड़ता है। नहुष इन्द्रत्व चला न सके और पदच्युत हुए तथा इन्द्र फिर स्थापित हुए। शायद इसी अवसर पर पुरंजय ने उनकी सहायता की हो। अनन्तर चन्द्रवंशी नहुष पुत्र ययाति (नं० ६) प्रसिद्ध विजयी हुए। इन्होंने राज्य बहुत बढ़ाया। दो रानियों में इनके पाँच पुत्र हुए। जेठे पुत्रों से आज्ञा भङ्ग के कारण अप्रसन्न होकर ययाति ने कनिष्ठ पुत्र पुरु को सम्राट् बनाया, तथा चारों ज्येष्ठ पुत्रों को बाह्य प्रान्त दिए।

सूर्य और चन्द्रवंशों में इस काल कई राज्य स्थापित हो चुके थे। ययाति के पीछे कई पुश्तों तक महत्ता में शायद ये दोनों समान रहे हों। दोनों कुलों में छठी पुश्त से बीसवीं पीढ़ी पर्यन्त प्रायः ढाई सौ वर्ष तक किसी नरेश की महत्ता न हुई, यहाँ तक कि इस काल के कई नाम भी लुप्त हो गए। भारत के प्राचीन शासकों में किसे दबा कर ये दोनों वंश स्थापित हुए सो अकथित है। यह भी नहीं विदित है कि इन प्रायः ढाई सौ वर्षों में सूर्य, चन्द्र वंशों की तुलनात्मक शिथिलता के समय भी उन लोगों ने इन्हें जीतने का कोई प्रयत्न किया। शायद इन दिनों के भूपाल न तो बहुत निकलते हुए थे, न ऐसे निर्बल कि कोई उनके राज्य ही छीन लेता। सुदास नं० ३९ के समय तक वैदिक वर्णन भारी-भारी अनार्य राजाओं का अस्तित्व बतलाता है। पुराणों में भी इस साधारण काल में कुछ अनार्यों के आर्यों से युद्ध कथित है, किन्तु वे प्रभावपूर्ण न थे। इस शिथिल काल के पीछे सब से पहले महत्तायुक्त यादव नं० २०, भूपाल शशिबिन्दु हुए। इन्होंने पौरवों को पराजित करके अनेक यज्ञ किए। अनन्तर इनका वंश फिर शिथिल पड़ गया और इनके दामाद सूर्यवंशी (नं० २१) मान्धाता प्रबल पड़े। इन्होंने अनु, द्रुह्यु और तुर्वश वंशियों को पराजित किया तथा पुरुवंश को राज्यच्युत कर दिया। उधर थोड़े ही दिनों में तुर्वश वंशी मरुत्त भी प्रबल पड़ कर सम्राट् हो गए और इनके दत्तक पुत्र दुष्यन्त पौरव प्रतापी होकर अपना राज्य फिर जमाने में यत्नवान हुए। इस स्थिति का मुख्य कारण सूर्यवंशियों का द्रुह्यु वंशियों के पीछे पड़ कर गान्धार तक

ग्रन्थकारों ने विस्तारपूर्वक लिखा है। कुछ आधारों का भी कथन होकर यह अध्याय समाप्त होगा।

मन्वन्तर काल से त्रेतायुग तक के कथनों के शेष प्रमाण।

मन्वन्तरों के ऐतिहासिक कथन पांचवें अध्याय में हैं, और त्रेतायुग के नवें से १३ वें तक। इन कथनों के वैदिक प्रमाण ६ वे से ८ वें अध्यायों में लिखे गए हैं। इनके पौराणिक आधार बहुधा पीछे लिखे हैं, किन्तु कहीं-कहीं नहीं भी हैं। वे अब एक स्थान पर यहां लिखे जाते हैं।

मन्वन्तरों के प्रमाण।

मार्कण्डेय ५३,७७. आग्नेय भाग २ अध्याय २. आदि ब्रह्म ५. शिव वायवीय ५८, अध्याय।

ब्रह्माण्ड भाग ५ अ० ५ (भरत), भविष्य पहला भा०. देवी भागवत ८,४,१०,८,११. वराह २, स्कन्द. विष्णु भाग २.१.१३. व ३,१।

सूर्यवंश।

ब्रह्म. ७.२२६. आदि ब्रह्म ७, पद्म, सृष्टि. ८, विष्णु, भाग ४.२. भागवत भाग नवां १,१३. (कल्प अम्बरीष,शशाद,पुरुकुत्स, निमि)। देवी भागवत भाग ७. अ० ८.९, (शशाद) मार्कण्डेय २०. (कुवलयाश्व) आग्नेय प्रथम, ६७।

पद्म स्वर्ग २५. (मान्धाता) भागवत नवां ५,६. देवी भागवत ७ वां, ९।

ब्रह्माण्ड, लिंग पुराण (अम्बरीष) ब्रह्म १३८. (शर्याति)।

हरिश्चन्द्र, राज्य त्याग (स्कन्द पुराण में नाम १०४). [illegible] शेप (विवरण ऐतरेय ब्रा०. ७,३. अध्याय) भागवत नवां।

७, इसमें सूकर के सम्बन्ध में हरिश्चन्द्र परीक्षा का कथन है। पद्म स्वर्ग २४. देवी भागवत सातवां भाग. १०. २०. भाग नवां १३। मार्कण्डेय. ८।

राम, वाल्मीकीय रामायण, ब्रह्म १५४. (लक्ष्मण). १७६ (सीता)। पद्म सृष्टि ३६, (राम [illegible])।

पद्म यस्वर्ग। १ से ६८ तक, प्रश्नोत्तर २६९, देवी भागवत तीसरा भाग, २८।

देवी भागवत का नवां अध्याय १६, (माया सीताहरण), आग्नेय पहला भाग, ७३, १८१।

यदुवंश विष्णु चौथा भाग ११, भागवत नवां भाग २३, २४, (विदर्भ भी), लिंग ६८, यदुवंश (क्रोष्टु वाला), पद्म सृष्टि १३, विष्णु चौथा भाग १२।

दुष्यन्त भरत पद्म यस्वर्ग १ (दुष्यन्त), ६ (भरत), महाभारत आदि पर्व, भागवत नवां भाग २० (भरत)।

हैहय देवी भागवत छठवां भाग २१,२३, अन्य बातों के साथ कालकेतु का वध करके एकावली का विवाहना भी लिखित है, पद्म सृष्टि १२, (सहस्रार्जुन) विष्णु चौथा भाग ११ (सहास्राजुन, परशुराम), भागवत नवां भाग १५, महाभारत। चन्द्रवंश...आदि ब्रह्म ११, देवी भागवत पहला भाग ११, विष्णु चौथा भाग ६, नवाँ भाग, १४, २४ (अजमीढ़ भी) देवी भागवत् पहला भाग १२ (इलासुद्युम्न)।

ययाति, ब्रह्म १२, १४६, विष्णु चौथा भाग १० । महाभारत आदि पर्व; लिंग ६७। भागवत् नवॉं भाग १०, स्कन्द कूर्म ब्रह्माण्ड।

नहुषी, पद्म, भूमि, १०५; विष्णु चौथा भाग, १० महाभारत; देवी भागवत छठवॉं भाग ७, स्कन्द ब्रह्माण्ड (मिथिला)।

च्यवन; पद्म, भूमि १०५, विष्णु चौथा भाग, देवी भागवत भाग सातवाँ १. ७; हरिवंश (श्रीकृष्ण, मिथिला गमन), भागवत दसवॉं खण्ड ८६ (भागवत धर्म, वासुदेव), भागवत ११ वॉं २, (बलराम द्वारा सूतवध), भागवत दस ७८, ब्रह्म १८०, १९४, (सान्दीपनि). १९५ (जरासिन्ध), २०२ (नरकासुर). २०५ (बाणासुर), २१० (वशध्वज), २१२ (म्लेच्छों द्वारा स्त्री हरण)।

पद्मोत्तर २७८ (सुदामा), विष्णु पांचवां भाग २. ३८, महाभारत, हरिवंश. पूरा कृष्ण चरित्र. आदि बल ९३. ब्रह्म ८८ (उपा सूर्य समागमन), ब्रह्माण्ड में भी।

बलि वावन; ब्रह्म ७३, हरिवंश ।

सगर, ब्रह्म ८७, पद्म सृष्टि (भगीरथ). पद्मस्वर्ग. १५, विष्णु भाग चौथा । शिववायवीय ६१, भागवत नवाँ भाग, ८. आग्नेय पहला भाग ६८ ।

अहल्या, ब्रह्म ८७, पद्म सृष्टि ५१, आग्नेय पहला भाग । ८०; रामायण ।

शुक्र ब्रह्म ९५ पद्म सृष्टि १३ (मातावध, जयन्ती विवाह, ब्रह्माण्ड भार्गव); देवी भागवत चौथा भाग ११, १२ ।

पुरूरवस महाभारत ब्रह्म १०१. १५१, पद्म सृष्टि ८, १२, विष्णु भाग चौथा ७, महाभारत । अगस्त्य लोपामुद्रा, महाभारत, ब्रह्म ११०, पद्म सृष्टि १९, २२ (समुद्र पान). वराह ६९. ७०. वातपि दानव भस्म, स्कन्द मे तथा काशी मे; अगस्त्य दुर्दम के समय मे । दुर्दम हैहय वंशी नं० ३१ थे । उधर अलर्क के पितामह प्रतर्दन हैहय वीतिहव्य न० ३५ को जीतते हैं, सो अलर्क के समकालीन अगस्त्य हैहय नं० ३९ के भी समकालीन बैठते हैं । इस प्रकार से अगस्त्य का आठ हैहय पीढ़ियो तक चलना निकलता है । अगस्त्य राम और अलर्क के समकालीन रामायण और हरिवंश के अनुसार थे ही, सो यदि आठ पीढ़ियो तक चलना इनका अनुचित हो, तो स्कन्द पुराण में लिखित दुर्दम को समकालीनता अग्राह्य होगी । स्कन्द पुराण का कथन बहुत मान्य है भी नहीं ।

काशी विष्णु चौथा भाग ८ (धन्वन्तरि). मार्कण्डेय, ३८ (अलर्क) हरिवंश में लोपामुद्रा द्वारा अलर्क को वरदान । स्कन्द (प्रतर्दन दिवोदास). ब्रह्म, १२९ ।

आपस्तम्ब, ब्रह्म १३० ।

पांचाल—महाभारत, हरिवंश, आग्नेय, पहला भाग । ६८ (मुद्गल) ब्रह्म १३६ ।

बृहस्पति...पद्म सृष्टि १४, नास्तिक मत ।

ब्रह्म पुराण में (नृसिंह), १४९ (अर्जुनाम?), १५० । [illegible]

[illegible]). १५२ (अष्टावक्र), २१२ ।

२१३ में वराह नृसिंह वामन ।

दत्तात्रेय, जमदग्नि, राम, कृष्ण कल्कि।

पद्म पाताल में, विभीषण मोचन १००, पद्मोत्तर मे ३ (जालन्धर), १५,(वृन्दा), पद्मसृष्टि ४ पद्मोत्तर २६० तथा भाग आठवां।७ एवं महाभारत में समुद्र मन्थन, सृष्टि खण्ड ६,४२, हिरण्यकशिपु, पद्मोत्तर मे २२८, (मत्स्य), २५९, (कूर्म), २६४, (वराह), २६७, (वामन), २६८, परशुराम।

नृसिंह, लिंग ९६, स्कन्द, भागवत सातवां ९।

ध्रुव, विष्णु ११, पद्म यस्वर्ग...१२ लिंग। ६२, भागवत चौथा भाग ८।

वामन, पद्म, सृष्टि, २५, भागवत, ८ वां। १८, आग्नेय पहला खंड, ६०, स्कंद (वामन)।

वेन पृथु, पद्म, सृष्टि, ८ पद्म भूमि, २६, २९, ३६, (वेन द्वारा जैन धर्म), विष्णु १३, ब्रह्म १४१।

शिववायवीय...५३,५७, भागवत चौथा भाग १३,१५,२४।

बराह, पद्म, सृष्टि, ७३, भागवत तीसरा खंड १३, स्कन्द १० खंड १५, २० इसमे वराह का दांत टूटना भी लिखित है।

प्रह्लाद पद्म, सृष्टि, ७४, (सुरत्व प्राप्ति), विष्णु, १७, २१, (वश), शिव ज्ञान संहिता, ५९ देवी भागवत चौथा भाग, ९।

रावण, पद्म, यस्वर्ग, ११ शिवज्ञान खंड ५५।

दशावतार, बराह ४, स्कन्द।

व्यास, महाभारत, स्कन्द, सनत्कुमार, सहिता, १८, २१, शंकर सहिता, वेद विभाग, भागवत १२ वां ६, ७, जनमेजय के यहां वेद विभाग, अथर्ववेद।

शिवि, पद्म यस्वर्ग, १८ महाभारत।

उशीनर पद्म यस्वर्ग, १८।

दिवोदास, पद्म यस्वर्ग २३।

राधा। पद्म, पाताल, ७०, ८३, देवी भागवत नवां भाग २, १३, ५०, ब्रह्मवैवर्त. १२४।

सौभरि ऋषि, पद्मोत्तर २३३।

कुशध्वज वंश. विष्णु चौथा भाग ५।

तुर्वश···विष्णु चौथा भाग, १६।
द्रुह्यु. विष्णु चौथा १७।
अनु···विष्णु चौथा १८, कर्ण भी, शिवि वायवीय, ५६।
जह्नु, विष्णु चौथा २०।
खांडिक्य, विष्णु पांचवां ६ (केशिध्वज को ज्ञान)।
नल, शिव ज्ञान खंड ६२।
त्रमूर्ति···शिव वायवीय ११, वराह १०।
पाशुपतव्रत; शिव वायवीय २९।
रन्तिदेव, स्कन्द में।

सुदर्शन, देवी भागवत तीसरा भाग १४, २५, (युधाजित सम्बन्धी कथन)।

श्वेत द्वीप, देवी भागवत छठवां २८, म० भा० शान्तिपर्व।
कन्धर, मार्कण्डेय ७।
देश भक्ति. देवी भागवत आठवां ११. विष्णु पुराण तथा भागवत मे भी।

वैशाली का मनुवंश-मार्कण्डेय ११२ (प्रपध्र की शूद्रता), ११३,३४ (प्रपध्र शूद्र), नाभाग, प्रमति भलन्दन, वत्सप्री, खनित्र. विविंश. खनीनेत्र, करन्धम. अवीक्षित. वैशालिनी हरण. अवीक्षित [illegible]. उद्धार. वैराग्य वैशालिनी का दानव से अवीक्षित द्वारा उद्धार, वैशालिनी से विवाह. मरुत्त, नरिष्यन्त, सुमन का स्वयंवर. नरिष्यन्त[illegible]. वपुष्मत. दम वैशाली. नरुड़।)

भविष्य पुराण शतानीक से कहा गया। उसमे सृष्टि का वर्णन है। सवर्ण, प्रद्योत. यूनानी, नन्दीश. इन्लीश. म्लेच्छागमन. [illegible], शालिवाहन विस्तार, विक्रमादित्य. पद्मावती. हरिदास, भर्तृहरि. गोरखनाथ. आल्हा ऊदल. चन्द कवि तथा शिवाजी के भी कथन इस पुराण मे हैं।

ऊपर जहां-तहां महाभारत और हरिवंश के कथन आये हैं. इनके अतिरिक्त भी इन दोनों ग्रन्थों में प्रायः सभी स्थानों [illegible] आये हैं। महाभारत के आदि, सभा, वन, उद्योग और शान्ति पर्वों में [illegible] भरी पड़ी हैं।

तेरहवां अध्याय

भगवान् रामचन्द्र ।

तेरहवीं शताब्दी (बी० सी०)

इस अध्याय की कथा मुख्यतया बाल्मीकीय रामायण पर आधारित है और कही-कही महाभारत वन पर्व, विष्णु पुराण, हरिवंश और श्रीभागवत का थोड़ा सा आधार है। इनसे इतर आधार बारहवें अध्याय के अन्त में दिये हुए है। महाराजा दशरथ के राजत्व-काल मे भारत की क्या दशा थी उसका दिग्दर्शन गत अध्यायों मे कराया जा चुका है। इन महाराज के वृद्धप्राय हो जाने तक भी कोई पुत्र न हुआ। इनकी रानी कौशल्या से शान्ता नाम्नी एक कन्या मात्र उत्पन्न हुई थी। उसे भी इनके मित्र राजा रोमपाद ने दत्तक ले लिया था। ये महाराजा अंग देश के स्वामी थे। जब बहुत काल पर्यन्त दशरथ के कोई पुत्र नही हुआ तब उन्होने पुरोहित वशिष्ठ की सम्मति से अपने दामाद ऋष्य शृंग को बुलाकर पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। थोड़े दिनो मे इनकी तीनो रानियो से चार पुत्ररत्न हुए। बड़ी रानी कौशल्या के आत्मज भगवान् रामचन्द्र दशरथ के सब से बड़े राजकुमार थे। इनसे छोटे कैकेयी-पुत्र भरत हुए, तथा उनसे भी छोटे सुमित्रा के यमज पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न। इस प्रकार चार पुत्र पाकर महाराजा दशरथ ने अपने को धन्य माना। उचित समय पर इन राजकुमारो को शास्त्र और शस्त्र का अभ्यास कराया गया।

जब रामचन्द्र की अवस्था सोलह वर्ष के लगभग हुई, तब ऋषिवर विश्वामित्र ने महाराजा दशरथ के पास आकर निवेदन किया, "राक्षस लोग मुझे यज्ञ नही करने देते, सो कृपा करके कुछ दिनो के लिये आप रामचन्द्र को दीजिये तो इनकी रक्षा से मेरा यज्ञ पूर्ण हो जावे।" पहले तो बालको का अल्पवय विचार कर महाराजा दशरथ को इस निवेदन मे बड़ा गड़बड देख पडा, किन्तु पीछे मे उन्होंने वशिष्ठ के समझाने

पर राम और लक्ष्मण को महर्षि विश्वामित्र के साथ कर दिया। जान पड़ता है कि राजकुमारों के साथ कुछ सेना भी गई होगी, यद्यपि इसका वर्णन ग्रन्थों में नहीं है। विश्वामित्र ने मार्ग में दोनों राजकुमारों को पूरी शस्त्र-विद्या सिखाई। ऋषिवर को देखते ही कामवन में ताड़का ने इन पर आक्रमण किया किन्तु अपकारिणी होने पर भी स्त्री समझ कर रामचन्द्र उस पर प्रहार करने से आनाकानी करते रहे। अन्त में जब विश्वामित्र के कहने से राम ने जाना कि वह बड़ी ही प्रबला थी और यह भी समझ पड़ा कि महर्षि पर प्रहार करने ही को थी, तब इन्होंने विवश होकर युद्ध में उसका बध कर डाला। अनन्तर ऋषि के साथ राम उनके सिद्धाश्रम में पहुँचे। दूसरे दिन राम की इच्छानुसार महर्षि विश्वामित्र यज्ञ करने लगे। यह देखकर मारीच और सुबाहु सेना समेत यज्ञ-ध्वंसनार्थ चढ़ दौड़े। रामचन्द्र ने लक्ष्मण को साथ लेकर उनका सामना किया। घोर संग्राम हुआ, जिसमें राक्षसी दल को भारी हानि पहुँची और सुबाहु मारा गया। यह देख मारीच हत-शेष राक्षसों के साथ उत्तरीय भारत को छोड़ दण्डकारण्य में जा बसा। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही भगवान रामचन्द्र ने उत्तरीय भारत को राक्षसों से छुटकारा दिलाकर भारी यश प्राप्त किया। अब विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगया।

इस काल मिथिला देश के राजा सीरध्वज (उपनाम जनक) ने यह प्रण किया था कि जो पुरुष जनकपुर का भारी शैव धनुष चढ़ाकर बाण युक्त कर देगा, उसी के साथ राजकन्या सीता का विवाह होगा। बहुत से राजकुमार तथा राजा लोग धनुष चढ़ाने मिथिला गये थे, किन्तु सब को विफल मनोरथ हो अपनी कीर्ति गवाँकर लौटना पड़ा था। इन सारे हत लोगों में रावण भी था। उससे भी पिनाक न चढ़ सका था। धनुष चढ़ाने जाने के लिये अयोध्या भी निमन्त्रण आ चुका था। रामचन्द्र के शौर्य से विश्वामित्र परम प्रसन्न हुए और उनको भरोसा था कि राम धनुष चढ़ा सकेंगे। इसलिये यज्ञ पूर्ण होने के पीछे वे राजकुमारों के साथ मिथिला पहुँचे। महाराजा सीरध्वज ने उनका यथायोग्य सत्कार किया। कुछ वार्तालाप के पीछे विश्वामित्र की आज्ञा से भगवान रामचन्द्र धनुष चढ़ाने पर उद्यत [illegible]

पृथ्वी-मण्डलस्थ राजकुल के सारे पराक्रम को दमन करनेवाले भारी शैव पिनाक को सहज ही मे चढ़ा दिया और उसे ज्यायुक्त करके उस पर इस जोर से बाण ताना कि वज्रवत कठोर पिनाक एक तिनके की भाँति टूट गया। मिथिलापुर मे सैकडो लोगो के धनुष चढ़ाने मे विफल मनोरथ होने से सीता के व्याह विषयक भाँति-भाँति के सकल्प-विकल्प उठ रहे थे। रामचन्द्र ने पल भर मे इन शकाओ को निर्मूल कर दिया। अब जनकपुर मे बधाई बजने लगी। महाराजा जनक के विश्वविमोहिनी रूपराशि सीता के अतिरिक्त एक और कन्यारत्न थी, तथा इनके भाई कुशध्वज के दो कन्याएँ थी। इसलिये महाराजा सीरध्वज ने महाराजा दशरथ को पत्र भेज कर उनके चारो राजकुमारो का अपनी कन्याओ और भतीजियों के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। महाराजा दशरथ ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया और इन चारो भाइयो के विवाह यथासमय जनकपुर मे हो गये। राम को सीता, भरत को माण्डवी, लक्ष्मण को उर्मिला और शत्रुघ्न को श्रुतकीर्ति मिली।

चारों पुत्रों का विवाह करके महाराजा दशरथ जिस काल अयोध्या को लौट रहे थे, तब मार्ग मे उनकी परशुराम से भेट हुई। ये हैहयवंश-विध्वसकारी ही परमशुराम थे। वृद्ध परशुराम ने शिवशिष्य होने के कारण रामचन्द्र द्वारा शैव धनुप तोड़ा जाना सुनकर भारी क्रोध किया और वे युद्धार्थ संनद्ध भी हुये. किन्तु रामचन्द्र की विनय और पुरुषार्थ से प्रसन्न होकर तथा अपने पिता के मामा विश्वामित्र का दबाव मानकर पीछे से अपना परमोत्कृष्ट धनुष उनको देकर वन चले गये। परशुराम के हार मानने से रामचन्द्र की ख्याति ससार मे और भी अधिक हुई। अब महाराजा दशरथ पुत्र-वधुओ तथा पुत्रो समेत अयोध्या पहुँचे और फिर से पूर्ववत राज्य करने लगे। कुछ दिनो के पीछे सीता समेत रामचन्द्र मिथिलापुरी गये और कई साल वही रहे।

जब राजकुमार श्रीराम अयोध्या को पधारे, तब थोड़े दिनो के लिये शत्रुघ्न को साथ लेकर राजकुमार भरत अपने ननिहाल गये। इसी बीच मे महाराजा दशरथ ने रामचन्द्र को युवराज पद देने का विचार

किया। इस पर उनकी प्रियतमा रानी कैकेयी को उसकी दासी मन्थरा ने समझाया कि किसी प्रकार अपने पुत्र के लिये युवराज पद प्राप्त करो। पहले तो कैकेयी ने इस प्रस्ताव को धर्मविरुद्ध कह कर मन्थरा का बहुत भर्त्सन किया, किन्तु पीछे से उसके समझाने में आकर उसी के मन्त्रणानुसार चलना स्वीकार कर लिया। जब कैकेयी का विवाह दशरथ से हुआ था, तब यह निश्चित हो गया था कि दशरथ से उत्पन्न कैकेयी का ही पुत्र उत्तराधिकारी होगा। राम का प्रभाव बहुत बढ़ जाने से पुत्र प्रेमवश दशरथ ने इस प्रतिज्ञा का मान उचित न समझा।

किसी समय राजा दशरथ ने कैकेयी को दो वर देने की प्रतिज्ञा की भी थी और रानी ने उन्हें उस काल न माँगकर भविष्य के लिये थाती स्वरूप रख छोड़ा था। मन्थरा ने उन्हीं का स्मरण दिलाकर कैकेयी से कहा कि अपने पुत्र के लिये राज्य तथा राम के लिये १४ वर्षों का वनवास माँग लिया जाय। अब कैकेयी कोपभवन में चली गई। राजा ने वहाँ जाकर उसे मनाना चाहा तो उसने अपने दोनों वरदान माँग कर उनके हृदय में काँटा सा चुभो दिया। महाराजा दशरथ सब लड़कों को उचित प्यार करते थे किन्तु राम उनके जीवनाधार ही थे। बिना राम को देखे उनको एक घड़ी चैन नहीं पड़ती थी। इसलिये इनके वनवास का वरदान सुनकर वे अत्यन्त विकल हुए। सत्य से भ्रष्ट होना उनके लिये त्रिकाल में भी सम्भव न था, किन्तु राम को वन भेजना उन्हें प्राणत्याग से भी अधिक दुःखदायी था। इसलिये उन्हें सारी रात विलाप करते ही बीती। प्रातःकाल जब लोग राम का अभिषेक होना समझ रहे थे, तभी इस दुर्घटना के समाचार सारी अयोध्या में फैल गये। रामचन्द्र ने अपने पिता की यह दुरवस्था देखकर उन्हें बहुत समझाया और १४ वर्ष के लिये वन जाने में अपनी पूर्ण प्रसन्नता प्रकट की, किन्तु राजा का दुःख किसी प्रकार कम न हुआ। पिता की मानसिक व्यथा [illegible] राम सुखपूर्वक वन जाने की तय्यारी करने लगे। [illegible] प्राणप्रिय-भाजन अनुज लक्ष्मण ने [illegible] [illegible]

रामचन्द्र ने समझा होगा कि हमारे वन चले जाने पर राजा किसी प्रकार धैर्य्य धारण करेंहीगे। इसलिये माता पिता को कलपते छोड़ तथा रोती हुई अयोध्या से मुख मोड़ और केवल धर्म को शिरोधार्य मान कर्तव्यपालनार्थ भगवान् रामचन्द्र सीता लक्ष्मण के सहित उसी दिन जंगल को चले ही गये। पितृभक्ति, धर्मपालन और स्वार्थत्याग का इन्होंने इस अवसर पर जो अपूर्व उदाहरण दिखलाया, वह आज भी हतभाग्य भारत का सिर ऊँचा करता है और चरित्र-शोधनार्थ हमारे लिये एक परम पूज्य आदर्श स्वरूप प्रस्तुत है। बहुत से अयोध्यावासी लोग राजभक्ति दिखलाते हुए रामचन्द्र के पीछे लगे। उन्होंने सोचा कि बिना राम की अयोध्या नरक से भी निकृष्टतर है और जहाँ राम है वहीं शत अयोध्याओं का सुख है। रामचन्द्र के बहुत समझाने पर भी जब वे लोग न लौटे तब उनका दुःख दूर करने के विचार से रात मे छिप कर ये जगल को चले गये। प्रातःकाल राजकुमार को न पाकर ये लोग विवश होकर अयोध्या लौट आये। भगवान् ने पहली रात तमसा नदी के पास निवास करके दूसरी गोमती-तट पर बिताई। आप यथा समय गंगातट पर शृंगवेरपुर पहुँचे। वहाँ गुहनामक निषाद-पति ने बहुत सेवा की, यहाँ तक कि उसके आचरण से प्रसन्न होकर भगवान् ने उसे मित्र माना। गंगापार होकर श्रीरामचन्द्र प्रयाग मे भरद्वाज ऋषि के आश्रम को पधारे। वहाँ भरद्वाज ने भगवान् का अच्छा आतिथ्य किया। अनन्तर दोनो राजकुमार चित्रकूट पहुँचे और वहाँ कई मास विराजमान रहे।

उधर रामचन्द्र की वनयात्रा से महाराजा दशरथ का धैर्य बिलकुल छूट गया और वे बालक की भाँति विलाप करने लगे। महारानी कौशल्या, सुमित्रा तथा सब मन्त्रियो के समझाने पर भी इनको धैर्य न आया। कहते ही है कि बाप सा वत्सल, स्त्री सा सखा और भाई सा सहायक कोई नही। सब लोगो के समझाते हुए भी महाराजा दशरथ को अपने प्रियतम पुत्र के क्लेशों का स्मरण कर कर के मन शान्त करने का कोई उपाय न देख पड़ा। जब रामचन्द्र के पास से पलट कर राजसचिव सुमन्त ने विनती की कि सब प्रकार मे समझाने बुझाने पर भी दोनो राजकुमारो और सीता मे से कोई न लौटा, तब

महाराजा दशरथ की अंतिम आशा भी टूट गई। अब राजा का चित्त शोक से ऐसा संतप्त हुआ कि दो ही चार दिनों में उनका शरीरपात ही हो गया। राजा दशरथ का स्वर्गवास रामचन्द्र के वनगमन के छठवें दिन हुआ। राज-मन्त्रियों ने यह आकस्मिक दुर्घटना देख राजा का शव तेल में डालकर सुरक्षित रक्खा और शीघ्रगामी दूत द्वारा भरत को ननिहाल से बुला भेजा। भरत ने अति शीघ्र अयोध्या आकर सारे समाचार सुने और सब विपत्तियों का मूल कारण अपने ही को समझ कर वे दीन भाव से विलाप करने लगे। सब के समझाने बुझाने और राज-माता कौशल्या की अनुमति पाने पर भी भरत ने १४ वर्ष भी राज्य करना पसन्द न किया और विधिपूर्वक पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करके वे रामचन्द्र को वापस बुलाने के लिये राज-परिवार सहित चित्रकूट को प्रस्थित हुए। संसार में जब तक सद्गुणों का मान रहेगा तब तक महात्मा भरत के इस भारी स्वार्थ-त्याग के लिये उनका नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। मार्ग में निषाद-पति से सेवित होने और प्रयाग में भरद्वाज ऋषि का आतिथ्य स्वीकार करते हुए राजकुमार भरत यथासमय चित्रकूट में पहुंच कर ज्येष्ठ भ्राता राम की सेवा में उपस्थित हुए।

पिता का अशुभ समाचार सुनके रामचन्द्र ने बड़ा शोक मनाया और विधिपूर्वक शुद्ध होकर वे भरत को समझाने लगे। भरत ने राम-चन्द्र को अयोध्या चलने को बहुत प्रकार से विनती की। अन्त में भगवान् ने आज्ञा दी कि जिस पिता ने पुत्र को त्याग कर सत्य रक्खा और शरीर छोड़ पुत्र-प्रेम का असीम उदाहरण दिखलाया, उस पिता तथा राजा का वचन मेटना सुगम नहीं है। फिर भी मेरे चित्त में इन सब बातों से बढ़ कर तुम्हारा संकोच है। अतः तुम्हीं सब बातों पर विचार करके कहो कि क्या कर्तव्य है? क्या राजाज्ञा की अपेक्षा महिमा का उल्लंघन करके किसी सुयशी पुरुष को आत्मसुखार्थ अथवा पर दुःख-विमोचनार्थ विचार तक करना चाहिये और क्या तुम्हीं को राजाज्ञा होते हुए राज्यभार से बचने का प्रयत्न करना उचित है? इन बातों को सुन कर महात्मा भरत किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, किन्तु [illegible] का पूरा ध्यान रखते हुए भी [illegible]

कि इस बात के लिये वे किसी भाँति प्रस्तुत न हुए। उन्होंने सोचा कि पिता ने मुझे राज्याधिकार अवश्य दिया है किन्तु मैं उसे ग्रहण न करके भी उनकी आज्ञा भग करने का दोषी नहीं हो सकता, क्योंकि अपना भी राज्य उचित उत्तराधिकारी को सौंप देने का मुझे सदा अधिकार है। उनका ऐसा विचार समझ और उन्हें किसी प्रकार राज्य ग्रहण न करते देख कर रामचन्द्र ने उनकी इच्छानुसार सिंहासनासीन करने के लिए अपनी पादुकायें उन्हें दीं। उन पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर भरत ने प्रतिनिधि के समान अयोध्या से दो मील नन्दिग्राम में रह कर १४ वर्ष राज्य चलाने का संकल्प किया और अपना व्रत निभा दिया।

इधर भगवान् रामचन्द्र का असली हाल समझ कर हजारों मनुष्य चित्रकूट में इनके दर्शनार्थ आने लगे। इस कलकान से बचने के लिये रामचन्द्र ने दूर देश का प्रस्थान किया। अब ये तीनों दण्डकारण्य में फिरते हुए पञ्चवटी के निकट पहुँचे। वहां इन्होंने जनस्थान मे अगस्त्य ऋषि के दर्शन किये और उनकी सम्मति के अनुसार पंचवटी में गोदावरी के एक रम्य तट पर पर्णकुटी बनाकर ये निवास करने लगे। कहते हैं कि उस स्थान पर गोदावरी नदी धनुषाकार बहती थी। अगस्त्य ने सब से प्रथम विन्ध्य और महाकान्तार वन को पार करके दक्षिण मे जन स्थान पर पहला आर्य उपनिवेष बसाया था। वैदर्भी लोपामुद्रा से आपका विवाह हुआ था। दोनो वेदर्षि थे। अगस्त्य ने इल्वल राक्षस को हराकर उपनिवेश बसाया था। वेद मे आप वीर कहे गये हैं। अरब समुद्र के लुटेरों को जलयुद्ध मे हराकर आपने व्यापार अकटक किया था। लोपामुद्रा द्वारा राम के मित्र काशी नरेश अलर्क को आशीर्वाद दिया जाना लिखा है। भगवान् रामचन्द्र ने चित्रकूट मे लगभग दस मास और पञ्चवटी मे प्राय: १२ वर्ष निवास किया। इसी निवास स्थान के निकट आपने एक बार हड्डियों का ढेर देख उसे टीला समझ कर पूछा कि यह क्या है? इस पर ऋषियो ने उत्तर दिया कि ये राक्षसो द्वारा खाये हुये ब्राह्मणो का हड्डियां हैं। १२ वर्ष तक ऋषियो के साथ ज्ञान-वैराग्य की वार्त्ता करते हुए भी भगवान् को यह भारी उपद्रव देख इतना क्रोध आया कि आपने उसी स्थान पर दक्षिण

प्रयोग से यह वश में नहीं आवेगी और तुरन्त अपना प्राण खो देगी। रावण सीता को राम के अपमानार्थ ही लाया था, किन्तु इनके रूप-लावण्य से वह मोहित भी हो गया था। फिर भी किसी प्रकार इच्छा पूर्ण होने न देखकर उसने सीता को अशोकवाटिका में स्थान दिया। इनकी रक्षा के लिये त्रिजटा के आधिपत्य में कई राक्षसियां और कड़े पहरे को कई राक्षस नियत हुए।

इधर भगवान रामचन्द्र ने मारीच को मारकर वापस आने पर सूने आश्रम को भ्रष्ट और कमण्डलु को टूटा पाया, तथा सीता को भी वहां न देखा। इन बातों से इन्हें किसी के द्वारा सीताहरण का निश्चय हो गया। सूने आश्रम के इधर-उधर इन्होंने इसका बहुत पता लगाया, किन्तु कोई खोज न चली। अन्त को विवश होकर ये अपनी प्रिय पत्नी की खोज में निकले। थोड़ी दूर चलकर आपने वृद्ध जटायु को क्षत-विक्षत-पूर्ण मरणप्राय दशा में पाया। उससे वार्तालाप करने पर इन्हें इतना ही ज्ञात हो सका कि विलाप करती हुई प्रियतमा सीता को लेकर कोई दक्षिण को गया है और उसी से युद्ध करने में जटायु की यह दशा हुई है। वह कौन था, इसका पता जटायु स्वशरीर-शैथिल्य अथवा अज्ञान के कारण रामचन्द्र को न दे सका। इसी अवसर पर उसने अपना देह छोड़ दिया। उसकी इस उदारता पर मुग्ध होकर भगवान ने अपने हाथ से उसके शव का दाह-संस्कार किया।

इसके पीछे सीता को खोजते तथा विविध प्रकार से विलाप करते हुए रामचन्द्र लक्ष्मण सहित दक्षिण की ओर बढ़े। यथासमय ऋष्य-मूक पर्वत के समीप पम्पासरोवर पर दोनों पहुँचे। जनस्थान और किष्किन्धा उस काल दक्षिण के सर्वोत्कृष्ट स्थान थे। ऋष्यमूक पर सुग्रीव वानर रहता था। यह किष्किन्धा के राजा बालि का भाई था किन्तु कई कारणों से इन दोनों में बिगाड़ था। बालि ने सुग्रीव को निकाल दिया था और उसकी स्त्री भी छीन ली थी। बालि को मरा समझकर एक बार सुग्रीव राजा तथा उसकी स्त्री तारा का पति बन बैठा था। इसी लिये बालि ने उसका भी स्त्री छीनी थी। आगन्तु-कों को देखकर सुग्रीव को भय हुआ कि बालि ने मेरे विनाश को इन्हें नियोजित न कहीं किया है। इसलिये उसने अपने मन्त्री हनुमान को

राम के पास भेजा और वे वार्तालाप करके इन्हें सुग्रीव के निकट ले गये। वहाँ हनुमान् ने सुग्रीव से इनका परिचय कराया और दोनों ने एक दूसरे का हाल जान समझ कर सहायतार्थ आपस में प्रगाढ़ मैत्री की और अग्नि को साक्षी देकर उसे दृढ़ किया। सुग्रीव ने सीता जी के नूपुर और पट भगवान् को दिये जिन्हें पहचान कर आपने बड़ा शोक किया।

अब बालि-निग्रहार्थ निश्चय करके रामचन्द्र ने सुग्रीव को उसके साथ युद्धार्थ भेजा और आप एक ताल वृक्ष की ओट से युद्ध देखते रहे। सुग्रीव बहुत छल बल करके भी बालि का बल न रोक सका और उसके एक ही मुष्टिप्रहार से भग्नोत्साह होकर भागा। जब सुग्रीव राम के पास पहुँचा तब इन्होंने कहा कि तुम अपने भ्राता के ऐसे समरूप हो कि मैं युद्ध के समय तुम दोनों को पृथक् न कर सका। अब रामचन्द्र ने सुग्रीव को चिह्न-स्वरूप एक माला पहिनाकर युद्धार्थ बालि के पास फिर भेजा। दोनों में फिर युद्ध होने लगा और बालि को प्रबल पड़ते देख रामचन्द्र ने ओट से ही उस पर तीव्र शर का प्रहार किया, जिससे मृतप्राय होकर वह धरणी पर गिर पड़ा। रामचन्द्र के चरित्र-समालोचकों ने इनकी इस करनी पर कुछ सन्देह प्रकट किया है, किन्तु युद्ध में ऐसी नीतियाँ प्रायः करनी पड़ती हैं। शायद राम के सामने जाने से उसके भाग जाने और झगड़ा बढ़ने का भय हो। उसके मरने पर रामचन्द्र ने सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया, किन्तु बालि के ही पुत्र अङ्गद को युवराज किया। इस प्रकार उसके पक्ष पर भी दया करके भगवान् ने अपनी न्यायप्रियता का उदाहरण दिखाया है। उसके मरणान्तर उसकी रानी तारा के साथ सुग्रीव ने फिर विवाह कर लिया। अब वर्षाकाल आ गया था, इसलिये सीता की खोज नहीं की जा सकती थी। रामचन्द्र पिता की आज्ञा से किसी ग्राम में नहीं रह सकते थे, अतः सुग्रीव के अनुचरों ने इनके लिये प्रवर्षण गिरि पर कुटी बना दी, जहाँ आपने वर्षा काटी।

वर्षा ऋतु में ही हनुमान् की सम्मति से सुग्रीव ने कुछ वानर सीता की खोजने भेजे थे, किन्तु इस प्रयत्न का कोई फल न हुआ था।

इधर का कोई समाचार न पाकर रामचन्द्र को समझ पड़ा कि सुग्रीव ने हमारा काम भुला दिया है, इसलिये वानरेश को डराकर बुला लाने के लिये इन्होंने लक्ष्मण को किष्किन्धा भेजा। लक्ष्मण ने जाकर क्रोध करते हुये कहा कि सारा पुर जला कर भस्म कर देंगे। इन्हें क्रुद्ध समझ कर सुग्रीव ने समझाने के लिये हनुमान् के साथ महारानी तारा को भेजा। इन लोगों ने कुमार का सब हाल बतला और बहुत प्रकार से नम्रता दिखलाकर प्रसन्न किया। अब सुग्रीव ने भी आ सुमित्रानन्दन का अभिवदन किया और सब लोग मिल कर रामचन्द्र के पास पहुँचे। वहाँ सब प्रकार से सलाह होकर वृद्ध मन्त्री जाम्बवान ऋक्ष की अधीनता में चुने-चुने सरदार सीता को खोज निकालने के लिये भेजे गये। इनमें युवराज अंगद और हनुमान भी थे। खोजते-खोजते ये लोग ठेठ दक्षिण में समुद्र के किनारे पहुँचे और वहाँ जटायु के भाई वृद्ध संपाति से इन्हें लंका में सीता का होना विदित हुआ। अब यह प्रश्न उठा कि इतना बड़ा समुद्र तैर कर लंका कौन पहुँच सकता है! सभी ने अपने-अपने सामर्थ्य का कथन किया किन्तु स्वयं अङ्गद तक को जाकर लौट आने की हिम्मत न पड़ी। तब जाम्बवान की सम्मति से महावीर हनुमान इस कार्य पर नियुक्त हुए और इन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। सीता के लिये चिह्न स्वरूप रामचन्द्र ने इन्हें एक अँगूठी दी थी। अब उसी को लेकर हनुमान अपने जीवन के सर्वोत्कृष्ठ कार्य-साधन में प्रवृत्त हुए।

अनन्तर एक ऊँचे टीले पर चढ़कर साहस के सहारे श्री हनुमानजी समुद्र में कूद पड़े और ५० मील तैर कर दूसरी ओर जाने के प्रयत्न में लगे। बीच के टापुओं पर दम लेते और जान पर खेलते हुए साहसमूर्ति महावीर तैरते ही चले गये। मार्ग में सुरसा नाम्नी नागमाता ने इनके बल और बुद्धि की परीक्षा ली किन्तु प्रसन्न हो एवं आशीर्वाद देकर घर चली गई। आगे चलकर एक टापू पर सिंहिका नाम्नी राक्षसी ने इन्हें पकड़ कर खा जाना चाहा। और प्रकार प्राण बचना न देख [illegible] हनुमान को उससे घोर युद्ध करना पड़ा। इसे मार कर वे आगे बढ़े और [illegible] हुए लंका के टापू पर पहुँच ही गये।

अब साधारण पथिक बनकर इन्होंने लङ्कापुरी मे प्रवेश किया। पुरी की रम्यता देखकर इनका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। हनुमान् महावीर होने के अतिरिक्त छद्मवेष धारण मे भी बड़े पटु थे। इन्होंने किसी उचित छद्मरूप मे सारा शहर घूमते हुए रावण का महल भी देख लिया और वहां सीता को न पाकर इन्हे भारी संताप हुआ। इधर-उधर घूमते हुए इन्हे रावण के अनुज विभीषण मिले। उनको रावण-कृत सीताहरण का कर्म बहुत ही निन्द्य प्रतीत हुआ था। इसलिये हनुमान् का हाल जानकर उन्हे प्रसन्नता हुई और उन्होंने इन्हे सीता जी से मिलने की सारी युक्ति बता दी। अब ये सीता के निवासस्थल अशोक-वाटिका मे पहुँचे और वहाँ अपनी स्वामिनी को घोर विरह-वेदना से खिन्न पाकर इन्हे हर्ष और शोक साथ ही साथ हुए, हर्ष उनके मिलने और सतीत्व पर और शोक दुःखो पर। महावीर ने देखा कि राक्षसियां सीता को घेरे हुए है और उन्हे रावण का प्रणय स्वीकार करने के लिये भांति-भांति के दुःख देती है। उन लोगो की बातो से इन्हे यह भी ज्ञात हुआ कि रावण अपने प्रयोजन के साधनार्थ सीताजी को कई बार भांति-भांति से समझा बुझा चुका है और नम्रता एवं क्रोध प्रकाश के कई छलबल कर चुका है किन्तु इन्होंने उसके प्रणय का पूर्ण निरादर करते हुए उसकी सदैव उपेक्षा की है और यही कहा है कि जब तू अपने को लोकपालो से बढ़कर समझता और पुलस्त्य ऋषि के कुल का भी अहङ्कार करता है, तब इन महत्त्वो के विवर्धनार्थ धर्मपालन मे भी क्यो नही प्रवृत्त होता ?

अब रात्रि बहुत जा चुकी थी, इसलिये राक्षसियाँ अपने-अपने घर चली गईं तथा उनके त्रास से छूटने पर अकेली रहने के कारण सीता की विरह वेदना और भी बढ़ी। इसी अवसर को उचित काल समझ कपिवर ने रामचन्द्र की दी हुई अँगूठी देकर सीताजी से परिचय किया और पत्नी-हरण के पीछे रामचन्द्र ने जो-जो कार्य किये थे उन सब का भी संक्षेप मे विवरण कह सुनाया। सीताजी ने उस घड़ी को धन्य माना और प्रेमाश्रु से अँगूठा को भिगो दिया। इसके पीछे इनकी आज्ञा लेकर महावीर ने अशोक वाटिका को उजाड़ना आरम्भ किया। इन्होंने मालियो की उपेक्षा करके मधुर फल खाये, शाखाये तोड़ डाली

और मना करनेवालों पर प्रहार किया । यह दशा देख मालियों ने बहुत से युद्धकर्त्ताओं को बुलाकर इन्हें पकड़ना चाहा किन्तु इन्होंने उन सब का भी विमर्दन किया । अब रावण के पास समाचार गये और उसने अपने पुत्र अक्षयकुमार को इन्हें परास्त करने के लिये कुछ योद्धाओं के साथ भेजा, किन्तु मरुतनन्दन ने उनका भी मानमर्दन किया और अक्षयकुमार को मार ही डाला । यह समाचार सुनकर रावण बड़ा दुःखित हुआ । अब उसने अपने मुख्य पुत्र युवराज मेघनाद को आज्ञा दी कि वानर मारा न जाय वरन् पकड़ कर सामने लाया जाय । मेघनाद ने आकर हनुमान से द्वन्द्व युद्ध किया और दिव्यास्त्रों के द्वारा इन्हें मूर्छित कर दिया । अब उसके अनुयायियों ने इन्हें बाँध लिया और यथाकाल ये राजसभा में उपस्थित किये गये ।

इन्होंने रावण से सीताजी के छोड़ने की सम्मति पर वार्तालाप किया और अपने को रामचन्द्र का दूत कहकर इसी विषय में उनका भी सन्देश कह सुनाया । रावण ने सीता को वापस करना पसन्द न करके पुत्रवध के कारण हनुमान के लिये प्राण-दण्ड की आज्ञा दी । इस पर विभीषण ने निवेदन किया कि दूत का मारना राज-धर्म के प्रतिकूल है सो इसे कोई और दंड दिया जाय । यह विचार राजा ने भी पसन्द किया और आज्ञा दी कि जिन हाथों से इसने राजपुत्र का वध किया है वह जला दिये जायें । प्राचीन ग्रंथों में पूंछ के जलाने की आज्ञा लिखी है किन्तु उसका प्रयोजन हाथों से मालूम पड़ता है । राक्षसों ने तेल और लाख से भिगोये हुये वस्त्र बाहुदहन के लिये एकत्रित किये, किन्तु इनका अभीष्ट सिद्ध न हुआ और महावीर ने झट बन्धन तोड़ जलते हुए वस्त्रों से लंका के कई प्रासादों में आग लगा दी । यह आग [illegible] में इतने [illegible] फैलती गई [illegible] दूर तक व्याप्त हो गई और [illegible] होकर शान्त हो गई । इस आग से लंका के प्रासादों की भारी हानि पहुँची । [illegible] सीताजी से [illegible] हनुमान [illegible] [illegible]

हो इनके बाहुओं का पूजन किया।

अब ये सब लोग सुग्रीव के पास पहुँचे और उनके साथ सभी ने रामचन्द्र का दर्शन किया। रामचन्द्र ने सीता की सुध पाकर बडा हर्ष मनाया और महावीर-चरित्र सुनकर उनकी भारी प्रशंसा की। अनन्तर सैन्य सजाकर सुग्रीव ने लंका पर आक्रमण करने की तैयारी की। भगवान् रामचन्द्र ने भारत से लका तक सेतु बाँध कर अपनी सेना उस पार पहुँचाने का मंसूबा बाँधा। जिस काल सेतुबन्धन का कार्य हो रहा था, तब रावण ने अपने मत्रियो से इस विषय मे सलाह की तो विभीषण ने बड़े तीक्ष्ण शब्दो मे राम का प्रताप एवं राक्षसो के असामर्थ्य का कथन किया। इस पर क्रुद्ध हो रावण ने उसकी कुछ निन्दा की। इस अपमान से रुष्ट होकर विभीषण ने लका से भाग कर राम की शरण ली और भगवान् ने दया एव कार्यसाधन के विचार से उसे लंकेश बनाने का वचन दिया, तथा समुद्र का जल मँगा कर उसी स्थान पर राज्याभिषिक्त कर दिया। जान पड़ता है कि जो टीलो का समूह भारत से लंका पर्यन्त है, उन्ही के बीच का उथला पानी पाषाणो आदि से भरकर भगवान् ने सेतु बँधवाया होगा। रावण ने बल के मद मे उन्मत्त होकर समुद्र पार करते समय सेना की गति का निरोध नही किया। चार दिनो मे राम का दल सेतु द्वारा समुद्र पार हो गया। अंगद सेनापति नियत हुए। राम दल के उस पार पहुँचने पर रावण ने शुक-सारण को दूत बनाकर सेना का हाल जानने के लिये भेजा, किन्तु बानर लोगो ने उन्हे पकड़ लिया और बड़ी कठिनाई से छोड़ा। भगवान् ने अब अगद का दूत बनाकर लका पुरी भेजा, किन्तु रावण ने अधीनता स्वीकार करने तथा सीता को लौटाने की सम्मति न मानी।

शान्ति होते न देख कर भगवान् ने लंका पुरी का दुर्ग सब ओर से घेर लिया। चारो फाटको पर चुने चुने योद्धा आक्रमणार्थ रक्खे गये। रावण ने भी चारों फाटको की रक्षा के निमित्त भारी योद्धा नियुक्त किये। अब विकराल युद्ध का आरंभ हुआ और थोड़े ही दिनो मे रामचन्द्र की सेना ने अपना प्राबल्य दिखला दिया। अपने दल की भारी हानि देख और प्रहस्त तथा धूम्राक्ष का निधन सुन राक्षसेश्वर

रावण के चित्त में कुछ उद्वेग आया। अब उसने नाना के भाई माल्यवान, महोदर, स्वपुत्र मेघनाद तथा अन्य प्रधान-प्रधान सरदारों को बुला कर मन्त्रणा की। महोदर तथा माल्यवान ने शान्ति की सलाह दी, किन्तु रावण और मेघनाद को सम्राट् पद का दर्प छोड़ कर अधीनता स्वीकार करना मरण से भी निकृष्टतर समझ पड़ा। मेघनाद ने रावण को साहस प्रदान करके राक्षसों का बल सुनाया और अपना प्रसिद्ध पुरुषार्थ दिखलाने के विषय में भी नम्रता पूर्वक विनती की। दूसरे दिन उसने महान शौर्य दिखलाकर स्वयं रामचन्द्र को नागपाश में बद्ध कर दिया, किन्तु अन्य लोगों ने प्रयत्न करके अपने स्वामी को बन्धन मुक्त किया। नागपाश व्यर्थ देख कर रावण ने युद्धार्थ अपने भ्राता कुम्भकर्ण को भेजा किन्तु परम शौर्य दिखलाकर वह रामचन्द्र के हाथ से मारा गया। इसके पीछे प्रचण्ड युद्ध करके मेघनाद भी लक्ष्मण के हाथ से मरा।

यह बुरा दिन देखकर साम्राज्ञी मन्दोदरी ने रावण को सीता लौटा देने के विषय में बहुत कुछ समझाया, किन्तु उसने उत्तर दिया कि तुम सीता को दो या न दो मैं कुम्भकर्ण और मेघनाद के बिना शरीर धारण नहीं कर सकता। इस पर मकराक्ष ने विनती की "हे सम्राट्! जब तक तेरा सेवक मैं जीवित हूँ, तब तक लंका में दीन वचन मुख से कौन निकाल सकता है? अनन्तर रावण की आज्ञा ले परात्रमी वीर खराम्बराक्ष मकराक्ष विभीषण के पुत्र तरणीसेन को साथ लेकर युद्धक्षेत्र में कूद पड़ा। इन दोनों ने [illegible] प्रचण्ड संग्राम किया, किन्तु रामचन्द्र की [illegible] [illegible] आई। मकराक्ष लक्ष्मण के हाथ से मारा गया और तरणीसेन को स्वयं रामचन्द्र ने मारा। अपने पुत्र-निधन के पीछे विभीषण ने विलाप [illegible]

[illegible]

सीताधर्मणाभाव से लंका की बढ़ी हुई सभ्यता भली भांति प्रदर्शित होती है। रामचन्द्र लंका-विजयार्थ विजयादशमी के दिन चले थे। लंका का युद्ध ८४ दिन होकर चैत्र मास में रावण वध के साथ समाप्त हुआ। रावण के पीछे रामचन्द्र ने विभीषण को लंका देकर सीता को फिर प्राप्त किया। लोगों के संदेह मिटाने का नियतमा की पावक-परीक्षा करके रामचन्द्र ने उनका ग्रहण किया। पावक-परीक्षा के विषय में आज कल संदेह उपस्थित किया जा सकता था, किन्तु इन्हीं दिनों बनारस आदि कई स्थानों पर लोगों ने दहकते हुए कोयलों से भरे हुए कुण्डों पर साधारण लोगों को चलाकर सिद्ध कर दिया है कि किसी न किसी भाँति अग्नि की दाहिका-शक्ति का दमन किया जा सकता है। इस बात से अग्निशुद्धि का महात्म्य अवश्य कम हो जाता है।

कुल मिलाकर जानकी जी लंका में दस मास रहीं। ऊपर कहा जा चुका है कि रावण के पास कुबेर वाला आकाशगामी पुष्पक विमान था। अब वह रामचन्द्र को प्राप्त हुआ और उसी पर चढ़कर पत्नी और भ्राता समेत आप मुख्य-मुख्य सरदारों को भी साथ लेकर अयोध्या रवाना हुए, क्योंकि १४ वर्ष का समय भी अब समाप्त होने ही को था। मार्ग में भरद्वाज के दर्शन करते और निषाद-पति गुह से मिलते हुए चौदहवाँ वर्ष समाप्त होते ही १५ वें वर्ष के ठीक पहले दिन रामचन्द्र ने नन्दिग्राम में प्रिय भाई भरत को दर्शन दिये। वहीं पर चारों भाइयों ने जटाओं को त्याग कर गाजे बाजे के साथ उचित समय पर अयोध्या में प्रवेश किया। रामचन्द्र के प्रवेशोत्सव में अयोध्या नई दुलहिन की भाँति सजाई गई। अब उचित समय पर राम का अभिषेक हुआ और ये सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

राम-राज्य में प्रजा ख़ूब सुख के साथ रही। उसको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता था और जितने कष्टों का राज्य निवारण कर सकता था वह मानों प्रजा के लिये बने ही न थे। भारत में सर्वोत्तम राज्य का अब तक रामराज्य कह कर उसकी महत्ता सूचित करते हैं। हिन्दू शास्त्रानुसार प्रजा के चारों वर्णों को जिस-जिस धर्म पर चलाना चाहिये, उसी पर रामचन्द्र ने उनको चलाया। आदर्श आर्य होने से

आपने एक बार हिन्दू सिद्धान्तों के दोष में पड़कर तपस्या करने वाले शूद्र मुनि शम्बूक का केवल तपस्या करने के कारण अपने हाथ से वध कर डाला। शम्बूक वध की कथा प्रक्षिप्त है। यह रामायण के प्राचीन भाग में नहीं है।

वन से लौटने पर थोड़े ही दिनों में महारानी सीता ने गर्भ धारण किया। राम के सभी आचरणों को पूज्य दृष्टि से देखते हुए भी उनकी प्रजा ने क्षुद्रता दिखलाते हुए सीताजी के लंकानिवास के विषय में उनके आचरण पर संदेह किया और आदर्श राजा होने तथा प्रजा को उच्च उदाहरण दिखलाने के विचार से रामचन्द्र ने अपनी रामोपमा सीता के प्रति "अत्यन्त कठोरता" दिखलाकर उनके सगर्भा होने पर भी लक्ष्मण द्वारा उन्हें महर्षि वाल्मीकि वाले आश्रम के निकट जंगल में छुड़वा दिया। यह देखकर महर्षि ने उनकी रक्षा की। वहाँ सीताजी के कुश और लव नामक दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए और उसी आश्रम में उनका पालन हुआ। रामचन्द्र ऐसे लोकप्रिय हो गये थे कि उनके जीवन-काल में ही महर्षि वाल्मीकि ने तत्कालिक भाषा में एक रामायण काव्य बनाया था, जो उन्होंने रामात्मजों को कण्ठस्थ करा दिया। महर्षि ने बालकों को क्षत्रियोचित शस्त्र-विद्या की भी योग्य शिक्षा दी। थोड़े दिनों में महाराजा रामचन्द्र ने नैमिषारण्य नामक पवित्र स्थान में जाकर अश्वमेध आरम्भ किया। नैमिषारण्य वर्तमान सीतापुर से सोलह मील की दूरी पर एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। इस अवसर पर महर्षि वाल्मीकि ने कुश और लव द्वारा नैमिष में रामायण का गान कराया। इस गान को स्वयं रामचन्द्र ने भी सुना और इसी सम्बन्ध में बातचीत चलाने पर गाने वालों को अपने से सम्बद्ध [illegible] जाना। [illegible] सर्वसम्मति से वे बड़ी प्रसन्नता के साथ [illegible] [illegible] किन्तु सीताजी एक बार [illegible] फिर से [illegible] रामचन्द्र [illegible] पृथ्वी में प्रवेश कर गईं। इस प्रकार उनका पवित्र जीवन समाप्त हुआ।

[illegible]

मथुरा का शासक लवणासुर प्रजा को बहुत कष्ट देने लगा था। सम्भवतः यादव नरेश भीम सात्वत की ओर से वह मथुरा के प्रबन्ध पर नियुक्त होगा। उसके नरभक्षक आदि होने के कथन अत्युक्ति पूर्ण समझ पड़ते हैं। मथुरा प्रान्त के निवासी ब्राह्मणों ने राम का यश सुन अयोध्या जाकर आर्यों की कष्ट-कथा कह सुनाई थी। रामचन्द्र से ऐसा कष्ट कभी नही देखा जाता था, इसलिये इन्होंने अपने भ्राता शत्रुघ्न को लवण के मारने और मथुरा का राज्य चलाने के लिये भेजा था। वाल्मीकि-आश्रम से आगे बढ़ कर शत्रुघ्न ने मधुपुरी पहुँच लवण को ललकारा और युद्ध मे उसका निधन किया था। रामचन्द्र ने चलते समय अयोध्या ही मे शत्रुघ्न का माथुर-राज्याभिषेक कर दिया था। इसलिये लवणासुर के मरने पर माथुर प्रान्त की प्रजा ने हर्षपूर्वक इन्हे अपना राजा माना और ये वही राज्य करने लगे थे। समझ पड़ता है कि इस काल यादव नरेश भीम कही दक्षिण की ओर हट गये होंगे। अश्वमेध के समय नैमिष पहुँचकर शत्रुघ्न ने अश्वरक्षा का काम लेकर उसी के साथ भारत-भ्रमण करके राजाओ को पराजित किया था। शत्रुघ्न ने मथुरा का राज्य १२ वर्ष चलाया।

इस प्रकार महाराजा रामचन्द्र का सम्राट् पद पूर्णरूपेण स्थापित हुआ। आपने प्रजा के संदेह करने पर सीता जी को छोड़ तो दिया था, किन्तु अपने चित्त में उनके चरित्र को दूषित कभी नहीं माना। इसलिये इन्होंने अपना दूसरा विवाह नही किया और यज्ञ के समय स्त्री के स्थान पर सीता की सुवर्णमयी मूर्ति प्रतिष्ठित करके यज्ञ का काम पूरा किया। यज्ञान्त में अपने दोनो पुत्र कुश और लव को पाकर रामचन्द्र भ्राताओ समेत बडे प्रसन्न हुए। इनके भ्राताओ के भी दो-दो पुत्र हुए थे. अर्थात् सुबाहु और शत्रुघाती शत्रुघ्न के. तक्ष और पुष्कर भरत के तथा अंगद और चन्द्रसेन लक्ष्मण के। इसी समय केकय देश में गन्धर्वों ने भरत के मामा आनव युधाजित् को मार कर उस देश मे अपना राज्य स्थापित किया। यह देख रामचन्द्र ने अपने भ्राता भरत की अधीनता में एक सेना भेजी जिसने जाकर पुष्कर-नरेश गन्धर्वो को पराजित किया तथा केकय देश पर भी राज्य

जमाया। तक्ष को तक्षशिला मिली और पुष्कर को पुष्करावती (वायु ८८. विष्णु IV ४. ४७; पद्म V ३५-२३-४. VI २७१, १: अग्नि ११. ७-८; रघुवंश XV ८८-९)। इस प्रकार यह राज्य भी सूर्यवंशियों के अधिकार में आ गया। समय पर अन्य कई राज्य भी रामचन्द्र ने प्राप्त किये। अब आपने पुत्रों और भतीजों को सब प्रकार से समर्थ समझ कर जीते हुए और पैतृक राज्य उन्हीं में विभाजित कर दिये। ज्येष्ठ पुत्र कुश को (पद्म VI २७२-७४-७५) अयोध्या का युवराज बना कर कुशस्थली पर कुशावती से भी राज्य चलाने की आज्ञा दी। यह विन्ध्याचल के दक्षिण है। कालिदास के अनुसार कुश ने समय पर प्रजा की प्रार्थना से अयोध्या फिर से राजधानी बनाई। लव को शरावती उपनाम उत्तर कोशल का राज्य मिला जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। कहते हैं कि लवकोट उपनाम लाहौर नगर लव का ही बसाया हुआ है। श्रावस्ती जिला गोंडा व बहराइच में है। तक्षशिला को अब शाहधेरी कहते हैं, जो अटक तथा रावलपिण्डी के बीच में कालका सराय से एक मील की दूरी पर स्थित है। लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रसेन (या चन्द्रकेतु) को चन्द्रचक्रा का कारापथ के अन्तर्गत अंगद नगर तथा चन्द्रावती (मल्ल श) के राज्य दिए गये। (वायु ८८, १८७. ८. ब्रह्माण्ड III ६३. १८८-९; विष्णु IV ४. ४७; रघुवंश XV ९०; पद्म V ३५, ३४, VI २७१—११ [illegible]; ये स्थान हिमाचल के निकट थे।) सुबाहु को मथुरा तथा शत्रुघाती को विदिशा (वर्तमान भेलसा) मिला। इस प्रकार रामचन्द्र ने अपने तथा भाइयों के आठों पुत्रों को [illegible] राजा बना दिया। भगवान ने अंगद, सुग्रीव और निषाद को [illegible] मिलाकर [illegible] आपने [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] ने मथुरा में [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

रामचन्द्र के [illegible]

यही अयोध्या के सर्वप्रधान रत्न को लूटने वाली हुई। रामचन्द्र ने एक बार प्रण किया था कि यदि कोई मेरी आज्ञा भंग करेगा तो मैं उसका त्याग कर दूँगा। दैववश लक्ष्मण को ही अवश होकर इनकी आज्ञा टालनी पड़ी, जिस पर न चाहते हुए भी इन्होंने उनका त्याग कर दिया। रामचन्द्र से पृथक् होकर लक्ष्मण को सारा संसार शून्य समझ पड़ा और वे महल से सीधे गुप्तारघाट पर पहुँच कर सरयू के जल में लुप्त हो गये। आप की माता और सीता जी स्वर्ग वासिनी हो ही चुकी थीं, अब लक्ष्मण का भी शरीरान्त सुनकर रामचन्द्र से भी न रहा गया और इन्होंने शरीर-त्याग के विचार से अपने शेष दोनों भाइयों को साथ ही देखना चाहा। भरत तो अयोध्या में रहते ही थे, शत्रुघ्न भी अब वहीं पहुँचे। इन दोनों भाइयों ने राम का विचार सुनकर इनके पीछे संसार में शरीर धारण तुच्छ समझ इन्हीं के साथ गुप्तार घाट में शरीर छोड़ दिया। यह दुर्घटना देख अयोध्या के हज़ारों लोगों ने भी ऐसा ही किया। कहा जाता है कि आत्मघात वाले रोग से इस काल अयोध्या उजाड़ सी हो गई।

रामचन्द्र ने यावज्जीवन अपने चरित्र से परमोच्च आदर्श दिखलाया। इन्होंने अपनी तीनों माताओं तथा सभी अन्य लोगों से यथोचित व्यवहार रक्खा। किसी का उचित मनोरथ इनके द्वारा कभी विफल नहीं हुआ। क्या दानशीलता, क्या न्यायपरता, क्या राज्य-शासन और क्या कोई भी चरित्र-सम्बन्धी सद्गुण, इन्होंने सभी बातों में अपने पुनीत जीवन को नमूना बना रक्खा था। इनके इस उत्कृष्ट चरित्र के कारण ही लोगों ने बालि एवं शूद्र मुनि के वध, शूर्पणखा-विरूपकरण और सीता-त्याग वाले कर्मों की तीक्ष्ण आलोचना भी की है। ये हिन्दुओं में ईश्वरावतार समझे जाते हैं, सो धार्मिक विचारों से भी इनके लाखों भक्त हैं। इसलिये उपर्युक्त बातों के खण्डन-मण्डन में बहुत कुछ लिखा पढ़ी हुई है, जिसका सार भी कहना यहाँ अनावश्यक समझ पड़ता है।

इनका चरित्र एक रामायण द्वारा इनके जीवन ही में गाया गया। वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण ग्रन्थ अब भी उपस्थित है। यह बड़ा प्राचीन ग्रन्थ है, किन्तु फिर भी १३ वीं शताब्दी बी० सी० का नहीं

हो सकता। पंडित लोग इसे छठवीं से तीसरी शताब्दी बी० सी० तक के इधर-उधर का ग्रन्थ मानते हैं। वाल्मीकि का जन्म भृगुवंश में हुआ। इसी वंश के शुक्राचार्य थे। महाभारत का कथन है कि वाल्मीकि ने रामायण के ५ काण्ड १२००० श्लोकों में लिखे थे, ७ कांड और २५००० श्लोक उनके लिखे नहीं हैं। महाराज रामचन्द्र सम्बन्धी जितने ग्रंथ संस्कृत और भारतीय वर्तमान भाषाओं में बने हैं उतने बुद्ध और श्रीकृष्ण से इतर यहाँ किसी एक मनुष्य के विषय में नहीं बने। बौद्ध ग्रन्थों में भी रामचन्द्र का वर्णन अधिकता से है। "दशरथ जातक" नामक ग्रन्थ परम प्रसिद्ध जातकों में से एक है। इसमें रामचन्द्र की कथा बहुत अंशों में ज्यों की त्यों लिखी है। अन्य जातकों में भी इनका कथन यत्र तत्र मिलता है। जैन ग्रन्थों में भी इनके वर्णन हैं, एवं एक जैन रामायण भी प्रस्तुत है।

इतने प्रमाणों के होते हुए भी कुछ पाश्चात्य लोगों को भ्रम हो गया है कि रामचन्द्र कल्पित पुरुष मात्र हैं। इसके प्रमाण में वे वेदों में राम नाम के अभाव को पेश करते हैं। जैसा कि ११ वें अध्याय में दिखलाया जा चुका है, वेदों में चन्द्र वंशियों के अनेक वर्णन हैं और सूर्यवंशियों के कम; तथापि वेदों में भी राम नाम का अभाव नहीं है। स्वयं ऋग्वेद में इन्द्र को कई बार राम कहा गया है और यज्ञ करने वाले एक राम नामक शक्तिमान मनुष्य भी हैं। कोई कारण नहीं है कि ऋग्वेद वाले यही यज्ञकर्त्ता सशक्त राम दशरथ-नन्दन राम न माने जावें। यदि राम वास्तव में न हुए होते तो हिन्दू-मत विद्वेषी बौद्ध और जैन लोग अपने ग्रन्थों में इनका वर्णन कभी न करते। फिर ब्राह्मण और वेद ग्रन्थ इतिहास नहीं हैं और उनमें जो नाम आते हैं वे सब प्रसंगवश लिखे गये हैं। इस लिये यदि उनमें कोई विशिष्ट नाम न हो, तो भी यह अभाव उसके अस्तित्व का [illegible] नहीं है। [illegible] ने पाश्चात्य पंडितों ने भी [illegible]

[illegible]

[illegible]

नहीं पड़ती थी और प्रवीण पंडितों के बनाये हुए राज्य-नियम प्रत्येक देश मे चलते थे। सारे भारतवर्ष के सभी मुख्य स्थानो मे एक दूसरे से व्यापारिक सम्बन्ध था और अनार्य राज्यो पर भी आर्य सभ्यता का प्रभाव पड़ने लगा था। रावण-राज्य के भारी सभ्यतापूर्ण व्यवहार इन कथनों की सिद्धि होती है। बालि और सुग्रीव के राज्य से भी उसकी महत्ता प्रकट होती है। रामचन्द्र के समय दण्डकारण्य मे आर्यों का एक उपनिवेश था। इनके विजयो से दक्षिण पर भी आर्यों का बड़ा प्रभाव पड़ा और आर्य लोग बहुतायत से वहां बसने लग गये थे। इस काल से कुछ पहले राम के पिता दशरथ और उत्तर पांचाल नरेश दिवोदास ने वेदो मे प्रसिद्ध (तिमिध्वज) शम्बर को मार कर उसके १०० दुर्ग तोड़े। अनन्तर इसी समय के लगभग दिवोदास के भतीजे सुदास ने भी भारी अनार्य्य नरेश वर्चिन को मार कर तथा भेदादि को पराजित करके भारत मे अन्तिम अनार्य्य बल तोड़ दिया। इसका विशेष विवरण ऋग्वेद के सातवें मण्डल मे है। अतः शम्बर, रावण और वर्चिन के पराजय से यह काल आर्य्यों के लिये बड़ी महत्ता का हुआ। रामायण काल मे हम गोदावरी मे दक्षिण आर्य्य विस्तार पाते है, तथा पम्पा, मलय, महेन्द्र और लंका तक मे आर्य्य प्रभाव स्थापित होता है।

चौदहवां अध्याय

द्वापर युग पूर्वार्द्ध—राम के पीछे युधिष्ठिर काल के पूर्व तक

१३ वीं शताब्दी बी० सी० से १० वीं शताब्दी बी० सी० तक

द्वापर युग के राजवंशों को डाक्टर प्रधान ने विशेष परिश्रम करके दृढ़ कर दिया है। राम ने अपने आठो सूर्यवंशी भतीजों को राजा बना दिया जैसा कि गत अध्याय में कहा जा चुका है। उनमें से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के लड़कों से राज्य बहुत शीघ्र छूट गये। भरत के बेटों के प्रभाव बहुत काल तक रहे, ऐसा समझ पड़ता है, क्योंकि उनके नामों पर पुष्करावती और तक्षशिला के प्रान्त शताब्दियों तक इन्हीं नामों से प्रसिद्ध रहे। फिर भी वे लोग तथा उनके वंशधर मध्यदेश से संबंध छोड़कर अपने ही प्रान्त के क्षत्रियों में मिल गए, जिससे पुराणों में इन वंशों के कथन न आये।

कुश वंश।

रामचन्द्र के बड़े पुत्र कुश को दक्षिण कोशल तथा अयोध्या के प्रान्त मिले। अवध प्रान्त के दो भाग करके भगवान राम ने श्रावस्ती लव को दी तथा अयोध्या कुश को। ऐसा समझ पड़ता है कि बड़े होने से इन्हें दक्षिण कोशल भी मिला। यह विन्ध्य में था, अवध [illegible] दक्षिण कोशल से पृथक था क्योंकि यह [illegible] महाभारत के पीछे तक चलता रहा। [illegible] के शिलालेखों से मिलती [illegible] [illegible] [illegible]

कहा है। उन्होंने अपने पिता हंता दुर्जय राक्षस को मारा। इनका नंबर ४१ था। इनके वंशधर (नं० ४९), पारिपात्र के छोटे भाई सहस्राश्व ने कोई दूसरा राज्य स्थापित किया। पुराणों में उनसे दूसरा वंश चला है। पारिपात्र के तीन पुत्र शल, दल, बल, सब एक दूसरे के पीछे राजा हुए। बल के वंश में राज्य चला। नं० ५६ हिरण्यनाभ धर्मात्मा और प्रतापी थे। इन्होंने जैमिनि से योग सीखा, तथा याज्ञवल्क्य को सिखलाया (चौथे अध्याय में ऋषि वंश देखिए)। इनके पौत्र अत्नात्मज नं० ५८ "पर" थे; जिनके पीछे इस वंश का राज्य न चला। दूसरी शाखा वाले नं० ४९ सहस्राश्व का राज्य ६ पीढ़ी चला। अंतिम राजा नं० ५४ श्रुतायुस महाभारतीय युद्ध के समय में थे। इस नाम के तीन राजे उस युद्ध में लिखे हैं। डाक्टर प्रधान का विचार है कि इन्हीं को महाभारत में अम्बष्ट श्रुतायुस कहा गया है। मत्स्य पुराण में भी ऐक्ष्वाकु श्रुतायुस का महाभारत में मारा जाना लिखा है। राजसूय में भीम ने अयोध्या नरेश पुण्यात्मा दीर्घयज्ञ को हराया, यह कथन प्रधान में है। यह नाम वंशावली में नहीं है, शायद यह उकथ का उपनाम हो।

लव वंश

रामचंद्र के दूसरे बेटे लव श्रावस्ती नरेश बनाये गये। इनके विषय में कोई विशेष घटना नहीं है। इनके वंश का राज्य बड़े भाई कुश वाले से बहुत अधिक पीढ़ियों तक चला।

लव के पौत्र राजा ध्रुवसन्धि हुए। इनका पहला विवाह कलिंगनरेश वीर की पुत्री मनोरमा से हुआ और दूसरा उज्जैनपति युधाजित की पुत्री लीलावती से। मनोरमा के गर्भ से सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और इसी से एक मास पीछे लीलावती के गर्भ से शत्रुजीत का जन्म हुआ। राजा ध्रुवसन्धि शत्रुजीत को अधिक चाहता था और लोगों का विचार था कि इसी को युवराज बनावेगा। इतने ही में शिकार में राजा ध्रुवसन्धि एक घायल शेर द्वारा मार डाला गया। राज-मंत्रियों ने बड़े होने के कारण सुदर्शन को ही तिलक के योग्य समझा किन्तु उज्जैन और कलिंग नरेश अपने-अपने दौहित्र का पक्ष ले लेकर लड़ने को तैय्यार हुए। शृङ्गवेरपुर में भारी युद्ध

में किसी साधारण अधिकार जागीर आदि का प्रयोजन समझ पड़ता है, क्योंकि खाण्डिक्य राजा थे ही नहीं। ज्ञानियों में इनकी गणना है। मुख्य वंश में, नं० ३८, सीरध्वज के पुत्र भानुमंत राम के साले थे। शकुनिपुत्र स्वागत के भाई ऋतुजित, नं० ४५, ने दूसरा राज्य स्थापित किया। इनके वंश में नं० ५५ उपगुप्त पर्यन्त राज्य चला। नाम सभी के वंशावली में हैं। मुख्य वंश में स्वागत, नं० ४५, के वंशधरों में, नं० ५२, धृति, ५३ बहुलाश्व और ५४, कृति अंतिम नरेश थे। धृति और बहुलाश्व के समय में श्रीकृष्ण चन्द्र इनके राज्य में गए थे (भागवत दशमस्कंध)। यह वंश भी इस काल महत्ता युक्त न था। वंशावली में विदेह वंश का वर्णन इसके आगे नहीं है, किन्तु महाभारत युद्ध के प्रायः ढाई सौ वर्ष पीछे इसने वह महत्ता प्राप्त की, जो इसमें कभी भी न थी। डाक्टर राय चौधरी का विचार है कि पुराणों के कृति शायद अन्तिम विदेह राज कराल जनक हों। यह मत ठीक नहीं समझ पड़ता, क्यों कि उन्हीं के अनुसार कराल जनक पौरव जनमेजय से बहुत पीछे हुए, तथा कृति के पिता स्वयं श्री कृष्ण के समकालीन थे। वैदिक विवरणों में माथव तथा जनक के अतिरिक्त पर आह्लार तथा नमी साप्य के भी कथन हैं। मैकडानल और कीथ महाशय पर आह्लार को कोशलराज पर आह्लार बतलाते हैं. नमी साप्य तांड्य ब्राह्मण XXV १७, १८, में प्रसिद्ध यज्ञ कर्ता है। इसके पीछे विदेहों का विवरण आगे आवेगा।

पूर्व पुरुषों में जुड़ कर आगे के लिये लुप्त होगई। सारे सूर्यवंश मे लव के वंशधरो ने सब से बढ़कर महत्ता प्राप्त की, जैसा कि आगे यथा स्थान आवेगा।

मुख्य पौरव-वंश

रामचन्द्र के समकालीन, न० ३८, कुरु प्रतापी थे। आपने वत्स जीता, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। आप ही के नाम पर कौरव वंश चला। इनके पुत्र, न० ३९, सार्वभौम के पीछे इस वंश के भाई चारे वालो ने कई राज्य जमाये, जैसा कि आगे कहा जावेगा, किन्तु मुख्य शाखा मे न० ४८, प्रतीप तक कोई विशिष्ट वर्णन पुराणो मे नहीं है। प्रतीप महत्ता युक्त थे। महाभारत मे इनके तीन पुत्र देवापि बाल्हीक और शन्तनु या शान्तनु कहे गये है, किन्तु ऋग्वेद मे देवापि अरिष्टिषेण के पुत्र हैं। या तो वे पिता के सामने ही मर चुके होगे, या थोड़े ही दिन राज्य करके गत हो गये होगे जिससे महाभारत से इनका नाम छूट रहा हो। अरिष्ट षेण का पितृत्व कुछ संदिग्ध भी है, जैसा कि वंशावलियो से कथित है। देवापि के कुष्ट रोग था, सो ब्राह्मणो ने इनके राजा होने के प्रतिकूल आपत्ति उठाई। बेचारे प्रतीप रोने तक लगे किन्तु प्रजा के विरोध से विवश होकर उन्होने अपने छोटे पौत्र या पुत्र शान्तुन को उत्तराधिकारी बनाया, क्यो कि मँझला वाल्हीक पहले ही से अपने मामा शिवि का राज्य पाकर उत्तरापथ जा चुका था। शान्तुन एक अच्छे वैद्य भी थे। शान्तनु को मत्स्य और वायु पुराण महाभिषक कहते है। देवापि का कुष्ट रोगी होना, म० भा० १४९, ६, मे कथित है। देवापिका प्रतीप का पुत्र होना किन्तु केवल शिष्यत्व के कारण दत्तक पिता अरिष्टिशेण का पुत्र वेद मे कहलाना प्रधान का मत है, क्योकि शतपथ ब्राह्मण ९, ३, ३. उनके भाई वाल्हीक को कौरव नरेश प्रातीप्य कहता है, किन्तु यह प्रमाण संदिग्ध है, क्योकि प्रतीप का पौत्र भी प्रातीप्य कहा जा सकता था। आगे की कथा महाभारात के आधार पर कही जावेगी। महाराजा शान्तुन के जेठे भाई देवापि ब्राह्मण हो गए। इस काल कौरव राज्य सरस्वती से गंगा तक था। उसके तीन भाग थे, अर्थात

कुरु, जांगलकुरु और कुरुक्षेत्र। तैत्तिरीय आरण्यक, वैदिक अनुक्रमणिका के अनुसार कुरुक्षेत्र की सीमायें निम्न हैं:—दक्षिण खाण्डव, उत्तर तूर्घ्न, पश्चिम परीणह। इस वंश को पुरु भारत वंश कहा है।

प्रतीप की वृद्धावस्था में गंगा नाम्नी एक सुन्दरी ने इनसे अनोखी दिल्लगी की। वृद्ध प्रतीप एक समय गंगातट पर तपस्या कर रहे थे। उस काल गङ्गा आकर अकस्मात् इनकी दाहिनी जंघा पर बैठ गई। इस रूपराशि की ऐसी ढिठाई से महाराजा प्रतीप संभ्रम पूर्ण होकर कहने लगे, "हे शुभे! जो तुम्हारा प्रिय कार्य हो वह करने को मैं प्रस्तुत हूँ, इसलिये आज्ञा करो कि तुम्हारी क्या इच्छा है?" यह सुन कर गंगा ने कहा, "हे भूपशिरोमणे! आप मेरे साथ प्रीतिपूर्वक विहार कीजिये।" यह सुन प्रतीप ने उत्तर दिया, मैं "कामवश होकर परस्त्रीगमन कभी नहीं करता और असमानवर्णा भार्या से विवाह भी नहीं करता, यह मेरा व्रत है।" इस बात से प्रकट होता है कि उस काल मिलित विवाहों की प्रथा प्रचलित थी परन्तु राजा प्रतीप उसको पसन्द नहीं करते थे। गङ्गा ने उत्तर दिया, "मैं अश्रेयसी और अगम्या नहीं हूँ तथा कुमारी हूँ, इसलिये तुम निर्भय होकर मुझसे विवाह करो।" प्रतीप ने कहा, "यदि तुम्हें मेरे साथ विवाह करना था, तो मेरी वाम जंघा पर बैठना चाहिये था न कि दक्षिण पर, जिस पर केवल पुत्री अथवा पुत्रवधू बैठ सकती है। जब स्वयं तुम्हीं ने धर्मोल्लंघन किया है, तब यदि मैं तुम्हारे साथ विवाह न करूँ, तो तुम्हें मुझको दोष न देना चाहिये। तुम्हारे दक्षिण जंघा पर बैठने के कारण मैं अपने पुत्र शन्तनु [illegible] तुम्हारा वरण [illegible]।" [illegible] गङ्गा ने उत्तर दिया "हे [illegible] भूपाल! जो तुम आज्ञा करते हो [illegible] [illegible]

[illegible]

रक्खे थे। उसकी पद्म-समान तनद्युति पर सुधा-सी श्वेत साड़ी शोभित हो रही थी और वह अतुल रूपराशि उस काल एकाकिनी विराजमान थी। उसे देखते ही महाराजा शन्तनु पुलकित हो गये और उसकी सुधामयी छविपान से अपने नेत्र तृप्त होते न देख, निकट जाकर बोले, "हे शोभने! तुम देवी, दानवी, अप्सरा, किन्नरी, अथवा मानुषी मे से कौन हो? मै स्त्री हेतु तुम्हारा वरण करना चाहता हूँ। आशा है कि कृपा करके तुम इस प्रस्ताव को स्वीकृत करोगी।" यह सुन गङ्गा ने उत्तर दिया, "मै इस नियम पर तुम्हारी स्त्री होने को सन्नद्ध हूँ कि मैं शुभाशुभ चाहे जो करूँ, तुम न तो मना करो और न कभी मुझसे अप्रिय वचन कहो। इन दोनो बातो मे से एक के होने पर भी मैं तुरन्त तुम्हारा त्याग कर दूंगी।' राजा शन्तनु ने इतने पर भी अपने को धन्य माना तथा गगा से तथास्तु कह कर और पाणिग्रहण कर के वे उसे अपने महल मे ले आये।

राजा शन्तनु के गगा से एक एक कर के सात पुत्र उत्पन्न हुए किन्तु रानी ने इन सब को गंगा मे डुबोकर मार डाला। राजा को यह कर्म बड़ा ही अप्रिय लगा किन्तु त्याग के भय से उन्होने कभी कुछ कहा नहीं। जब आठवॉ पुत्र उत्पन्न हुआ तब इनसे बिना कहे न रहा गया और ये बोले कि हे रानी! तुम यह सुत-बध का क्रूर कर्म क्यो करती हो? हे पुत्रघ्नि! क्या तुझे पाप से कोई भय नही है? गंगा ने उत्तर दिया, "हे पुत्रकाम भूपाल! मै तेरा यह पुत्र न मारूंगी किन्तु मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई और अब मै जाती हूँ।" जान पड़ता है कि महाराजा प्रतीप से वचन-बद्ध होने के कारण गगाने शन्तनु के साथ विवाह तो किया, किन्तु इन्हे वह चाहती बिलकुल न थी। इसलिये इन्हे और प्रकार से अपमान करते हुए न देखकर उसने अपना छुटकारा पाने के लिए पुत्र-वध सा क्रूर कर्म किया। यह अनुमान बहुत पुष्ट नही समझ पड़ता है। महाभारत मे इसका कारण देवताओ से सम्बन्ध रखता है। गङ्गा को किसी भाँति निश्चय हो गया था कि उनके प्रथम सातो बच्चे देवता थे जो नर देह से बचने को स्वय अपना मारा जाना चाहते थे। फिर शन्तनु के त्याग का कोई पुष्ट कारण नही मिलता।

नहीं कर सके। राजा के कष्टो का कारण सुनकर युवराज देवव्रत ने दास के पास जाकर पितृ-हितार्थ प्रतिज्ञा की कि सत्यवती का पुत्र ही राजा होगा। यह सुन दासराज ने फिर भी संदेह किया कि आपका भावी पुत्र राज्यार्थ विरोध कर सकता है। यह सुन भीष्म ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण की दूसरी प्रतिज्ञा की। इस भयानक प्रतिज्ञा के कारण लोगों ने इन्हे भीष्म कहकर पुकारा और तब से देवव्रत के स्थान मे ये भीष्म ही कहलाने लगे। अब सत्यवती उपनाम योजनगधा का विवाह शन्तनु के साथ हो गया और समय पर दो पुत्र भी उत्पन्न हुए, जिनके नाम चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य रक्खे गये।

राजा शन्तनु अपने छोटे पुत्रो की वाल्यावस्था ही मे स्वर्गवासी हुए और भीष्म ने चित्राङ्गद को राजा बनाया। थोड़ी ही अवस्था मे चित्राङ्गद बड़ा ही पराक्रमी वीर हुआ, किन्तु इसका अभिमान वीरता से भी बढ़ा हुआ था। यह अपने बल के आगे देवासुरो के पराक्रम की भी निन्दा करता था। यही अभिमान चित्राङ्गद के विनाश का मूल कारण हुआ। चित्राङ्गद नामक एक गन्धर्व भी अभिमानी वीर था। उसने राजा के अभिमान को न सहकर इनसे युद्ध मांगा और सरस्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र मे इन दोनो का तीन दिन तक द्वन्द युद्ध हुआ। अन्त मे गन्धर्व ने राजा का वध किया। इस पर भीष्म ने भ्राता का अन्त्येष्टि कर्म करके सत्यवती की सलाह से विचित्रवीर्य को राजा बनाया। विचित्रवीर्य को बालक समझ कर सत्यवती के मतानुसार पालक बनकर भीष्म ही राज्य चलाने लगे। भीष्म का राज्यशासन रामराज्य के समान सर्वगुण सपन्न था। विचित्रवीर्य के सयाने होनेपर भीष्म ने सुना कि काशीराज की कन्या अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का स्वयंवर हो रहा था। यह सुन एक छोटी सी चुनी हुई सेना लेकर भीष्म ने काशी पुरी मे जा बलपूर्वक तीनो कन्याओ का भ्राता के लिये हरण किया। इसके पूर्व भीष्म ने आठो प्रकार के शास्त्रीय विवाहो का कथन करके इसे शास्त्र-समत प्रमाणित किया और उपस्थित राजाओ को युद्धार्थ ललकारा। कई राजाओ ने इनसे युद्ध किया, किन्तु सभी को पराजित होना पड़ा। सब के पीछे बड़ी पुत्री

दोष लगाया कि तुमने बिना दी हुई कन्या का हरण करके उसे छोड़ कैसे दिया ? उन्होंने सारा हाल निवेदन करके और अपने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का भी कथन करके विनती की कि मैं विवाह न करने पर बाध्य हूँ। परशुराम ने उनके कथन को स्वीकार न करके युद्ध का निश्चय किया। विवश होकर भीष्म को अपने शस्त्र-विद्या-गुरु से लड़ना पड़ा। २१ दिन पर्यन्त गुरु-शिष्य का कुरुक्षेत्र में घोर द्वन्द्व युद्ध हुआ। यह देख ऋषि लोगों ने बीच में पड़कर इस युद्ध का निवारण कराया। अब परशुराम ने अम्बा से कहा कि मैं ऋषियों के वचन का निरादर नहीं कर सकता, इसलिये युद्ध छोड़ता हूँ। मैं यह भी कहे देता हूँ कि भीष्म मुझसे जेय अथवा बाध्य नहीं है। अम्बा ने उनके प्रयत्नों के लिये कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देकर शेष जीवन तपश्चर्या में बिताने का निश्चय प्रकट किया। उसने ऐसा ही करके अपने चरित्र की दृढ़ता सिद्ध कर दिखाई।

महाराजा विचित्रवीर्य ने राज्य-प्रबन्ध की ओर अपना मन कभी न लगाया और सदा रानियों ही के साथ विहार करने में अपने को कृतार्थ माना। उनकी दोनों रानियाँ जैसी सुन्दरी थीं वैसे ही वह भी रूपवान् थे, किन्तु उचित से अधिक विलास के कारण उनका शरीर बलहीन हो गया और विवाह से सातवें वर्ष उन्हें राजयक्ष्मा रोग ने घेर लिया। मित्र लोग यत्न और वैद्य औषध करते हुए हार गये, किन्तु विचित्रवीर्य नीरोग न हो सके और थोड़े ही दिनों में काल कवलित हो गये। अब सारे महल में हाहाकार पड़ गया और भीष्म भी बहुत चिन्ताकुल हुए। यह बुरा दिन देख राजमाता सत्यवती महारानी ने भीष्म से विचित्रवीर्य की रानियों में नियोग द्वारा पुत्रोत्पादन का निवेदन किया। भीष्म ने इस उदारता के लिये कृतज्ञता स्वीकार करते हुए अपने ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाकर राजमाता से यह आज्ञा न मानने के लिये क्षमा चाही। कुछ पंडितों का मत है कि अब इस प्राचीन राज-कुल के सब से निकटस्थ सम्बन्धी भीष्म ही रह गये थे और इनको ब्रह्मचर्य व्रत पालन के स्थान पर अपने पूर्व पुरुषों के कुटुम्ब का रुधिर स्वच्छ रखना अधिक श्रेयस्कर एवं प्रगाढ़तर धार्मिक कार्य

दिग्विजय को निकले । इन्होंने अपनी विजययात्रा दशार्ण देश (बुंदेलखड) से आरम्भ की और यहाँ के राजाओं से कर लिया। फिर मगध के सब राजा जीते गये। वहाँ से मैथिल देश के विदेह राजाओ को जीतकर काशीपति, सुम्हपति और पौण्ड्रपति को भी पाण्डु ने जीता। इन सब राजाओं से प्रचुर धन लेकर पाण्डु नरेश हस्तिनापुर को वापस गये। भीष्म कुरुवृद्धो समेत पाण्डु की अगवानी को गये। पाण्डु ने इन्हे देख रथ से उतर कर पद-वन्दन किया। भीष्म ने अपने भतीजे का मूर्धा घ्राण करके बड़े आदर के साथ हृदय से लगा कर अश्रु जल से उनके बदन कमल का सिञ्चन किया। अब पाण्डु नरेश ने हस्तिनापुर आकर धृतराष्ट्र के पद-वन्दन किये और उनकी आज्ञा लेकर विजय का सारा धन भीष्म, सत्यवती, अम्बिका और अम्बालिका को बाँट दिया। इनके अतिरिक्त विदुर, अमात्य तथा अन्य राजसेवियों को पुरस्कार दिये गये। अनन्तर महाराजा धृतराष्ट्र ने कई यज्ञ करके विपुल दक्षिणा दी।

कुछ दिन के पीछे कुन्ती और माद्री का मत पाकर महाराजा पाण्डु हिमाचल के दक्षिण ओर वन में रहने लगे। इनको मृगया की बड़ी बुरी लत थी। इसलिये ये जंगल मे जाकर शिकार खेला और रानियों के साथ विहार किया करते थे। राजा धृतराष्ट्र इनके लिये आराम की सभी वस्तुये भेजा करते थे। जंगल मे रहते-रहते कारणवश राजा पाण्डु पुत्रोत्पादन के अयोग्य हो गये। इसलिये ग्लानिपूर्ण होकर उन्होंने राज्य छोड़ दिया और पत्नियो समेत बहुमूल्य वस्त्र त्याग कर अजिनाम्बर धारण किये। पहले उन्होंने अपनी रानियों को हस्तिनापुर वापस भेजने का विचार किया, किन्तु जब उन्होंने पाण्डु का साथ वानप्रस्थाश्रम मे भी छोड़ना पसन्द न किया, तब इन्होंने उनको साथ रक्खा। पाण्डु ने रानियों के तथा अपने बहुमूल्य वस्त्र और अलंकार ब्राह्मणों को दान दे दिये और सेवकों से कहा कि अब हम तुमको बिदा करते है, तुम हस्तिनापुर जाकर महाराजा धृतराष्ट्र और भीष्म से निवेदन करना कि पाण्डु ने राज्य छोड़ वनवास ग्रहण किया।

यह सुन वे लोग हाहाकार करके रोने लगे। इतने पर भी पाण्डु ने

अपना निश्चय न छोड़ा और विवश होकर सब सेवक लोग हस्तिनापुर वापस गये। यह शोकपूर्ण वृत्तान्त सुनकर महाराजा धृतराष्ट्र बहुत विकल हुए और कई दिनों तक भोजन शयन आदि छोड़कर विरक्त रहे। अन्त में विवश होकर इन्होंने राज्य-कार्य सभालना आरम्भ किया, वरन् यों कहें कि ये सदा की भांति फिर से राजकार्य देखने लगे। पाण्डु के राज्य में धृतराष्ट्र ने यह कभी नहीं जाना था कि वे राजा नहीं हैं। इस लिये अपने ऊपर राजभार आते देख इन्हें किसी प्रकार की प्रसन्नता न हुई। अब महाराजा धृतराष्ट्र राजसिंहासन पर भी बैठने लगे और अपने ही नाम से राजकार्य चलाने लगे, किन्तु इन्होंने अपना अभिषेक कभी नहीं कराया। कम से कम महाभारत में ऐसा लिखा नहीं।

महाराजा पाण्डु ऋषियों के समान और उन्हीं के साथ वन-वन घूमते हुए तथा तीर्थाटन करते जीवन निर्वाह करने लगे। कुछ दिनों के पीछे इनका पितृ ऋण से उद्धार पाने का विचार हुआ और इनकी आज्ञा से कुन्ती ने धर्म, पवन, और इन्द्र तथा माद्री ने दोनों अश्विनीकुमारों को क्रम से बुलाकर पाँच पुत्र उत्पन्न किये। कुन्ती के युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन पुत्र हुए तथा माद्री के नकुल और सहदेव। इधर महाराजा धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मर्षण, दुर्मुख, विकर्ण, आदि अनेक पुत्र हुए तथा दुःशला नाम्नी एक कन्या भी हुई। इनके युयुत्सु नामक एक वैश्या-पुत्र भी हुआ। दुःशला का विवाह सिन्धु देश के राजा जयद्रथ के साथ हुआ। कुछ दिन के बाद जंगल ही में रहते हुए महाराजा पाण्डु का शरीरपात हो गया और महारानी माद्री उन्हीं के साथ सती हो गई। यह देख ऋषियों ने कुंती समेत पांचों पांडु-पुत्रों को हस्तिनापुर ले जाकर महाराजा धृतराष्ट्र को सौंप दिया। पांडवों को पाकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए तथा उचित प्रकार से राजकुमारों की भांति इनका पालन पोषण और शिक्षण करने लगे। पांडवों ने महाराजा धृतराष्ट्र की कृपाओं में उन्हें पितृवत् उपकारी पाया। हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र और पांडु के वंशियों की इस प्रकार दो शाखाएँ हुईं। इसलिए पांडु के पुत्र पाण्डव कहलाए और धृतराष्ट्र के पक्ष वाले कौरव की पुरानी उपाधि से पुकारे जाते रहे।

में मुख्य कहे गए हैं। महाभारत में पांचाल भारतों की शाखा है (आदि पर्व, ९४. ३३)। दिवोदास, सुदास और द्रुपद पांचाल थे। वैदिक साहित्य में पांचालों के निम्न राजा उल्लिखित हैं:—क्रैव्य केशिन, दालभ्य शोनशात्राशहा, प्रवाहण जैवलि, दुर्मुख, जैवलि (ये जैवलि जनमेजय के पीछे विदेह काल में थे)। दुर्मुख उससे भी पीछे के समझ पड़ते हैं। इनका कथन कुम्भकार जातक (४०८) में भी है। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी। उत्तर पांचाल के विषय में कुरु पांचालों में समय समय पर बहुत युद्ध हुए। यह कभी कौरवों का रहा और कभी पांचालों का। जब द्रुपद ने द्रोण से लड़ कर अपना पैत्रिक राज्य उत्तर पांचाल खोकर दक्षिण पांचाल मात्र अपने पास रख पाया तब गंगा से चम्बल तक का देश उनके पास रह गया और वे गंगा तट पर माकन्दीपुरी में बसे, ऐसा महाभारत आदि पर्व का कथन है। महाभारत में वह प्रायः द्रुपद पुर कहलाता था। उधर द्रोण की राजधानी अहिच्छत्र पुर में हुई। वे कभी-कभी हस्तिनापुर में भी रहते थे। शायद महाभारत युद्ध के पूर्व वे उसे खो चुके थे, क्योंकि उस काल सारे पांचाल देश के राजा द्रुपद ही समझ पड़ते हैं, तथा उत्तर पांचाल के कुछ छोटे मोटे शासक और भी उल्लिखित हैं। पुराणों में पांचाल का विवरण कुछ कम है, किन्तु वैदिक साहित्य में वह प्रचुरता से पाया जाता है, विशेषतया ऋग्वेद में।

चेदि राज्य

पौरव राजा कुरु (नं० ३८) के पीछे वसु ने चेदि जीतकर बुन्देलखंड में यह राज्य स्थापित किया। सुहोत्र कुरु के पौत्र थे। इनके पौत्र (नं० ४२) कृतयज्ञ के दो पुत्र मुख्य हुए अर्थात् चेदि और उपरिचर वसु। चेदि के नाम पर यह राज्य कहलाया। उधर वसु ने मगध राज्य स्थापित किया, जिसका कथन आगे आवेगा। चेदि की राजधानी शुक्तिमती केन पर थी। चेदि या चिदि मत्स्य से मगध तक राज्य फैलाकर चक्रवर्ती हुए। सम्भवतः उपरिचर वसु पहले इनके अधीनस्थ राजा थे। चेदि और उपरिचर वसु के वंशधर मगध और चेदि के अतिरिक्त कौशाम्बी, करूष और मत्स्य में भी स्थापित हुए (पार्जिटर)।

चेदि वंश की कुछ पीढ़ियां पुराणों से छूट गई हैं। (नं० ५१) दमघोष को कृष्ण की फूफी व्याही थी। इन दोनों का पुत्र शिशुपाल हुआ। इसे मागध सम्राट् जरासन्ध पुत्रवत मानता और अपने दल का सेनापति बनाये था। शिशुपाल पाण्डवों का मौसेरा भाई था, किन्तु जरासन्ध के कारण यह श्रीकृष्ण तथा पाण्डवों के विपक्षियों में था। कुन्डिनपुर के राजा भीष्मक अपनी पुत्री रुक्मिणी का व्याह इसके साथ करते थे, किन्तु रुक्मिणी की इच्छा से श्रीकृष्ण ने उन्हें प्राप्त किया। जरासन्ध के मारे जाने पर शिशुपाल इन लोगों से और भी अप्रसन्न हुआ, यहां तक कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण के हाथ से इसका वध हुआ। शिशुपाल का पुत्र धृष्टकेतु महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की ओर से लड़कर द्रोणाचार्य द्वारा मारा गया। इसके पीछे इस कुल की वंशावली नहीं चलती है।

मागध राज्य

उपर्युक्त कृतयज्ञ के पुत्र (राजा नं० ४३) उपरिचर वसु ने ऋषभ दैत्य को जीतकर मगध राज्य प्राप्त किया। इसकी राजधानी गिरिव्रज हुई। पहले शायद ये चेदि के कुछ अधीन थे. किन्तु पीछे यह राज्य स्वतंत्र होगया। इनको शायद चेदि शाखा के कारण चैद्योपरिचर भी कहते हैं। इनका पुत्र (नं० ४४) वृहद्रथ बड़ा प्रतापी हुआ, जिससे यह वंश बार्हद्रथ कहलाने लगा। विराट वाला मत्स्य कुल भी इन्हीं उपरिचर वसु का वंशधर था। कहीं-कहीं ऐसा लिखा है कि इनके पास व्योमयान होने से ये उपरिचर कहलाते थे। बृहद्रथ का वंशधर ५२, जरासन्ध बड़ा प्रतापी सम्राट् हुआ। इसने भारत के बहुतेरे राजाओं को जीतकर गौरव प्राप्त किया।

जरासंध बड़ा प्रतापी और पराक्रमी राजा हुआ। यह डीलडौल में भारी था, पर कहते हैं कि इसके शरीर में एक संधि थी, जिसके कारण यह इस नाम से पुकारा जाता था तथा एक प्रकार की इसमें शारीरिक हीनता रह गई थी। इसने अन्य राज्य जीता तथा अपना राज्य बहुत विस्तृत करके सम्राट् पद प्राप्त किया। भारत में शान्तनु के पीछे यही राजा सम्राट् हुआ। यह शिशुपाल को पुत्रवत् मानता

कोई विशेष क्रमबद्ध वर्णन नहीं है; जितना कुछ है वह श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में आवेगा। उसी विवरण में सूर्यवंशी यदु द्वारा स्थापित दो अन्य राज्यों के कथन मिलेंगे। महाभारत के सम्बन्ध में बहुतेरे राज्यों के नाम हैं, जिनके पृथक विवरण यहाँ अनावश्यक हैं। उनमें मत्स्यपति विराट मुख्य हैं। ऊपर मगध के विवरण में आ गया है, कि वे वसु चैद्योपरिचर के वंशधर थे। तुर्वश वंश दुष्यन्त के समय पौरव हो गया, अर्थात् पौरव वास्तव में थे तौर्वश, किन्तु कहलाये पौरव। तुर्वश वंशी यवनों का पृथक वर्णन अप्राप्त है। द्रुह्यु वंशी भोज और म्लेच्छ हुए। म्लेच्छ वे भारत के बाहर जाकर हुए और उनके पृथक इतिहास नहीं हैं। जो अन्य म्लेच्छों का इतिहास है वही उनका है। भोजों का भी पूर्ण इतिहास पुराणों में नहीं है किन्तु अन्य वर्णनों के संबंध में उनके स्फुट कथन मिलते हैं। पाश्चात्य आनव शाखा ने कई राज्य पंजाब, सिन्ध, राजपूताना आदि में स्थापित किए। इन देशों के राज्यों में कुछ द्रुह्यु वंशी भी होंगे। इन्हीं में भरत पुत्रों के सूर्यवंशी भी मिल गए। इन राज्यों में बहुतेरे महत्ता युक्त भी थे, किन्तु मध्यदेश से दूरस्थ होने से पुराणों में इनके पूर्ण इतिहास या वंश अकथित हैं। पौरव प्रतीप के समय उनके पौत्र वाल्हीक ने भी अपने मामा शिवि का राज्य वाल्हीक प्रान्त में पाया, जो पंजाब के उत्तर पश्चिम में है। भारत के स्फुट राज्यों के कुछ विवरण श्री कृष्ण और पाण्डवों की विजयों तथा महाभारतीय युद्ध के सम्बन्ध में आगे आवेंगे।

पूर्वीय राज्य अंग

आनव आंग शाखा में रामचन्द्र के समय में (नं० ४०) लोमपाद और (नं० ४१) चतुरंग थे। (नं० ४८) जयद्रथ के ब्राह्मणी माता तथा क्षत्रिय पिता की कन्या ब्याहने से यह वंश आगे में सूत होगया। इस काल जाति भेद की कड़ाई समझ पड़ती है। (नं० ७१) [illegible] दूसरे अंग नरेश हुए। शायद इन्हीं के समय जरासन्ध मागध ने अंग राज्य मगध में मिला लिया। अंग के पूर्व पुरुष, (नं० ४६) [illegible] के दूसरे वंश में इस काल (नं० ५०) अधिरथ थे, जिनका कुन्ती [illegible]

किसी सूर्य नामक व्यक्ति से उत्पन्न कानीन आत्मज कर्ण पालित पुत्र था। इसके शौर्य का हाल सुनकर मगधेश जरासन्ध ने मित्र भाव से बुला इससे द्वन्द्व युद्ध किया और उसमे पराजित होने से कर्ण की प्रशसा करके ख़ुशी ख़ुशी अग राज्य फेर कर उसे मालिनी नगर मे प्रतिष्ठित किया। सम्भवतः इसी बात से अग ने भी कर्ण को अपना दत्तक पुत्र बनाया होगा। फिर भी महाभारत मे ये अधिरथ और उसकी स्त्री राधा के कारण अधिरथी तथा राधेय कहलाते थे। इससे जान पड़ता है कि इनका दत्तक विधान द्वैमुष्यायन की रीति पर हुआ होगा, जिससे ये अंग और अधिरथ दोनो के पुत्र रहे। कर्ण पौरव सम्राट दुर्योधन के ऐसे प्रगाढ़ मित्र थे, कि अपने वास्तविक माता पिता कुन्ती और सूर्य के समझाने पर भी पाण्डव बन कर इन्होंने सम्राट होना तक भी पसन्द न किया, क्योकि ऐसा करने से दुर्योधन का साथ छोड़कर इन्हे पाण्डवों का सहायक बनना आवश्यक होता। दुर्योधन ही ने कर्ण को अंग राज्य का अभिषेक किया। परशुराम से अस्त्र विद्या पाकर आप अर्जुन के समान ही योद्धा थे, किन्तु महाभारतीय युद्ध में इनके रथ का पहिया कीचड़ में फँस गया, जिससे अर्जुन द्वारा इनका निधन हुआ। इनके पुत्र (नं० ५४) बृषसेन उसी युद्ध मे मारे जा चुके थे, सो तत्पुत्र (नं० ५५) पृथुसेन अंग नरेश हुआ। इसके पीछे इस कुल की वशावली नहीं मिलती, यद्यपि आदिम कलिकाल मे भी अंग राज्य बहुत काल पर्यन्त स्थापित रहा। कर्ण महादानी, सत्यभाषी और मित्र वत्सल था। दुर्योधन के लिये आपने भारत विजय भी किया। इनकी कथा महाभारत मे है। यह राज्य मगध के पूर्व था। जातक ५४५ राजगृह को मगध का शहर कहता है। शान्तिपर्व २९, ३५ मे, अंग राज विष्णुपद गया मे यज्ञ करता है। सभा पर्व मे अग वंग एक राज्य है। कथा सरित्सागर मे अग राज्य समुद्र पर्यन्त फैला हुआ है, जहां उसका शहर टकपुर है। महाभारत काल मे राजधानी मालिनी थी, किन्तु पीछे जातको मे चम्पा होगई।

पूर्वी राज्य प्राग्ज्योतिष

महाभारत के समय प्राग्ज्योतिषपुर एक राज्य था जिसके राजा

एक दूसरे के पीछे नरकासुर, तत्पुत्र भगदत्त एवं पौत्र वज्रदत्त थे। इसमे दक्षिणी आसाम तथा पूर्वी बंगाल सम्मिलित थे। नरकासुर एक ब्राह्मण कुमार था जिसने काशी मे शिक्षा पाई। इसने अपने बाहु तथा बुद्धिबल से यह राज्य उपार्जित किया। अनन्तर मदोन्मत्त होकर इसने बहुतेरी कन्याओं को बल पूर्वक विवाहार्थ कैद किया, जिनका मोचन श्री कृष्ण ने किया। इसी युद्ध मे नरकासुर का कृष्ण चन्द्र के हाथ से बध हुआ। भगदत्त दुर्योधन का मित्र था। इसका हाथी खास इन्द्र के गजराज ऐरावत के कुल मे उत्पन्न अथच बड़ा प्रबल था। कुछ योरोपीय पण्डितों का विचार है कि भगदत्त की सेना मे चीनी लोग भी थे। महाभारत युद्ध मे यह अर्जुन द्वारा मारा गया और वज्रदत्त राजा हुआ। यहां तक की कथा महाभारत तथा हरिवंश मे है। वज्रदत्त के पीछे क्रमशः धर्मपाल, रत्नपाल, कामपाल, पृथ्वीपाल, सुबाहु आदि इस वश मे राजे हुए। इस राज्य का बगालवाले समुद्र तट का पूर्वी दक्षिणी भाग पाताल भी कहलाता था। पहाड़ी टिपरा तथा चिटगांव के पहाड़ी भाग कहीं कहीं नाग लोक माने गए हैं। सम्भवतः यहां नागो की भी बस्ती थी।

पूर्वीराज्य, बाणासुर

प्रायः भगदत्त के समय उत्तरी आसाम का स्वामी कोई बाणासुर था, जिसकी राजधानी शोणितपुर थी। यह नरकासुर का भी सखा तथा महादेव का भक्त था। इसकी पुत्री ऊषा का विवाह श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से हुआ। सम्भवतः बाणासुर इसी नाम के बलिपुत्र बाण का वशधर हो। इसने या इसके किसी पूर्व पुरुष ने बलिंग राज्य स्थापित किया और पीछे इस वंश को उत्तरी आसाम जाना पड़ा। बोधायन के अनुसार उत्कल पतित आर्यों का देश है। हरिवंश मे आया है कि ऊषा के विवाह मे जो बाण का कृष्ण से युद्ध हुआ, उसमे पराजित होकर यह कैलाश को चला गया और श्री कृष्ण ने इसके मन्त्री कुम्भाण्ड को राजा बनाया।

यादव राज्य

त्रेता के वर्णन मे आया है कि राम के पीछे भीम सात्वन्त. (नम्बर

४३) यादव ने शत्रुघ्न वंशियों से अपनी मथुरा वापस लेकर यादव बल पुनः जागृत किया। अनन्तर भीम सात्वन्त के पुत्र अन्धक, देववृद्ध और भजमान तथा पौत्र कुकुर और बभ्रु यादव पति हुए। इनमें देववृद्ध भजमान, और बभ्रु मुख्य शाखा के भाइयों मे थे. तथा अन्धकात्मज कुकुर थे। कंस कुकुर के वंश मे थे और कृतवर्मा भजमान के। (नम्बर ४६) वृष्णि के मुख्य शाखा से इतर वंशधर अक्रूर हुए। इनका राज्य गुजरात मे था।

कंस भोजराज थे (ह, व० ५५, ३१०२, ४, ११३, ६२६३,६३८०, म० भा० VII ११ ३८८, ९) और अक्रूर गुजरात पति (वायु ९६, ६० ह व० ४०, २०९५, विष्णु IV १३, ३५, ७०,१४, २)। भोजवंशी मुख्य यादवो से इतर हैहय शाखा मे भी थे। उपर्युक्त देववृद्ध वंशी पश्चिमी मालवा के बनस (पर्णाश नदी पर) के स्वामी हुए (पार्जिटर)। भजमान के पुत्र बभ्रु भी यादवो में विख्यात थे। (नं० ४६) वृष्णि के अतिरिक्त एक दूसरे वृष्णि भी यदुवंश मे थे। इनका पूरा पुश्तनामा (प्रधान के अनुसार) प्राप्त नही है। उनका वंश इस प्रकार था:—
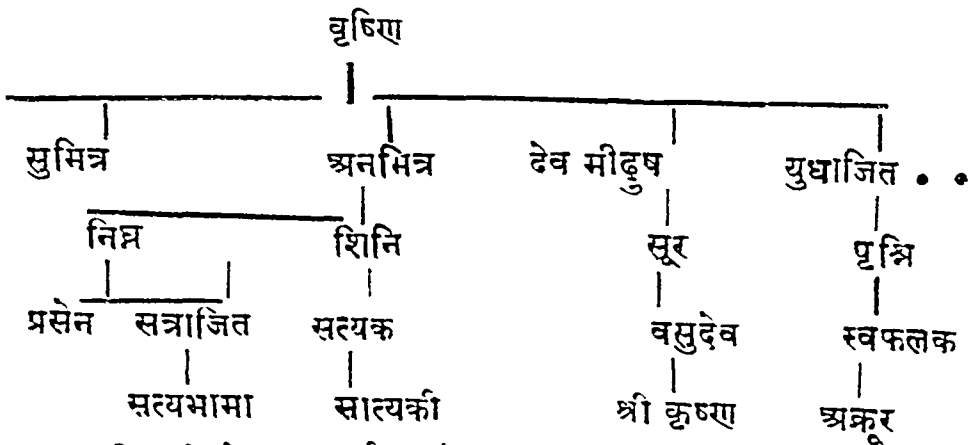
वृष्णि दो थे एक उपर्युक्त और पहले (न० ४६)। गीता मे श्री कृष्ण प्रायः वार्ष्णेय कहे गए हैं। फिर भी एक ही नाम होने के कारण पुराणो तक मे इस वंश कथन मे गड़बड़ है। पार्जिटर अक्रूर को (नं० ४६) वृष्णि का वंशधर कहते हैं तथा प्रधान दूसरे का। प्रधान ने अधिक छानबीन के साथ वंशवृक्ष लिखे हैं।

उग्रसेन (न० ५३) यादवपति क बेटे कंस ने इन्हे राज्यच्युत करके

स्वयं संघपति की गद्दी पर अधिकार जमाया। उग्रसेन के भाई देवक की पुत्री देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ, जिससे श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। इनका कंस से बिगाड़ होगया, जिससे उसे मार कर फिर आपने उग्रसेन को राजा या संघपति बनाया। श्रीकृष्ण की कथा कुछ विस्तार के साथ कही जावेगी, किन्तु इससे पूर्व अनेक आधारो मे इस वंश के जो मामले ज्ञात होते है, उनके सूक्ष्म विवरण दे देना उचित है।

शूरसेनो एव मथुरा का कुछ हाल त्रेतायुग के इतिहास मे आ चुका है। अब उसके पीछे से उठाया जाता है। पाणिनि IV १, ११४, तथा VI २, ३४, मे अन्धक और वृष्णि है। कौटिल्य मे वार्ष्णेयो का संघ (प्रजातंत्र-राज्य) था तथा महाभारत, XII ८१, २५, में भी वृष्णि अन्धकादि का संघ है। वासुदेव तथा उग्रसेन संघ मुख्य थे। पतंजलि तथा घटजातक मे कंस वध कथित है। यादव ब्राह्मणों के शाप से नष्ट हुए (मुशल पर्व)। द्रोणपर्व १४१, १५, मे वृष्णि अन्धक व्रात्य है। व्याकरण के नियमानुसार वसुदेव तथा वासुदेव दोनो का पुत्र वासुदेव है। पुराणो मे कृष्ण के पिता का नाम कहीं-कहीं वासुदेव है और कही वसुदेव।

अंधक के राज्याभिषिक्त कुल मे उग्रसेन और तत्पुत्र कंस नामी हुए। कंस ने अपने चचा देवक पुत्री देवकी का विवाह उक्त प्रसिद्ध यदुवंशी वसुदेव के साथ किया। वसुदेव के सात और स्त्रियाँ थीं, जिनमे रोहिणी प्रधान थी। देवकी रोहिणी से भी प्रधान हुई। जिस काल कंस विवाहोपरान्त प्रेम पूर्वक अपनी बहिन का रथ स्वयं हाँकते हुए उन्हे वसुदेव के यहां लिये जाते थे, तभी किसी महात्मा ने भविष्य भाषण किया, "हे कंस! तू जिस भगिनी का इतना सम्मान करता है, उसी का आठवाँ पुत्र तेरा हन्ता होगा।" कंस को इस भविष्यवाणी पर पूरा निश्चय बैठ गया और उसने उसी स्थान पर देवकी का सिर काटने को तलवार खींची। यह देख वसुदेव तथा अन्य यादव वृद्धो ने कंस को स्त्री-वध सा नृशंस कार्य करने से रोका। वसुदेव ने वचन दिया कि मै अपनी इस पत्नी के सब बच्चे तुम्हे दे दिया करूँगा। यह सुन कंस ने देवकी को छोड़ दिया।

वसुदेव ने क्रम से ६ पुत्र कंस को अर्पित किये और उसने उन्हें अपना शत्रु न समझ कर छोड़ दिया। देवकी का सातवाँ गर्भ अकाल में ही स्खलित हो गया। जब उनके आठवाँ गर्भ रहा, तब किसी ने कंस को यह कह कर भुला दिया कि आठ पदार्थों को कुण्डलाकार रखने से उनमें से कोई भी आठवाँ कहा जा सकता है। कंस आत्मबध के भय से ऐसा चलितधैर्य हो गया था कि उसने पूर्ण कादरपन दिखलाते हुए बसुदेव के उन छहो बच्चों का बध कर डाला और देवकी समेत उन्हें कारागृह में डाल दिया। इधर रोहिणी के संकर्षण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसकी रक्षा के निमित्त वसुदेव ने उसे रोहिणी समेत अपने मित्र नन्द गोप के यहाँ गोकुल भेज दिया। यह स्थान मथुरा से प्रायः १४ मील की दूरी पर है।

भादों मास की कृष्णाष्टमी को अर्द्धरात्रि के समय देवकी के गर्भ से श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ। कंस ने इनके वचन का विश्वास न करके इन्हें कारागार में बन्द किया था; इसलिये इन्होंने अपने को राजा से वचनबद्ध न समझ कर इस पुत्र के बचाने का प्रयत्न किया तथा रातों रात पुत्र को गोकुल पहुँचा कर नन्द की स्त्री यशोदा से उसी रात्रि में उत्पन्न हुई उसकी कन्या से अपना पुत्र बदल लिया। कहते हैं कि यह भेद यशोदा ने भी न जाना और कृष्ण को अपना ही पुत्र समझ कर उनका पालन पोषण किया। बौद्ध ग्रन्थ घटजातक में लिखा है कि यह बदलाव चोरी से न होकर प्रेमपूर्वक हुआ। जब कंस ने सुना कि देवकी के कन्या उत्पन्न हुई, तब उसने बड़ा आश्चर्य माना, क्योंकि भविष्य वाणी के अनुसार इसी बार उसका मारने वाला पुत्र होने को था। फिर भी किसी प्रकार का संदेह न रहने के विचार से उसने कन्या को भी मारकर अपना मुख काला किया। कुछ दिनों में उसे यह पता लग गया कि वसुदेव ने अपना आठवाँ पुत्र नन्द के यहाँ छिपा रक्खा था। उसने इस पुत्र को मारने के अनेक गुप्त उपाय किये, किन्तु वे सब निष्फल हुए।

श्रीकृष्ण की शारीरिक वृद्धि साधारण से बहुत अधिक हुई, यहाँ तक कि बारह वर्ष की ही अवस्था में उनके शरीर में युवा पुरुष के समान बल आ गया। इसी वर्ष उन्होंने अपने मामा कंस के पातक

वहाँ यदुपुत्र सारस का रचा हुआ क्रौंचपुर है। वहाँ के राजा महाकपि से मिलकर हम लोगों को गिरि गोमन्त (वर्तमान गोवा) को चलना होगा। उस स्थान पर जरासन्ध तुम्हें नहीं पा सकेगा।" इन लोगों ने ऐसा ही किया और गिरि गोमन्त से परशुरामजी राम और कृष्ण को वहीं छोड़ कर अपने स्थान को चले गये।

रामकृष्ण को वहाँ रहते हुए थोड़े ही दिन बीते थे कि जरासन्ध ने सेना समेत गिरि गोमन्त को आ घेरा। ढूँढ़ने से इन दोनों भाइयों को न पाकर उसने चारों ओर से इस पर्वत पर आग लगा दी। पहाड़ पर अनेक झरने जलपूर्ण थे इसलिये जरासन्ध के जलाने से वह न जला और गड़बड़ में बहुत से योद्धाओं को मारकर ये दोनों निकल गये। इस प्रकार विफल-मनोरथ होने से जरासन्ध अपने अनुयायियों समेत बहुत हतोत्साह होकर मगध देश को चला गया, अकेला चेदिपति शिशुपाल अपनी सेना समेत वहीं रह गया। यह कृष्ण बलराम की फूफी का पुत्र था। इसलिये उनसे मिल कर बोला, "मैं जरासन्ध के भय से उससे मिलकर रहता था और अब तुम्हारा अनुगामी बनूँगा। इस काल मैं चाहता हूँ कि मेरी सेना की सहायता लेकर आप मेरे लिये राजा शृंगाल से करवीरपुर जीत लीजिये।" यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र ने करवीरपुर घेर कर युद्ध में राजा शृंगाल का वध किया। यह देख पद्मावती नाम्नी उसकी पटरानी ने अपने पुत्र शक्रदेव को कृष्ण के सम्मुख खड़ा करके विनती की, "जिस राजा को आपने मारा है उसी का यह पुत्र हाथ जोड़ कर आपके सम्मुख खड़ा है। इसलिये आप जो आज्ञा दें उसी का यह पालन करे।" यह सुन कर भगवान् को दया आगई और शिशुपाल की इच्छा के प्रतिकूल आप ने उसी बालक का अभिषेक करके उसे करवीरपुर का राजा बना दिया। इसके पीछे राजा शृंगाल के हरिताश्व रथ पर चढ़कर कृष्ण बलदेव मथुरा पधारे और शिशुपाल भग्नमनोरथ हो कर चेदिदेश को चला गया।

कुछ दिनों के पीछे श्रीकृष्ण को समाचार मिला कि कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी अपना विवाह उन्हीं से करना चाहती थी और उसके पिता की भी यही सम्मति था, किन्तु

उसका भाई स्वयंवर करता था। यह सुन श्रीकृष्ण भारी सेना समेत कुण्डिनपुर पहुँचे और राजा कैशिक के यहाँ ठहरे। उन्होंने इनका उचित आतिथ्य किया। कृष्णागमन से चिन्तित होकर नृपसमूह भीष्मक के सभासदन मे मंत्र करने लगा। उस स्थान पर जरासन्ध ने इनकी सारी कथा कह कर प्रस्ताव किया कि इनके साथ सन्धि करनी चाहिये। राजा सुनीथ ने जरासन्ध की सम्मति का प्रतिपादन किया। राजा दन्तवक्र ने भी कहा कि श्रीकृष्ण ने कभी अपनी ओर से किसी से बैर नहीं बढ़ाया और वे अब भी कलह बचा कर क्रथ-कैशिक के यहां ठहरे है। जिसने इनसे नाहक बैर बढ़ाया, केवल उसी को इन्होंने दण्ड दिया है। इसलिये इन्हे कलह के योग्य न समझ कर हम लोगों को इनके पास जाकर मित्रवत् मिलना चाहिये। राज-कुमारी जिसको चुनेगी, वही उसको पावेगा। इसलिये आपस में विग्रह से कोई लाभ नहीं है। यह सुन राजा शाल्व ने कहा कि पहले उनसे बैर बढ़ाकर अब इस प्रकार दैन्य दिखाना क्या शस्त्रधारी क्षत्रियों को शोभा देता है? इसलिये हम लोगो को अपनी शान छोडना उचित नहीं और बैर प्रीति का निबाहना ही अच्छा है। यह सुन सब मानी राजा चुप हो रहे और उस दिन कुछ निश्चित न हो सका।

दूसरे दिन सब राजा लोग फिर राजसभा मे एकत्रित हुए। इतने मे राजा क्रथकैशिक का भेजा हुआ देवदूत सभा मे पहुँचकर कहने लगा, "क्रथकैशिक ने कहा है कि कृष्ण से निष्कारण बैर बढ़ाने मे कोई लाभ नहीं है। इसलिये जरासन्ध, शाल्व, रुक्म और सुनीथ नामक चार भूपाल अशून्य हित कुण्डिनपुर मे रह जावें और शेष सब राजे यहां पधार कर श्रीकृष्ण का अभिषेकोत्सव देखें, ऐसी मेरी विनती है।" यह सुन जरासन्ध की आज्ञा लेकर सब राजाओं ने ऐसा ही किया। क्रथकैशिक के यहां श्रीकृष्ण का राज्याभिषेक हुआ और एकत्रित राजाओं का वासुदेव ने वसन, रत्न और हाटक से पूजन किया। श्रीकृष्ण ने राजा भीष्मक को समझाया कि मुझे स्वयंवर मे कोई विघ्न नहीं डालना है; आप, जिसे चाहे, सुखपूर्वक अपनी कन्या दे सकते हैं। यह कह कर श्रीकृष्णचन्द्र वहां से चल दिये और

इनके प्रभाव से चिन्तित होकर भीष्मक नरेश ने सब राजाओं के साथ कुण्डनपुर आकर सभा एकत्रित करके सारे भूपालों से कहा कि अब स्वयंवर में बड़ा विघ्न समझ पड़ता है, इसलिये आप मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिये।

यह सुन जरासन्ध, शाल्व, सुनीथ, दन्तवक्र, महाकर्म क्रथकैशिक, श्रीशत वेणुदार और काश्मीरनरेश मन्त्र करने के लिये वहीं रह गये और शेष राजे भीष्मक से विदा होकर मलिनमन अपने अपने देश को चले गये। अब इन सब की सभा जोड़कर राजा भीष्मक ने जरासन्ध को सम्बोधित करके कहा, "आप सब लोग नीतिनिपुण हैं और आप ही की सम्मति से मैंने यह काम किया था। इसलिये अब उचित मन्त्र दीजिये।" इतना कह कर राजा भीष्मक ने अपने युवराज रुक्मी की ओर देखकर कहा, "वसुदेव-देवकी धन्य हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण सा पुत्र पाया। परमेश्वर सब को ऐसा ही पुत्र देवे अथवा अपुत्र रक्खे।" यह सुन राजा शाल्व बोला, "हे भीष्मक! आपने क्रोध करके अपने पुत्र की निन्दा तो की किन्तु यह निन्द्य नहीं है, क्योंकि इसने भी परशुराम से शस्त्र-विद्या सीख कर प्रचण्ड शौर्य उपार्जित किया है। कृष्ण के सिवा रुक्मी का जीतने वाला संसार में कोई नहीं है। इसलिए मेरा कहना मान कर राजसमाज को चाहिये कि राजा कालयवन की सहायता लेकर श्रीकृष्ण का मान मर्दित करे।"

इस बात को सभों ने पसन्द किया और जरासन्ध ने भी कहा, "यद्यपि मेरा आश्रय छोड़कर नृपसमाज कुलटा पत्नी की भाँति अपराश्रित होना चाहता है, तथापि समय का विचार और सब का भला समझ कर मैं भी इसमें सहमत हूँ। मैं स्वयं पराश्रय ग्रहण करने के बदले युद्ध में लड़ना श्रेष्ठतर समझता हूँ, किन्तु आप लोगों को इस कार्य में न रोक कर समुचित दूत भी बताये देता हूँ। राजा शाल्व विहिताविहित-विचारी और बड़े ज्ञानी हैं। इनके पास आकाशगामी सौभ नामक विमान भी है। इसलिए इन्हीं को दूत बना कर कालयवन के पास भेजिए।" यह कहकर जरासन्ध ने शाल्व को आज्ञा दी 'तुम राजा कालयवन के पास जा मेरे आदेशानुसार व्यवहार करके उससे श्रीकृष्ण के जीतने का मन्त्र करना।' शाल्व ने इसको स्वीकार

किया। तब आकाश-मार्ग से वे कालयवन के देश को प्रस्थित हुए और शेष राजे अपने अपने स्थान को चले गये।

शाल्व को देखकर राजा कालयवन ने मन्त्रियों समेत आगे बढ़कर अर्घ्यपाद्य देना चाहा, पर इन्होंने कहा कि हम इस काल अर्घ्य के योग्य नहीं हैं, क्योंकि जरासन्ध आदि राजाओं ने हमें दूत बना कर भेजा है और राजा के लिये दूत अर्घ्यार्ह नहीं है। यह सुन कालयवन ने कहा, "इस अवसर पर आप और भी अधिक पूज्य हैं क्योंकि आपकी पूजा से सभों की पूजा हो जाती है।" यह कहकर दोनों राजे आनन्दपूर्वक मिले और एक ही सिंहासन पर जा बैठे। अब कालयवन ने पूछा, "जिस जरासन्ध की कृपा से हम सब राजे भयहीन रहते हैं, उसने क्या आज्ञा दी है सो कहिए।" यह सुन कर शाल्व ने कृष्ण-सम्बन्धी विग्रह का सारा वृत्तान्त कहकर कहा, "हम सब लोग केवल आपको कृष्ण के जीतने योग्य समझते हैं। इसलिए आप ही कृष्ण को मारकर राजमण्डल को आनन्द दीजिये और संसार में उत्तम यश प्राप्त कीजिए। आपके पिता ने आपको ऐसी शिक्षा दी है कि कोई भी माथुर वीर आपके सम्मुख ठहर नहीं सकता।" यह सुनकर परम प्रसन्न हो कालयवन ने निवेदन किया, "हे भूपालमणे! मैं आज पृथ्वी पर धन्य हुआ और मेरे पिता का शिक्षण भी सफल हो गया, क्योंकि सम्राट् जरासन्ध समेत सारे नृपमण्डल ने मुझे जगद्विजयी राम कृष्ण के जीतने योग्य समझ यह महत् कार्य सौंपकर युद्धार्थ निदेश दिया है। सब नृपगण के आशीर्वाद से मैं अवश्य जय प्राप्त करूँगा। यदि सब राजाओं के कार्य में मेरा शरीरपात भी हो जावे तो करोड़ विजयों से श्रेष्ठतर है।" यह कह कालयवन ने ब्राह्मणों को प्रचुर दान देकर युद्धार्थ तैयारी की और उसी क्षण परम शुभ मुहूर्त समझ कर तुरन्त मथुरा की ओर सेना समेत प्रस्थान किया।

उधर अभिषेक पाने के पीछे जब श्रीकृष्ण मथुरा पहुँचे तब राजा उग्रसेन ने इन्हें भूपाल समझ कर अर्घ्य देना चाहा किन्तु आपने निवारण करके कहा कि आपके लिए जैसे हम थे वैसे ही सदा रहेंगे। पीछे कंस की माता ने कंस का सारा कोष भगवान को अर्पित किया, किन्तु

उदारतापूर्वक उसे भी वापस करके इन्होंने कहा कि मथुरा के राज्य और कोष से हमें कुछ प्रयोजन नहीं है। अब श्रीकृष्ण पूर्ववत् रहने लगे। थोड़े ही दिनों में कालयवन सम्बन्धी सारा समाचार सुनकर आपने निश्चय किया कि सब राजाओं से शत्रुता करके हम क्षेमपूर्वक मथुरा में नहीं रह सकेंगे। इस विचार से गरुड़ नामक अपने मित्र से सम्मति करके आपने रैवत गिरि के समीप एकलव्य की रची हुई द्वारकापुरी में रहना स्थिर किया। राजा उग्रसेन ने यह विचार सुनकर विनती की कि हम सब लोग भी आपकी सहायता बिना यहाँ नहीं रह सकेंगे, इसलिए हमें भी द्वारका ले चलिए। भगवान् ने यह सम्मति स्वीकार की और सब यदुवंशी मथुरा छोड़ द्वारका को चले गये। द्वारका के स्वामी ने इनका रोकना अपनी शक्ति से बाहर समझ कर किसी प्रकार की आपत्ति न की और यदुवंशी लोग सुखपूर्वक वहाँ बस गये। सब को यथासम्भव पूरा सुपास देकर श्रीकृष्णचन्द्र अकेले मथुरा लौट गये।

इतने में कालयवन ने सेना समेत वहाँ पहुँच कर दुन्दुभी बजाई। श्रीकृष्ण ने उससे कुछ युद्ध करके एक ओर का रास्ता लिया और वह सेना समेत इनके पीछे लगा। श्रीकृष्णचन्द्र ने भागते हुए बहुत दूर जाकर उस गिरि-गुहा में प्रवेश किया जिसमें राजा मुचकुन्द सोते थे। आप वहीं छिप रहे। कालयवन ने भी दो-चार अनुयायियों समेत उसी में घुस मुचकुन्द को कृष्ण समझ कर एक लात लगाई। यह राजा मुचकुन्द बड़ा बलवान था, सो पाद-प्रहार से क्रुद्ध होकर इसने उठते ही कालयवन का वध कर डाला। स्वामी का वध देखकर उसकी सेना तितर बितर हो गई। अब राजा मुचकुन्द से उचित वार्तालाप करके श्रीकृष्ण द्वारका चले आये और महाराजा मुचकुन्द हिमाचल पर जा कर तपस्या करने लगे।

द्वारका जाकर श्रीकृष्ण के मतानुसार यादवों ने उस पुरी का निर्माण किया। अब असीम उदारता दिखलाते हुए श्रीकृष्ण ने उग्रसेन को वहाँ का भी राजा बनाया और उनके पुत्र अनाधृष्ट को सेनापति किया। उद्धव, कंक, विकद्र, गद, स्वफल्क, विपृथु, चित्रक, बभ्रु और सात्यकि विविध विभागों के मन्त्री बनाये गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने

९ मन्त्रियो की प्रणाली बनाई, जैसे इधर शिवाजी ने अष्ट मन्त्रियो की स्थापना की। सात्यकि युद्धसचिव बनाये गये, सान्दीपनि ऋषि पुरोहित और दारुक स्वयं कृष्ण के सारथी। राजा रैवत ने अपनी पुत्री रेवती का विवाह बलराम के साथ किया।

कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक का वर्णन ऊपर आ चुका है। ये महाशय यदुसुत क्रोष्टा के वंशज थे। विदर्भ भीष्मक के पूर्व पुरुष थे। इनका राज्य विन्ध्य शैल के दक्षिण विदर्भ देश मे था और उसकी राजधानी कुण्डिनपुर थी। जरासन्ध के पूर्व पुरुष वृहद्रथ के पिता उपरिचर वसु के वंश मे दमघोष नाम का राजा हुआ था। यह दमघोष उपरिचर वसु के मागध वंश से पृथक् था। इसका राज्य चेदि देश मे था। श्रीकृष्ण की फूफी श्रुतिश्रवा इसको ब्याही थी। इन्ही दोनो का पुत्र चेदिपति शिशुपाल था। शिशुपाल को जरासन्ध ने सदैव पुत्रवत् माना। उपर्युक्त सम्बन्धो के वर्णन से प्रकट है कि यद्यपि श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव राजा न थे, तथापि तात्कालिक कई राजाओ से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। कुन्तिभोज, कंस, शिशुपाल और पाण्डु इनके निकट के सम्बन्धी थे।

राजा भीष्मक ने रुक्मी के मत से विवश होकर अपनी कन्या रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ स्थिर किया। तब रुक्मिणी जी ने ब्राह्मण द्वारा श्रीकृष्ण के पास पत्री भेजी, "आप मुझ को इस दुर्घटना से बचाइये।" यह सुन बलराम के साथ एक भारी सेना लेकर श्रीकृष्णचन्द्र कुण्डिनपुर पहुँचे। जब रुक्मिणी गौरी का पूजन करके लौटने को हुई, तभी उपयुक्त समय समझ कर श्रीकृष्ण ने उन्हे रथ पर बिठला द्वारकाका रास्ता लिया और बलराम सेना समेत मार्ग रोक कर युद्धार्थ खडे रहे। अब दोनो दलों मे प्रचण्ड युद्ध होने लगा, किन्तु इसे व्यर्थ समझ कर रुक्मी ने श्रीकृष्ण के पीछे अकेले जाने का विचार किया। उसने प्रतिज्ञा की, 'यदि श्रीकृष्ण को मार कर रुक्मिणी न वापस लाऊँ, तो लौट कर इस नगर का मुख न देखूँगा।" ऐसा कह और प्रचण्ड कोदण्ड उठाकर रथारोही रुक्मी श्रीकृष्ण के पीछे परम वेग से धावित हुआ। राजा अंशुमान, वेणुदार तथा श्रुतर्वा रुक्मी के साथ चले। इन लोगो ने नर्मदा के पास जाकर श्रीकृष्ण से प्रचण्ड

युद्ध किया। श्रीकृष्ण ने सहज ही में अंशुमान् और श्रुतर्वा को मूर्छित कर दिया और वेणुगर का दक्षिण बाहु छेद दिया। रुक्मी ने कृष्ण के साथ बहुत देर तक भारी युद्ध किया किन्तु अन्त में श्रीकृष्ण उसे मूर्छित करके रुक्मिणी को साथ लिये द्वारावती चले गए। राजाओं को युद्ध में जीतकर बलराम भी द्वारका वापस आये। उधर श्रुतर्वा रुक्मी और शेष दोनों साथियों को रथ पर डालकर कुण्डनपुर की ओर चला। रास्ते में चेत कर रुक्मी प्रतिज्ञा भङ्ग होने के कारण कुण्डिनपुर में प्रवेश न करके वहाँ से दक्षिण भोजकट नामक नया नगर बसाकर वहीं रहने लगा।

इधर श्रीकृष्णचन्द्र ने रुक्मिणी के साथ विधिवत् ब्याह करके दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम यह थे—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, सुषेण, चारुगुप्त, चारु, चारुबाहु, चारुविन्द, भद्रचारु और चारुक। इनके अतिरिक्त चारुमती नाम्नी एक कन्या भी हुई। रुक्मिणी के अतिरिक्त श्रीकृष्ण के सात और पटरानियाँ थीं अर्थात् कालिन्दी उपनाम यमुना (सूर्य की पुत्री), मित्रविन्दा (अवन्तिराज की कन्या), सत्या (अवधनरेश नग्नजित की पुत्री), जाम्बवती (जाम्बवान् ऋक्ष की पुत्री), भद्रा उपनाम रोहिणी (केकय-पति की पुत्री), सुशीला (मद्रराज की कन्या) और सत्यभामा (सत्राजित की लड़की)। इनके अतिरिक्त शैब्यराज की पुत्री लक्ष्मणा उनकी नवम रानी था। सभी रानियाँ पुत्रवती थीं। पुत्रों में प्रद्युम्न, साम्ब, गद, सारण और गद की प्रधानता थी। साम्ब मुल्तान में सूर्य्य मंदिर बनवा कर शाकद्वीप से ब्राह्मणों को लाये। आर्य भट्ट और वराहमिहिर शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। प्रद्युम्न ने काल शम्बर तथा वज्रनाभ नामक प्रसिद्ध नरेशों को युद्ध में मारा। भगवान् के पोत्रों में अनिरुद्ध और वज्र प्रधान थे। समय पर रुक्मी की कन्या शुभांगी का स्वयम्वर हुआ और उसने कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न को पति चुना। यह विवाह प्रेमपूर्वक हुआ। इन दोनों के पुत्र कुमार अनिरुद्ध हुए।

समय पर रुक्मिणी ने रुक्मी की पोत्री से नाती अनिरुद्ध का विवाह रुक्मी को पत्र लिख कर स्थिर किया। इस विवाह में रुक्मी ने [illegible] करके बलराम जी के साथ द्यूतारम्भ किया और द्यूत में [illegible]

तब हँसी मजाक़ मे अनेक दुर्वचन कहे। जब बलरामजी जीते, तब भी रुक्मी और उसके साथी राजाओ ने बेईमानी करके अपनी ही जीत बतलाई। इस पर सभासदो ने बलराम के ही पक्ष मे निर्णय किया। अब राम ने क्रुद्ध होकर मोहरों की भरी हुई एक थैली उठा कर रुक्मी के हृदय मे जोर से मार दी जिससे उसका शरीरान्त हो गया। कलिङ्ग-पति दाँत निकाल कर हँसा था, अतः उसके मुँह पर लात मार कर इन्होने उसके दाँत गिरा दिये। यह करके आपने जनवासे मे जाकर श्रीकृष्ण से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने भावी गति कहकर रुक्मिणी को समझाया और विवाहोपरान्त सब द्वारका लौट आये।

भगवान् श्रीकृष्ण ने प्राग्ज्योतिष नरेश नरकासुर का अधर्म सुनकर उसकी राजधानी मे जा और उसका बध करके बहुत सी कुमारिकाओ का कष्ट मोचन किया। फिर उसके पुत्र भगदत्त को राजा बनाकर आप वापस चले आये। इन्होने उग्रसेन की आज्ञा से काशी पुरी मे पौंड्रक को युद्ध मे मारा। श्रीकृष्ण ने धर्मराज्य स्थापन करने का पूर्ण प्रयत्न किया। आपने युद्ध मे शौर्य और विजय में क्षमा का सदैव पूर्ण आदर्श दिखलाया। इन्होने उजड़ी हुई द्वारका को लिया किन्तु किसी और विजित राजा का राज्य नहीं छीना। अपने सब संबन्धियो के साथ इन्होंने सदैव यथायोग्य व्यवहार किया और यादव संघ को चिरकाल तक भली भाँति चलाया। व्यवहार (कानून) का सुस्थापित न होना तथा नेताओं के सम्बन्धी अथच इतर तरुणों का अनियन्त्रित हो जाना, संघो पर विपत्ति लाते हैं।

भगवान के समय यादवों में अन्धक, वृष्णि, यादव, कुकुर और भोज नामक पांच विभाग थे। ये पाँचों बाहर वालों के लिये मिले रहते थे, किन्तु आन्तरिक प्रबन्ध मे हर एक को स्वतन्त्रता थी। भोजो के नेता अक्रूर थे तथा इनसे बलदेव जी का भी सहयोग था। श्रीकृष्ण से मुख्य होड़ करने वाले प्रतिद्वन्दी बभ्रु थे, किन्तु मुशल पर्व के पूर्व वास्तविक युद्ध नहीं हुआ। केवल पैतड़ेबाजी सी रहती थी। श्रीकृष्ण और उग्रसेन संघ मुख्य थे। मुशल युद्ध के पीछे भी बभ्रु बच गये। शान्ति पर्व राजधर्म ८१वें अध्याय मे भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि

संकर्पण बल मे मस्त रहते है, गद सुकुमारता और प्रद्युम्न सौन्दर्य मे तथा स्वयं भगवान को अच्छे सहायक नहीं मिलते अथच आहुक और अक्रूर अधिकार प्राप्त करते जाते है। यादवों का संघ (Confederation) मात्र था जो अन्त में बिगड़ कर मिट गया जैसा कि आगे के अध्याय मे आवेगा। प्राचीन भारत मे प्रजातन्त्र को गण कहते थे और सूद मुरक्कब (Compound interest) को चक्रवृद्धि। सरस्वती एवं दृपद्वती से प्रयाग तक मध्यदेश था। बौद्ध ग्रन्थों मे बिहार तक इसी मे है। इसकी पूर्वी सीमा कजगल (सन्थाल पर्गना का कांकजोल) है। इसके पूरब, दक्खिन, पच्छिम और उत्तर के देश क्रमशः प्राची, दक्षिणापथ, अपरान्त या पश्चिम तथा उत्तरापथ है। यह अन्तिम नाम बहुधा पञ्जाब का है।

अब भगवान श्रीकृष्ण का कथन फिर से उठाया जाता है। गान, वाद्य तथा नृत्य मे इनकी अलौकिक गति थी। इन सरस गुणों को रखते हुये भी दर्शन-शास्त्र से नीरस विषय पर भी इनका अगाढ़ अधिकार था। भगवद्गीता का जगत्प्रसिद्ध ज्ञान इन्हीं ने संसार को सिखलाया, जिसका वर्णन यथास्थान किया जावेगा। धर्म और पूजन मे इनकी उपयोगितावाद पर विशेष रुचि थी। इनकी बाल्यावस्था मे गोप लोग इन्द्र का पूजन करने वाले थे, तब इन्होंने शिक्षा दी थी कि गोपों के लिये इन्द्र की अपेक्षा गोवर्धन गिरि विशेषतया पूज्य है, क्योंकि गिरि और कानन से हमारा गोधन प्रसन्न रहता है और जिसकी जीवनवृत्ति जिस पदार्थ से है उसके लिये वही पूज्य है। इनके इस उपयोगितावाद को गोपों ने स्वीकार किया था और तभी से इनको गोविन्द की उपाधि मिली थी। श्रीकृष्ण की उदारता विजित राजाओं तथा उग्रसेन से जैसा व्यवहार हुआ उससे विदित होती है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों को इन्होंने कई बार बहुत दान दिया। सुदामा का दान इस कथन का उदाहरण है। संसार मे अनेकानेक गुणी हो गये है और बहुत से लोगों ने अनेक गुणों में भी योग्यता [illegible] किन्तु जितने और जैसे अनमिल गुणों मे भगवान का प्रगाढ़ अधिकार था वैसा दूसरा उदाहरण संसार मे पाना कठिन है। आप [illegible] [illegible] थे कि उन्हीं की सहायता से राजा युधिष्ठिर सम्राट हो गये

किन्तु इन्होंने सामर्थ्य रखते हुए भी अपने लिये सम्राट् क्या राजपद की भी कभी इच्छा न की। परम प्रभावशाली हो जाने पर भी आपने अपने बालसखाओं को न भुलाया और प्रभास क्षेत्र पर गोप-गोपियों को निमन्त्रित करके उनके साथ पूर्ववत् वात्सल्य भाव दिखलाया। भारत में विष्णु भगवान् के दस अवतार माने गये है, जिनमे चार की भारी प्रधानता है, अर्थात् वामन, रामचन्द्र, कृष्ण और गोतम बुद्ध की। पंडितो ने श्रीकृष्णचन्द्र को इन्ही कारणो से कदाचित षोड़श कला का पूर्ण अवतार माना है। ब्राह्मण ग्रंथो के अवलोकन से विदित होता है कि "देवकीनन्दन कृष्ण" दर्शन-शास्त्र मनन करने के उत्साही थे। स्वामी शंकराचार्य्य का निराधार कथन है कि ये दर्शन शास्त्री कृष्ण घोर वंशी ब्राह्मण थे न कि वासुदेव कृष्ण। उनके पास कोई ऐसा आधार अवश्य होगा जो अब अप्राप्त है। यदु-वंश का यह इतिहास हरिवंश और श्री भागवत के आधार पर लिखा गया है।

इस काल के आर्य राजा लोग परम धार्मिक तथा दृढ़प्रतिज्ञ हुए और ब्राह्मणो का प्रभाव दिनोदिन बढ़ता गया। राजाओ मे वृद्धावस्था आने पर राज्य छोड़कर वानप्रस्थाश्रम का विधान दृढ़ता को प्राप्त हुआ और बहुत से राजाओ ने अपने उदाहरण द्वारा इस रीति को आदर दिया। वानप्रस्थ का विधान ब्राह्मणो, राजपुत्रो तथा साधारण प्रजा मे भी बड़ी दृढ़ता से स्थिर हुआ और इसके नियमापनियम पुष्ट करने के विचार से आरण्यक नामक ग्रन्थो की रचना हुई। बहुत से ब्राह्मणो ने शस्त्रविद्या मे भी प्रवीणता प्राप्त की और समय समय पर ऋचीक, जमदग्नि, दो परशुरामो, अगस्त्य और द्रोणाचार्य्य ने इस विषय मे ख्याति पाई। क्षत्रियो ने युद्ध-विद्या की अच्छी उन्नति की और सारे भारतवर्ष मे ब्राह्मण-सभ्यता का विस्तार किया।

इस काल उत्तरी भारत से शोणितपुर को छोड़ राक्षसो दैत्यो आदि का अधिकार पूर्णतया उठ गया और मध्य तथा पश्चिमी भारत मे भी आर्य-सभ्यता पूर्णरूपेण फैल गई। राज्य छीनने के लिये कोई राजा दूसरे को प्रायः नही जीतता था। राजाओ मे विजय बहुत करके प्रभाववर्धनार्थ ही होती थी। किसी नवीन शक्ति के उठने पर सब

राजा लोग मिल कर उसे दबाने का प्रयत्न करते थे। यह रीति इसी काल में स्थिर होकर मुसलमान काल पर्यन्त भारत में पाई जाती है। इस काल के राजाओं में आपस में भाईचारे का व्यवहार बहुत दृढ़ देख पड़ता है। किसी भारी घटना के होने पर बहुत से राजा आपस में मिल कर प्रायः मंत्रणा किया करते थे। राजा भीष्मक की सभा में सब राजा कृष्ण से मेल करना चाहते थे, किन्तु अकेले शाल्व ने सब की राय फेर दी और सभा ने शत्रुता ही की सलाह ठीक रक्खी। राजकुमार विद्या-प्राप्ति के लिये प्रवीण गुरुओं के यहां दूर देशों से जाकर परिश्रम करते थे। इस कथन के उदाहरण भीष्म, कर्ण, रुक्मी और श्रीकृष्णचन्द्र हैं।

चातुर्वर्ण्य की प्रणाली बहुत दिनों से जन्मज हो गई थी। इसकी दृढ़ता दिनोदिन बढ़ती गई किन्तु विविध वर्णों में विवाहादि बराबर होते थे। एक ही गोत्र में भी विवाहों की विधि थी तथा मामा, फूफू आदि की कन्याओं के साथ विवाह की कोई रोक न थी। विविध वर्णों में खान-पान सम्बन्धी कोई निषेध न था और जातियों में ऊँच-नीच के विचार नहीं उठे थे। व्यापार बहुत करके बनजारों आदि के द्वारा चलता था। समुद्र यात्रा का कथन बहुतायत से नहीं है। पाश्चात्य पण्डितों का विचार है कि भारतवासी यूनानियों को ही यवन कहते थे किन्तु हम इसी काल में ही भारतीयों का कालयवन से सम्पर्क देखते हैं। यह नहीं विदित होता है कि कालयवन कहां का राजा था, किन्तु जान पड़ता है कि यह कहीं बाहर से भारत में बुलाया गया था। रावण का पुष्पक और शाल्व का सौभ नामक विमान आकाश में उड़ते थे। उपरिचर वसु के पास भी व्योमयान था। इनके अतिरिक्त व्योमयान केवल देवताओं के पास कहे गये हैं। जान पड़ता है कि ये यान तो अवश्य थे किन्तु इनकी उन्नति नहीं हुई थी। सारांश यह कि इस काल में प्रायः सभी बातों में भारतीयों ने अच्छी उन्नति की।

पन्द्रहवाँ अध्याय

महाभारत

दसवीं शताब्दी बी० सी०

यह अध्याय मुख्यतया महाभारत पर आधारित है। गत अध्याय मे कौरवो पांडवो की उत्पत्ति का कथन हो चुका है। अपने भ्रातृकुल मे बहुत से कुमारो के होने से प्रसन्न होकर पितामह भीष्म ने उनकी शिक्षा का प्रबन्ध उत्तम रीति से करना चाहा। महाराजा शन्तनु ने दो अनाथ ब्राह्मण बालको (बालक-बालिका) को एक तालाब के किनारे से उठवा कर पाला था। उनके नाम कृप और कृपी रक्खे गये। कृप ने शास्त्राभ्यास भली भांति करके परशुराम से शस्त्रविद्या भी सीखी। इन्होंने वृष्णि यादव आदि कुल के अनेक राजकुमारों को विद्या देकर आचार्य पदवी पाई थी। कृपाचार्य्य जनक के पुरोहित शतानन्द के वंशधर थे। कृपी का विवाह प्रसिद्ध धनुर्धर द्रोणाचार्य के साथ हुआ था। इन्होंने भी पूरा शास्त्राध्ययन किया और शस्त्र-विद्या मे भी बड़ी उत्कट प्रवीणता प्राप्त की थी। ये महाशय महर्षि भरद्वाज के पुत्र अथवा वशज थे। पहले इन्हे शस्त्र-विद्या-प्राप्ति की भारी उत्कण्ठा न थी। इन्होंने मुख्यतया शास्त्राध्ययन किया था। एक बार धन मांगने के लिए महात्मा परशुराम के पास द्रोणाचार्य ऐसे समय मे पहुँचे, जब कि वे अपना सारा धन ब्राह्मणो को बांट चुके थे और जगल जाने वाले ही थे। उन्होंने इनकी धनेच्छा समझ कर नम्रतापूर्वक कहा, "प्रियवर! मै अपनी सारी पृथ्वी कश्यप को दे चुका हूँ और सारा धन-धान्य ब्राह्मणो को बाँटकर इस काल वन-वास ही के लिए चलने को हूँ। अब तो मेरे पास केवल शस्त्र-विद्या और शरीर शेष है, इसलिये इन दोनो मे से जो आप मांगे वही

प्रस्तुत है"। यह सुनकर द्रोणाचार्य ने विनती की, "हे दानिशिरोमणि! आप प्रयोग, संहार तथा रहस्य विधान सहित सब अस्त्र-शस्त्र मुझे दीजिए।" तब गुरुवर परशुराम ने द्रोणाचार्य को उनकी इच्छा के अनुसार शस्त्रास्त्र-विद्या भली भांति सिखला दी और इन्होंने भी उस को पूर्णतया सीख कर अद्वितीय गौरव प्राप्त किया। अनन्तर अग्निवेश ऋषि से आपने आग्नेयास्त्र पाया। यह अस्त्र उन्हें भरद्वाज ही ने दिया था।

इधर पौरव राजकुमारों को कृपाचार्य शस्त्र एवं शास्त्र का शिक्षण देते थे। भीष्म-पितामह की इच्छा हुई कि कोई प्रवीणतर गुरु पौत्रों की शिक्षा के लिए बुलाना चाहिये। एक दिन भारत-राजकुमारगण गुल्ली-डंडा खेल रहे थे कि गुल्ली अकस्मात् एक निर्जल कूप में जा पड़ी। उसी के पनघट पर द्रोणाचार्य विराजमान थे। सब कुमार गुल्ली निकालने के अनेक प्रयत्न करके विफलमनोरथ रहे। यह देख द्रोणाचार्य ने हँस कर कहा, "तुम लोग भरतवंशज होकर कुएँ में से एक गुल्ली नहीं निकाल सकते? देखो मैं ब्राह्मण होकर गुल्ली क्या एक मुद्री तक सीकों से वेधकर बाहर निकाले देता हूँ।" यह कह कर द्रोणाचार्य ने धनुष उठा कर सींक से गुल्ली वेध दी और दूसरी सींक से उस सींक को वेधा। इसी प्रकार वेधते हुए सींकों के ही द्वारा गुल्ली कुएँ के बाहर कर दी। यह देख राजकुमार युधिष्ठिर ने एक मुद्रिका कुएँ में डाल कर विनती की कि वह भी निकाली जाय। द्रोणाचार्य ने उसे भी गुल्ली की भांति सींकों के ही द्वारा निकाल दिया।

यह देख कुमारों ने परम प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य का विवरण भीष्म पितामह को जा सुनाया। यह सुन गांगेय ने समझ लिया कि जैसा उपयुक्त गुरु वे चाहते थे वैसा ही अकस्मात् मिल गया। अब परम प्रसन्न होकर स्वयं भीष्म पितामह द्रोणाचार्य के पास पधारे और प्रणाम करके सब हाल पूछने लगे। द्रोणाचार्य ने अपनी शिक्षा का वर्णन करके कहा, 'कृपाचार्य की भगिनी कृपी से मैंने पितृनिदेश से सन्तान पुत्रेच्छा से विवाह किया था, जिससे अश्वत्थामा नामक तनय [illegible] हुआ। मैंने धन की कभी इच्छा न की थी, इसलिए मेरे पास [illegible] नर न था, किन्तु पुत्र अश्वत्थामा को दूध पीते देख उसके लिए [illegible]

लगा। दूध के अभाव में मैं चावल बांट, पानी में घोल, पुत्र को दूध कहकर पिला देता था और वह बाल्यवश उसको पीकर आनन्द से नाचता था। यह दशा देख मेरे पड़ोसी कहने लगे कि इस ब्राह्मण द्रोण को धिक्कार है जिसे कहीं धन ही नहीं मिलता और जिसका पुत्र क्षीर समझ पिष्टोदक-पान से नाचता है। यह सुन मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई और मैंने समझा कि मेरी गृहस्थी भली भांति नहीं चल रही है। मैं तपस्या छोड़ धनोपार्जन का कार्य निन्द्य समझता था और शुद्ध प्रतिग्रह छोड़ दूषित दान नहीं लेना चाहता था। इसीलिए मुझे इतना कष्ट हुआ।"

द्रोणाचार्य ने फिर कहा, "बालवय में पांचाल राजकुमार द्रुपद महर्षि अग्निवेश के आश्रम में मेरा सहपाठी था और मुझसे कहता था कि वयस्क होने पर उसका राज्य मेरे ही अधीन रहेगा। इसीलिए इस विपत्ति में पड़कर अपने बालसखा द्रुपद का स्मरण करके मैं सकुटुम्ब पाँचाल देश पहुँचा और द्रुपद को राज्याभिषिक्त सुनकर प्रसन्न हुआ, किन्तु मिल कर जब मैंने उसे मित्र कहकर सम्बोधित किया, तब मिथ्या आत्मगौरव के घमण्ड में वह ऐसा चूर हुआ कि मेरे कथनों से अपनी भारी मानहानि समझ कर कहने लगा कि ऐसे भिखमंगों के सखा राजा नहीं होते। उसका यह अनुचित गर्व देख कर मैं एक मानसिक प्रण कर चुका हूँ, जिसे समय पर पूरा करूँगा। अब मैं यहां उपस्थित हुआ हूँ और आपकी कामना पूरी करने को तय्यार हूँ। इसलिये आप जो कहें सो मैं करूँ।" यह सुन पितामह ने कहा, "आप मुझे भाग्यवश मिल गये; अब मुझ पर अनुग्रह करके यहीं विराजिये। कुरु कुल में जो वित्त है उसके आप ही स्वामी हैं और जो यह राज्य है उसके आप ही राजा हैं। यह कुरुवंश आज से आप ही का हो चुका। आपको जो कुछ वाञ्छित हो उसे तुरन्त संपादित समझिये और इन पुत्रों को सद्विद्यादान कीजिये।" यह कहकर द्रोण का सविधि पूजन करके भीष्म ने विविध भांति के धन-धान्य से युक्त चारु सदन उन्हें समर्पित किया और कौरव-कुमारों को शिष्य बनाने के लिये उन्हें सौंप दिया।

द्रोणाचार्य ने इस योग्य सत्कार से परम प्रसन्न हो कर नियम के

साथ कुमारों को शस्त्र-विद्या सिखलाना आरम्भ किया। अर्जुन और कर्ण धनुर्विद्या में श्रेष्ठ हुए और दुर्योधन तथा भीम गदायुद्ध में। पीछे से इन दोनों ने श्रीकृष्ण के भाई बलराम से भी गदायुद्ध की उच्च शिक्षा पाई। कर्ण ने द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र सीखने का भी प्रस्ताव किया किन्तु इन्होंने उत्तर दिया कि ब्रह्मास्त्र का प्रयोग केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय के योग्य है न कि शूद्र के। यह सुन द्रोण से विद्या-प्राप्ति में भग्नोत्साह हो कर पराक्रमी तथा महत्त्वाकांक्षी कर्ण महेन्द्रगिरि पर चला गया और अपने को ब्राह्मण कह कर परशुराम से पूरी विद्या प्राप्त करने में समर्थ हुआ।

एक बार कर्ण की जंघा पर शीश रखकर परशुराम सो गये। उसी समय अकस्मात् एक कीड़ा नीचे से आकर कर्ण की जांघ को ऐसे स्थान पर काटने लगा कि जहां बिना जांघ उठाये उसका निवारण नहीं हो सकता था। कर्ण ने गुरु की निद्रा भंग न करने के विचार से जंघा नहीं हिलाई, यद्यपि कृमि के काटने से उससे रुधिर की धारा बहने लगी। शोणित के सिर में लगने से महर्षि परशुराम जाग पड़े और सारा वृत्तान्त सुन कर कर्ण के कष्टों पर बड़े दुखित हुए, किन्तु यह भी ताड़ गये कि कष्ट में इतना शारीरिक धैर्य ब्राह्मण के लिये कठिन है, अतः यह मेरा शिष्य कोई क्षत्रिय समझ पड़ता है। उनके पूछने पर कर्ण ने सारा हाल कह सुनाया। परशुराम ने उसकी भुठाई पर कुछ क्रोध किया किन्तु उसके असीम धैर्य एवं शस्त्र-प्राप्ति की उद्दाम इच्छा से मुग्ध होकर उसे शिष्यत्व से अलग नहीं किया और श्रम करके पूरा वीर एवं शस्त्र विद्या-पारंगत बना दिया। अन्त में गुरु से आशीर्वाद पाकर कर्ण अपने घर वापस गया।

इधर द्रोणाचार्य कौरव पाण्डवों को विधिवत् शस्त्र-विद्या सिखलाते रहे। इसी बीच में किरातधीश हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य द्रोणाचार्य से शस्त्र-विद्या सीखने के लिये आया। इन्होंने किरात को नीच समझ कर शिष्य न बनाया, किन्तु उसने इनकी मृन्मयी मूर्ति सामने रखकर जंगल में शस्त्र-अभ्यास करना प्रारम्भ किया और थोड़े ही दिनों में ऐसी योग्यता संपादन कर ली कि एक बार शिकारी कुत्ते के भौंकने पर जब तक वह मुंह बन्द करे तब तक इसने उसके मुख में सात बाण

से भर दिया। इसका पराक्रम देख कर अर्जुन को भी ईर्ष्या उत्पन्न हुई पर पीछे से उन्होंने एकलव्य से अधिक योग्यता संपादित करली। द्रोण का महत्व सुनकर भारत भर से देश देश के राजपुत्र आ आकर इनसे शस्त्र विद्या सीखते थे।

उचित समय पर जब भारत राजकुमार अस्त्र-विद्या मे निपुण होगये, तब द्रोणाचार्य ने यह शुभसंवाद धृतराष्ट्र से कह सुनाया। उस काल सभा मे बाल्हीक, कृपाचार्य, सोमदत्त, भीष्म. विदुर और भगवान् वेदव्यास भी वर्तमान थे। सभा ने द्रोण की भारी प्रशंसा की और धृतराष्ट्र ने सतोष प्रकट कर के कहा. कि हे भरद्वाज नन्दन! आप ने बहुत बड़ा कार्य किया है। यह कह कर महाराजा धृतराष्ट्र ने विदुर को आज्ञा दी, "द्रोणाचार्य की इच्छानुसार कुमारों के शस्त्र-नैपुण्य-प्रदर्शनार्थ उचित प्रबन्ध करा दीजिये और नगर मे डौंड़ी पिटवा दीजिये जिससे सर्वसाधारण भी कुमारों का यह महत्कार्य अवलोकन करके प्रसन्नता प्राप्त करें और समझें कि हमारे रक्षणार्थ कैसे कैसे प्रबन्ध किये गये है।" विदुर ने ऐसा ही किया और शुभ दिन पर पुरजन समेत कौरव राज-समाज कुमारों की प्रवीणता देखने को एकत्रित हुआ। रानियां भी यथास्थान उपस्थित होकर इस शुभ अवसर की शोभा बढ़ाने लगीं और दर्शनागार प्रेक्षकों तथा अधिकारियों से खचाखच भर गया।

उचित समय पर श्वेत पट एवं श्वेत माला पहिने हुए अस्त्र-सिन्धु-आचार्य द्रोण अश्वत्थामा तथा शिष्यों समेत दर्शनागार मे पधारे। इतने मे राजा की आज्ञा से विविध प्रकार के बाजे बजने लगे तथा धर्मधुरीण आचार्य ने विधिवत् क्षेत्र पूजन किया और ब्राह्मण लोग वेद मन्त्र पढ़ने लगे। अब कुमारों ने अपनी अपनी शिक्षा दिखलानी प्रारभ की। सब से बड़े होने के कारण युधिष्ठिर ने ही सब से पहिले अपनी कला दिखलाई। इनके भाई भीम और धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन एक ही दिन उत्पन्न हुए थे। स्थिर तथा चल लक्ष्यवेध मे कुमारों ने अच्छी प्रवीणता प्रदर्शित की और भांति भांति के वाहनों पर चढ़-चढ़कर भिन्न प्रकार के लक्ष्यवेध मे नैपुण्य दिखाया। फिर भीम और दुर्योधन गदा ले लेकर कृत्रिम युद्ध दिखाने लगे. किन्तु इसमें प्राचीन

वैमनस्य होने के कारण कृत्रिम के स्थान पर वास्तविक युद्ध होने लगा। यह देख पिता की आज्ञा से अश्वत्थामा ने बीच में खड़े होकर इन दोनों का युद्ध निवारण किया। इसके पीछे शूरशिरोमणि अर्जुन ने सब से बढ़कर अपना कौशल दिखलाया।

ज्योंही अर्जुन ने कार्य समाप्त किया कि द्वार से एकायक भुजदंड ठोकने की वज्राघात के समान ध्वनि सुन पड़ी। सभी ने आश्चर्यित हो कर उधर ही की ओर दृष्टि लगाई और लोग इधर उधर हट गये तथा महाबली कर्ण ने मार्ग पाकर रंगस्थल में आ सब का निरीक्षण किया। उसने पांचों पाण्डवों को द्रोणाचार्य के साथ खड़े पाया और धृतराष्ट्र पुत्रों को अश्वत्थामा के पास। कर्ण के सिंह-समान शरीर पर सहज कवच एवं कर्णकुण्डल शोभा देते थे और वह सूर्य के समान प्रकाशमान हाथ में धनुषबाण लिये गुरुकाय से चरणगामी पर्वत के समान शोभित था। रंग का भली भांति निरीक्षण करके परशुराम के इस प्रिय शिष्य ने कृपाचार्य और द्रोण को सादर नमस्कार किया। 'यह कौन आया' इसी विचार में बहुत लोग चकित थे कि कर्ण ने दर्पपूर्वक ये गम्भीर वचन कहे, "हे अर्जुन! मैं अधिरथ एवं राधा का पुत्र कर्ण तुम्हारी वीरता को तृणवत मानकर तुम्हारे दिखलाये हुए कौशल से कहीं बढ़कर नैपुण्य दिखलाता हूं।" यह सुनकर अर्जुन को साथ ही साथ लज्जा और क्रोध ने आ घेरा तथा दुर्योधन परम प्रसन्न हुआ। अनन्तर द्रोणाचार्य की आज्ञा पाकर कर्ण ने अर्जुन के दिखलाये हुए सारे कार्य फिर से कर दिखाये।

यह देख दुर्योधन ने उसका भारी सम्मान करके कहा। "तुम मुझे भाग्यवश मिल गये; राज्य सहित मेरी जो कुछ सम्पत्ति है, उसको तुम यथेष्ट भोग करो।" इस सत्कार को नमितमूर्धा होकर स्वीकार करते हुए वीर कर्ण ने अर्जुन के साथ द्वन्द्व युद्ध करने की इच्छा प्रकट की और द्रोणाचार्य की आज्ञा पाकर वीर अर्जुन भी गाण्डीव कोदण्ड धारण करके युद्धार्थ सन्नद्ध हुआ। यह देख [illegible] के अपने प्रिय पुत्र होने से [illegible] [illegible]

अनर्थ देख चंदनादि उपचार से महारानी की मूर्छा भंग की। रनिवास की इस गड़बड़ से खिन्न होकर आचार्य कृप ने युद्ध को अनुचित मान कर्ण से कहा, "द्वन्द्व-युद्ध शास्त्रानुसार सम वय, बल और प्रतिष्ठा युक्त पुरुषों में हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिये तुम्हारे सूत-पुत्र होने के कारण तुम कुलीन अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करने के योग्य नहीं।" यह सुन कर्ण ने कुछ भी न कहा किन्तु दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया, "हे आचार्य! शास्त्रानुसार राजयोनि तीन प्रकार से समान होती है, अर्थात् शूर, कुलीन और सेनाधीश; ये तीनों समभाव से पूज्य क्षत्रिय हैं और किसी कुलविशेष में जन्म ग्रहण करने से क्षत्रियत्व की दृष्टि में कोई ऊंच नीच नहीं। यदि वीर कर्ण को राज्यरहित समझकर अर्जुन इनसे युद्ध नहीं करता, तो मैं इन्हें अंग देश का राज्याभिषिक्त भूपाल बनाता हूँ।" यह कह कर दुर्योधन ने विधिपूर्वक कर्ण का अभिषेक करके राज्य चिह्न दिये और वीर कर्ण छत्र चामरों से सुशोभित हुआ। इस सम्मान से प्रसन्न होकर कर्ण का पालक पिता अधिरथ शिथिलाङ्ग होने पर भी यष्टि के सहारे चलता हुआ कर्ण के पास पहुँचा और पुत्र ने उसके पैरों पर अपना सिर रख दिया तथा उसने कर्ण को हृदय से लगाकर अभिषिक्त शिर का आघ्राण किया और हर्ष-अश्रुओं से उसका सिंचन करके अपने को धन्य माना। युद्ध संबन्धी दो-चार साधारण वादविवाद होने के पीछे अब सूर्य भगवान अस्ताचल को पधारे और सब लोग प्रसन्न मन अपने अपने निवासस्थान को चले गये। इस दिन युधिष्ठिर को यह भय हुआ कि कर्ण के समान योद्धा पृथ्वी-मंडल पर नहीं था।

कृतास्त्र हो जाने पर भारत कुमारों ने द्रोणाचार्य से गुरुदक्षिणा मांगने के विषय में निवेदन किया और आचार्य ने कहा, "पांचाल राज द्रुपद को युद्ध में पकड़ कर तुम सब लोग मेरे पास बांध लाओ।" यह सुन कौरवी सेना ने युद्धार्थ तैयार होकर प्रस्थान किया और राजकुमारों ने द्रुपद पुर काम्पिल्य पर दलबल समेत आक्रमण किया। द्रुपद ने वीरता के साथ इनका सामना किया, किन्तु अर्जुन के आगे उसकी एक न चली और इन्होंने सहज ही में उसे पकड़ कर द्रोणाचार्य के सम्मुख उपस्थित कर दिया। अब द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा पूरी हुई

और इन्होंने द्रुपद की दृष्टि में भी अपना पद उसके समान करने के लिये उसका आधा राज्य उत्तर पांचाल लेकर शेषार्द्ध दक्षिण पांचाल पर उसे पुनः प्रतिष्ठित किया। द्रोणाचार्य ने कुछ दिन तक इस राज्य का पालन किया, किन्तु इसे कब और कैसे छोड़ दिया इसका वर्णन महाभारत में नहीं मिलता। जान पड़ता है कि राज्यशासन-कार्य अपने अनुकूल न पाकर द्रोणाचार्य ने थोड़े ही दिनों में द्रुपद का आधा राज्य भी उसे वापस दिया होगा। जो हुआ हो, वे युद्ध काल में रहते हस्तिनापुर ही में थे।

अब सब कुमार फिर से सुख पूर्वक हस्तिनापुर में रहने लगे और थोड़े दिनों में राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को युवराज पद दे दिया। युधिष्ठिर को राज्य पाने का अधिकार था अथवा नहीं इस प्रश्न पर मतभेद सम्भव है। शास्त्रानुसार निरिन्द्रिय अथवा जन्मान्ध पुरुष राज्य नहीं पा सकता, किन्तु उसके पुत्र अव्यङ्ग न होने पर पा सकते हैं। फिर भी यदि कोई राजा एक बार किसी कारण से गद्दी पा जावे तो उसके पीछे उसी के उत्तराधिकारी राज्य पावेंगे न कि उसके पहिले वाले के। यहां धृतराष्ट्र के जन्मान्ध होने से पाण्डु उचित प्रकार से राजा हुए, किन्तु उन्होंने पुत्र जन्म के पूर्व रानियों समेत स्वेच्छापूर्वक राज्य छोड़ दिया। उस काल पर्यन्त धृतराष्ट्र के भी कोई पुत्र न था। जिस नेत्र-दोष के कारण धृतराष्ट्र विचित्रवीर्य के उत्तराधिकारी नहीं हुए थे, उसी कारण पाण्डु के भी नहीं हो सकते थे। विदुर दासी पुत्र होने से राज्य के अधिकारी नहीं थे और उचित उत्तराधिकारी भीष्म राज्य चाहते न थे। इस कारण से जन्मान्ध होते हुए भी धृतराष्ट्र ही राजा हुए और तब पाण्डवों और धार्तराष्ट्रों का जन्म हुआ। पाण्डवों के जन्म काल में पाण्डु का राज्याधिकार शेष न था और थोड़े ही दिनों में धृतराष्ट्र भी पुत्रवान हो गये। धृतराष्ट्र का उत्तराधिकारी उनका बड़ा पुत्र दुर्योधन था। इसलिए शास्त्रानुसार दुर्योधन को ही युवराज होना चाहिये था, किन्तु इन बातों का विचार उस काल हस्तिनापुर में नहीं हुआ और युधिष्ठिर युवराज बनाये गये।

पाण्डवों का दुर्योधन से बाल्यकाल से ही बैर चला आता था।

लड़कपन के खेल-कूद मे ही भीम ने कई बार दुर्योधन के भाइयो को इतना तग किया था कि इन्होने एक बार भीम को जहर पिलाकर गंगा जी मे फिकवा दिया था, किन्तु कुछ नाग लोगो ने औपध करके बे-सुध भीम की प्राण-रक्षा की थी। पाण्डवों से ही विजय पाने के लिए दुर्योधन कर्ण का भारी सम्मान करता था। अब युधिष्ठिर के युवराज होने से उसकी राज्य-कामना मुर्झाती हुई देख पड़ी और उसने नीतिज्ञ कणिक द्वारा अपने पिता को राजनीति का उपदेश कराया। अनन्तर किसी प्रकार से विवश करके उसने धृतराष्ट्र को इस बात पर सहमत किया कि वारणावत नगर मे पाण्डव लोग लाक्षागृह मे फूँक दिये जायँ। इसका प्रबन्ध दुर्योधन ने पुरोचन नामक एक प्रवीण शिल्पी द्वारा किया। वारणावत को अब बरनावा कहते है जो मेरठ के उत्तर-पश्चिम १९ मील की दूरी पर स्थित है। पाण्डव लोग फुसलाये जाकर सैर के लिए वारणावत भेजे गये। उनके जाते समय विदुर ने धृतराष्ट्र से सारा भेद जानकर युधिष्ठिर को पहले ही से म्लेच्छ भाषा मे साव॰धान कर दिया। वारणावत पहुँचकर इन लोगो ने प्रकट मे असावधानी रक्खी किन्तु गुप्त भाव से भागने की सुरंग तय्यार कर तथा स्वयं पुरोचन को लाक्षागृह मे भस्म करके सुरग के मार्ग से गगातट का रास्ता लिया और विदुर की भेजी हुई नौका से गंगापार करके जंगल ही जगल एकचक्रपुर का मार्ग पकड़ा।

कनिंगहम का विचार है कि एकचक्रपुर वर्तमान आरा नगर को कहते है, किन्तु यह मत सदिग्ध है। चकर नगर नामक एक स्थान वर्तमान इटावा के दक्षिण-पश्चिम सोलह मील पर स्थित है। डाक्टर फ्यूरर का मत है कि उस काल का यही एकचक्रपुर है। वहां जाते हुए पाण्डवो की हिडम्ब नामक राक्षस से भेंट हुई। इसकी बहिन हिडम्बा भीम पर आसक्त हो गई। इसी बात पर हिडम्ब का भीम से युद्ध हुआ और वह मारा गया। अब युधिष्ठिर की सम्मति से न चाहते हुए भी इन्हे हिडम्बा से विवाह करना पड़ा जिससे घटोत्कच नामक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। पाण्डवो ने ब्राह्मण बनकर दस मास पर्यन्त माता कुन्ती समेत एकचक्रपुर मे निवास किया। अन्त मे वहाँ के अन्यायी शासक वक नामक राक्षस से इनका विरोध हो गया और भीम ने उसका

वध कर के नगर को संकटमुक्त किया। अब इनकी व्यास भगवान् से भेंट हुई और उनकी सम्मति से ये लोग द्रौपदी का स्वयंवर देखने के लिए द्रुपदपुर (काम्पिल्य) को गये।

मार्ग में अर्जुन का अंगारपर्ण नामक गन्धर्व से युद्ध हुआ और उसने पराजित होकर बहुत से घोड़े इनको दिये जो थाती की भाँति उसी के पास रक्खे गये। द्रुपदपुर में बहुत से राजा लोग स्वयंवर के लिए उपस्थित हुए। एक भारी धनुष सभा में रक्खा गया और कहा गया कि जो कुलीन वीर पुरुष इसे ज्यायुक्त करके ऊपर घूमते हुए मत्स्यलक्ष्य के प्रतिबिम्ब को नीचे रक्खे हुए तेल के कड़ाह में देख-कर केवल पाँच बाणों से लक्ष्य का भेद कर देवेगा, उससे द्रौपदी विवाह करेगी। सीता-स्वयंवर के समय धनुष चढ़ाने पर विवाह करने के लिये प्रत्येक मनुष्य का अधिकार माना गया था किन्तु द्रौपदी के स्वयंवर में यह अधिकार केवल कुलीनों को प्राप्त था। यह अन्तर दोनों समयों के प्रचलित विचारों का अच्छा उदाह-रण है।

इस स्वयंवर में राम और कृष्ण भी उपस्थित थे। उन्होंने पाण्डवों को देख कर पहचान लिया और उनका लाक्षागृहदाह-सम्बन्धी शोक दूर हो गया। जरासन्ध, शिशुपाल, शल्य, दुर्योधन, अश्वत्थामा. प्रभृति राजाओं और वीरों ने धनुष चढ़ाने का प्रयत्न किया किन्तु ये सब विफलमनोरथ हुए। अनन्तर वीरवर कर्ण ने ज्यायुक्त करके उसपर बाण चढ़ाया किन्तु द्रौपदी ने कहा, 'मैं सूतसुत कर्ण के साथ विवाह नहीं कर सकती क्योंकि वह कुलीन नहीं है।' इस बात पर कर्ण ने प्रत्यंचा उतार कर धनुष रख दिया। इसके पीछे कई और वीरों के प्रयत्न निष्फल हुए। अन्त में उठ कर अर्जुन ने धनुष चढ़ा कर नियमानुसार पांच बाणों से मत्स्य-लक्ष्य का निपात किया और द्रौपदी ने उसके गले में जयमाल डाल दी। अब पाण्डव लोग द्रुपद-कन्या को लेकर अपने निवास-स्थान कुम्हार गृह को चले गये। कई कारणों से अर्जुन तथा माता कुन्ती की इच्छानुसार द्रौपदी का पांचों पाण्डवों के साथ विवाह होना स्थिर हुआ। द्रौपदी तथा उसके पितृवर्ग भी इस बात पर कुछ तर्क-वितर्क करके व्यास भगवान की सम्मति

से सहमत हुए। कृष्ण-बलराम ने भी पाण्डवों से मिलकर उनके लाक्षा-गृह से बचने पर प्रसन्नता प्रकट की और सर्वसम्मति से इन्होंने ब्राह्मण वेष छोड़ कर अपना पाण्डव होना प्रसिद्ध किया। अब इन लोगों का विवाह हो गया और आपस में नियम करके इन्होंने प्रत्येक पाण्डव के लिये द्रौपदी के सालभर में दो दो महीने और १२-१२ दिन बाँट दिये। अब पाण्डव लोग प्रसन्नतापूर्वक द्रुपदपुर में रहने लगे।

लाक्षागृह के दाह से कौरवों को यह समझ पड़ा था कि पाण्डव लोग उसी में जल मरे। इसलिये सभो ने उनके सम्बन्ध में मरणान्तर संस्कारादि भी कर डाले थे। विदुर को उनके भागने का समाचार ज्ञात था किन्तु उन्होंने इसका हाल किसी से न कहा। भीष्म और द्रोणाचार्य को पाण्डव-विनाश सुनकर बड़ा खेद हुआ और महाराजा धृतराष्ट्र भी बड़े दुःखित हुए थे। पीछे से स्वयंवर-समाचार सुनकर उनका जीवित रहना ज्ञात हुआ। इस पर महाराजा धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण, विदुर और संजय की सम्मति ली तो इन सभो ने कहा कि कुल बातो पर विचार करके आधा राज्य पाण्डवो को दे दिया जाय और आधा कौरवों के पास रहे। इसी सम्मति के अनुसार महाराजा धृतराष्ट्र द्वारा प्रेरित होकर विदुर पाण्डवों को द्रौपदी समेत द्रुपदपुर से बुला लाये और महाराजा धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार युधिष्ठिर ने आधा राज्य लेना स्वीकार करके इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली) मे अपना निवास-स्थान बनाया।

अर्जुन कई कारणो से थोड़े दिन के लिये भारत-भ्रमण को निकले। इसी भ्रमण मे आपने नागसुता उलूपी तथा मणिपुर-नरेश की कन्या चित्राङ्गदा से विवाह करके दोनो मे एक-एक पुत्र उत्पन्न किया। उलूपी का पुत्र इरावान हुआ तथा चित्राङ्गदा का बभ्रुवाहन। मणिपुर-नरेश के कोई पुत्र न था, इसलिये उन्होंने बभ्रुवाहन को लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया। घूमते हुए अर्जुन द्वारावती पहुँचे। उस काल वहाँ बलराम की बहिन सुभद्रा का स्वयंवर हो रहा था। इस कन्या-रत्न को देखकर अर्जुन का चित्त चंचल हुआ और श्रीकृष्ण की गुप्त सम्मति एवं महाराजा युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर

इन्होंने युक्ति से सुभद्राहरण कर लिया। यह हाल सुन यादव लोग युद्धार्थ सन्नद्ध हुए किन्तु श्रीकृष्ण के समझाने पर इन्होंने अर्जुन को बुलाकर सुभद्रा के साथ उसका विवाह कर दिया। इधर शेष चारो पाण्डवों ने भी एक एक विवाह किये। पाण्डवों ने एक एक अपना अपना पुत्र द्रौपदी से उत्पन्न किया और एक एक द्वितीय स्त्री से। सुभद्रा के अभिमन्यु नामक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पांडवों के दस पुत्र हुए और घटोत्कच, इरावान् तथा बभ्रुवाहन का भी मिलाने से इनकी संख्या तेरह होती है। राजा दुर्योधन के लक्ष्मण पुत्र और लक्ष्मणा कन्या हुईं। कर्ण के पुत्रों में वृषसेन और वृषकेतु मुख्य थे। द्वारावती से लौट कर अर्जुन ने खाण्डवप्रस्थ नामक जंगल जला कर बहुत सी भूमि कृषि के योग्य निकाली। उस जलते हुए जंगल से आपने मय नामक दानव की रक्षा की जिसने राजा युधिष्ठिर के लिये एक बड़ी विचित्र सभा तय्यार की। इसी से जारितर, द्रोण, सारीसृक और स्तम्बमित्र नामक चार वे मन्दपाल ऋषि के पुत्र बचाये गये जो शूद्रा से उत्पन्न थे और प्रायः अन्तिम वेदर्षि हुये। इन के मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल में हैं। यह कथन कुम्ब कानम म० भा० (XIII ५३,२१-२२) का है। खाण्डव-वन के कथन तैत्तिरीय आरण्यक (V १,१) पंच विंश ब्राह्मण (XXV ३,६) और शात्यायन में भी है।

इस प्रकार अपने प्रताप की भारी वृद्धि देख कर श्रीकृष्ण-चन्द्र की सम्मति से राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया जिससे उनको सम्राट् पद भी प्राप्त हो जाय। इस अभिलाषा का सब से बड़ा बाधक जरासन्ध ही समझ पड़ा। इसी ने [illegible] से मथुरा का राज्य छीन कर अपने वश में किया था और सब राजाओं को जीत कर बहुत काल से यह सम्राट् पद भी भोग भी कर रहा था। श्रीकृष्णचन्द्र ने विचार किया कि यदि वे भीम और अर्जुन को साथ लेकर छद्म वेष से मगधपुर जायें और जरासन्ध से [illegible] तो आत्माभिमान से वह अवश्य लड़ेगा और [illegible] नहीं तो सेना के साथ लड़ने से [illegible] परिणाम होगा। [illegible] नहीं किया जा सकता। इस बात पर भीम तथा अर्जुन [illegible]

देख कर युधिष्ठिर ने इसे स्वीकार किया और कृष्ण, भीम एवं अर्जुन ब्राह्मण बन कर मगधपुर पहुँचे। इन लोगों ने ब्राह्मणोचित चिह्नों के साथ बहुमूल्य वसनाभरण भी धारण किये और अपने उन्नत शरीरों को चन्दनादि से सुशोभित किया। इन्होने जरासन्ध के महल में फाटक से न घुस कर तीन कक्षायें फलांग कर प्रवेश किया और ये लोग एकायक उस के सामने जा खड़े हुए। इनके इन अनुचित कर्मों पर क्रुद्ध न होकर सम्राट् जरासन्ध ने इन्हे पूजनयोग्य विचार कर इनसे कुशलप्रश्न किया। भीमार्जुन अपने अनुचित कर्म के कारण ऐसी सभ्यता के व्यवहार की आशा नही रखते थे, सो जरासन्ध की मृदुलता पर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अवाक् खड़े रह गये, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र ने बात बनाकर कहा, "हमारे दोनो साथी मौनव्रती होने से केवल रात्रि मे बात कर सकते है।" यह सुन जरासन्ध ने इन्हें मखालय मे स्थान दिया और इनके आतिथ्य का प्रबन्ध करके वह स्वयं अन्तःसदन को चला गया।

सन्ध्या को वह इन लोगो के पास फिर आया और तब इन्होने कहा, "हम लोग अतिथि होकर दूर से आपके पास आये है, इसलिये जो दान मांगे वह आप कृपा कर दीजिये।" यह सुन सम्राट् ने कहा, "हे छद्मवेषी ब्राह्मणो ! आप लोग यहीं बैठिये।" अब ये चारो आदमी वहीं बैठे और तब जरासन्ध ने इनके वेप की निन्दा करते हुए कहा, "स्नातक लोग गन्धमाल्य समेत नही फिरा करते। तुम्हारे शुण्डादण्ड समान भुजदण्ड ज्याघात से अंकित हैं और कर्मों से अब्राह्मणत्व पूर्णतया प्रदर्शित है।" यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा, "शत्रुसदन मे अद्वार से ही प्रवेश उचित है। आपने क्षत्रियो को पकड़ कर कारागार मे डाल दिया है और अब उनकी रुद्र बलि करने का भी विचार आप कर रहे है। अब तक हमने मनुष्य का ऐसा अपमान न कही देखा न सुना। आप स्वयं क्षत्रिय होकर दूसरे क्षत्रिय का पशु के समान बलिदान करना चाहते हैं, यह किस शास्त्र का विधान है, सो हमारी समझ मे नही आता। ऐसा प्रचंड पापी समझ कर हम लोग आपके मारने के लिये यहां आये हैं। सैन्य बाहुल्य अथवा बल-दर्प से कोई मनुष्य नर-जाति का ऐसा प्रचण्ड अपकार करके

राक्षस ही कहलाने के योग्य रह जायगा। हम ब्राह्मण नहीं हैं और तुमसे युद्ध चाहते हैं। हम स्वयं वासुदेव कृष्ण हैं और ये दोनों भीमार्जुन हैं। इसलिये आप या तो सब बन्दी राजाओं को छोड़ दीजिये या हमसे लड़कर यमपुरी का मार्ग लीजिये।'

श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर जरासन्ध ने उत्तर दिया, "बिना युद्ध में जीते हमने एक भी राजा नहीं पकड़ा है। दुःखद जीवधारियों का दमन करना क्षत्रियों का धर्म है और मेरा विचार है कि जीतकर पकड़े हुए मनुष्य से कोई चाहे जैसा व्यवहार करे। इसलिये जिन राजाओं को देवतार्थ पकड़ रक्खा है, उन्हें किसी प्रकार न छोड़ूँगा। मैं सहसैन्य से सहसैन्य और अकेले से अकेला लड़ने के लिये सदैव सन्नद्ध हूँ तथा दो तीन से भी अकेला लड़ता हूँ।" सम्राट् से युद्ध निश्चित समझ कर श्रीकृष्ण ने पूछा, "हम तीनों में से जिसके साथ आप युद्ध करना चाहें वही सज्जित हो"। जरासन्ध ने उत्तर दिया, "अर्जुन अभी लड़का है और तुम भगोड़े हो क्योंकि मेरे भय से तुमने मथुरा छोड़कर सिन्धु की शरण ली। अतः तुम भी युद्ध के योग्य नहीं हो, सो मैं भीमसेन से लड़ूँगा।" कार्तिक की प्रथमा प्रतिपदा को युद्ध होने लगा और चौदह दिन तक बराबर मल्लयुद्ध होता गया। ये लोग दिन भर लड़ते और रात्रि को विश्राम लेते थे। चौदहवें दिन भीम ने सम्राट् जरासन्ध को स्ववश करके उसका वध किया। फिर जरासन्ध के रथ पर चढ़कर इन तीनों ने बन्दी राजाओं का मोचन करके उन्हें युधिष्ठिर के राजसूय में आने के लिए निमन्त्रित किया। उन राजाओं ने हेमराशि से इनका पूजन किया। अनन्तर जरासन्धपुत्र सहदेव का राज्याभिषेक करके ये तीनों वीर इन्द्रप्रस्थ वापस आये। यज्ञ-सम्बन्धी शुभ दिन स्थिर हुआ और तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र, युधिष्ठिर एवं भीम के पदवन्दन करके तथा तीनों कनिष्ठ पांडवों से वन्दित होकर द्वारका चले गये।

थोड़े दिनों में राजा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों द्वारा भारतविजय का विचार किया और इसलिए उन्होंने दिग्विजयार्थ चारों भाइयों को चारों दिशाओं में भेज दिया। अर्जुन उत्तर दिशा में गये, सहदेव दक्षिण में, भीम पूर्व में और नकुल पश्चिम में। [illegible] इस [illegible]

भारत के अनुसार इन लोगो के जीते हुए देशो तथा राजाओं का कथन करते है। प्राचीन स्थानो के वर्तमान नाम जहाँ तक ज्ञात हो सके है कोष्ठको मे दर्ज कर दिये गये है।

अर्जुन ने अपनी विजय-यात्रा कुलिन्द (सहारनपुर) से प्रारम्भ की। वहाँ से उलूक के राजा बृहन्त को जीतकर आपने देवप्रस्थ नरेश सेनाबिन्दु को जीता और फिर मोदापुरी के निकटस्थ सब राजाओ को हराया। वहाँ से पौरव राजा विश्वगश्व को जीतते हुए काश्मीर के राजा लोहित एवं उरग देश (ज़िला हज़ारा) मे अभिसारीपुरी (हज़ारा) के भूपाल रोचमान को पराजित किया। फिर सिंहपुर, बाल्हीक (बलख़ या व्यास एवं सतलज नदियो के बीच का देश), काम्बोज (अफ़ग़ानिस्तान) तथा सुम्भ के नरेशो को जीतकर आप ऋषिक लोगो के देश मे पहुँचे और विकराल युद्धानन्तर उनको वश कर सके। अनन्तर श्वेतगिरि (सफ़ेद कोह) नरेश को जीतकर शाक-द्वीप (मध्य एशिया) मे आपने प्रतिविन्ध्य आदि राजाओ को पराजित किया। वहाँ से तिब्बत की ओर जाकर अर्जुन ने उस देश मे घुसना चाहा। तब वहाँ के राजसेवियो ने कहा, "इस देश मे भारतीय मनुष्य जीवित नहीं रह सकता, इससे तुम यहाँ मत आओ; हम लोग तुम्हारी कामना योही पूरी किये देते है।" यह कहकर उन लोगों ने दिव्य भूषण वसन तथा मणिगण कर-स्वरूप देकर अर्जुन को संतुष्ट किया और तब इन्होने मानस सरोवर जाकर ऋषियो के दर्शन किये तथा गधर्व रक्षित देश जीत कर किंपुरुषों (शिकिम वालो) को हराया। वहाँ से हाटक, गुह्य देश जीतते हुए आपने प्राग्ज्योतिष (कामरूप उपनाम आसाम) के नरेश भगदत्त को जीतकर उससे कर लिया। उक्त देशो और नरेशो के अतिरिक्त अर्जुन ने आनर्त पति, कालकूटपति, राजा सुमंडल, किरातों, पहाड़ी जातियो वा चीनियो को जीता और फिर अन्तर गिरि, वहिर्गिरि व उपगिरि को जीतकर वामदेव, सुदाम, सुकुल, उत्तर उलूक, उत्सव सकेत की अनार्य जातियां, त्रिगर्त, कोकनद, सुभल, दरद, निष्कुट गिरि, दक्षिणी साइबेरिया और पश्चिमी चीन को पराजित किया। आपने उपर्युक्त सभी देशो के राजाओ से दंड स्वरूप कर लेकर इन्द्रप्रस्थ को प्रस्थान किया।

का सहदेव के साथ दो दिन तक युद्ध हुआ। दक्षिण के द्वीपों मे उस काल म्लेच्छ, राक्षस और निषादों का वास था। सुरभिपट्टन, ताम्रद्वीप, तिमिङ्गिल, करहाट, केरल तथा कोकण के राजाओ ने दूतो से संदेश सुनकर बिना युद्ध किये ही कर दे दिया। सहदेव ने पतच्चर (मेवाड़), कौशल, वेणुमत, नातकेय, हिरम्बक, व मरुध नामक तीन जातियो, कई जगली नरेशों, वातापिपुर (वादामी), त्रैपुर, अक्रिति, सुराष्ट्र, सुर्पारक, तालका, पुम्पद, द्रविण आदि जातियो, सामुद्रीय अनार्यों काला पर्वत रमक पर्वत, पसन्द उड्र, केरल, अंध्र, तलवन, कलिंग, अतविपुरी और यवनष्ट को भी जीता।

नकुल ने रोहीतक (रोहतक) सैरीसक, आक्रोश, शिवि (सवान, सिन्धु नदी के दक्षिण तट पर), त्रिगर्त (जालन्धर), पच करपट, मध्यमकेय (मध्यमेश्वर, पच केदारो में से एक) और वाटधान देशो को जीता। अन्तिम तीनो के राजे ब्राह्मण थे।। अनन्तर पुष्करण्य, सिन्धुतट के म्लेच्छ और सरस्वती तट के शूद्र राजाओं को जीतकर तथा अभीरो को वश मे करके नकुल ने मत्स्य देश के कुछ राजाओ को जीता। फिर कटपुर, पंचनद (पजाब), हारहुण, रामट, मद्र (रावी और चनाब के बीच, राजधानी साकल), सिन्ध, द्वारिका, मालव और दशार्ण के राजाओ से कर लिया गया। मद्र देश के शल्य नकुल के मामा थे और द्वारका के श्रीकृष्ण पूर्ण सहायक। अतः इन दोनों ने प्रेम पूर्वक भेट दी। रोहीतक के निवासी मत्तमयूर कहे गये हैं और उनसे घोर युद्ध होना लिखा है। सैरीसक पहाड़ था। सिन्ध देश मे उस काल म्लेच्छों का निवास था। नकुल ने मालव, अम्बष्ठ, अमर काह, वाम ज्योतिष, दिव्यकट, द्वारपालपुरी, रमठ, पश्चिमी कई नरेशो, पल्हव, बर्बर, किरात, यवन और शकों को भी जीता। उनके द्वारा प्राप्त भेंट १० हजार ऊटो पर लाद कर आई थी। इस भांति नकुल ने भी पश्चिम दिशा को जीत कर इन्द्रप्रस्थ मे प्रवेश किया।

इन विजयों से स्पष्ट पता है कि भारतवर्ष उस काल [illegible] [illegible] राजाओं में बटा हुआ था। [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible]

और पंजाब के कुछ प्रान्तों मे अनार्यों के राज्य थे, किन्तु शेष भारतवर्ष मे सब कहीं आर्य राजे फैले हुए थे। अनार्यों मे म्लेच्छ, निषाद, राक्षस, वानर, बर्बर, यवन, शक, काम्बोज, किरात और आभीर नाम्नी जातियो की प्रधानता थी। विजय यात्राओ मे कहीं के भी राजा का वध नहीं हुआ तथा शिशुपाल, शल्य, कृष्ण, कुन्तिभोज नरेश आदि सबन्धियो ने बिना लड़े ही कर दे दिया। कर्ण को जीतने की शक्ति भीम मे नहीं थी किन्तु उसने भी नाम मात्र को युद्ध करके कर देना ठीक समझा। हस्तिनापुर मे घरौआ दुर्योधन से कर लेने कोई गया भी नहीं। इन बातों से जान पड़ता है कि यद्यपि राजसूय यज्ञ के करने वाले को सम्राट् पद मिलता था, तथापि यज्ञ के कारण लोग उसका विशेष विरोध नही करते थे।

उचित समय पर महाराजा युधिष्ठिर ने सब राजाओ को बुलाकर यज्ञारम्भ किया। इस अवसर पर सबो ने फिर से रत्न, मणि आदि भेंट मे दिए। इस बार पाण्डवों की ओर से भेंट लेने का कार्य राजा दुर्योधन ने किया। यज्ञ होते समय एकत्रित महाशयों के पूजन मे यह प्रश्न उठा कि सब से प्रथम पूज्य कौन है और भीष्म पितामह के मतानुसार श्रीकृष्ण को सर्वश्रेष्ठ समझ कर राजा युधिष्ठिर ने सहदेव के द्वारा सब से पहले उन्हीं का पूजन कराया। यह देख राजा शिशुपाल बड़ा क्रुद्ध हुआ और कहने लगा, कि शास्त्रानुसार ऋत्विक्, आचार्य, राजा, हितू, सम्बन्धी और गुणी पुरुष ही पूज्य है। उसने कृष्ण मे इन सब गुणो का अभाव बतला कर भीष्म, पाण्डवो और कृष्ण की बड़ी निन्दा की, तथा वत्सासुर एवं पूतना-विनाश के कारण श्रीकृष्ण को गो-स्त्रीघातक भी कहा। बहुत देर तक वादविवाद होता रहा, किन्तु जरासन्ध के विनाश के कारण शिशुपाल का क्रोध शान्त न हुआ। उसने भगवान् वासुदेव को सौ से अधिक गालियां दी। इस पर श्रीकृष्ण ने नृप-समाज का संबोधित करके कहा, "इस की माता मेरी फूफी थी, जिससे वचनबद्ध होने के कारण मैने शिशुपाल के सौ अपराध पर्यन्त क्षमा करने का प्रण किया था। इस संख्या के बढ़ जाने से अब मै इसे उचित दड देता हूँ।" यह कहकर भगवान् ने शिशुपाल को प्रचार कर चक्रद्वारा उसका शिर-छेदन किया। अनन्तर

करके स्थान स्थान पर ठहरते हुए यथा समय नैमिषारण्य मे पदार्पण किया। यहीं पर धन, तथा गोदान करके ये लोग गंगा यमुना के संगम स्थल प्रयाग पहुँचे, जहाँ सभी ने विधि से चौर कराया तथा अक्षयवट, भारद्वाजाश्रम और भृगु तीर्थ के दर्शन किये। अनन्तर ये लोग हेमकूट (रत्नगिरि जिला पटना मे) गये और कौशिकी नदी (कोसी) के पार उतरे। यहां ऋषि विश्वामित्र का आश्रम विद्यमान था जहां विधि पूर्वक स्नान करके यह यात्रीसमाज गंगासागर (गंगा और समुद्र के संगम स्थल) पर पहुँचा। यहां स्नानादि कर्म से निवृत्त होकर ये लोग समुद्र ही के किनारे चल कर कलिंग (उड़ीसा के दक्षिण और द्रविड़ के उत्तर) देश की ओर प्रस्थित हुए। मार्ग मे वैतरणी नदी को पार करके समुद्र के किनारे चलते हुए ये पुण्य क्षेत्र गोदावरी पर पहुँचे। वहां विधिपूर्वक स्नान करके तथा ब्राह्मणो को दान देकर महाराजा युधिष्ठिर द्रविड़ देश को चले। इन्होने अगस्त्यनार्ग (जिला नासिक मे) और शूर्पारक (सूरत, भिवार अथवा कोल्हापुर के दक्षिण मे कोई स्थान) आदि तीर्थो को देखते हुए प्रभास क्षेत्र मे (गुजरात मे सोमनाथ मन्दिर के निकट) पदार्पण किया। वहां वृष्णिकुल के मुख्य मुख्य वीर पुरुष पाण्डवो से मिलने आये और उनकी दशा पर शोक मनाते रहे। श्रीकृष्णचन्द्र से विदा होकर पाण्डव लोग वैदूर्य पर्वत और नर्मदा नदी को गये।

अनन्तर सैन्धवारण्य पहुँच कर इन्होने पुष्कर क्षेत्र मे स्नान किया। फिर यमुना, सरस्वती, विपाशा आदि नदियो को पार करते हुए ये लोग कश्मीर मे गये जो मानसरोवर का द्वार कहा गया है। यहां इन्होंने प्रख्यात वानिक खंड देखा जहां से गंगा नदी बहती है, जहां मैनाक पर्वत विद्यमान है और जिसे श्वेत मन्दिर पर्वत सुशोभित करता है। इसके उपरान्त यह समाज गन्धमादन पर्वत (जो बदरिकाश्रम से उत्तर पूर्व कुछ दूर से आरंभ होता है) पर गया। यहां से आगे की यात्रा बहुत कठिन देख कर और द्रौपदी से उसका होना असंभव समझ कर धर्मराज चिन्तातुर हुए। तब राजा तथा द्रौपदी की आज्ञा लेकर भीमसेन ने हिडम्बा-पुत्र घटोत्कच को बुलाया [illegible] उसके सहारे से अनुगामियो सहित राजा [illegible] [illegible] किया और [illegible]

लोग राक्षसो के कन्धे पर बैठ बैठ कर चले और मार्ग मे बहुत से देश पार किये गये। इस प्रकार जाते हुए इन लोगों ने रम्य पर्वत कैलास के दर्शन किये और उसी के समीप नर-नारायण का आश्रम देखा। इसी स्थान पर इन की यात्रा समाप्त हुई, अर्जुन ने आकर राजा के दर्शन किये और अपनी शस्त्र-शिक्षा की पूर्णता बतला कर उन्हे प्रसन्न किया। अब ये सब लोग फिर इधर उधर जगलों मे बने रहे।

उधर राजा दुर्योधन ने विष्णु यज्ञ करने का विचार किया और तब कर्ण ने उनके लिये भारत मे दिग्विजय की। अनन्तर विधिपूर्वक यज्ञ पूर्ण हुआ। थोड़े दिनों में राजा युधिष्ठिर के वनवास का बारहवां वर्ष समाप्त हुआ और तेरहवें में मत्स्यपुर जाकर पाण्डव लोग नियमानुसार छद्म वेष में राजा विराट् की नौकरी करने लगे। यहां विराट् के साले कीचक ने द्रौपदी पर मुग्ध हो और उसे दासी मात्र समझ कर स्ववश करने के अनेक प्रयत्न किये, यहां तक कि भीमसेन को विवश होकर गुप्त रीति से उसका वध करना पड़ा। होते होते इनका अज्ञात वाला तेरहवां वर्ष भी समाप्तप्राय हुआ और ये प्रकट होने वाले ही थे कि कुछ कौरव राजकुमारो ने राजा विराट् के गोधन का हरण कर लिया। इस काल अर्जुन क्लीब वेष में विराट् पुत्री उत्तरा को नाचना गाना सिखाते थे।

अब इन्होंने युद्ध मे कौरवों को पराजित किया और यह गुप्त भेद खुल गया। तब लोकापवाद के भय से विराट् ने अपनी कन्या उत्तरा का विवाह इन्हीं से करना चाहा, किन्तु अर्जुन ने यह कह कर कि बालिका उत्तरा मुझे सदैव आचार्य मानती थी और मै उसे पुत्री समान देखता था, उसका विवाह अपने साथ अनुचित माना और विराट् का आदेश सफल करने को अपने ही पुत्र अभिमन्यु के साथ पाणिग्रहण करा दिया।

अब पाण्डवों ने प्रकट होकर दुर्योधन से अपना राज्य मांगा और बल संचित करना आरंभ किया। यह सुन राजा दुर्योधन ने भी अपने पक्षियो को निमंत्रित किया और दोनों ही ओर सेना एकत्रित होने लगी। राजा युधिष्ठिर की ओर वृष्णि वंशी सात्यकि, शिशुपाल

पुत्र चेदिराज धृष्टकेतु, जरासन्ध-पुत्र सहदेव और जयत्सेन, रा
पाण्ड्य और राजा विराट् एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये, त
पांचालराज द्रुपद दो अक्षौहिणी सेना लाये। कोई राजा नील
इनके पक्ष में थे जो युद्ध में अश्वत्थामा द्वारा मारे गये। उधर रा
दुर्योधन की ओर प्राग्ज्योतिष पति भगदत्त, वाल्हीक-नरेश सोमद
मद्रपति शल्य, भोजनरेश कृतवर्म्मा, सिन्धु नरेश जयद्रथ, काम्बोजनरे
श्रुतायु, माहिष्मती-नरेश नील, अवन्ति के राजा विन्द, अनुविन्द औ
केकय-राजा सौदार्य आये। भगदत्त नरकासुर नामक एक ब्राह्मण क
पुत्र था, किन्तु उसकी सेना में चीनी योद्धा भी थे (म० भा० I
२५,१००८; V १८, ५८४)। महाभारतीय युद्ध के पीछे इस के पु
वज्रदत्त ने भी अश्वमेध के सम्बन्ध में अर्जुन से युद्ध किया। दुर्योध
के सहायकों में से विन्द और अनुविन्द के पास दो अक्षौहिणी थीं औ
शेष सहायकों के पास एक एक अक्षौहिणी। एक अक्षौहिणी में हाथी
घोड़े, रथ आदि के अतिरिक्त प्रायः १,६४,००० युद्धकर्ता मनुष्य होते
हैं। इनके अतिरिक्त दक्षिण पथ, कुरु जांगल, पञ्जाब, मरुभूमि, रोहित
कारूष्य (करणवती उपनाम केन नदी के समीप वाले) कालकूट,
अहिच्छत्र, दोआब (अन्तर वेद) आदि देशों के अनेक छोटे मोटे
राजे दुर्योधन की ओर आये। अतः दुर्योधन के मुख्य सहायकों की
सेना ११ अक्षौहिणी थी और इसके अतिरिक्त अमुख्य सहायकों की
तथा घरू सेना विशेष थी। कृतवर्मा और सात्यकि दोनों यादव थे,
किन्तु उन्होंने एक दूसरे से प्रतिकूल पक्ष लिये। इससे प्रकट होता है
कि इसी काल में यादवों में दो प्रतिकूल दल हो गये थे, जिनका
वैमनस्य श्रीकृष्ण के होते हुए भी न दूर हो सका। इसी विभ्राट् ने
समय पर यादवों का विनाश किया जैसा कि आगे ज्ञात होगा। मद्रपति
शल्य पाण्डवों के मामा थे, किन्तु सत्कार करके दुर्योधन ने उन्हें अपनी
ओर कर लिया। उन्होंने शेष पञ्जाबी नरेशों का साथ देकर भी
दुर्योधन का पक्ष लिया। देशों के अनुसार पाण्डवों के साथी मत्स्य,
चेदि, कारूष, काशी, दक्षिण पांचाल, पाश्चात्य मागध तथा पाश्चात्य
यादव गुजरात सहित थे। उधर दुर्योधन की ओर पञ्जाबी, उत्तरी, पूर्वी
एवं दक्षिणात्य जातियां थीं। इन में प्राग्ज्योतिष, चीन, किरात

(उत्तर पूर्व), काम्बोज, यवन, शक, मद्र, केकय, सिन्धु, सौवीर, भोज, दक्षिणपथ, आन्ध्र (दक्षिण पूर्व), माहिष्मती और अवन्ती भी थे।

पाण्डवी दल का सेनापति द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न हुआ और कौरवी दल के भीष्म पितामह। कई बार दोनों राजाओं के बीच दूत आये गये और युधिष्ठिर ने कहला भेजा कि या तो आधा राज्य दे दो अथवा पाँच प्रान्त ही सही। दुर्योधन ने राजा धृतराष्ट्र तथा अन्य सुहृदों के समझाने पर भी सन्धि का प्रस्ताव न माना और साक्षात् श्रीकृष्ण के दूतत्व करने पर कहा, "बिना युद्ध के सूच्यग्र भी जमीन न दूँगा।" पलटते हुए श्रीकृष्णचन्द्र ने कर्ण से कहा, "तुम कुन्ती के ज्येष्ठ पुत्र होने से पाण्डु के भी सहोढ़ पुत्र हो। इसलिए सूतजपन छोड़कर पाण्डवपद ग्रहण करो तथा सब से बड़े भाई होने से राज्य भी लो और युधिष्ठिर को युवराज बनाओ।" कर्ण ने इतना भारी उत्कोच भी धर्म के आगे तुच्छ समझा और उत्तर दिया, "अब तक संसार में परमधर्मी और दानी का यश भोग करते हुए मैं अपने मित्र दुर्योधन से विश्वासघात सा परम गरिष्ठ पातक कैसे कर सकता हूँ?" श्रीकृष्ण के विफल मनोरथ रहने पर माता कुन्ती ने भी कर्ण के पास जाकर यही प्रस्ताव किया और अपने माता के पद का महत्त्व भी उसी में मिला दिया। कर्ण के पिता सूर्य ने भी इसी बात की सम्मति दी। माता कुन्ती ने यह भी कहा, "जब तुम और अर्जुन एक हो जाओगे, तब दुर्योधन अवश्यमेव सन्धि कर लेगा और क्षात्र-विनाश मिट जायगा।"

इन गौरवपूर्ण सम्मतियों को सुनकर भी कर्ण दुर्योधन का साथ छोड़ना बड़ा ही गर्ह्य कर्म मानता रहा और हाथ जोड़ कर बोला, "हे माता! वीरपुरुष को राज्य-सुखार्थ धर्म छोड़ना शोभा नहीं देता। राजा दुर्योधन ने मुझे मन्त्री, भाई, भट, सखा सभी मानकर पाला है और मेरे ही बल के सहारे वह पाण्डवों को पराजित करना चाहता है। ऐसे स्वामी को ऐसे समय छोड़ना कीर्तिविनाशक और महान् अपराधकर है। अतः मैं आपकी आज्ञा न मानने में विवश हूँ किन्तु मानसिक भय के मिटाने को यह सच्चा प्रण करता हूँ कि अर्जुन को छोड़कर आपके शेष चारों पुत्रों

को नहीं मारूंगा. जिससे पांचों पुत्र जीवित रहेंगे अर्थात् अर्जुन के न होने से कर्ण और कर्ण के न होने से अर्जुन विद्यमान रहेगा।' यह सुन कुन्ती ने भावी को अमिट जानकर प्रिय वचन कह कर घर का रास्ता लिया और चलते समय इतना कह दिया कि युद्ध के समय इस प्रण को भूल मत जाना। अब दोनो ओर से युद्ध की अंतिम तय्यारी हुई और दोनो सेनाये युद्धार्थ कुरुक्षेत्र मे पधारी।

जब कौरवों तथा पाण्डवों की सेनाये युद्धार्थ एक दूसरी के सम्मुख उपस्थित हुईं तब अर्जुन को निकट के सम्बन्धियों से युद्ध करने में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने इनका सारथ्य ग्रहण किया था सो उन्होंने यह शैथिल्य देख गीता का ज्ञान समझा कर इन्हे युद्धार्थ सन्नद्ध किया। १८ दिन तक घोर युद्ध हुआ। इन १८ दिनों मे कौरवी दल का नेतृत्व भीष्म पितामह ने दस दिन किया, द्रोणाचार्य ने पाँच दिन, कर्ण ने दो दिन और शल्य ने आधे दिन। इसके अलावा बीच मे कई बार मिलाकर ८-१० दिन युद्ध बन्द रहा। इतने दिनों मे अनेकानेक युक्तियों से पाण्डवों ने सारा कौरवी दल अशेष कर दिया और प्रधान पुरुषो मे केवल कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा बच गये। उधर पाण्डवों की सात अक्षोहिणियो मे भी केवल एक ही बची। दुर्योधन को मरणप्राय दशा मे देखकर अश्वत्थामा ने महाक्रोध किया और बचे बचाये कौरवी दल की सहायता से रात मे यह पाण्डवी दल भी अशेष कर दिया। अब पुरुष प्रधानो में पाण्डवो की ओर भी उन पांच भाइयो के अतिरिक्त श्रीकृष्ण, सात्यकि और धृतराष्ट्र का वैश्यापुत्र युयुत्सु बच गये।

युद्ध मे भीष्म का पराक्रम सब से बड़ा रहा और द्रोणाचार्य ने सबसे अधिक पुरुष-प्रधानो का वध किया। कर्ण और अश्वत्थामा ने भी अच्छा पुरुषार्थ दिखलाया। कर्ण ने अर्जुन से इतर चारों पाण्डवों को जीतकर अपने प्रणानुसार छोड़ दिया पर अर्जुन के हाथ उसका विनाश हुआ। पाण्डवों की ओर अर्जुन सर्वश्रेष्ठ [illegible] थे। [illegible] के बल तथा श्रीकृष्ण की युक्तियों से सारा [illegible] को विजय प्राप्त हुई। युद्ध समाप्त होने पर अश्वत्थामा ने [illegible] धृतराष्ट्र की प्रतिज्ञा करके दूर देश का प्रस्थान किया था। [illegible]

वर्मा द्वारावती चले गये और कृपाचार्य हस्तिनापुर जाकर अपने घर मे पूर्ववत् रहने लगे। महाभारत का युद्ध अगहन और पूस मे हुआ। भरद्वाजवंशी बहुत से ब्राह्मण एव अन्य कुल आज तक भारतवर्ष मे है। वे सब अश्वत्थामा के ही वशधर है। इनके अतिरिक्त कहते हैं कि दक्षिण का पल्लव राजकुल अश्वत्थामा वाली शाखा का भारद्वाज वंशधर था तथा प्रसिद्ध वाकाटक सम्राट् भी इसी कुल के थे।

राजा युधिष्ठिर ने अब पूरे कौरवी राज्य पर अधिकार जमाया। इन्होने राजा धृतराष्ट्र का सम्मान पूर्ववत् स्थिर रक्खा तथा कृपाचार्य, विदुर और संजय का भी यथेष्ट मान किया। भीष्म पितामह युद्ध मे बहुत घायल हो गये थे किन्तु उसके पीछे कई मास पर्यन्त जीवित रहे। इन्होने राजा युधिष्ठिर को नीति का उपदेश दिया जिसका विशद वर्णन महाभारत के शान्ति पर्व मे है। महाभारत के युद्ध मे इतना बड़ा जन-विनाश हुआ कि इस पर लोगो को विश्वास नहीं होता था क्योकि प्राय: ३५ लाख की हताहत संख्या पर विश्वास करना अबतक असभव सा समझ पड़ता था, किन्तु अब योरोपीय महायुद्ध की हताहत सख्या को देखते हुए महाभारत में लिखित संख्या को कोई असंभव नही कह सकता।

राजा युधिष्ठिर ने राज्य पाने के पीछे अश्वमेध किया। अर्जुन हयरक्षक होकर गये और इन्होने प्राय: सभी राजाओ को बड़ी सुगमता पूर्वक परास्त कर दिया। मणिपुर मे इनका अपने पुत्र बभ्रुवाहन के साथ युद्ध हुआ और पुत्रस्नेह वश ये उससे हार भी गये किन्तु पीछे से मेल हो गया और उसने घोड़ा छोड़ दिया। प्राय: १२ वर्ष हस्तिनापुर मे युधिष्ठिर के समय से रहकर महाराजा धृतराष्ट्र गान्धारी, कुन्ती और विदुर समेत बनवासार्थ चले गये। थोड़े दिनो के पीछे यज्ञाग्नि से बढ़कर उस बन मे भारी पावकप्रकोप हुआ जिसमें कुन्ती और गांधारी सहित महाराजा धृतराष्ट्र जल मरे। विदुर का शरीरपात उनसे पहले ही हो चुका था।

राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन के पीछे ३६ वर्ष राज्य किया। इस वर्ष यादवो की घरू अशान्ति ऐसी उभड़ी कि थोड़े ही कारण से उनमे युद्ध हो पड़ा। इस काल वे लोग ऐसे मदोन्मत्त हो गये कि राजधर्म

छोड़ कर ब्राह्मणों पर भी अत्याचार करने लगे थे जिससे कई ब्राह्मणों ने शाप भी दिये थे। फल यह हुआ कि श्रीकृष्णचन्द्र के सामने ही कृतवर्मा और सात्यकि के पक्षियों में युद्ध होने लगा। श्रीकृष्ण के पुत्र पौत्रों ने सात्यकि का साथ दिया और जब भोजान्धक वंशियों ने सात्यकि, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, गद, चारुदेष्ण आदि कुमारों तथा सरदारों का वध ही कर डाला, तब श्रीकृष्णचन्द्र भी मुशलास्त्र लेकर युद्ध में प्रवृत्त हुए। फल यह हुआ कि थोड़े ही समय में यदुवंशियों का सर्वनाश हो गया। यह देख बलरामजी ने समुद्र में घुसकर अपना शरीर छोड़ दिया। श्रीकृष्णचन्द्र प्रभास के निकट एक वृक्ष के नीचे उदास मन लेटे थे कि एक बहेलिये ने मृग समझ इनके ऊपर विषाक्त बाण चला दिया जिससे इनका भी शरीरपात हो गया। यह दुर्घटना देख दूसरे दिन कृष्ण-पिता वसुदेव भी मारे शोक के स्वर्गवासी हुए। यह बड़ी विचित्र बात है कि अयोध्यावासी रामचन्द्र के पिता दशरथ तथा द्वारकावासी श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव दोनों ही पुत्र-वियोग से मरे। परशुराम के अतिरिक्त भारत में यही दो सर्वोत्कृष्ट वीर हुए हैं।

जान पड़ता है कि आपस की फूट के अतिरिक्त कुछ शत्रु लोगों ने भी यादवों पर अत्याचार किये क्योंकि अर्जुन के पास दूत भेजते समय श्रीकृष्णचन्द्र ने कहला भेजा था कि तुम्हारे द्वारिका पहुँचने के सात दिन पीछे समुद्र इस नगरी को डुबो देगा। द्वारिकापुरी गुज-रात प्रान्त में समुद्र तट पर है। शायद बेलजियम और हालैण्ड की भाँति यहाँ भी मोटी भीतें बना कर समुद्र से कुछ भूमि ली गई थी और नगर का मुख्य भाग उन्हीं भीतों के सहारे समुद्र से निम्नतर भूमि में बसा था। शत्रुओं ने शायद इन्हीं भीतों को फोड़ कर नगर को डुबोना चाहा था और इसी के लिये अर्जुन के आने की प्रतीक्षा की गई थी। यदि केवल समुद्र द्वारा नगर डूबने की बात होती, तो यादव लोग सारा राज्य छोड़ने के स्थान पर कुछ दूर हटकर नगर स्थान का प्रबन्ध करते। समुद्र द्वारा केवल प्राकृतिक [illegible] से नगर के डूबने में [illegible] भी नहीं हो सकता था। जान पड़ता है कि गुज-रात देश, पञ्जाबी राजाओं की सहायता से [illegible] हुआ। [illegible]

यादवो को मारा तथा अर्जुन को हराया। काठियावाड़ के काठी क्षत्रिय अपने को धृतराष्ट्र वंशी कहते भी है। काठी लोग सिकन्दरी आक्रमण के समय पंचनद में रहते थे। यादव विनाश गान्धारी के शाप से हुआ, ऐसा महाभारत मे भी कथित है। जान पड़ता है कि इन्हीं के वंशधर और मायके वाले यादव विनाश कर्ता मुख्य शत्रु होंगे। इसलिये शत्रु-शंका का विचार निश्चित समझ पड़ता है।

दारुक सूत के मुख से श्रीकृष्ण का यह सन्देश। सुनकर अर्जुन अकेले रथ पर चढ़कर द्वारिका पहुँचे और महाशोक ग्रस्त हो मृत यादवों की दाहक्रिया किसी प्रकार समाप्त करके सात दिन के भीतर धन, स्त्री, बच्चो, सेवको, पुरजनो आदि को, तथा बहुत सा सामान साथ ले कुरुक्षेत्र को रवाना हुए। इसके अनन्तर ही द्वारावती समुद्र के पेट मे लीन हो गई। इस दुर्घटना के पीछे जान पड़ता है कि कुछ यादव लोग दक्षिण को चले गये और शेष अर्जुन के साथ उत्तर को। समय पर दाक्षिणात्य यादवों ने उस देश पर अपना शासन जमाया जिसका वर्णन यथास्थान आवेगा। इधर हतशेष यादव-समाज लिये हुए अर्जुन जिस काल पञ्चनद में ठहरे तब निस्सहाय समझ कर लूट के लालच से इन पर आभीरों ने आक्रमण किया। राजसूय सम्बन्धी दिग्विजय में नकुल ने आभीरों को परास्त किया था। सम्भव है कि उसी का बदला लेने के लिए आभीरो ने कौरवो से मिलकर यह आक्रमण किया हो। शोकमूर्छित होने के कारण अर्जुन इनका सामना न कर सके और इन लोगों न यादवों का सारा धन तथा सहस्त्रो स्त्रियाँ लूट लीं। बचे-खुचे सामान तथा मनुष्यों को साथ लेकर परम शोक-विह्वल अर्जुन कुरुक्षेत्र पहुँचे।

वहां से हार्दिक्य पुत्र तथा भोजपुर की स्त्रियों को अर्जुन ने मातृकावत नगर मे स्थान दिया तथा इन्द्रप्रस्थ मे आकर श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्र को वहां का राजा किया और सात्यकि के पुत्र को सरस्वती-तट का देश दिया। इन तीनो नवीन यादव राजाओं को अर्जुन ने राजनीति का उपदेश किया और द्वारका के पुरजन वज्र को सौंप दिये। मातृकावत बरार के निकट यादवो का पुराना प्रान्त था। पीछे वह भोजो का हो गया था। इन्ही भोजो की शत्रुता से यादव विनाश

हुआ। ऐसे भोजों को अर्जुन ने सात्कावत दिया होगा, क्योंकि वह पहले ही से उन्हीं का था। अब अक्रूर की स्त्रियों तथा सत्यभामा आदि ने संन्यास ग्रहण करके जङ्गल का रास्ता लिया एवं रुक्मिणी, हेमवती, जाम्बवती और शैव्या ने अपना अपना शरीर अग्नि में जला दिया। वसुदेव की रानियों में से देवकी, रोहिणी, मदिरा और भद्रा पति के साथ सती हो गई थीं। इस प्रकार यादवों के पांच लाख योद्धा और असंख्य अन्य पुरुष आपस में ही लड़कर धराशायी हुए। इसके पीछे अर्जुन ने व्यास भगवान् की शरण में जा सब हाल कहकर मन्त्र पूछा। यह सुन उन्होंने सम्मति दी कि अब तुमको भी भाइयों समेत महाप्रस्थान करना चाहिये।

अनन्तर राजा युधिष्ठिर के पास जाकर अर्जुन ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और व्यास भगवान् की अनुमति भी कही। पाँचों पाण्डवों तथा द्रौपदी की भी सम्मति महाप्रस्थान ही की हुई। बभ्रुवाहन को छोड़ पाण्डवों के बारहों पुत्र महाभारत-युद्ध में मर ही चुके थे और इन पांचों भाइयों में केवल अर्जुन का पौत्र परीक्षित एक मात्र सन्तान रह गया था जो अभिमन्यु और विराट पुत्री उत्तरा का पुत्र था तथा महाभारत-युद्ध के कुछ मास पीछे ही उत्पन्न हुआ था। अब इसी युवक परीक्षित का राज्याभिषेक करके महाराजा युधिष्ठिर ने इसे नीति सिखलाई और सारी प्रजा इसी को सौंप दी। प्रजा लोगों ने इनसे महाप्रस्थान-सङ्कल्प छोड़ने को बहुत कुछ कहा, किन्तु इन लोगों ने इसको न छोड़ा। राजा युधिष्ठिर ने युयुत्सु को राज्य-प्रबन्ध का भार दिया और कृपाचार्य से कहा, "मैं बालक परीक्षित आपको सौंपे जाता हूँ।" फिर रानी सुभद्रा से कहा, "तुम अपने पौत्र का नीति से पालन करना और इसकी वज्र से प्रीति सदा स्थिर रहे, ऐसा प्रयत्न करना।" इस प्रकार प्रजा एवं कुटुम्ब का प्रबन्ध करके द्रौपदी समेत पांचों पाण्डवों ने सुन्दर वस्त्रालङ्कारों का त्याग करके वल्कल धारण किये। उस काल सभी के हाहाकार से पृथ्वी आकाश गूंज गये। इन लोगों ने अपने ऊपर से अग्नि उतार कर पानी में डाल दी, फिर पूर्व दिशा का प्रस्थान किया। राज-परिवार तथा [illegible] लोग इनके साथ [illegible] दूर तक चले गये। तब इन्होंने [illegible]

फेरा और फिर परीक्षित, कृपाचार्य और युयुत्सु को भी वापस किया। इनको जाते ही देख अर्जुन की स्त्री नागसुता उलूपी गंगा में धँसकर मर गई और बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा मणिपुर को चली गई। शेष राजमहिलायें रोती हुई परीक्षित को घेर कर हस्तिनापुर वापस आई।

पूर्व दिशा को चलते हुए राजा युधिष्ठिर, द्रौपदी और भाइयों समेत समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ पर एक ब्राह्मण की सम्मति से अर्जुन ने गाण्डीव धनुष और अक्षय तूणीर समुद्र में डाल दिये। वहाँ से ये पश्चिम दिशा को चले। क्रम से गुजरात मे जाकर इन्होने जलमग्न द्वारिका का निरीक्षण किया। द्वारिका को प्रणाम करके ये उत्तर दिशा को चले और हिमाचल पार करके इन्होंने वहीं से मेरु का दर्शन किया और कुछ बालू-पूर्ण पृथ्वी को पार करके बर्फ़िस्तान को देखा। सुमेरु पर्वत कोई कोई काकेशस उपनाम क़ाफ़ पहाड़ को कहते है और कोई रुद्र हिमालय को। इसका दूसरा नाम पंच पर्वत भी है। इसी मे द्रौपदी समेत ४ पांडव मृत हो गये और केवल युधिष्ठिर बचे जो पर्वत पार करके इन्द्रपुरी को चले गये। यह इन्द्रपुरी अथवा अमरावती कौन सा स्थान है इसका निर्णय सुगम नहीं है। कुछ पंडितों का विचार है कि महाभारत-युद्ध वास्तव मे कुरु सृंजयो की लड़ाई थी। इन दोनो वंशों की मन मैली शतपथ ब्राह्मण (वैदिक अनुक्रमणिका II पृ० ६३) मे लिखी है। पतंजलि (IV १, ४) नकुल सहदेव को कौरव कहते है। दस ब्रा० जातक (४९५) मे इन्द्रप्रस्थ कोरव्य कहा गया है और लिखा है कि युधिष्ठिर वशी का वहां राज्य था। आश्वलायन गृह्य सूत्र (III ४) में वैशम्पायन महाभारताचार्य्य हैं। उनका नाम तैत्तिरीय आरण्यक (I ७, ५) तथा पाणिनीय अष्टाध्यायी IV ३, १०४) मे भी है।

महाभारत के समय का यह सूक्ष्म वृत्तान्त अब यही समाप्त होता है और इसके विषय मे आधुनिक विचारों का कुछ दिग्दर्शन मात्र शेष है। इसी समय के पीछे से भारत मे कलियुग का प्रारम्भ माना गया है। कलि के आरंभ का ठीक समय क्या है इस पर पण्डितों में कुछ मतभेद है। कुछ ज्योतिषियो का विचार है कि

महाभारत का युद्ध ६५३ गत कलि में हुआ। पुराणों मे कलि का आरंभ कहीं कहीं महाभारत युद्ध या श्रीकृष्ण का मरणकाल माना गया है और कहीं परीक्षित का राजत्वकाल। अन्तिम दोनों समय प्रायः एक ही समझने चाहिये।

ब्राह्मण ग्रन्थों में राजा जनमेजय और परीक्षित के नाम हैं किन्तु पाण्डवों के नहीं। इसी से कुछ लोग संदेह करते हैं कि यदि पाण्डव ऐसे प्रतापी थे तो उनके नाम ब्राह्मण ग्रन्थों में क्यों नहीं आये? इसी लिए उनका विचार है कि पाण्डव लोग थे ही नहीं। यह तर्क हमको बिलकुल निस्सार समझ पड़ता है। ब्राह्मण ग्रन्थ धार्मिक हैं न कि ऐतिहासिक। उनमे राजकुलों का वर्णन केवल प्रसंगवश कहीं कहीं आ गया है। इसलिये उनमें किसी नाम विशेष के न आने से उसके अभाव सम्बन्ध मे कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकल सकता। इस तर्क का पूर्ण बल मान लेने पर भी इतना ही निष्कर्ष कष्टकल्पना से निकाला जा सकता है कि शायद पाण्डवों का इतना प्रताप वास्तव मे न हो जितना महाभारत मे वर्णित है। किसी वर्णन का अत्युक्तिपूर्ण होना एक बात है और बिल्कुल निर्मूल होना दूसरी। ब्राह्मण ग्रन्थों में देवकी-पुत्र कृष्ण का नाम आया है तथा परीक्षित एवं जनमेजय के कई बार कहे गये हैं। बौद्धों के निकाय नामक ग्रन्थों मे लिखा है कि प्राचीन काल से पुराणों के सुनने की सर्वसाधारण में प्रथा थी। इससे जान पड़ता है कि प्राकृत पुराण प्रायः नवीं शताब्दी बी० सी० से चले आते थे। भगवान वेदव्यास ने अपने शिष्य लोमहर्षण को इतिहास रक्षित रखने का कार्य दिया था। प्राचीन राजकुलों के वंशवृक्ष आज तक भली भाँति रक्षित हैं। ऐसी दशा में यह समझ में नहीं आता कि थोड़े ही काल में नितान्त झूठी कथायें पुराणों जैसे पवित्र ग्रन्थों में स्थान पाकर जन-समुदाय में पूज्य भाव से सुनी जातीं। अतः महाभारत की कथा को मिथ्या कहना हमारी समझ में [illegible] है। यह बात दूसरी है कि उसके वर्णनों में [illegible] अत्युक्तियाँ समझी जायँ।

वर्तमान महाभारत में बहुत स्थानों पर ऐसे वर्णन आते हैं। राजा दुर्योधन के अधिकांश [illegible]

अधिकतर दशाओं में धर्म का ही पालन किया था। यदि यही बात यथार्थ होती तो भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और विकर्ण (दुर्योधन का भाई) से प्रसिद्ध धर्मात्मा पुरुष इस घराऊ युद्ध मे दुर्योधन का साथ कभी न देते। इससे जान पड़ता है कि महाभारत मे दुर्योधन का अधर्म तथा पाण्डवों का धर्म बहुत बढ़ाकर लिखे गये हैं। यदि भीष्मादि दुर्योधन को अधर्मी समझते होते तो उसकी नौकरी छोड़कर चले गये होते, न यह कि द्रोण अपना राज्य तक छोड़ कर हस्तिनापुर में डटे ही रहते। जिस काल राजा दुर्योधन मरणावस्था में पड़े थे, तब अश्वत्थामा ने प्रत्यक्ष कहा था कि मुझे पिता के वध से इतना कष्ट नहीं हुआ जितना कि आपकी इस दशा से। स्वामि-कष्ट से खिन्न होकर ही अश्वत्थामा ने पाण्डवी दल को अशेष किया और फिर मरते हुए दुर्योधन के कान मे पाण्डव-पुत्रों और द्रुपद-पुत्रों के बध का सुखद समाचार चिल्लाकर सुना दिया। इस पर दुर्योधन मरने का दुःख भूल हर्षगद्‌गद्‌ हो गया और बोला, "तुम भीष्म, द्रोण और कर्ण से भी अधिक कार्य करके आज मुझसे उऋण हो गये।"

जिस स्वामी से उसके धर्मवान् सेवक इतने अनुरक्त हो, वह अधर्मी कभी न रहा होगा। यदि वह गर्हित कर्म करने वाला होता, तो पूरा कौरव कुल उसी की ओर कभी न होता। राजा शन्तनु के भाई बाल्हीक देश के राजा थे। उनके लिये कौरव पाण्डव दोनो समान थे किन्तु वे भी पुत्र पौत्रों समेत दुर्योधन के सहायक हुए। बाल्हीक का पौत्र भूरिश्रवा बड़ा यज्ञकर्ता, धर्मी और योद्धा था। वह भी दुर्योधन ही की ओर आया। स्वयं नकुल के मामा शल्य ने दुर्योधन का पक्ष स्वीकृत किया। पाण्डवों की ओर वे ही लोग हुए जो उनसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। जितने तटस्थ लोग थे वे सब दुर्योधन ही की ओर आये। इस कथन के उदाहरण स्वरूप भगदत्त, विन्द, अनुविन्द, नील आदि एवं उपर्युक्त अन्य लोग हैं। जिस काल राजा दुर्योधन मरणावस्था के निकट था, तब उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से वाद करते हुए अपने पक्ष की धार्मिकता और प्राबल्य का प्रतिपादन किया था। इस पर आसमान से उस पर सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि हुई और धन्य-धन्य शब्द हुआ तथा साध्यों और अप्सराओं ने दुर्योधन

का समर्थन किया. जिन बातों से पांडवों सहित स्वयं भगवान् का मुँह लटक आया। इस पर आपने भी स्वीकार किया कि यदि पाण्डव लोग अधर्म न करते तो लोकपालों के समान पराक्रमी कौरव सरदार सर्वदा अजेय रहते अथच पांडवों का पराभव होता।

ये कथन महाभारत के गदा पर्व में आये हैं। इनके असम्भव भाग निकाल डालने से प्रकट है कि उस काल सर्वसाधारण की सम्मति दुर्योधन की धार्मिकता के अनुकूल थी। अग्नि पुराण में यह भी लिखा है कि पाण्डव शक थे, अर्थात् पीछे से आर्य माने गये। जब पाण्डु हिमाचल में थे तभी पाण्डवों का जन्म हुआ ही था सो ये पहाड़ियों के पुत्र थे ही। उस काल के इन्द्र एक पहाड़ी राजा थे क्योंकि अर्जुन भी उनसे पहाड़ ही पर मिले थे। एक स्त्री से कई भाइयों के विवाह की चाल कुछ हिमाचल वालों में अब भी है। द्रौपदी का विवाह ऐसा ही था। पाण्डव लोग महात्मा अवश्य थे किन्तु उपर्युक्त बातें भी पुराणों में उनके प्रतिकूल पाई जाती हैं। इन बातों से समझ पड़ता है कि इस युद्ध में न्याय दुर्योधन ही की ओर था और पाण्डवों के विजयी होने से धीरे धीरे उनकी महिमा अधिक हो गई, यहां तक कि दुर्योधन का पक्ष धर्महीन कहा जाने लगा। कुल बातों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि पाण्डवों के अस्तित्व पर संदेह करना अनुचित है। ब्राह्मण ग्रन्थों के पढ़ने से भी विदित होता है कि परीक्षित के निकटस्थ पूर्व पुरुषों में कोई भारी घटना हुई थी। यदि महाभारत का युद्ध वास्तव में केवल पाञ्चालों द्वारा कौरव विजय होता, जैसा कि कुछ समालोचकों का कथन है, तो पुराणों में वास्तविक विजेता को दबा कर कृत्रिम पाण्डवों की विजय-प्रशंसा गढ़ने का कोई कारण न था और न ऐसा मिथ्यावाद इतिने शीघ्र पुनीत इतिहास का पवित्र रूप पा सकता था। इसी वंश के राजा जनमेजय को पांचालों ने जीता था सो इसका भी विस्तृत कथन महाभारत में विद्यमान है।

युधिष्ठिर के समय हम देखते हैं कि [illegible] का विस्तार [illegible] में भी वैसा ही [illegible] था जैसा कि [illegible] में। इस [illegible] [illegible] पूर्ण या [illegible] के [illegible] गया था, जिसमें [illegible]

राजे थे, जिनको सहदेव ने राजसूये के समय जीता। अतः इस समय में आर्यसभ्यता बढ़ चुकी थी।

राजा दुर्योधन का दामाद कृष्ण-पुत्र शाम्ब था। इसने शाकद्वीपी ब्राह्मण लाकर मुल्तान मे बसाये और वहां सूर्य्य मन्दिर बनवाया। इन लोगों का भी दुर्योधन के वंशधरो से मेल रहा होगा। अर्जुन पर आक्रमण पंचनद मे हुआ था जो मुल्तान के निकट है। समय पर दुर्योधन के वंशधर लोग दक्षिण की ओर बढ़कर सौराष्ट्र देश मे जा बसे, जो इन्ही के नाम पर काठियावाड़ कहलाने लगा, क्योंकि इन लोगों की जातीय सञ्ज्ञा काठी है। इस जाति के कई राजे अब भी काठियावाड़ मे राज्य करते हैं। महाभारत के भारी युद्ध से कौरव-वश मे जो फूट पड़ गई थी, वही इनके पतन का कारण हुई, क्योंकि पांडवो की अधीनता में रहना पसन्द न करके धृतराष्ट्र के वंशधर पश्चिम को चले गये, जिससे इनका बल विभक्त होकर दोनो भाग बलहीन हो गये। काठी लोग सौराष्ट्र मे पश्चिम पञ्जाब से आये है, यह निश्चित है। ये लोग अब भी अपने को धृतराष्ट्र वशी कहते हैं। इसी कौरव-पाण्डव-विच्छेद से कुरुवश के बलहीन हो जाने के कारण इनके द्वारा पराजित जरासन्ध वश समय पर इनसे बढ़ गया, जिससे बहुत काल के लिए भारत मे मगध की महत्ता स्थापित हुई जैसा कि हम आगे लिखेंगे।

इसी स्थान से महाभारत पर्यन्त भारतीय इतिहास समाप्त होता है और आगे हम कलि के राजवशों का वर्णन करेगे। केवल इतना कहना शेष है कि महाभारत के समय मे दूसरों के अधिकारों का मान बहुत अधिक होने लगा था। कई राजाओ ने अन्यो को पराजित करके सम्राट् पद पाने का प्रयत्न किया, किन्तु किसी राजा ने दूसरे का राज्य नहीं छीना। इस अच्छे गुण से एक भारी दोष भी उत्पन्न हुआ कि भारत छोटे छोटे राज्यो मे विभक्त रहा और सामर्थ्य रखते हुए भी कई महाराजाओं ने सार्वभौम राज्य स्थापित न किया जिससे देश का बल न बढ़ा और महापुरुषो के सार्वभौम प्रभाव प्रायः उन्हीं के शरीरो के साथ अस्त हो गये और उनके उत्तराधिकारियो को न मिले। इस कथन के उदाहरण-स्वरूप सुदास, रामचन्द्र, जरासन्ध,

युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण हैं, जिनके उत्तराधिकारी सोमक, कुश, सहदेव, परीक्षित और वज्र नाममात्र को प्रतापी रह जाते हैं। यदि अकबर की भाँति ये लोग भी सार्वभौम राज्य स्थापित कर जाते, तो जहाँगीर, शाहजहाँ के समान इनके अयोग्य सन्तान भी सार्वभौम पद से बहुत शीघ्र वञ्चित न होते। केवल मौर्यों ने इस प्रणाली का सम्मान नहीं किया जिससे उन शासकों में कई एक बहुत प्रभावशाली हुए। भारतीयों ने आर्यसभ्यता-गृहीत राजाओं के राज्य निष्कारण नहीं छीने। इन लोगों में युद्धों के कारण राज्यलोभ से इतर होते थे। कालिदास ने कहा भी है कि यहाँ के राजे राज्य-लोभ से विजय न करते थे वरन् केवल यश के लिये। अतः हम देखते हैं कि कभी कभी अच्छे सिद्धान्त भी उचित से अधिक बल पाकर देश का विनाश कर देते हैं।

महाभारत के पीछे द्रोण पुत्र अश्वत्थामा भारतीय २८ वेदव्यासों में एक हुये तथा इनके वंशधर वाकाटक समय पर भारतीय सम्राट् हुये और अन्य पल्लव वंशधर प्रायः छै शताब्दियों तक कांची राज्य के शासक रहे। अश्वत्थामा से ही भरद्वाज गोत्री कई ब्राह्मण वंश भी चले। अपने समय के सप्तर्षि में भी अश्वत्थामा की गणना हुई। दुर्योधन के वंशधर अब तक काठियावाड़ में कई नरेश हैं। श्रीकृष्ण के वंशधर कई पुश्तों तक माथुर नरेश रहे तथा दक्षिण में कई शताब्दियों तक एक अन्य शाखा शासक रही और अन्त में अलाउद्दीन द्वारा पराजित हुई। अर्जुन और कर्ण वंशियों वाले राज्यों के कथन आगे आवेंगे।

सोलहवाँ अध्याय

आदिम कलिकाल

९१४ से ५६३ बी० सी० तक

महाभारत के समय मे हम लिख आये है कि चन्द्रवंशियो मे तीन घराने प्रधान थे, अर्थात् मागध, कौरव, और यादव। मागधो का नेता जरासन्ध सम्राट् हुआ था किन्तु कौरवो ने उसे जीत कर युधिष्ठिर को सम्राट् बनाया। यादवो का घराना एक प्रकार से नौ वढ़िया था और उसका महत्व श्रीकृष्णचन्द्र के साथ बढ़ कर उन्ही के साथ लुप्तप्राय हो गया। पुराणों मे वज्र के वंशधरो मे केवल प्रतिबाहु और सुचारु के नाम लिखे है जो उनके पुत्र और पौत्र थे। श्रीभागवत के अनुसार महाराजा वज्र ने इन्द्रप्रस्थ छोड़ मथुरा को राजधानी बनाया। जान पड़ता है कि जब जनमेजय के समय मे नागो की अवनति हुई तभी कौरवों के मित्र वज्र ने अपने कुल की पुरानी राजधानी मथुरा प्राप्त की। वर्तमान जैसलमेर-नरेश का घराना वज्र का वशधर है, किन्तु इसकी उन्नति बहुत पीछे से सम्बन्ध रखती है। आदिम कलि-काल मे वज्र का कोई भी वशधर महत्ता को न प्राप्त हुआ। रामचन्द्र का घराना महाभारत-काल मे बृहद्‌वल, बृहद्द्त, उरुक्षेप आदि पर अवलम्बित था। इन लोगो ने उस काल कोई महत्ता प्रकाशित न की और अपने संकुचित राज्य की रक्षा पर ही ध्यान दिया। मागध घराना राजा बृहद्रथ के कारण बार्हद्रथ राजकुल कहलाता था। इनके प्रतिनिधि सहदेव, सोमाधि आदि ने भी कोई गरिमा न दिखलाई। राजा द्रुपद का पांचाल राजकुल उनके पौत्र धृष्टकेतु से ही समाप्तप्राय हो गया। हैहयो मे भी इस

मुद्गर नामक तक्षक वंशी अन्य सरदार भी मरे। और भी ऐरावत, कौरव्य, धृतराष्ट्र आदि के वंशधर असंख्य नागों का वध हुआ (महाभारत)। जनमेजय ने नागवंश को लुप्तप्राय कर दिया और शायद इस पाप के विमोचनार्थ नाग-यज्ञ भी किया। नागराज वासुकि ने अपने भागिनेय आस्तीक को भेज कर जनमेजय से बहुत कुछ विनती कराई। तब इस नागारि ने शेष नाग कुल पर कृपा की। वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में लिखा है कि मथुरा में एक दूसरे के पीछे सात नाग राजे हुए। कालिया नाग को श्रीकृष्ण ने उस प्रान्त से खदेड़ा था। जरासन्ध के समय में अथवा उससे कुछ पीछे किसी शौरसेन राजा ने वहां राज्य किया था और तब नागों का अधिकार जमा था। यह प्रभाव जनमेजय और वज्र ने लुप्त करके वहां फिर से यादव राज्य स्थापित किया। परीक्षित के समय में तक्षशिला और कश्मीर पर भी नागों का अधिकार कथित है। अब तक्षशिला का राज्य जनमेजय के अधिकार में आया।

ब्राह्मण ग्रंथों में जनमेजय भारी विजेता लिखे हैं। महाभारत में वे तक्षशिला जीतते हैं। पञ्चविंश ब्राह्मण में भी उनका सर्प सत्र लिखित है। ऐतरेय ब्राह्मण का कथन है कि जनमेजय सार्वभौम राजा होना चाहते थे। तक्षशिला जीतने से ननिहाल मद्रदेश में भी उनका प्रभाव समझ पड़ता है। यह मध्य पञ्जाब में था। एक पौर[illegible] नरेश सिकन्दर से लड़े। Ptolemy टालेमी पाण्डवों को साकल (सियालकोट) का शासक बतलाता है। जनमेजय ने दो अश्वमेध [illegible] शतपथ ब्राह्मण कहता है कि एक में इन्द्रोतदैवापिशौनक [illegible] तथा ऐतरेय ब्राह्मण दूसरे का ऋत्विज तुरकावषेय को बतलाता है। गोपथ ब्राह्मण के समय जनमेजय एक प्राचीन [illegible] [illegible] किसी-किसी का यह भी विचार है कि ये [illegible] हो सकते हैं। रामायण II [illegible] में ये प्राचीन [illegible] शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण इनकी राजधानी [illegible] [illegible] रामायण II (८३) तथा पाणिनि [illegible] [illegible] में हस्तिनापुर राजधानी है। [illegible]

भाई भीमसेन, उग्रसेन तथा श्रुतसेन शतपथ ब्राह्मण, XIII (५, ४, ३) और शांख्यायन श्रौतसूत्र, XVI (९, ७,) मे कथित है। महाभारत मे उनके कुछ भाइयो का होना उल्लिखित है। वायु तथा मत्स्य पुराणों मे निचक्षु तक सब के नाम है। इनके समय हस्तिनापुर गंगा मे बह गया और कई सौ मील पूर्व हट कर कौशाम्बी बसाई गई। शांख्यायन श्रौतसूत्र का कथन है कि कौरव कुरुक्षेत्र से खदेड़े गए। छान्दोग्य उपनिषत् मट्ची (वर्षा के पत्थर या टीडी) द्वारा कुरु देश का उजाड़ होना कहता है। राय चौधरी का कथन है कि जनमेजय के पीछे राज्य के दो भाग हो गए, जिनमे मूल शाखा हस्तिनापुर मे रही, तथा जनमेजय के भाई कक्षसेन के वंशधर इन्द्रप्रस्थ मे स्थापित हुए। यह शाखा कौशाम्बी बसने के पीछे तक बनी रही। जनमेजय के पीछे कौरवो पर भारी विपत्तियां आईं। एक राजपुत्र तथा बहुतेरी प्रजा पूरब की ओर गईं (राय चौधरी)। पार्जिटर ने पौराणिक कथनो के आधार पर लिखा है कि निचक्षु दक्षिण पांचालो तथा सृंजयो से मिल कर कौशाम्बी गये। प्रयोजन यह है कि ये तीनो शक्तियां कौशाम्बी (वत्सराज्य) मे एक होगईं। समय प्रायः ८२० बी० सी० था।

अब कौरवो का प्रभाव गिर गया और ये मांडलिक नरेश मात्र रह गए। निचक्षु के पहले अधिसीमकृष्ण कुछ प्रतापी थे। इनके समकालिक सूर्यवंशी दिवाकर और बार्हद्रथ सेनजित थे, ऐसा पुराणो मे कथित है। अधिसीमकृष्ण को वायु पुराण सुनाई गई। इनके पीछे नं० (६०) निचक्षु से (न० ८१) क्षेमक पर्यन्त यह वंश पुराणो मे है। निचक्षु वंशी उदयन (नं० ७७) एक प्रतापी राजा थे, जिनका वर्णन आगे आवेगा। उनके पुत्र वहीनर शूर कहे गए है। पुराणो मे अन्तिम नरेश (न० ८१) क्षेमक दुर्वल कहा गया है। प्रधान के अनुसार उदयन ५०० बी० सी० मे गद्दी पर बैठे। ३८२ बी० सी० के निटक महापद्म नन्द ने सारे क्षत्रिय राजाओ को नष्ट करके अपना साम्राज्य स्थापित किया। उसी समय यह राज्य भी डूबा।

जनक विदेहों की महत्ता

शतपथ ब्राह्मण V, १,१,१३. तथा बृहदारण्यक मे जनक सम्राट्

हैं। उशस्ति चाक्रायण के समय कौरवों पर विपत्ति पड़ी। ये जनक के यहाँ आते जाते थे। इनके समय कौरवों की महत्ता तथा पतन दोनों कथित हैं। ऊपर शतपथ ब्राह्मण के आधार पर कहा जा चुका है कि इन्द्रोत दैवाप या दैवापि शौनक जनमेजय के समकालीन थे। उधर सत्ययज्ञ जनक के समय में थे तथा वे इन शौनक से बहुत पीछे के थे। धृति ऐन्द्रोत शौनक के चेले के शिष्य पुलुपि प्राचीन योग्य थे, जिनके चेले पौलुशि सत्ययज्ञ हुये। छान्दोग्य इन्हें बुडिल आश्वतराश्वि तथा उद्दालक आरुणि का समकालीन कहता है और इन दोनों का जनक के यहाँ होना बतलाता है, बृहदारण्यक V (४,८) तथा III (७,१)। सत्ययज्ञ के एक शिष्य भी जनक से मिले (शतपथ ब्राह्मण XI ६.२. १,३)। शतपथ ब्रा० दसवां अध्याय यों कहता है :—

(शतपथ)

जनमेजय के समय वाले—तुरकावषेय

यज्ञवचस राजस्तम्बायन

शतपथ	बृहदारण्यक	
कुश्रि		
शांडिल्य		
वात्स्य		
वामकक्षायण	उद्दालक आरुणि	जनक वाले
माहित्थि	याज्ञवल्क्य	
कौत्स	आसुरि	
माण्डव्य	आसुरायण	
माण्डूकायनि	प्राश्नीपुत्र आसुरिवासिन	
मांजीवी पुत्र	मांजीवी पुत्र	

मांजीवी पुत्र दोनों शाखाओं में वही हैं, जिससे सब की समका-लीनतायें मिलती हैं। अतएव जनक जनमेजय से ५,६ गुरु शिष्य पीढ़ी नीचे हुए। यह समय डाक्टर राय चौधरी के अनुसार १५० या १८० वर्षों का था। अतएव इस वैदिक साक्षी से जनक परीक्षित से प्रायः २०० वर्ष पीछे हुए। परीक्षित से वंशधर इस काल पुराणों में पांच ही लिखे हैं। पौराणिक से वैदिक साक्षी अधिकतर मानी जाती है। इससे जान पड़ता है कि [illegible] वंशावली में [illegible] [illegible] गया।

कोशल और मिथिला राज्यों के बीच मे सदानीर (राप्ती) नदी थी। मिथिला जातकों तथा पुराणों मे कथित है। वह नेपाल मे अब जनकपुर कहलाता है। वैदिक अनुक्रमणी I,, (४३६) मे नमीसाप्य मैथिली राजा हैं। सम्भवत: पुराण वाले प्राचीन निमि पहले थे और जातको के निमि दूसरे। उद्दालक, आरुणि तथा बुडिल आश्वतराश्वि उपनिषदों के अनुसार जनक तथा केकय अश्वपति दोनो के यहाँ जाते थे। सम्भवत: अश्वपति वश का नाम था।

जनक के समकालीन अन्य नव राज्यों के कथन

ब्राह्मण तथा उपनिषत् ग्रन्थो से जनक के समकालीन नौ और राज्य मिलते है, अर्थात गधार, कैकय, मद्र, उशीनर, मत्स्य, कुरु, पांचाल, काशी और कोशल।

गन्धार

इसका कथन त्रेता तथा द्वापर युग के वर्णनो मे भी आ चुका है। छान्दोग्य VI, (१४) मे उद्दालक आरुणि गान्धारी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हैं। उद्दालक जातक (४८७) मे उद्दालक तक्षशिला जाकर विद्या सीखते हैं। सेतकेतु जातक (३७७) कहता है कि उद्दालक के पुत्र सेतकेतु ने तक्षशिला मे विद्या पढ़ी। उपनिषदों मे भी इन श्वेतकेतु के बहुत से विवरण है। कौटिल्य चाणक्य वहीं के विद्यार्थी थे। गन्धार जातक (४०६) मे कश्मीर और तक्षशिला गन्धार मे थे। गन्धार राज द्रुह्यु-वंशी थे। निमि के समय मे गन्धार मे नग्नजीत राजा थे, जिनकी राजधानी तक्षशिला थी (कुम्भकार जतक)। इनके पुत्र सर्वजीत हुए (शतपथ ब्रा० VIII १,४,१०)।

केकय

जनक के समय केकयो का राजा अश्वपति था। शतपथ X,६,२, छान्दोग्य उ० V, ११,४, कहते है कि अश्वपतिने कई ब्राह्मणो को ज्ञान सिखलाया। इनमे आरुणि, औपवेशि, गौतम, सत्ययज्ञ, पौलुशि, महाशाल जाबाल बुडिल आश्वतराश्वि, प्राचीन शाल औपमन्यव और उद्दालक आरुणि के नाम है। जैन ग्रन्थ कहते है कि केकय आधा

आर्य है। (Ancient History of Deccon) में आया है कि केकयों की एक शाखा ८८, १०१, ई० में मैसूर गई।

मद्र, उशीनर, कुरु

इसका विवरण ऊपर भी आ चुका है। मद्रगार सौंगायनि तथा काप्य पतंजल यहीं के थे बृहदा उ० (७.१,)। काप्य पतंजल उद्दालक गे आरुणि के गुरु थे। प्राचीन साहित्य मे मद्र की प्रशंसा है, किन्तु महाभारत कर्णपर्व मे निन्दा है। उशीनर का भी विवरण ऊपर आया है। कौशीतकि उपनिषत् कहता है कि गार्ग्यबालाकि कुछ दिनों उशीनर देश मे रहा। यह बालाकि काशीपति अजातशत्रु और मैथिल जनक का समकालीन था।

शतपथ ब्रा० (XIII ५,४,९,) मे मत्स्य राजा ध्वसन द्वैतवन अश्वमेध करते हैं। महाभारत III (२४,२५) मे द्वैतवन झील तथा जंगल है। मनु संहिता मे यही ब्रह्मर्षि देश है। जनक के समय मत्स्य देश को कौशीतकि उपनिषत गौरवान्वित मानता है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि प्रोत कौशाम्बेय, जनक के यहाँ जाने वाले उद्दालक आरुणि के समकालीन थे। इस काल हस्तिनापुर के बह जाने से तथा मटचीं के उपद्रव से कौरव कौशाम्बी गये। अब से उनका प्रभाव गिर गया, किन्तु भारतों का प्रभाव शतपथ ब्रा० के समय तक रहा। XIII (५, ४, ११)।

काशी

अथर्ववेद में यहां के लोग विदेहों तथा कोशलों के साथ कथित हैं। श्वेतकेतु के समय में जल जातूकर्ण्य (शांख्यायन श्रौतसूत्र, XVI (२९, ५) काशी, विदेह, और कोशल के नरेशों का पुरोहित था। जातक (४०२) में काशी का एक जनक राजा था। काशीराज पौरव थे। अजातशत्रु तथा धृतराष्ट्र काशी के ऐसे राजे थे जिनके नाम इस काल पुराणों में नहीं है। द्वापर में एक अजातशत्रु काशीपति हमारे चौथे अध्याय की वंशावली में है। पुराणों में धृतराष्ट्र का काशीशों में नाम नहीं है। अजातशत्रु उपनिषदों में शिकायत करता है कि मैथिल जनक की उदारता के कारण पंडित लोग उसकी सभा में आते ही नहीं। शतपथ ब्रा० में धृतराष्ट्र काशीराज है। पौरवों के पीछे काशी में जो ब्रह्मदत्त वंश स्थापित हुआ, वह शायद वैदेह हो, ऐसा डाक्टर राय चौधरी का मत है। हरिवंश में श्रीकृष्ण के समय काशी में ब्रह्मदत्त नामक राजा का कथन है। सम्भवतः इसी समय से यह वंश वहाँ स्थापित हो गया। जातक (४२१) में ब्रह्मदत्त वंश नाम है। जातक (४१९) में वह विदेह पुत्र है। उपनिषदों में अजातशत्रु उद्दालक का समकालीन था। उद्दालक जातक अजातशत्रु को ब्रह्मदत्त कहता है। शतपथ ब्रा० (V ५ ५, १४) में भद्रसेन, जो अजातशत्रु का पुत्र था, अजातशत्रु ही कहा गया है। गुत्तिल जातक (२४३) काशी को भारत में मुख्य शहर बतलाता है तथा महावाग भी इसकी प्राचीन महत्ता कहता है। जैनों का कथन है कि काशिराज अश्वसेन ७७७ बी० सी० में मृत उनके तीर्थंकर (पार्श्व) के पिता थे। काशिराज धृतराष्ट्र अश्वमेध करते थे, किन्तु शतानीक शत्राजित ने उन्हें हराया। बृहच्छत्र जातक (३३६) में एक काशिराज श्रावस्ती में घुसकर कोशलेश को बन्दी बनाता है। अन्य जातकों के कई ब्रह्मदत्त काशीनरेश कोशल पर अधिकार स्थापित करते हैं। अस्मक जातक पोतलि अस्सक की राजधानी को काशिराज का शहर बतलाता है।

काशिराज मुंज कोशल, अग और मगध को हराता है। विश्वकर्सेन, उदक्सेन और भल्लाट समय-समय पर काशिराज थे। रैप्सन के

अनुसार काशीराज्य के पच्छिम वत्सराज्य था, उत्तर में कोशल राज्य और पूर्व मे मगध। समय-समय पर वत्सों, कोशलों और मागधों ने काशी जीती। वत्सों और कोशलों की उन्नतियों के बीच मे ब्रह्मदत्त के समय काशी बढ़ी। इसने बुद्ध से प्रायः १५० वर्ष पूर्व कोशल जीत लिया। ६७५ बी० सी० पर्य्यन्त काशी का अच्छा प्रभाव रहा।

कोशल

यह बहुत करके वर्तमान अवध प्रान्त में है। रामायण II ३२,१७. मे चित्ररथ दशरथ के समकालीन थे। दशरथ जातक मे दशरथ और राम वाराणसी के राजा हैं। शतपथ ब्रा० मे कोशल राज्य कुरु पांचाल के पीछे किन्तु विदेह के पूर्व महत्तायुक्त है। प्रश्न उपनि० VI १ तथा शांख्यायन श्रौत सूत्र XVI ९,१३ मे हिरण्यनाभ कौशल्य का नाम है। शतपथ ब्रा० XIII ५,४,५ में आप सुकेश भारद्वाज के समय मे थे। ये भारद्वाज प्रश्न I १ में कौसल्य आश्वलायन के समकालीन थे। मज्झिम निकाय II १४७ मे यही आश्वलायन गोतम बुद्ध के समकालीन तथा सावत्थी के हैं। बुद्ध का जन्म ५६३ बी० सी० में हुआ। अतएव यही समय कौशल्य हिरण्यनाभ का है। यह नाम इस काल अपनी वंशावली मे नहीं है, जिससे यह समय महाकोशल, प्रसेनजित या विडूडभ का हो सकता है। हिरण्यनाभ उन तीनों में से किसी का शायद उपनाम हो। एक हिरण्यनाभ (कुशवंशी), (नं० ५६) थे, किन्तु उनका समय इनसे नहीं मिलता। इन कारणों से डाक्टर राय चौधरी का विचार है कि हिरण्यनाभ, प्रसेनजित और शुद्धोदन कोशल के अंशों के शासक थे। अयोध्या, साकेत और सावस्ती क्रमशः कोशल की राजधानियां हुईं। बौद्धकाल में अयोध्या गिर चुकी थी, किन्तु साकेत और सावस्ती भारत के छः मुख्य नगरों में थीं। पद जातक (४५४) अयोध्या नरेश कालसेन का कथन करता है। बंक, महाकोशल आदि की राजधानी सावस्ती थी। महावग्ग X II (२,४) का कथन है कि ब्रह्मदत्त काशी नरेशों के समय कोशल छोटा सा राज्य था। ६२५ बी० सी० के निकट कोशल का अधिकार काशी पर हो गया है।

अब पुराणों के अनुसार कोशल वंश का कथन करना है। [illegible]

के पुत्र कुश का वंश द्वापर अथवा कलि के आदि में गिर चुका था। कलि में श्रावस्ती नरेश लव (रामपुत्र) के वंशधर बृहद्‌द्वग्ग (न० ५४) पहले राजा थे। इनके प्रपौत्र प्रति०योमात्मज दिवाकर (न० ५८) पुराणों में पौरव अधिसीम कृष्ण का समकालीन कहा गया है। वे मध्यदेशान्तगंत अयोध्या नरेश कथित है, जिससे जान पड़ता है कि इस काल तक कुशवंश का राज्य भी लव वंशियों के अधिकार में आ चुका था। भविष्य पुराण में दिवाकर का वर्णन वर्तमान काल में है। आदिम कलि कालि वाले राजाओं के कथन पुराण मथ थोड़े ही में करते है। इनके पुत्र सहदेव विख्यात कहे गए हैं और तत्पुत्र बृहद्रथ महाशय। (नं ६६) किन्नर को विजयी की उपाधि मिली है और (नं० ६७) अन्तरिक्ष को महान् की। (न ७३) रणंजय बुद्धिमान है और तत्पुत्र सृंजय युद्धप्रिय। सुमित्र (नं० ८०) के विषय में कथित है कि यह अन्तिम राजा था। इस के पीछे सूर्यवश का राज्य नहीं चला। विष्णु पुराण में आया है कि (न० ७२) महाकोशल के भाई शाक्य के पुत्र शुद्धोदन थे जिनके पुत्र गौतम बुद्ध हुए। इनके वंशधर क्रमशः राहुल, क्षुद्रक, कु डक, सुरथ और अन्तिम (नं० ८२) सुमित्र थे।

अतः दोनो वंशो के अन्तिम नरेश सुमित्र होने से यह दूसरी वंशावली कुछ संशयाकीर्ण हो जाती है।

अंतिम काल में कोशल, वत्स, अवन्ती और मगध राज्य प्रधान थे। महाकोशल के पीछे प्रसेनजित कोशलेश पांचों राजाओं में मुख्य थे। उस काल शाक्य वंश मे वासभ खत्तिया नाम्नी एक दासी से एक राज-कन्या उत्पन्न थी, जिसका किसी प्राचीन वैमनस्य के कारण शाक्यो ने प्रसेनजित से विवाह कर दिया। इसी विवाह से उत्पन्न विदूदभ पुत्र अन्त मे कोशलेश हुआ। प्रधान के अनुसार ५३३ बी० सी० मे प्रसेनजित गद्दी पर थे। इनके प्रपौत्र सुमित्र को महापद्म नन्द ने ३८० बी० सी० के निकट राज्यच्युत करके कोशल मगध मे मिला लिया।

मत्स्य

इसमे अलवर, जैपुर और भरतपुर के भाग थे। राजधानी वैराट जैपुर मे थी। ऋग्वेद VII (१८, ६) मे मत्स्य लोग सुदास से हारते

वर्तमान था। करन्डु कलिगराज भी निमि के समकालीन थे। अतएव उस काल कलिग राज्य भी था। महागोविन्द सुत्तन्त *II* (२७०) मे कलिग राज सत्तभु, मैथिल राज रेणु, तथा काशिराज धृष्टराष्ट्र समकालीन थे। पाणिनि IV (१, १७०) तथा बोधायन I (१, ३०, ३१) कलिग का कथन करते हैं, जिसकी राजधानी दन्तपुर नगर मे थी। इस प्रकार उपर्युक्त साहित्य से सम्राट् जनक, रेणु, नमिसाप्य, निमि और कराल जनक के नाम इस काल के विदेह नरेशो मे मिलते है।

दाक्षिणात्य रियासतें

महागोविन्द सुत्तत मे अस्सक राज्य गोदावरी पर है। वहां का ब्रह्मदत्त, रेणु तथा धृष्टराष्ट्र का समकालीन था। ऐतरेय ब्राह्मण VIII (१४) मे भोजराज दक्षिण मे है। उसकी प्रजा सत्वत है। शतपथ ब्राह्मण XIII (५, ४, ११, २१) मे भोजो के अश्वमेध का घोड़ा लेकर भरत उन्हे हराते है। भरत का राज्य गगा यमुना के निकट था। उसी के समीप यह भोज राज्य होगा। मत्स्य (४४, ३६) तथा वायु (९५, ३५, ३६) पुराणो मे भोज विदर्भों की बिरादरी मे थे। कालिदासीय रघुवश V (३९, ४०) में विदर्भ राज भोज हैं। ऐतरेय ब्राह्मण मे कई भोज राज्य हैं। दंडक भी भोजराज्य था, जहां की राजधानी कुम्भावती थी (जातक ५२२)। इन आर्य राज्यो के अतिरिक्त विन्ध्य के दक्षिण भारत मे अनार्य आन्ध्र, शबर, पुलिन्द और मूतिब (ऐतरेय ब्राह्मण VIII (१८) भी राज्य करते थे। मत्स्य और वायु पुराणो मे शबर और पुलिक दक्षिणपथ के निवासी है। कुछ शबर अब ग्वालियर तथा विजगापट्टम के पहाड मे है। राय चौधरी के अनुसार पुलिक नगर दशार्ण के दक्षिण पूर्व विदिशा या भेलसा था। मूतिबो का निश्चय नही है। विदेहो के पीछे बिम्बिसार के समय तक वैदिक साहित्य कुछ अधिक नही कहता. किन्तु बौद्ध साहित्य सहायता देता है। सूत्रकाल मे माहिष्मती (मान्धाता), भृगुकच्छ (भरोच), शूर्पारक (सोपर कोंकन), अश्मस (पोएडन्य), मूलक (प्रतिष्ठान), कलिग (दन्तपूर) और उत्कल (उत्कल अर्थात् उत्तरी उड़ीसा) की शक्तियां थी।

मगध

द्वापर सम्बन्धी विवरण मे हम भारतीय युद्ध के पीछे सहदेवात्मज (नं० ५४) सोमाधि को गद्दी पर देख आये हैं। इनकी राजधानी गिरिव्रज थी। पुराणों मे इस वंश के राजत्वकाल निम्नानुसार हैं:—

नाम राजा	नम्बर वंशावली	वर्षों मे राजकाल
सोमाधि	५४	५८
श्रुतश्रवस	५५	६४
अयुतायुस	५६	२६
निरमित्र	५७	४०
सुक्षेत्र	५८	५६
बृहत्कर्मन, सेन	५९	२३
१६ बार्हद्रथ राजे	....	७२३

इस प्रकार केवल पांच पुश्तों के राजत्वकाल का जोड़ २६७ वर्ष है, जिससे प्रति पीढ़ी का परता साढ़े तिरपन वर्ष है। इसी प्रकार १६ राजाओं मे यही परता प्रायः ४५ वर्ष आता है। पुरातत्वज्ञ ऐसे कथनों को अग्राह्य मानते हैं। अन्तिम नरेश नं० ७५ रिपुंजय ५६३ बी० सी० में गद्दी पर बैठे तथा ५१३ बी० सी० में अपने मंत्री पुणिक, पुलिक, सुनिक, शुनिक अथवा सुनक द्वारा मारे गए। गौतम बुद्ध का जन्मकाल ५६३ बी० सी० में है। मंत्री का वंश प्रद्योत कहलाता है जिसका वर्णन आगे यथास्थान होगा।

शुद्धोदन और गौतम बुद्ध का शाक्यवंश

सिद्धार्थ उपनाम गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन तथा पुत्र राहुल उपर्युक्तानुसार लव वंश के नरेश थे। शुद्धोदन के पिता का नाम शाक्य लिखा है और पितामह का संजय। संजय से ऊपर वाले पूर्व पुरुषों के नाम क्रमशः रणंजय, कृतंजय, धर्मा, कुलश्रेष्ठ, अमित्रजित, सुवर्ण, अन्तरिक्ष, किन्नर, सुनक्षत्र आदि हैं। ये लोग कपिलवस्तु के राजा (गण मुख्य) थे। पुराणों से यह पता नहीं चलता है कि इस वंश में [illegible] का राज्य कब हुआ और इसने कपिलवस्तु में [illegible] [illegible]। [illegible]

हो गया है। इसकी ख्याति बौद्ध संसर्ग पर ही विशेषतया निर्भर है। बौद्धग्रन्थ महावंश लंका में पहली शताब्दी के लगभग लिखा गया। इसका ऐतिहासिक मूल्य पूर्णतया निर्विवाद नहीं है। पण्डितों ने इसमें बहुत सी ऐतिहासिक अशुद्धियाँ पाई हैं। फिर भी इसके बहुत से वर्णन शुद्ध भी हैं। इसके अनुसार अयोध्या-नरेशों में शाक्यों के अन्तिम पूर्व पुरुष महाराजा सुजात थे। पौराणिक राजवंश में सूर्यवंश का कोई भी राजा सुजात नहीं कहलाता था। महावंश के अनुसार सुजात की पटरानी से पाँच पुत्र और पांच कन्याएँ उत्पन्न हुईं और जयन्ती नाम्नी रानी से जयन्त नामक एक छठा पुत्र था। महाराज ने जयन्त ही को अपना उत्तराधिकारी बनाया और पाँच पुत्रों को निर्वासित कर दिया।

ये लोग पाँचों बहिनों को लिए हुए काशीराज के यहाँ रहने लगे जहाँ इनके सुव्यवहार से प्रजा इनपर अनुरक्त हो गई। इस बात से शङ्का मान कर काशिराज ने भी इन्हें देश से निकाल दिया और तब ये लोग उत्तर चलकर महर्षि कपिल के आश्रम में पहुँचे और वहीं ऋषिवर के आदेशानुसार जंगल काट कपिलवस्तु नगर बनाकर बस गये। वहाँ क्षत्रिय जाति के अभाव में इन पाँचों भाइयों ने अपनी ही एक-एक बहिन के साथ विवाह कर लिया। यह सुन इनके पिता महाराजा सुजात ने विद्वन्मण्डली एकत्रित करके प्रश्न किया कि राजकुमारों का यह कार्य शक्य है अथवा अशक्य। विद्वानों ने आपद्धर्म के विचार से इसे शक्य होने की व्यवस्था दी और तभी से यह राजकुल शाक्य कहलाने लगा। विद्वानों की राजा के प्रतिकूल इस व्यवस्था देने से सिद्ध होता है कि उस काल के भी विद्वान् लोग आजकल ही के समान पक्षपात रहित थे।

सुजात नाम को पौराणिक वंशों के किस राजा का उपनाम समझना उचित है, इस प्रश्न का निर्णय कठिन कार्य है। पौराणिक वर्णनों के अनुसार राजा युधिष्ठिर के समकालिक सूर्यवंशी राजा बृहद्बल अयोध्यानरेश न थे वरन् साकेत (अवध) में एक दूसरे प्रान्त के स्वामी थे, तथा अयोध्या में एक दूसरा ही राजा था। बृहद्बल के वंशधरों ने पीछे अयोध्या का राज्य पाया। इस कुल के अन्तिम राजा

सुमित्र और इसके पूर्व पुरुष पौराणिक वर्णनानुसार स्वयं गौतम बुद्ध की सन्तान थे। महावंश के प्राचीन नाम पौराणिक सूर्यवंश के नामों से नहीं मिलते हैं। यह ग्रन्थ लङ्का में सिंहली भाषा में लिखा गया था। इतनी दूरी पर सुने सुनाये नाम लिखने से विरोध का होना स्वाभाविक ही है और इसके मिटाने का प्रयत्न भी व्यर्थ समझ पड़ता है, क्योंकि गौतम बुद्ध की वंशावली के पौराणिक वर्णन भी निश्चित नहीं समझ पड़ते, जैसा कि ऊपर आ चुका है। विष्णु पुराण द्वारा कथित वंशावली हम दे ही चुके हैं। अब सूक्ष्मतया महावंश का भी कथन लिखे देते हैं।

शाक्यवंशी राजा उल्कामुख के अमृता नाम्नी कन्या हुई जो वयस्क होने पर कुष्ठ रोग ग्रस्त हो गई। यह देख राजकुमारों ने उसे हिमाचल की एक गुफा में छोड़ दिया। वहां कोलि नामक राजर्षि के प्रयत्न से राजकन्या रोगविहीना हुई और इन दोनों का विवाह भी हो गया। कोलि और अमृता के पहाड़ ही में रहते हुए ३२ पुत्र उत्पन्न हुए और वयस्क होने पर माता की आज्ञा से ये लोग कपिलवस्तु पहुँचे। वहां शाक्य महाराजा ने इनका अच्छा स्वागत करके रोहिणी नदी के पूर्व स्थान दिया जहां ये लोग कोलिग्राम बसा कर रहने लगे। इन लोगों का शाक्य कुमारियों के साथ विवाह हुआ और ये कोलिय कहलाने लगे। बहुत दिन पीछे देवदह के कोलिय राजवंश में राजा सुप्रभुत के माया और महाप्रजावती नाम्नी दो कन्याएँ और पांच पुत्र उत्पन्न हुए। इधर शाक्यवंश में राजा सिंहनु के पुत्र राजा शुद्धोदन हुए जिन्होंने उपर्युक्त दोनों कन्याओं के साथ विवाह किया। इन्हीं महाराजा शुद्धोदन और मायादेवी के पुत्र प्रसिद्ध महात्मा गौतम बुद्ध हुए।

प्रभा चन्द्र सूर्य के समान थी, उसके उदर मे प्रवेश कर गया।" ब्राह्मणो का मत हुआ कि इस स्वप्न का फल यह है कि रानी का बालक या तो चक्रवर्ती राजा होगा या बुद्ध। अब तक शुद्धोदन के कोई सन्तान न थी इसलिए इस गर्भाधान से बड़ी प्रसन्नता मनाई गई। महामाया की इच्छा थी कि पुत्रोत्पत्ति उसके पिता के घर मे हो। इस विचार से पति की सम्मति ले अपनी बहिन प्रजावती के साथ वह देवदह के लिए प्रस्थित हुई। शाक्य राज्य ही मे राजा के बनवाये हुए लुम्बिनी कानन मे उनकी रानियां ठहरी। शुद्धोदन भी लुम्बिनी कानन तक उन्हे पहुँचा कर वापस चले गये। लुम्बिनी मे रात को महामाया ने चार स्वप्न देखे, एक यह कि छः दाँतो वाला एक सुन्दर श्वेत गज उसके उदर मे घुस गया। दूसरा यह कि वह आकाश मे उड़ रही है और अन्तिम दो स्वप्न थे कि वह एक ऊँचे पहाड़ से उतरती है तथा सहस्रो मनुष्य उसके सामने दण्डवत् करते है। इसी कानन मे महामाया को ऐसे समय मे प्रसव-वेदना हुई जब वह उद्यान मे सैर कर रही थी। रानी प्रसव-वेदना से विकल हो एक साल-वृक्ष की डाली पकड़ कर खड़ी हुई थी जब बुद्ध महात्मा का जन्म हुआ। यह शुभ समय माघ पूर्णिमा ५६३ बी० सी० का है।

सूर्यवंशी राजाओ का वर्णन हम यहीं समाप्त करते है। शेष इतिहास आगे के अध्यायो मे यथास्थान लिखा जायगा। पुराणो मे लिखा है कि उपर्युक्त ऐक्ष्वाकु दिवाकर, के समय पर्यन्त बार्हद्रथ सेनजित तथा कौरव राज (अधिसीम कृष्ण) के पीछे महापद्मनन्द तक राजे निम्नानुसार हुए:—२७ पांचाल नरेश, २४ काशिराज, २८ हैहय भूपाल, ३२ कलिंगपति, २५ अश्मक भूपति, २४ ऐक्ष्वाकु नरपति, २६ कौरव-पौरव नराधिप, २८ मैथिल नृप, २३ शौरसेन महीपति और २० वीतिहोत्र नरपाल। इसी काल मे विदिशानरेश नागराज शेष का पुत्र भोगी, शत्रुओं का पराजित करने वाला हुआ। वायु पुराण के अनुसार इसका नाम पुरञ्जय था। इसने नाग वंशियों का पराक्रम बहुत बढ़ाया। इसके वंशधर रामचन्द्र, चन्द्रांशु, नृखवन्त, धनधर्मण, वंगर और भूतनंद प्रसिद्ध राजे हुए। उपर्युक्त अनेकानेक राजकुलो मे से अनेको का अस्तित्व नाम मात्र को अथच अनिश्चित था। आदिम कलिकाल के

अंत में इनमें से बहुत कम घराने जीवित पाये गये; जो बच गये वे महापद्मनन्द द्वारा ३८२ बी० सी० तक नष्ट हुये।

सोलह रियासतें

गौतम बुद्ध के समय मगध में बिम्बिसार नरेश थे। अन्तिम विदेहों के पीछे से बुद्धकाल के पूर्व तक सोलह रियासतों का कथन आया है। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय इनके नाम निम्नानुसार कहता है—

काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जी, मल्ल, चेतिय (चेदि), वंस, (वत्स), कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अस्सक, अवन्ति, गन्धार और काम्बोज। ये सब महाजनपद कहलाते थे। ये [illegible] तथा महाकोशल के बीच में हुए। यही नामावली जैन भगवती सूत्र में निम्नानुसार है:—अंग, बंग, मगध, मलय, मालव, अच्छ, कौच्छ, पाढ़, पांड्य, लाढ़ (राढ़), वज्जी, मोलि, काशी, कोशल, अवह और शम्भुत्तर। मालव शायद अवन्ती एवं मोलि मल्ल हैं। इनमें से काशी, कोशल और मत्स्य के विवरण ऊपर आ चुके हैं। जातकों में लिखा है कि काशी राज्य का फैलाव किसी समय २००० वर्गमील था। कोशल की श्रावस्ती वर्तमान नेपाल में गोरखपुर से उत्तर पश्चिम ५० मील की दूरी पर है। इस काल कोशलों का राज्य बनारस और साकेत पर भी था और शाक्यसंघ इनको अधीश्वर मानता था। कोशल राज्य, दक्षिण में गंगा और पूरब में गण्डक तक फैला हुआ था। किसी कोशलेश बक ने काशी जीतने का प्रबन्ध किया [illegible] काशी विजेता कहलाता था।

मागधों के कथन है। ऐतरेय ब्रा० VIII (२२) मे अंग वैरोचन राजा थे। महागोविंद सुत्तत मे धतरत्थ अंगपति थे। अग के पुत्र दधिवाहन उत्तराधिकारी थे। कहते है कि उनकी कन्या चन्द्रबाला स्त्रियों मे पहली महावीर की शिष्या जैन थी। पौराणिक वंशावली के अनुसार कोई अग और दधिवाहन त्रेता में भी पड़ते हैं। कौशाम्बी नरेश शतानीक (नं० ७६) ने चम्पा पर धावा किया। अंगपति ब्रह्मदत्त ने मगधपति भट्टिय को हराया। वत्सपति अगराज के साथी थे। कौशाम्बी नरेश (७७) उदयन ने दृढ़ वर्मन को फिर से अंगपति बनाया। (प्रिय दर्शिका अंक IV, बिंबिसार ने अपने पिता के समय ब्रह्मदत्त से अंग जीत कर मगध मे मिला लिया।

मगध

इसमे वर्तमान पटना और गया जिले हैं। गिरिव्रज या गया के निकट पुराना राजगृह राजधानी थी। ऋग्वेद III ५३,४ मे प्रमगंड कीकट नरेश था। यास्क निरुक्त (६,३२) कीकट को अनार्य कहते है। अभिधान चिन्तामणि मे कीकट मगध है। अथर्ववेद V (२२,१४) मे मगध का कथन है। पहले मागध बुरे थे। शांखायण आरण्यक मे इनका मान हुआ। महाभारत में बृहद्रथ पहले मगधपति हैं। ऋग्वेद I (३६ १८ X ४९,६) मे जरासन्ध से असंबद्ध बृहद्रथ हैं। उस काल इसमे ८०००० ग्राम लगते थे और यह विन्ध्याचल तथा गंगा, चंपा और सोन नदियो के बीच मे था। इसकी परिधि २३०० मील कही गई है (रिजडेविड्स)। गौतम बुद्ध की उत्पत्ति से पीछे वाला मागध विवरण यथा स्थान आवेगा।

वज्जी, वज्री

इस काल यह प्रजातंत्र राज्य था। इसका फैलाव २३०० वर्गमील बौद्ध ग्रंथो मे लिखा है। मिथिला वैशाली से उत्तर पच्छिम ३५ मील पर है। इसी के निटक जनकपुर नामक स्थान है। विदेह राज्य टूट कर ही वज्जी संघ बना। इसमे निम्न कथित अष्ट कुल थे:—विदेह, लिच्छवि, ज्ञात्रिक, वज्जी, उग्र, भोग, ऐक्ष्वाकु और कौरव। पहले चार प्रधान थे। विदेहो की राजधानी मिथिला थी तथा लिच्छवियो की वर्तमान

मुजफ्फर नगर ज़िले में वैशाली (प्राचीन विशाला पुरी) थी। ज्ञात्रिकों की राजधानियां वैशाली के निटक, कुंडपुर और कोल्लाग थीं। इनमें सिद्धार्थ और तत्पुत्र महावीर जिन थे। वज्जी का कथन पाणिनि IV (२, १३१) में है। वैशाली पूरे संघ की भी राजधानी थी। उसके तीन भाग थे। वैशालिक वंश के संस्थापक इक्ष्वाकु पुत्र विशाल थे (रामायण के अनुसार) तथा पुराणों में वे नाभाग के वंशधर थे। विशाल के पीछे हेमचन्द्र, सुचन्द्र, धूम्राश्व, सृंजय, सहदेव, कुशाश्व, सोमदत्त, काकुत्स्थ और सुमति का होना राय चौधरी कहते हैं। सहदेव और सृंजय शतपथ ब्राह्मण II (४४, ३४) में हैं। लिच्छवि वाहरी न होकर असली क्षत्रिय थे। वे जैनों तथा बौद्धों के सहायक थे। महावीर जिन तथा कुणिक अजातशत्रु की मातायें लिच्छवि थीं।

कौशाम्बी के पूर्व पुराने चेदि बुन्देलखंड तथा निकट के देश मे था और कभी नर्मदा तक फैलता था। राजधानी सुत्तिमती थी। ऋग्वेद VIII (५, ३७, ३९) दानस्तुति कशु चैद्यु का कथन करता है। चेतिय जातक यो राजवंश देता है:—महासम्मत, रोज, वररोज, कल्यान, वर कल्यान, उपोसथ, मान्धाता, वर मान्धाता, चर, उपचर या अपचर। शायद यही महाभारत के उपरिचर वसु हो। जातक तथा महाभारत दोनो इनके पांच-पांच पुत्र बतलाते हैं। जातक ४८ कहता है कि काशी से चेदि के मार्ग मे डाकू लगते थे।

वंश वत्स

इसकी राजधानी कोशाम्बी (वर्तमान कोसम) प्रयाग के निकट थी। रामायण I (३२, ३-६) तथा महाभारत I (६३, ३१) कहते है कि चेदि राज ने कौशाम्बी बसाई। काशी राज (नं० ३९) वत्स वशकर थे (हरिवंश २९, १३, महाभारत XII ४९, ८०) शतानीक (दूसरे) पौरव (न० ७६) ने विदेह राजकुमारी से विवाह किया तथा दधिवाहन के समय अंग पर आक्रमण किया। जातक (३५३) कहता है कि संसुमार गिरि का भर्गराज्य वत्स का करद था।

कुरु

जातको मे इन्द्रप्रस्थ पर युधिष्ठिर के वंशजो का राज्य लिखा है, तथा धनजय कौरव्य और सुतशोम के नाम शासकों में है। राष्ट्रपाल कौरव सरदार था। जैनो के उत्तराध्यान सूत्र मे कुरुदेश के इशुकार नगर मे इशुकार राजा लिखे है। सम्भवत: यह परीक्षित की उस दूसरी शाखा के शासक थे, जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ तथा इशुकार थी। अनन्तर कौटिल्य के अनुसार 'कुरु देश मे संघ राज्य स्थापित हुआ।

पांचाल

यहाँ के दुर्मुख निमि के समकालीन थे। दुर्मुख विजयी कहे गए हैं। चूलनि ब्रह्मदत्त पांचाल राज्य का कथन जातक (५४६), उत्तराध्यान सूत्र, भासकृत स्वप्न वासवदत्ता, तथा रामायण, I ३२, मे है। कौटिल्य यहां भी संघ राज्य बतलाते हैं।

शूरसेन

कच्चान बौद्ध के समय शूरसेनों के राजा अवन्तिपुत्त थे। उनके द्वारा मथुरा प्रान्त में बौद्ध धर्म फैला। काव्य मीमांसा में कुविन्द शूरसेन राजा थे। मेगास्थनीज के समय में शूरसेन लोग थे।

अस्सक (अश्मक)

सुत्तनिपात (९७७) अस्सक को गोदावरी के निकट बतलाता है। यह महाराष्ट्र में था। पाणिनि IV (१, १७३) में यह दाक्षिणात्य प्रान्त है। यह जाति उत्तर पश्चिम में भी थी, जिसे ग्रीक लोग अस्सिकनोई कहते हैं। द्रोणपर्व में भी अश्मक पुत्र का कथन है। राजधानी पोतन या पातलि थी। यही महाभारत का पौदन्य था। मूलक इसके दक्षिण था। अनन्तर अश्मकों ने मूलक और कलिंग पर अधिकार किया। सोमनन्द जातक में अस्सकों का अवन्ति से सम्बन्ध है। वायु पुराण ८८ (१७७, ८) में अश्मक और मूलक इक्ष्वाकु हैं। ये दक्षिण शासन के सूर्यवंशी राजे थे। महागोविन्द सुत्तन्त में निम्न लिखित लोग समकालीन हैं:—ब्रह्मदत्त अस्सक राज, सत्तभु कलिंगराज, वैस्सभु अवन्तिराज, भरत सोवीर राज, रेणु विदेहराज, धतरट्ठ अंगराज, धतरट्ठ काशिराज। चुल्ल-कलिंग जातक में अरुण अस्सक राज कलिंग जीतता है।

को पठौनी भेजी तथा युद्ध मे प्रद्योत को हराया। पाण्डवों ने गन्धार को धमकाया तथा फारस ने उसे जीत लिया। ५१६ बी० सी० वाले डेरियस की प्रजा मे गन्धार लोग भी थे। गन्धार मे पूर्वी अफगानिस्तान और उत्तरी पश्चिमी पजाब थे। राजधानी तक्ष-शिला थी।

काम्बोज

यह प्रान्त उत्तरापथ में गन्धार के निकट था। राजपूर इसका राज घर था। ह्यूयन्त्सांग का राजपुर पुंच के दक्षिण या दक्षिण पूर्व था। इसकी पश्चिमी सीमा काफरिस्तान से मिली थी। यास्क के समय काम्बोज भारतीय आर्यो से पृथक थे। वश ब्रा० मे काम्बोज औपमन्यव ऋषि हैं। भूरिदत्त जातक, (५४३) में उनके जंगली रिवाज थे। ह्यूयन्त्सांग भी ऐसे ही कथन करते है। नन्दिनगर काम्बोजों का शहर था। महाभारत मे चन्द्र वर्मन और सुदक्षिण काम्बोज थे। उस काल यह राज शक्ति है किन्तु कौटिल्य मे सघ शक्ति। राजधानी द्वारिका थी।

उपरोक्त १६ रियासतो के विवरण मे जहाँ आधार नही लिखा है, वहां डाक्टर राय चौधरी या रिजडेविड्स का आधार समझना चाहिए।

कर्ण पर्व मे पांचाल, कुरु, शाल्व, मत्स्य, शूरसेन, नैमिष और चेदि प्रशंसनीय है, तथा आंगों, गन्धारो एव मद्रको की निन्दा है। महाभारत के विविध वर्णनो के समय अनिश्चित है, क्योंकि जय के रूप मे उसके प्राचीन ग्रथ होने पर भी उसमे परिवर्द्धन इतने होते आये हैं कि यह नही कहा जा सकता, कि उसका कोई कथन किस काल के भारतीय विचारो का द्योतन करता है? भारतीय विविध प्रान्तो की सभ्यता के विषय मे आपस्तव और बोधायन के विवरण यथा स्थान आवेगे, जिनके कथन समय की दृष्टि से दृढ़ है।

पहले काशी कौशलो के युद्ध हुए। काशी वाले पहले कुछ जीत कर अन्त मे नष्ट हो गए। महाकोशल और प्रसेनजित काशी पर भी अधिकृत थे। कोशल नरेश के पांच मातहत थे, अर्थात काशी,

यायाति, सेतव्या नरेश, हिरण्य नाभ कौशल, और कपिलवस्तु के शाक्य। महाकोशल के समय मगध में बिंबिसार राजा थे।

बुद्ध के समय में ये सोलहों राज्य वर्तमान न थे वरन् इनमें से कुछ लुप्त हो चुके थे जैसा कि ऊपर दिखाया गया है। फिर भी बौद्धों के अंगुत्तर और विनय ग्रन्थों में इन सोलह राज्यों की नामावली लिखी है जिससे जान पड़ता है कि यह कुछ प्राचीनतर समय से सम्बन्ध रखती है। दक्षिण के राज्यों का वर्णन इसमें नहीं है। कुछ बौद्ध ग्रन्थों में पैठण उपनाम पतित्थान का नाम आया है। यह आंध्रों की राजधानी थी। दक्षिणपथ का भी नाम है। इससे दक्षिण देश का अर्थ निकलता है। महाभारत में भी सहदेव के विजय में दक्षिणपथ का नाम मिलता है। निकाय ग्रन्थों में कलिङ्ग के वन का नाम लिखा है और यह भी कहा गया है कि उस काल दूर देशों में समुद्र यात्रायें होती थीं तथा जहाज़ चलते थे। कालिंग उपनिवेश की राजधानी दन्तिपुर में थी। वाल्मीकीय रामायण इन प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से पुरानी है। उस में लिखा है कि रामचन्द्र के समय में ठेठ दक्षिण में चोल और पाण्ड्य राज्य थे। इस कथन से इतना अवश्य सिद्ध होता है कि वाल्मीकि के समय वाले उत्तरी आर्य लोग दक्षिण का हाल बहुत कुछ जानते थे। बहुतेरे पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि आर्य लोग पंजाब से पूर्व की ओर गंगा और यमुना के निकट से आये। रिस डेविड्स का कथन है कि इन मार्गों के अतिरिक्त आर्य लोग सिन्ध नदी के किनारे कच्छ होते हुए अवन्ती गये और कश्मीर से पहाड़ के किनारे किनारे कोशल होते हुए शाक्य, तिरहुत, मगध और अंग देशों में पहुँचे।

देश की राजधानी थी। यह भागलपुर के पूर्व [illegible] भारतीय उपनिवेशियों ने कोचीन चाइना में इसी नाम की [illegible] बसाई। कश्मीर में भी चम्पा नामक एक नगर था। [illegible] उत्तरी पाञ्चाल की राजधानी थी। (५) कौशाम्बी ([illegible]) [illegible] को कौरव राजा ने हस्तिनापुर के डूब जाने पर बसाया ऐसा महाभारत में लिखा है। यह यमुना नदी के किनारे काशी से २३० मील की दूरी पर है। पीछे से यह वत्सों की राजधानी हुई। बौद्ध ग्रन्थों में इसका वर्णन बहुतायत से आया है। (६) मथुरा यमुना नदी के किनारे अब भी स्थित है। इसमें बहुत से प्राचीन चिह्न मिलते हैं। बुद्ध के समय में मथुरानरेश को अवन्तिपुत्र भी कहते थे। इससे ज्ञात पड़ता है कि उसकी माता उज्जैन के घराने की थी। गौतम बुद्ध भी यहाँ पधारे। मथुरा का पुराना नाम मधुपुरी था। पीछे से मधु के वंशियों से छीनकर इस पर रामचन्द्र के भाई शत्रुघ्न ने राज्य जमाया। उनके भी वंशजों को निकाल कर यादव भीमरथ ने इसे अपनी राजधानी बनाया। बुद्ध के समय में इसकी बहुत अवनति हो गई थी किन्तु मिलिन्द के काल (१५७ बी० सी०) में यह फिर उन्नत दशा में थी। इसके नाम पर दक्षिण में भी एक नगर बसाया गया। (७) मिथिला विदेह-नरेश की राजधानी तिरहुत में थी। (८) राजगृह उपनाम राजगिरि बिम्बिसार का बसाया हुआ है। इस नामके दो नगर थे जिन में से पुराने को गिरिव्रज कहते थे। बिम्बिसार ने नया राजगृह बसाया। (९) रोरुक सौ-वीर (सूरत) की राजधानी थी। यहाँ वणिज व्यापार बहुत होता था। कहते हैं कि यहूदी राजा सालोमन के जहाज़ भी व्यापारार्थ यहाँ आते थे। पीछे से इसका नाम रोरुआ भी हो गया। (१०) सागल भारत के उत्तर पश्चिम में था। यह मद्र देश की राजधानी थी और महाभारत के समय में साकल कही जाती थी। राजा मिलिन्द यहीं राज्य करते थे। (११) साकेत (वर्तमान सुजान-कोट) जिला उन्नाव (अवध प्रदेश) में सई नदी के किनारे पर था। प्राचीन काल में यह कई बार कोशल का राज-निवास था। बुद्ध के समय में कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी जो साकेत से ४५ मील पर थी। हिन्दुस्तान के ६ बड़े नगरों में उस काल यह भी एक था।

(१२) श्रावस्ती (सावत्थी) पुरी सूर्यवंश के राजा श्रावस्त की बसाई हुई थी। इसका स्थान जानना कठिन है। यह साकेत से ४० मील उत्तर, राजगृह से ३३७ मील उत्तर-पश्चिम, सांकाश्य से २२५ मील, अचिरवती नदी के किनारे स्थित थी। बुद्ध के समय में यह राजा प्रसेनदि की राजधानी थी। (१३) (उज्जैनी) उज्जैन प्राचीन काल में भी अपने वर्तमान स्थान पर थी। अशोक पुत्र महीन्द्र यहीं उत्पन्न हुआ। इसी ने लंका में बौद्धमत फैलाया। (१४) वैशाली लिच्छवी राजकुल की राजधानी थी। बुद्ध के समय में यहां वज्जी लोग रहते थे जिनसे अजातशत्रु का युद्ध हुआ। यह तिरहुत प्रदेश में गङ्गाजी से २७ मील की दूरी पर थी। इनके अतिरिक्त २० मुख्य नगरों में निम्न भी थे:— आलवी, इन्द्रपत्त, ससुमार गिर, कपिल वत्थु, पातलिपुत्तक, जेतुत्तर, संकस्स, कुसिनारा और उक्कत्थ (राय चौधरी)। इस काल में निम्न स्थानों पर विश्वविद्यालय थे:—

(१) तक्षशिला (तक्षसीला) (२) कन्नौज, (३) काशी, (४) उज्जैन, (५) मिथिला, (६) मगध, (७) श्री धन्य कटक, (८) राजगृह, (९) वैशालि, (१०) कपिलवस्तु, (११) श्रावस्ती, (१२) कौशाम्बी, (१३) जेतवन, और (१४) नालन्द। यहां पर दूर दूर से विद्यार्थी आ आकर विविध विद्याओं की शिक्षा पाते थे।

अज्ञात थी। इससे जान पड़ता है कि दास-प्रथा ने भारत मे कभी जोर नहीं पकड़ा।

कौटिल्य के अर्थ शास्त्र से दासों का अस्तित्व प्रकट है, किन्तु ग्रीक राजदूत उनका अभाव बतलाता है। जान पडता है कि दास कहे जाने वालों की सख्या इतनी कम थी और उनसे ऐसा सुव्यवहार था कि राजदूत ने उन्हें भी अदास समझा।

जातकों के देखने से प्रकट होता है कि बौद्ध काल के पूर्व सब जातियो के मनुष्य अपनी जातियों से इतर व्यापार भी करने लगे थे। ब्राह्मण लोग व्यापार करते थे तथा धनुर्विद्या, मृगया, कपड़ा बुनना, पहिया बनाना आदि के भी काम करने लग गये थे। वे खेती बहुतायत से करते और गाएँ तक चराने लगे थे। क्षत्रिय लोग व्यापार करते थे और धनुर्विद्या के काम की नौकरी भी। एक क्षत्रिय के विषय मे लिखा है कि उसने कुम्हार, माली, बावर्ची और झाड़ू बनाने वाले के काम किये थे। फिर भी इन लोगों की जातियों में कुछ गड़बड़ नही हुआ।

मुर्दों के जलाने की इस काल कई प्रथाये थीं। बड़े आदमियो के शव जलाये जाते थे और उनकी राख इकट्ठी करके गाड़ दी जाती थी तथा उसी पर स्तूप बनाया जाता था। साधारण मनुष्यों के शव जलाये जाते और कभी कभी मैदानो मे रख दिये जाते, जहां या तो उन्हे पशु पक्षी खा जाते अथवा वे सड़ कर नष्ट हो जाते थे। कुछ ऐसी ही प्रथा पारसियो मे भी अब तक है। उस समय के प्रचलित व्यापारों के नाम महाराजा अजातशत्रु और गौतम बुद्ध की बातचीत मे कहे गये है। यद्यपि यह छठी शताब्दी बी० सी० की है तथापि यही दशा बौद्धकाल के कुछ पहले थी। व्यापारा के नाम निम्नानुसार है :—(१) हाथी सवार, (२) घुड़-सवार, (३) रथी, (४) धनुर्धारी, (५—१३) सेना की भिन्न-भिन्न ९ श्रेणियां, (१४) दास, (१५) बावर्ची, (१६) नाई, (१७) नहलाने वाले, (१८) हलवाई, (१९) माली, (२०) धोबी, (२१) जुलाहे, (२२) झाआ बनाने वाले, (२३) कुम्हार, (२४) मुहर्रिर, (२५) मुसद्दी, (२६) किसान।

इनके अतिरिक्त १८ प्रकार के कारीगर भी प्राचीन पुस्तकों में मिलते हैं जिनमें लकड़ी, पत्थर, धातु आदि पर काम करने वालों को समझना चाहिये। चमड़ा और हाथी दांत का काम, रँगने, जौहरीपन, मछली मारने, कसाई, मल्लाह, चित्रकार आदि के भी कार्य बहुतायत में होते थे। इनके अतिरिक्त सौदागरों की भी संख्या बहुत थी तथा इनकी रक्षा के लिये स्वेच्छासेवक पुलिस भी होती थी। रेशम, मलमल, जिरह बख्तर, कारचोबी, कम्मल, दवायें, जवाहिरात, हाथीदांत आदि के व्यापार बहुतायत में होते थे। सौदा में बदलौअल नहीं होती थी वरन् मुद्राओं का व्यवहार था। महाभारत आदि में सोने की मुद्राओं का वर्णन है। बौद्धकाल में तांबे के सिक्के चलन का हाल लिखा है किन्तु चांदी के सिक्कों का वर्णन नहीं है। सौदागर एक दूसरे पर हुंडी काटते थे। सूद का लेना उचित समझा जाता था। मनुस्मृति में सवा रुपया सैकड़ा मासिक सूद लिखा है और कहा गया है कि इससे अधिक लेने वाला पापभागी होता है। रिस डेविड्स ने लिखा है कि गरीबी कहीं नहीं दीखती थी। किसी स्वतन्त्र मनुष्य का मजदूरी करना मात्र बड़ी विपत्ति समझी जाती थी। जमींदार लोग उस काल में न थे और प्रजा को पर्याप्त भूमि जोतने को मिलती थी।

सहारे रास्ता ठीक रखते थे। लंका का नाम नहीं आया है। ताम्रपर्णी द्वीप का कथन है जिससे लंका का प्रयोजन समझ पड़ता है।

वैदिक समय से सम्बन्ध रखने वाला साहित्य-काल इसी समय के साथ समाप्त होता है। आर्य-सभ्यता ने भारत मे राजनीति, धर्म, समाज, साहित्य, व्यापारादि की जो जा उन्नति की, उसका वर्णन हम ऊपर दे आये है। अब तक भारतीय समाज ने प्राचीन परिपाटियो का उचित मान करके धीरे धीरे विकास करते हुए सभी विभागो मे उन्नति दिखलाई किन्तु दस्यु-पराजय से इतर कोई क्रान्ति अथवा भारी उथलपथल नहीं हुआ। प्रायः सभी बातो मे ऋषियों, राजाओं, सुधारको आदि ने प्राचीनता का उचित मान रखकर नवीन परिशाधनों मे मन लगाया। जैसे एक दिन का शिशु बढ़ते बढ़ते पूरा जवान होकर बुड्ढा तक हो जाता है, किन्तु किसी दिन उसमे भारी परिवर्तन देखने मे नही आता, इसी प्रकार हमारा भारतीय आर्यसमाज उन्नति करता हुआ शैशव एव युवावस्था को पार करके आदिम कलिकाल के प्रारम्भ मे वृद्ध दशा को पहुंच गया। वैदिक विचारो की उन्नति चरम सीमा के भी आगे निकल गई और ऋग्वेद का सीधा सादा धर्म ब्राह्मण ग्रन्थो मे उन्नति करता हुआ सूत्रा के तनाव से ऐसा उलझा कि विधि-निषेध ही ने उसका स्थान ले लिया और यही धर्म के मुख्याङ्ग बन बैठे। अतः हमारा भारतीय हिन्दू-समाज सरल धर्म, सरल मत एव सरल आचारों के विचार को खो कर कट्टर पण्डितों की पोथियो का हर बात मे आश्रित सा हो गया। यहाँ तक कहा गया है कि इन्द्र से विद्यार्थी, बृहस्पति से गुरु और दिव्य सहस्र वर्ष अध्ययन काल होने पर भी व्याकरण का अन्त नहीं मिलता है। यही दशा भारतीय धार्मिक सिद्धान्तों की हुई। हमारी विद्याओं मे आ सब कुछ गया किन्तु भारी ग्रन्थो के गूढ़ीकरण मे सरल सिद्धान्तो का ज्ञान ऐसा दुर्ज्ञेय हो गया कि साधारण समाज को कर्तव्य जानने के लिए अड़चन पड़ने लगी। इन सब कारणो से भारतीय समाज का ऐसा समय आ गया कि जब क्रान्ति का होना अनिवार्य सा हो जाता है। इसी लिए हम देखते हैं कि थोड़े ही दिनो मे जैन और बौद्धधर्मो का प्रादुर्भाव हुआ। गौतम बुद्ध और महावीर

हिन्दू समाज के पहले भारी डिसेंटर (विरुद्ध-मत-प्रवर्तक) थे। इन्हीं के प्रादुर्भाव से हमारे साहित्य और मत मे वैदिक समय का अन्त हो गया और बौद्ध तथा पौराणिक विचारों का पुष्टिकरण होने लगा। भगवान् बुद्ध की उत्पत्ति भारतीय इतिहास में एक नवीन युग सा स्थापित कर देती है।

अब प्रजातन्त्र रियासतों, मागधों तथा एक दो स्फुट विषयों पर कथन करके हम यह अध्याय समाप्त करेंगे।

प्रजातंत्र रियासतें

उपर्युक्त १६ रियासतों में वैशाली के वज्जियन तथा पावा और कुशिनारा के मल्लो के प्रजातन्त्र राज्य महत्तायुक्त थे। छोटे प्रजातन्त्रो मे निम्न की गणना है :—कपिलवस्तु के शाक्य, रामगाम के कोलिय, संसुमार पहाड मे भग्ग, अल्लकप्प के बूलिय, केसपुत्त के कालाम, और पिप्फलिवन के मोरि। प्रजातन्त्रों की यह नामावली रिस डेविड्स में है। राय चौधरी ने भी इसे लिखा है। शाक्यों में बहिनों से भी विवाह होता था (रायचौधरी)। भग्गो का कथन ऐतरेय ब्रा० VIII ८ में है जहा भार्गायण राजा कैरिशि सुत्वन का विवरण है। छठी शताब्दी बी० सी० में ये लोग वत्सराज के अधीन थे। केशिपुत्त कोशल लोगों का कथन शतपथ ब्रा० (वैदिक अनुक्रमणी) में है। मोरिय लोगों में स्वयं चन्द्रगुप्त मौर्य थे।

राजाओं के नाम

उस काल गन्धार के राजा पुक्कसाति थे, सौवीर (सिन्ध नदी के निचले देश) में रौरुक के रुद्रायण, शूरसेन के अवन्तिपुत्र मधुरा और अंग के ब्रह्मदत्त।

प्रजातन्त्र राज्यों में यवक आलवक की राजधानी आलवी थी। अन्य नगर राज्य भी थे।

ऐन्द्र महाभिषेक

निम्न सम्राटों ने ऐन्द्र महाभिषेक पाया :—

परीक्षित के पुत्र, शार्यात, विश्वकर्मा, सुदास, मरुत और भरत।

परीक्षित के पीछे-जनमेजय, शतानीक, अाम्वाध्य युधाश्रौष्ठि. और अंग।

(रायचौधरी)

बार्हद्रथ कुल के अन्तिम राजा रिपुञ्जय को उसके मंत्री पुलिक, (मुनिक, सुनिक अथवा शुनक) ने मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाया। इसके वशधर पालक, विशाश्ययूप, जनक और नन्दिवर्धन ने एक दूसरे के पीछे राज्य किया। पुराणों के अनुसार इनका राजत्व-काल १३८ वर्षों का है। प्रद्योत के विषय मे लिखा है कि उसने पड़ोसी राजाओ पर अपना अधिकार जमाया और भला मनुष्य होने पर भी २३ वर्ष अधर्मपूर्ण राज्य किया। इस वंश का विशेष कथन यथास्थान होगा। परीक्षित से शिशिनाग तक (शिशुनाग को छोड़ के) का समय पुराणों में इस प्रकार से दिया है--

विष्णु पुराण—१०५० वर्ष।
भागवत्—११५० वर्ष।
मत्स्य और वायु पुराण—१०५० वर्ष।

प्रद्योतों के पीछे मगध में शिशुनाग ने अपना राज्य जमाया। यह नही लिखा है कि शिशुनाग कौन था और किस प्रकार राजा हुआ ? केवल इतना कहा गया है कि प्रद्योतो का बल चूर्ण करके यह नरेश बना। कुल मिलाकर दस शैशुनाग राजे हुए जिनका राजत्व-काल ३६० वर्ष पुराणों मे लिखा है। इन्हीं मे से राजा अजातशत्रु ने २५ वर्ष राज्य किया और उसके पिता बिम्बिसार ने २८ वर्ष। ये दानों गौतम बुद्ध के समकालिक थे।

पार्जिटर महोदय ने महाभारत काल से मौर्य पर्यंत शासको के समय निम्नानुसार दिए है:—

राजे और महाराजे।	समय बी० सी०
सेनजित बार्हद्रथ, गद्दी पाए।	८५०
सेनजित और उनके पीछे १५ बार्हद्रथ राजे।	२३१ वर्ष।
प्रद्योतो का अधिकारारम्भ।	६१९
पांच प्रद्योत राजे	५२ वर्ष

शिशुनाग अधिकारारम्भ ।	५६७
दस शिशुनाग राजे ।	१६५ वर्ष
महापद्मानन्द का राज्यारम्भ ।	४०२
महापद्म और उसके आठ पुत्र ।	८० वर्ष
चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारम्भ ।	३२२

इस अध्याय के लिखने में डाक्टर राय चौधरी तथा मिस डेविड्स से सहायता ली गई है ।

सत्रहवाँ अध्याय

ब्राह्मण साहित्य काल (रचनाएँ)

९५०–६०० बी० सी०

हम ऊपर कह आये है कि यजुर्वेद और अथर्ववेद की रचना दसवीं शताब्दी बी० सी० के पीछे तक होती रही। फिर भी ऋक् की मुख्यता के कारण वैदिक समय दसवीं शताब्दी पर्यन्त ही माना गया है। सामन्, यजुः और अथर्व के विषय मे हमे जो कुछ कहना था वह सब ऊपर के अध्यायो मे कहा जा चुका है। यहां केवल इतना कह देना शेष है कि ये वेद भी प्राचीन काल से ही बनते आये थे, सो इनके सभी कथन पीछे से ही सम्बन्ध रखने वाले न समझने चाहिएँ। जैसे अथर्ववेद मे मागध और आङ्ग लोग अनार्य माने गये हैं। इस बात से यह निष्कर्ष नही निकल सकता कि छठी सातवीं शताब्दी तक यही दशा रही। वेदो के विषय मे यहां केवल इतना कह कर अब हम ब्राह्मण काल की मुख्यताओ का कथन करते है।

ब्राह्मण ग्रन्थ वेदाङ्ग माने जाते है, किन्तु हम इस कथन का विरोध न करते हुये भी केवल संहिता भाग को वेद कहते आये है। ऐसा ही प्रायः अन्य विद्वानो ने भी किया है। ब्राह्मण ग्रन्थों मे एक प्रकार से वेदो की व्याख्या की गई है। ये सख्या मे बहुत थे किन्तु अब प्रायः ७० ही मिलते है। इनके दो मुख्य विभाग हैं, अर्थात् कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञानकाण्ड को उपनिषत् कहते हैं और ब्राह्मण ग्रन्थ कहने से सहसा कर्मकाण्ड ही पर ध्यान जाता है। यद्यपि उपनिषत् ब्राह्मण ही के अङ्ग हैं, तथापि इन दोनो मे विषय का बहुत बड़ा अन्तर है। प्रत्येक ब्राह्मण मे एक न एक उपनिषत् अवश्य है, किन्तु प्रत्येक उपनिषत् किसी न किसी ब्राह्मण का अङ्ग नही है, क्योंकि कुछ उपनिषत् केवल आरण्यकों से सम्बन्ध रखते हैं, और शेष ब्राह्मण और

आरण्यक दोनों से पृथक् हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकानेक याज्ञिक विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले नियमोपनियम हैं। आरण्यकों में वानप्रस्थाश्रम सम्बन्धी नियम हैं। उपनिषदों को निकाल डालने से आरण्यकों में ब्राह्मणों की अपेक्षा ज्ञान कथन बहुत विशेष है। ज्ञान की दृष्टि से भी उत्तरोत्तर वृद्धि के अनुसार आरण्यकों को ब्राह्मणों और उपनिषदों के बीच में स्थान मिलेगा।

रैप्सन कृत कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया के प्रथम अध्याय में कथित ब्राह्मण साहित्य पर मुख्य विचारों का सारांश यहां देकर हम अपने विचार लिखेंगे। पंच विंश ब्राह्मण का गद्य शायद यजुर्वेदीय गद्य से भी पुराना हो। गोपथ ब्राह्मण कौशिक और वैतान सूत्रों से भी पीछे का है। उपनिषदों में बृहदारण्यक और छान्दोग्य सब से पुराने हैं। जैमिनीय उपनिषद् सामवेदीय जैमिनीय ब्राह्मण का अंग है। उपर्युक्त उपनिषदों तथा केन और काठक के अतिरिक्त कोई उपनिषद् बुद्ध से पुराना नहीं है। बहुतेरे सूत्रों में जो श्लोक हैं वे उन सूत्रों से बहुत पुराने हैं। ब्राह्मण काल में सभ्यता का केन्द्र कुरुक्षेत्र है।
और विदेह [illegible] की विद्या है।

कुरु पांचाल आर्य्य सभ्यता के नमूने है। उनके यज्ञ तथा भाषा श्रेष्ठतम है। वैदिक साहित्य उन मे कोई शत्रुता नही बतलाता। अथर्ववेद परीक्षित को भारी कौरव राजा कहता है। प्रति सुत्वन उन के पौत्र थे और प्रतीप प्रपौत्र। शतपथ ब्राह्मण जनमेजय का अश्वमेध यज्ञ बतला कर आसन्दीवन्त को राजधानी कहता है। बृहदारण्यकोपनिषत् परीक्षित वंशियों के पतन का कथन करता है। पर अत्नार कोशल और विदेह दोनों का राजा लिखा है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि माथव विदेघ सदानीर (गण्डक) पार करके विदेह में स्थापित हुये। कौशीतकि उपनिषत् भी काशी और विदेह का सम्बन्ध बतलाता है। जल जातूकर्ण्य कोशल, विदेह और काशी के नरेशो का पुरोहित था। इस से इन तीनो का मेल सम्भव है। अथर्व वेद मे अग और मगध एक दूसरे से दूर है। मगध मे खनिज पदार्थो का बाहुल्य था। यदि कीकट (गया) मगध मे माना जावे तो ऋग्वेद मे भी उसकी निन्दा है। ऋग्वेद के समय ऋषि गण तथा राजन्यवर्ग बहुत कुछ वश परम्परागत वर्ग थे किन्तु लोग एक से दूसरे मे हो जाया करते थे। विवाहो के प्रतिकूल बन्धन कम थे। अनन्तर भेद प्रकट होने लगे, विशेषतया विशो मे। ये भेद व्यापारानुसार बढ़े। रथकार पृथक् वर्ण से हो गये। समय पर आर्यो मे शूद्रा स्त्रियो के विवाह बढ़ने से आर्य्य रुधिर की शुद्धता के प्रश्न उठे! सूत्रो मे पुरुषो के विवाह अपनी या नीची जातियों मे हो सकते थे। कुछ सूत्रों मे आर्य्यों को शूद्राओ से विवाह की आज्ञा थी। ब्राह्मण ग्रन्थों मे सगोत्रीय विवाह तीन ही चार पुश्तो तक वर्जित थे। वत्स और कवश की मातायें शूद्रा थी। राजकन्याओं के साथ ब्राह्मणों के विवाह प्रायः होते थे। ऋग्वेद मे विश्वामित्र केवल ऋषि हैं किन्तु पंच विंश और ऐतरेय ब्राह्मणो मे राजा जह्नु के वंशधर भी है। वेदानुक्रमणी मे कई राजन्य वेदर्षि भी हैं। जनक वैदेह, अश्वपति केकय, काशिराज अजात शत्रु, पांचाल राज जैवलि प्रवाहण ब्राह्मणो को ज्ञानोपदेश करते हैं। सत्य काम जावाल अज्ञात पिता के पुत्र होकर भी ब्राह्मण माने जाते हैं। कोई वैश्य या शूद्र ब्राह्मण न हो सका।

ब्राह्मण काम मे राज्य वड़े वड़े भी हो जाते हैं तथा यज्ञो मे रीतियां

बढ़ जाती है। निम्न लोग रत्निन कहलाये जाते हैं:—पुरोहित, राजन्य, महिषी, वावाता (प्यारी महारानी), परिवृक्ती (त्यक्ता महारानी), सूत, सेनानी, ग्रामणि, क्षत्री (Chamberlain), सग्रहीत्रि (सारथी या कोषाध्यक्ष), भाग दुग्घ (कर वसूल करने वाला), अक्षवाप (जुये का निरीक्षक), और स्थपति (जज)। सभा या समिति का व्यवहार घटता है। राजा फौजदारी (दंड विधान) व्यवहार का अध्यक्ष था। अब तक कानून मुआहिदा न था। पुत्री से पुत्र अच्छे थे। स्त्री का पद कुछ गिर चुका था। कर्ज़े का व्यवहार कुछ गुरु था। राजाओं में बहु विवाह चलता था। खेती की उन्नति हुई। गेहूं, जौ, सरसों, चावल आदि का प्रचार बढ़ा। शिल्प की भारी उन्नति होकर व्यापारों की संख्या बढ़ी।

मन्दिरो मे नौकरी करनी और आलस्य। षड्विंश ब्राह्मण मे फलित ज्योतिष का वर्णन एवं यजुर्वेद के अतिरिक्त पहले पुनर्जन्म का कथन है। इस ब्राह्मण मे देवकीपुत्र कृष्ण एक विद्वान् माने गये है। कुमारिल्ल भट्ट ने सामवेद के आठ ब्राह्मणों के नाम लिखे है। सायणाचार्य ने उन पर भाष्य लिखा है। छान्दोग्य ब्राह्मण विशेपतया छन्दो मे है। कुछ पाश्चात्य पण्डितो ने लिखा है कि कई ब्राह्मण ग्रन्थों मे बौद्ध मत का कुछ प्रभाव देख पडता है।

कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण केवल तैत्तिरीय है। इसमे जरासन्ध के पिता राजा बृहद्रथ का नाम आया है। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण शतपथ है। यह ब्राह्मण ग्रन्थो मे सर्व प्रधान है और वैदिक ग्रन्थो मे ऋग्वेद तथा अथर्व को छोड़ कर इसकी ऐतिहासिक महिमा शेष सभी ग्रन्थों से बढ़ी चढ़ी है। यह ब्राह्मण-काल के प्रायः अन्त मे बना। इसमे सौ अध्याय है। अतएव इसका नाम शतपथ है। इसमे विदेहराज जनक तथा याज्ञवल्क्य के नाम आये हैं और विष्णु की महिमा कुछ बढ़ी हुई है। शतपथ के देखने से समझ पड़ता है कि कुरु और पाञ्चालो में कोई शत्रुता नहीं थी किन्तु परीक्षित के घराने मे कोई भारी घटना हुई थी। मेगास्थनीज़ के समय मे महाभारत में कथित कृष्ण और पाण्डवो का सम्बन्ध भारत मे ज्ञात था। शतपथ मे परीक्षित-पुत्र जनमेजय का नाम आया है और पिजवन् के पुत्र सुदास का भी। नरमेध के विषय मे शतपथ ब्राह्मण मे साफ लिखा है कि मनुष्य का बलिदान कभी नहीं होता था, वरन् उसकी प्रतिमा मात्र का। फिर भी कुछ पाश्चात्य पादरी लोग यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं कि वैदिक समय मे नर-बलि अवश्य होती थी किन्तु ब्राह्मण-काल में सभ्यता का विचार बढ़ जाने से नर-बलि का निषेध होकर नर-प्रतिमा मात्र की बलि का विधान रह गया। अपने इस दुराग्रहपूर्ण कथन का आधार स्वरूप वे केवल शुनःशेप का उदाहरण देते है। इसके अतिरिक्त किसी भी हिन्दू ग्रन्थ मे उनको नर-बलि का कोई प्रमाण नही मिलता है। इस अवसर पर भी वास्तविक नर-बलि नही हुई।

शतपथ ब्राह्मण विशेपतया याज्ञवल्क्य-कृत समझ पड़ता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि द्विज देवताओं से हुए और शूद्र असुरों से। यहाँ देवताओं तथा असुरों से आर्यों और अनार्यों से प्रयोजन समझ पड़ता है। प्रलय के समय मनु मत्स्य की सहायता से उत्तरीय पर्वतों की ओर चले गये। वहां उन्होंने पाकयज्ञ किया जिससे इडा नाम्नी स्त्री उत्पन्न हुई। उसीसे मनु ने सन्तान उत्पन्न की। ब्राह्मण ग्रन्थ में यह मछली अवतार नहीं मानी गई है और यह कौन मनु थे सो भी नहीं लिखा है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु को वामन कहा गया है। एक पाश्चात्य पण्डित का कथन है कि वैदिक मन्त्रों में मनुष्य देवताओं से डरता है, ब्राह्मण ग्रन्थों में (मनुष्य) देवताओं को पराजित कर देता है और उपनिषदों में (मनुष्य) देवताओं की कुछ परवा नहीं करता। अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ कहलाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मुख्यतया ६ विषयों का कथन रहता है, अर्थात् विधि, अर्थवाद, निन्दा, शंसा, पुराकल्प और परकृति का। इनमें वर्णन यज्ञ सम्बन्धी रहते हैं। महर्षि जैमिनि कहते हैं कि यही सब बातें वेदों में भी पाई जाती हैं।

क्योंकि ये ग्रन्थ यज्ञ कराने वाले में इस का कुछ ज्ञान पहले से मान लेते हैं।

बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थों में बहुत से ऐसे ग्रन्थों के उद्धृत भाग हैं जो अब अप्राप्य हैं। कुल मिला कर सारे ब्राह्मण ग्रन्थों में एक प्रकार का साम्य पाया जाता है, किन्तु ध्यानपूर्वक पढ़ने से उनके निर्माणकाल का पता उन्हीं की रचना के ढङ्गों से लगता है। यजुर्वेद के पीछे पञ्चविंश और तैत्तिरीय ब्राह्मण सब से पुराने हैं, तथा इनके पीछे जैमिनीय, कौशीतकि और ऐतरेय। ब्राह्मणों में शतपथ सब से नया है। गोपथ और सामवेद के छोटे छोटे ब्राह्मण उससे भी नये हैं। ब्राह्मणों में कुछ गाथायें पद्य में भी हैं। विचार किया जाता है कि ऐतरेय ब्राह्मण कुरु पांचाल देश में बना। कौशीतकि ब्राह्मण से प्रकट होता है कि उत्तरीय भारत में पठन-पाठन-प्रणाली सब से अच्छी थी और वहां के पठित विद्यार्थियों का अधिक मान था। शतपथ ब्राह्मण में राजा जनमेजय का नाम लिखा है और आसुरि नामक एक आचार्य का नाम कई बार आया है। ये सांख्यशास्त्र के एक बड़े आचार्य कहे गये हैं। इन के नाम आने से विदित होता है कि सांख्यशास्त्र के मुख्य आचार्य महर्षि कपिल शतपथ ब्राह्मण के बहुत पहले हुए। आसुरि कपिल के शिष्य कहे गये हैं। कपिल दो थे, एक स्वायम्भुव मनु की पुत्री देवहूति के पुत्र और दूसरे सगरात्मजों के मारनेवाले। यह निश्चय नहीं है कि सांख्यकार कपिल इन्हीं दोनों में से एक थे अथवा कोई तीसरे व्यक्ति। स्वायम्भुव मनु के दौहित्र कपिल वैदिक समय से भी पहले के हैं। उस काल में अध्यात्मज्ञान का इतना बढ़ना कि सांख्यशास्त्र ही बन जाता, नितान्त सन्दिग्ध है। सगर के समकालिक कपिल भी सांख्यशास्त्र-निर्माण के लिये उचित से अधिक पुराने समझ पड़ते हैं। इस शास्त्र का निर्माण उपनिषत्काल में समझ पड़ता है। सांख्यकार कपिल बुद्ध काल से पहले के माने जाते हैं।

कालिदास ने विक्रमोर्वशी और शकुन्तला नाटकों में महाराजा पुरूरवा और दुष्यन्त के वर्णन किये हैं। पुरूरवस और उर्वशी का कुछ कथन ऋग्वेद में भी आया है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। ये दोनों कथायें शतपथ में विस्तार पूर्वक लिखी हैं। महा प्रलय का

यदि इस चमत्कारी रत्न को ब्राह्मण साहित्य मे निकाल डाले तो वर्तमान पडितो के लिए ब्राह्मणो की गरिमा लुप्तप्राय हो जाय। उपनिषदो मे जगदुत्पत्ति, जीवात्मा और परमात्मा पर विचार किये गये है। वैदिक धर्म की गरिमा उपनिषदो पर ही अवलम्बित है; इसीलिये इन्हें वेदान्त कहते है। पाश्चात्य पण्डित शोपिनहार का कथन है, "उपनिषदो से मुझे जीवन मे शान्ति मिली है और मरणानन्तर भी इन्हीं से शान्ति मिलने की आशा है।" प्रसिद्ध पण्डित मैक्समुलर कहते हैं कि उपनिषत् मानव-मस्तिष्क के बड़े ही चमत्कारिक फल है। इनसे संसार भर के प्रत्येक देश, प्रत्येक समय और प्रत्येक साहित्य को गरिमा प्राप्त हो सकती है।

उपनिषत् का शब्दार्थ गुरु के पास बैठ कर सीखने की विद्या है। महर्षि पाणिनि ने इस शब्द से रहस्य विद्या का प्रयोजन लिया है। इसके कई अन्य अर्थ भी लगाये जाते है किन्तु हमें यही दो प्रधान समझ पड़ते है। छान्दोग्य मे इसका वही अर्थ किया गया है जो प्रायः साधना का है। शकराचार्य कठोपनिषत् की प्रस्तावना मे इसका अर्थ करते है, "पुनरागमन तथा पुनर्जन्म भर को नाश करने वाली विद्या।" उपनिषदो की सख्या अनिश्चित है। ये १२३ से ११९४ तक माने गये हैं। मुख्य उपनिषत् गणना में दस है, अर्थात्—

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, बृहदारण्यक।

इनके अतिरिक्त कौशीतकि और श्वेताश्वतर की भी प्रधानता है। इनमे मुख्यता इस बात की है कि साम्प्रदायिक मतसंकीर्णता का अभाव दिखाई पड़ता है। अथर्ववेद के उपनिषत् नवीन एवं साम्प्रदायिकत्व से पूर्ण है। ऋग्वेद के उपनिषत् उसके ब्राह्मणों के नाम पर ऐतरेय और कौशीतकि कहलाते है। कृष्ण यजुर्वेद के प्रधान उपनिषदो मे तैत्तिरीय तथा मैत्रायणीय हैं और शुक्ल यजुः के ईश और बृहदारण्यक। छांदोग्य उपनिषत् सामवेद का है। अथर्ववेद के उपनिषत् संख्या मे बहुत अधिक हैं, जिनमे कठ और मुण्डक प्रधान हैं। ये अथर्ववेद के उपनिषत् तीन प्रकार के हैं अर्थात् ईश्वर संबंधी, योग संबन्धी और शिव अथवा विष्णु सम्बन्धी। प्राचीन उपनिषत्

गये है। श्वेताश्वतरोपनिषत् मे सांख्याचार्य कपिल का नाम लिखा है। शंकराचार्य ने इस उपनिषत् की एक बड़ी टीका लिखी। इस टीका मे सांख्य और वेदान्त के मतभेद मिटाने का प्रयत्न किया गया है।

वेदान्त के पांच प्रधान भेद है अर्थात अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैत। अद्वैत मे एक ईश्वर माना गया है, द्वैत में ईश्वर और जीव तथा विशिष्टाद्वैत मे ईश्वर, जीव और प्रकृति। फिर भी प्रकृति और जीव ईश्वर के विशेषणमात्र है। शुद्धाद्वैत मे भी ये तीनो माने गये है, किन्तु ईश्वर, जीव और प्रकृति मे क्रम से आनन्द और चित्त का आवरण माना गया है। द्वैताद्वैत भेद तथा अभेद दोनो को मानता है तथा द्वैत ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनो को सत के समान कहता है। अतः ये तीनों ही ईश्वर को मान कर चलते है। उधर सांख्य मे ऐसा द्वैतवाद है जो न केवल प्रकृति और जीव को मानता है वरन् ईश्वर को असिद्ध समझता है। हिन्दू-दर्शन-शास्त्र के छः प्रधान अंग है, अर्थात् सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा। इनके मुख्यकर्ता क्रम से कपिल, पतञ्जलि, गौतम, कणाद, जैमिनि और व्यास है। ये सब मुनि ब्राह्मण काल के नहीं है, किन्तु इन छओ दर्शनों के मूल विचारों का प्रादुर्भाव ब्राह्मणकाल ही मे या कुछ ही पीछे हुआ। पीछे से जिस जिस आचार्य ने जिस जिस शास्त्र को उन्नत बनाया, उसी के नाम पर वह कहलाने लगा। कपिल और जैमिनि बुद्ध पूर्व के समझे जाते है। केनोपनिषत् मे ईश्वर की शक्ति बहुत अच्छी तरह दिखलाई गई है, और एक उदाहरण द्वारा सिद्ध किया गया है कि विना ईश्वरीय वल के अग्नि अथवा मरुत् एक तिनके को भी जला या उड़ा नही सकते। माण्डूक्य उपनिषत् में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय अवस्थाओ का वर्णन है और ॐ शब्द की महिमा भी कही गई है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष को हमारे यहाँ वेद का षडङ्ग कहते है। इन सबके नाम मुण्डकोपनिषत् में आये है। इससे विदित होता है कि इन छओं वेदाङ्गों की स्थापना ब्राह्मण काल मे हो गई थी।

उपनिषदों का सदुपदेश मुख्यतया ईश्वरवाद है। यह ईश्वरवाद तर्क पर अवलम्बित है, न कि अन्धभक्ति पर। सत्यता की सब से बड़ी महिमा कही गई है। इसके मनोगत कराने के लिए सत्यकाम जाबाल का उदाहरण छान्दोग्य उपनिषत् में दिया हुआ है। कहते हैं कि जब यह महात्मा शिष्य होने के लिए गुरु के पास गये तब उन्होंने इनके पिता का नाम पूछा। इस पर अपनी माता से पूछ कर जाबाल ने गुरु से कहा, "मेरी माता मेरे पिता का नाम नहीं जानती, क्योंकि मेरे गर्भाधान के समय उसके पास कई मनुष्य आये थे जिस लिए वह किसी एक में मेरा पितृत्त्व स्थापित नहीं कर सकती।" जाबाल की इस सत्यप्रियता से प्रसन्न होकर गुरु ने इस बालक की माता जबाला के नाम पर इसका नाम सत्यकाम जाबाल रक्खा और अपने शिष्यों में इसको सर्वप्रधानता दी। छान्दोग्य उपनिषत् का मत है कि प्रारम्भ में ईश्वर केवल एक था। उसने अग्नि का उत्पादन किया, जिस से जल हुआ और जल से पृथ्वी। ऋग्वेद में स्वर्ग नरक का विचार नहीं है। ब्राह्मणों में स्वर्ग, कर्म, प्रकृति, भविष्य-स्थिति आदि पर विवाद पाया जाता है। उपनिषदों में पुनर्जन्म के विचार उन्नत हो गये हैं। उपनिषदों का मत है कि ज्ञान ने संसार को बनाया, ज्ञान ही उसे स्थिर किए है और ज्ञान ही ईश्वर है।

जैसे कि वैदिक समय में पुरूरवा, नहुष, ययाति, वैवस्वतमनु, चाक्षुष मनु, पृथु, अम्बरीष आदि राजपुरुषों ने वेद रचना में भाग लिया था, वैसे ही ब्राह्मणकाल में जनक, अजातशत्रु, अश्वपति, जैवलि आदि राजपुरुषों ने उपनिषदों में पूरा योग दिया। जैवलि पांचालराज थे और उन्होंने श्वेतकेतु को ज्ञान सिखाया। उपनिषदों और वेदों में कुछ भाग लेते हुए भी राजन्य पुरुषों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में कोई प्रधानता नहीं दिखलाई। आरण्यकों के विधि सम्बन्धी भागों में भी उनकी प्रधानता नहीं है। इससे प्रकट होता है कि कर्मकाण्ड केवल ब्राह्मणों की रचना है, किन्तु ज्ञान काण्ड में उनको क्षत्रियों से सहायता मिली। यह सहायता जैन और बौद्ध काल में [illegible] में परिवर्तित हो गई जैसा कि हम आगे लिखेंगे। कुछ लोगों का यह भी विचार है कि मुख्यतया ज्ञानकाण्ड का आविर्भाव [illegible] [illegible]

काण्ड पर क्षत्रियों की अश्रद्धा से हुआ।

उपनिषदों के समय मे याज्ञिक अग्नि सब आर्यों के घर जला करती थी और दैनिक हवन सबके यहाँ होते थे। दैनिक पच महा-यज्ञ मे देवपूजन, पितृपूजन, अतिथिपूजन, ससारपूजन तथा गृहदेव-पूजन होता था। इस प्रकार अतिथिसत्कार हमारे यहाँ सभ्यता मात्र न होकर धर्म का अग था। मानुष कर्तव्यों मे उपनिषदो का क्या विचार है, इसके विषय मे तैत्तिरीय उपनिषत् का एक छोटा सा अवतरण यहाँ लिखा जाता है। "सत्य बोलो, स्वकर्तव्य पालन करो, वेदाध्ययन को न भुलाओ, उचित गुरुदक्षिणा देने के पीछे विवाह करके पुत्रोत्पादन करो, सत्य से मत हटो, कर्तव्य से मत हटो, लाभ-दायक पदार्थों को मत भुलाओ, महत्त्व को मत भुलाओ, वैदिक शिक्षा को मत भुलाओ, देवयज्ञ और पितृयज्ञ को मत भुलाओ, माता को देवी के समान मानो, पिता को देवता के समान मानो, अनि-न्दित कर्मों पर श्रद्धा रक्खो, औरो पर नही, हमारे द्वारा किये हुये उचित कार्यों पर श्रद्धा रक्खो।"

विधवा विवाह ब्राह्मण काल मे उचित माना जाता था। ज्योतिष, शिक्षा, व्याकरण, दर्शन और धर्मशास्त्र पर उस काल बहुत ध्यान दिया जाता था। ये सारे शास्त्र धार्मिक नीतियो से निकले है और इनका परस्पर सम्बन्ध भी है। आज कल के विद्वानो ने इसी बात को कसौटी माना है कि जिन शास्त्रो का धर्म से सम्बन्ध हो वे अवश्य भारतीय समझने चाहिये। वेदाङ्ग ज्योतिष की उन्नति ब्राह्मण काल मे बहुत हुई। हमारे यहाँ चान्द्र वर्ष का चलन था, जिससे यह सौर वर्ष से सदैव कुछ पीछे हट जाता था। इसी लिए आजकल प्राय: अधिमास अर्थात् लौंद का प्रयोग होता है। लौंद का चलन वैदिक समय मे भी था क्योकि ऋग्वेद मे लिखा है कि यह मास इन्द्र ने बनाया। ब्राह्मण काल मे लौंद मास मोटे प्रकार से प्राय: पाचवे वर्ष पडता था। अट्ठाईस नक्षत्रो का हाल भी ज्ञात था। वैदिक समय मे इनकी गणना पुनर्वसु से चलती थी, आजकल के समान अश्विनी से नही। सायनमेष का भी ज्ञान ब्राह्मणो को हो गया था। ब्राह्मण-काल मे वैदिक समय के धर्म ने कुछ उन्नति अथवा अवनति की थी।

अवैदिक समय में यहाँ तरु, पर्वत, भूत प्रेतादि का पूजन चलता था। यह अनार्य्यों का धर्म था। आर्य्यों ने अपने साथ वरुण और इन्द्र के पूजन के विचारों को लाकर फैलाया। धीरे धीरे तैंतीस वैदिक देवताओं का विचार उठकर पुष्ट हुआ और महर्षि विश्वामित्र के काल में एकेश्वरवाद चला तथा देवताओं की यह संख्या बढ़कर ३३३९ हो गई। पुरुष, विराज, प्रजापति, विश्वकर्मा, स्कंभ आदि नामों से ईश्वर का पूजन विधान उठकर पुष्ट हुआ। यही विचार कभी कभी इन्द्र और अग्नि द्वारा भी प्रकट किया गया है। हवनों, यज्ञों, बलि आदि की स्थापना वैदिक समय में ही भली भाँति हो गई थी। अग्निहोत्र आदि के लिये कभी न बुझने वाली स्थिर अग्नि का विधान इसी काल में हो चुका था। ब्राह्मण काल में याज्ञिक रीतियों में बड़ा विस्तार हुआ और उचित रीति से मन्त्रोच्चारण एवं उचित मंत्रों के साथ यज्ञ रीतियों के सम्पादन पर ऐसी श्रद्धा बढ़ी कि वास्तविक धर्म दृढ़ रीतियों के उलझाव में कुछ दब सा गया, यहां तक कि बहुत करके रीतियों ने ही धर्म का आसन ग्रहण किया। वेदों के पढ़ने से जो प्रत्येक ऋषि की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और श्रद्धा के विचार सभी स्थानों पर पाठक के चित्त में अङ्कित रहते हैं, उस स्वावलम्बी श्रद्धा एवं दृढ़ता को ब्राह्मण ग्रन्थों में हम नहीं पाते हैं। यही वैदिक और आदिम ब्राह्मण धर्मों का मुख्य भेद है। इसीलिए जान पड़ता है कि इसी रीति-सम्बन्धी दृढ़ता से ऊब कर लोगों ने उनके शिथिलीकरणार्थ वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम के विचार चलाये, जिससे यह सिद्ध किया गया कि निरग्निक सत्कर्मों का दर्जा अग्निवान से भी ऊँचा है। आरण्यकों का विधान इसी लिए उत्पन्न हुआ जान पड़ता है। आरण्यकों से औपनिषद्विचारों का उठना परम स्वाभाविक था और ऐसा ही हुआ भी। इसी समय में जीवात्मा का अस्तित्व सिद्ध किया गया और पुनर्जन्म-सम्बन्धी आवागमन के विचार दृढ़ हुए। कार्मिक सिद्धान्तों की भी स्थापना एवं दृढ़ता इसी शुभ काल में हुई। छान्दोग्योपनिषद में एक बड़े सुन्दर उदाहरण द्वारा दिखलाया गया है कि ब्रह्मविद्या की पदवी सभी सांसारिक पदार्थों से उच्चतर है। नारद ने

यम से ब्रह्मविद्या जानना चाहता है। यम उसे धन, धान्य, पुत्र, पौत्र राज्य आदि सभी सांसारिक प्रलोभन दिखलाकर इससे हटाना चाहते है, किन्तु वह इन सब को तुच्छ मानकर इसी की खोज मे ही लगा रहता है। इस दृढ़ता को देखकर ही यमराज उसे इस विद्या का पात्र समझ कर यह उत्तम ज्ञान सिखाते हैं। प्रयोजन यह है कि बिना सांसारिक प्रलोभनो के छोड़े कोई ब्रह्म विद्या को प्राप्त नहीं हो सकता। उपनिषदो ही द्वारा ससार में पहले पहल ईश्वर का विचार, पूर्ण दृढ़ता और ज्ञान के साथ प्रसिद्ध किया गया। ससार के सबन्ध मे माया का विचार पहले पहल श्वेताश्वतर मे आया। संसार माया है और ईश्वर मायी। छान्दोग्य उपनिषत मे लिखा है कि यह सारा संसार वही है अर्थात सत एव परमात्मा। हे श्वेतकेतो! तू भी वही है। इसी स्थान पर शंकराचार्य सबन्धी "तत्त्वमसि" के विचार बीज रूप से छान्दोग्य उपनिषत् मे पाये जाते है।

उपनिषदो का विचार है कि परमानन्द पूर्ण ज्ञान ही से प्राप्त होता है। शंकराचार्य का मत है कि परमात्मा तथा जीवात्मा मे केवल अविद्या का भेद है। यह विचार भी बीजरूप से उपर्युक्त उपनिषत् के कथन मे आ गया है। कार्मिक विचारो की वृद्धि से जीवन और मृत्यु का भेद उठ जाता है और वह एक ही उन्नति के विविध रूप मात्र रह जाते है। ऐतरेय और शतपथ मुख्य ब्राह्मण है। पाश्चात्य पंडितो ने समयानुसार उपनिषदो के चार भाग किये है। वे पहली कक्षा मे बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और कौशीतकि को रखते है। यह उपनिषदो के लिए प्राचीनतम कक्षा है। प्रश्न, मुडक और केन के कुछ भाग इनके पीछे आते है। दूसरी कक्षा मे कठ, ईश, श्वेताश्वतर, और महानारायण रक्खे गये है। तीसरी मे मैत्रायणीय और माण्डूक्य, और चौथी मे अथर्ववेदीय उपनिषत्। याज्ञवल्क्य ने महाराजा जनक से सवाद करते हुए सिद्ध किया है कि ईश्वर का अन्वयात्मक कथन असिद्ध है क्योकि उसका शुद्ध वर्णन व्यतिरेक द्वारा ही किया जा सकता है। अन्वयवाची कथन उसे कहते हैं जिसमे किसी पदार्थ मे मुख्य मुख्य गुण आरोपित करके उसका वर्णन किया जाय। व्यतिरेक मे 'वह क्या नहीं है' ऐसे कथनो द्वारा उसका ज्ञान

जब कोई व्यक्ति किसी अज्ञात पदार्थ को देख कर उसे मामूली नहीं समझता और उसके तत्त्व पर विचार करता है तभी पूर्ण ज्ञान के अभाव मे उस पर आश्चर्य प्रकट करता है। ज्ञानोन्नतिकरण का यह आश्चर्य सर्वप्रधान सहायक है। हमारे वैदिक ऋषियों ने प्रकृति को मामूली न मानकर उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया और अपने प्राथमिक ज्ञानानुसार उसके निगूढ रहस्यों का साहित्यपूर्ण वर्णन किया। वे लोग इस काव्य मे इतने नहीं भूल गये कि जगत्पिता को जान ही न पाते, किन्तु जगत्पिता पर उनका ध्यान कम था और जगत् पर विशेष। इधर ब्राह्मण काल वाले ऋषिगण बाहरी प्रकृति पर मुग्ध होना छोड़कर उसके निगूढ़तम रहस्यों मे घुस गये और अपने परिश्रम का चामत्कारिक फल उपनिषदों के रूप मे छोड़ गये है, जिस जाज्वल्यमान प्रतिभापूर्ण रचना पर आज सारा संसार मुग्ध है। जिस भाव से वैदिक प्रश्न हाथ मे लिये गये थे उसका स्वाभाविक फल औपनिषत् ज्ञान था। इसीलिये जहाँ पुरानी रचनायें वेद कहकर पुकारी गईं, वहीं इनका वेदान्त कह कर आदर किया गया। इसी के साथ यह भी कहा जाता है कि जहाँ वैदिक ऋषि जीवन के उल्लास मे मग्न है, वहीं ब्राह्मण ग्रन्थों का ऋषि दु:खवादी जीवन विचार की जड़ जमाता है। हिन्दू शास्त्र सांसारिक जीवन को दु:ख मूलक समझता है। उसी की जड़ मुक्ति के रूप मे ब्राह्मण काल मे जमती है।

अठारहवाँ अध्याय

सूत्र साहित्य काल

७०० से १०० बी० सी० पर्यन्त (मुख्यतया)

अब तक हमारे ऋषियो ने वेदों और ब्राह्मणो की ओर ध्यान रक्खा तथा आरण्यको और उपनिषदों को दृढ़ किया था। हमारे यहाँ ब्राह्मणों मे अब तक लेखन-प्रणाली का अच्छा प्रचार नहीं हुआ था, जिससे ये भारी तथा बहुसंख्यक ग्रन्थ बन कर शताब्दियो पर्यन्त स्मरण-शक्ति द्वारा ही रक्षित रक्खे गये। वे महानुभाव कोटि कोटि धन्यवाद के भाजन हैं जिन्होंने पराई रचनाओं को केवल ससार के हितार्थ इतने दिनों तक स्मरण-शक्ति द्वारा रक्षित रक्खा। फिर भी इस अधिकता से पण्डितों को शिष्यवर्ग मिलते रहे कि इतना परिश्रम करते हुए भी लेखन-कला के विशेष प्रचार की आवश्यकता न प्रतीत हुई। तथापि ज्यों ज्यों ग्रन्थों की संख्या तथा आकार बढ़ते गये, त्यों त्यों उनके रक्षण-सबन्धी कठिनता का भी बोध होने लगा। इसलिए हमारे ऋषियों को भारी भारी तर्क-समुदाय के याद दिलाने को छोटे छोटे सूत्रों की आवश्यकता पड़ी, जिनकी भाषा तार द्वारा भेजे हुए समाचारों से भी अधिक सङ्कुचित है। ऋषियों ने संक्षिप्त गुण को इतना बढ़ाया कि किसी सूत्र से बिना भाव घटाये अर्ध मात्रा भी घटा पाने से उन्हें पुत्रोत्पत्ति के समान प्रसन्नता होती थी। इन्हीं संक्षिप्त से संक्षिप्त लेखों को सूत्र कहते हैं। हमारे भारतीय साहित्य मे ब्राह्मण के पीछे इसी उपर्युक्त प्रकार के सूत्र-काल का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध ग्रन्थों से सिद्ध है कि गौतम बुद्ध के समय से पूर्व भी देश मे लेखन का अच्छा प्रचार था, किन्तु आर्यों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का लिखना पसन्द न करके कई शताब्दियों पर्यन्त उन्हें फिर भी स्मरण-शक्ति द्वारा ही रक्षित रक्खा। इसीलिए लेखन-प्रचार के कई शताब्दी पीछे पर्यन्त सूत्रकाल चलता रहा। फिर भी लेखन कला

के कारण नाटक तथा इतिहास ग्रन्थ भी इसी काल से बनने लगे जिनका जन्म ही लेखन-कला के प्रचार से हुआ क्योंकि वैदिक ग्रन्थो की भाँति इनके स्मरण रखने की कोई पर्वाह नहीं करता था। अब हम सूत्रों का कुछ संक्षिप्त कथन करके इस काल के अन्य साहित्यिक प्रस्तारों का वर्णन करेंगे।

सूत्र तीन प्रकार के होते है, अर्थात श्रौत सूत्र, धर्म सूत्र और गृह्य-सूत्र। इनके पीछे अथवा साथ ही साथ व्याकरणादि के सूत्र बने। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि सूत्रों का समय वैयाकरण पाणिनि के समय से कुछ कुछ मिलता है। कुछ सूत्र इनसे पीछे लिखे गये और अधिकांश इनसे बहुत पहिले। बहुत से पण्डित पाणिनि का समय ६०० बी० सी० के निकट मानते है, किन्तु मंजु श्री मूल कल्प नामक आठवीं शताब्दी के एक प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थ में वे महापद्मनन्द के दरबार मे माने गये है। यह चौथी शताब्दी बी० सी० का आदि मे था। एकाध महाशय अब भी पहला ही समय ठीक मानते हैं। श्रौत सूत्रों मे प्रधान यज्ञों की विधियो के वर्णन है। किसी सूत्र-समुदाय मे एक प्रकार के ऋत्विजों के कर्तव्य का कथन है और किसी मे दूसरे का। कई सूत्र-समुदाय पढ़ने से ऋत्विजों के पूरे कर्तव्यों का बोध होता है। ऋत्विज् तीन प्रकार के हैं अर्थात् होता, अध्वर्यु और उद्गाता। ब्रह्मा इन सब का निरीक्षक होने से चौथा ऋत्विज कहा जा सकता है। भारतीय पंडित गृह्य सूत्रों को ही धर्म सूत्र भी कहते हैं, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने इनको पृथक माना है। गृह्यसूत्रो मे गृहस्थों के आन्हिक तथा इतर कर्तव्यों के विधान है। धर्मसूत्रो मे सामाजिक एवं न्याय (कानून) संबन्धी नियमों के कथन है। इन तीनो प्रकार के सूत्रों के मुख्य आधार वेद ही हैं। इन सूत्रो के वर्णन इतने पूर्ण है कि जिसने कभी यज्ञ न देखा हो वह भी इनके द्वारा यज्ञो तथा अन्य कथित विषयों का पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। भारतीय सामाजिक उन्नतियों एवं आचारो का इतिहास जानने मे सूत्र ग्रन्थ बड़े उपयोगी हैं। सूत्रों तथा वेदो के अर्थ लगाने मे प्रातिशाख्य सूत्र अच्छी सहायता देते हैं। प्रातिशाख्य सूत्रों के अतिरिक्त व्याकरण सूत्र और वैदिक अनुक्रमणिका प्रधान

हैं। अनुक्रमणिकाओं मे प्रत्येक सूक्त के कवि देवता आदि के वर्णन है।

ऋग्वेद से सांख्यायन और आश्वलायन सूत्रों का सम्बन्ध है। सांख्यायनकार कविगण पीछे से उत्तरी गुजरात मे पाये गये थे और आश्वलायन वाले कृष्णा और गोदावरी के बीच मे रहते थे। राजाओं के बड़े यज्ञों के वर्णन सांख्यायन मे आश्वलायन से अधिक विस्तार से कथित है। सांख्यायन मे १८ काण्ड है, और आश्वलायन मे १२। सांख्यायन सूत्रों का सम्बन्ध सांख्यायन ब्राह्मण से है और आश्वलायन का ऐतरेय से। आश्वलायन ऋषि शौनक के शिष्य थे। इन्होंने ही ऐतरेय आरण्यक भी लिखा। सामवेद के तीन श्रौत सूत्र उपलब्ध हैं अर्थात् मशक, लात्यायन तथा द्राह्यायन। मशक का आर्षेय कल्प भी कहते हैं। लात्यायन मे मशक के उद्धरण है। शुक्ल यजुर्वेद का कात्यायन सूत्र है जो चौथी शताब्दी बी० सी० में बना। कात्यायन ने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर वार्तिक भी लिखे। प्राकृत व्याकरण भी इन्हीं का बनाया हुआ है। कथासरित्सागर के अनुसार ये नन्द-कुल के मंत्री थे। कहा जाता है कि मुद्राराक्षस के राक्षस मन्त्री ही का नाम वररुचि कात्यायन था। कात्यायन गोभिल के पुत्र और शौनक के शिष्य थे। ये चौथी शताब्दी बी० सी० में हुए। इनका शुक्ल यजुर्वेद पर श्रौत सूत्र २६ अध्यायों का है। कृष्ण यजुर्वेद के ६ श्रौत सूत्र हैं जिनके रचयिताओं में आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बोधायन और भारद्वाज की प्रधानता है। वैखानस (श्रौत सूत्र) तथा मानव श्रौत सूत्र भी इसी वेद से संबन्ध रखते है। मनुस्मृति का मानव श्रौत सूत्र से सबन्ध अवश्य है। अथर्ववेद का वैतान सूत्र मात्र है। यह कात्यायन सूत्र के अनुसार चला है तथा अति प्राचीन नहीं है।

गृह्य सूत्र भी श्रौत सूत्रों की भांति वेदों ही के अनुसार चलते हैं। ऋग्वेद से संबन्ध रखने वाले सांख्यायन, शाम्बव्य तथा आश्वलायन गृह्य सूत्र हैं। शाम्बव्य गृह्य सूत्र मे पितृयज्ञ का विधान है। इससे जान पड़ता है कि इस काल मे पितृपूजन भली भांति स्थिर हो चुका था। सामवेद के गोभिल और खदिर गृह्य सूत्र हैं। शुक्ल यजुर्वेद का गृह्य-

सूत्र पारस्कर उपनाम कातीय अथवा वाजसनेय है। यह कात्यायन सूत्र से बहुत संबन्ध रखता है। कृष्ण यजुर्वेद के ७ गृह्य सूत्र हैं और इनके रचयिता प्रायः इस वेद के श्रौत सूत्रकार ही हैं। अथर्ववेद का कौशिक गृह्य सूत्र है जिसमे भारतीय जीवन का अच्छा चित्र खिचा है। संस्कारों का वर्णन विशेषतः गृह्य सूत्रो ही मे है, जिनके अनुसार ४० संस्कार श्रेय है, अर्थात् १८ शारीरिक और २२ याज्ञिक। शारीरिक सस्कारो मे पुंसवन (पंचमासा), जातकर्म, नामकरण, चूडाकरण (मुण्डन), गौदान (दाढी बनवाना), उपनयन, विवाह और अन्त्येष्टि प्रधान है। याज्ञिक संस्कारों मे पंचमहायज्ञ (ब्रह्म, देव, पितृ, मनुष्य और भूत) और अन्त्येष्टि उपनाम सपिण्डीकरण मुख्य हैं। इन्हीं सूत्रो मे श्राद्धो का भी वर्णन पूर्णतया मिलता है। जान पड़ता है कि पितृपूजन का विधान भारत मे सूत्रकाल मे बहुत पुष्ट हुआ। पितरों की प्रशंसा ऋग्वेद मे भी पाई जाती है और यजुर्वेद के ३५वें मंडल मे पितृयज्ञ का विधान भी है, जिससे पितृ-पूजन की प्राचीनता प्रमाणित होती है। श्राद्धो मे कैसे ब्राह्मण निमंत्रित होने चाहियें और उनका कैसा मान सत्कार हो, यह सब उनमे वर्णित है।

धर्मसूत्रकारो मे आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बोधायन, गौतम. वशिष्ठ आदि प्रधान है। धर्मसूत्रों की महत्ता ऐतिहासिकों के लिए श्रौत तथा गृह्यसूत्रों से अधिक है। धर्मसूत्रो ही से बढ़कर समय पर स्मृतियों का निर्माण हुआ। आपस्तंब सूत्र मे ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ आश्रमो आदि के धर्मों का वर्णन है। इसमे भोज्याभोज्य के कथन है और शुद्धिकरण, प्रायश्चित्तादि के भी विवरण आये हैं। विवाह, दाय और अपराधो के वर्णन भी आपस्तम्ब ने किये हैं। उत्तरी लोगो की निन्दा से प्रकट है कि ये महाशय दाक्षिणात्य थे। इनकी भाषा पाणिनीय व्याकरण के पहले की समझ पड़ती है, जिससे जान पड़ता है कि ये चौथी शताब्दी बी० सी० से पहले के हैं। बूलर ने इन्हे चौथी शताब्दी बी० सी० मे माना है। हिरण्यकेशी का ग्रन्थ आपस्तम्ब से सम्बन्ध रखता है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र मे अन्य ग्रन्थकारो से कोई विशेष मतभेद नही है, जिससे जान पड़ता है कि इनके कई शताब्दी पूर्व

हिन्दूमत दक्षिण में पूर्ण स्थिरता के साथ स्थापित हो चुका था। यदि उस काल दक्षिण में हिन्दू मत नया होता, तो इनका ग्रन्थ प्रचीन आर्य ग्रन्थों के समान सारे देश में सम्मानित कभी न होता, क्योंकि उस में स्थानिक बातें आये बिना न रहती।

बोधायन धर्म सूत्र भी आपस्तंब ही के समान विषयों पर कथन करते हैं और ये महाशय भी दक्षिणात्य हैं। बूलर का कथन है कि ये महाशय चौथी शताब्दी बी० सी० के पहले के हैं। इससे भी हमारे उपर्युक्त कथन को पुष्टि मिलती है। बोधायन के धर्मसूत्र में कुछ श्लोक भी हैं जो प्रक्षिप्त समझे जाते हैं। दत्त महाशय बोधायन को छठी शताब्दी बी० सी० के समझते हैं। बोधायन ने भारत को तीन भागों में विभक्त किया है। आप गंगा यमुना वाले देश को सर्वोत्कृष्ट कहते हैं, दक्षिणी तथा पूर्वी बिहार, दक्षिणी पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मालवा और दक्षिण दूसरे दर्जे के, तथा बंगाल, उड़ीसा, और ठेठ दक्षिण तीसरे दर्जे के। ये दर्जे आर्यसभ्यता के प्रचारानुसार थे। दूसरी श्रेणी के मनुष्य मिलित जाति के कहे गये हैं। जो कोई पंजाब के आरट्ट, ठेठ दक्षिण के कारस्कर, बंगाल एवं उड़ीसा के पुण्ड्र, वंग तथा कलिंग, दक्षिणी पंजाब के सौवीर और प्रानन लोगों में कहीं गया हो, उसे पुनीत होने को यज्ञ करना पड़ेगा। बोधायन निम्न स्थानों के निवासियों को मिश्र जातियों के मानते हैं :—मुलतान, सूरत, दक्षिण, मालवा, पश्चिमी बंगाल और बिहार। बौद्ध ग्रन्थ कौशलों को शुद्ध अमिश्र जाति वाले मानते हैं। सूत्रों में पहले पहल (मोहनजोदड़ो के पीछे) देवताओं की प्रतिमाओं के कथन हैं, जैसे ईशान, मीढ़ुषी, जयन्त, क्षेत्रपति। धर्म सूत्र ग्रन्थों में कुटुम्बों का न होकर समाज का विशेष कथन है। बोधायन के अनुसार दाक्षिणात्यों के विशेष चलन निम्नानुसार हैं :—अपनी स्त्री अथवा बिना जनेव हुये बालकों के साथ भोजन करना, बासी खाना खाना, मामा या फूफू की कन्या के साथ विवाह करना। उन्हीं के अनुसार उत्तर वालों के निम्न कथित चलन हैं :—ऊनका व्यापार करना, मदिरा पीना, शस्त्रास्त्र का व्यापार करना, समुद्र यात्रा करनी आदि। आपस्तंब तथा बोधायन की भाषा देखते हुये कौनसी भाषा पाणिनीय किन्हीं

पर विशेष चलती है।

गौतम ने यद्यपि अपने ग्रन्थ को धर्मशास्त्र कहा है तथापि वास्तव में वह धर्मसूत्र ही समझा जाता है। यह ग्रन्थ कल्पसूत्र का अंग नहीं है जैसा कि आपस्तम्ब और बोधायन के हैं। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि बोधायन धर्मसूत्र के कुछ भाग गौतम धर्मसूत्र पर अवलंबित हैं और कुछ उनसे लिये भी गये हैं। गौतम उत्तरीय ब्राह्मण थे और बोधायन दाक्षिणात्य। उस काल किसी ग्रन्थ का उत्तर से दक्षिण को जाना शताब्दियों का काम था। इससे गौतम का काल चौथी पाँचवीं शताब्दी बी० सी० से पूर्व समझ पड़ता है। कुमारिल्ल का कथन है कि गौतम सूत्र सामवेद से सम्बन्ध रखता है। वशिष्ठकृत धर्म-शास्त्र में गौतम के अवतरण है और मनुस्मृति मे वाशिष्ठ धर्म-शास्त्र के उद्धरण पाये जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वशिष्ठ का समय गौतम और मनुस्मृति के बीच मे है। वशिष्ठ ने मानव-सूत्र के भी अवतरण दिये है। इससे भी सिद्ध होता है कि मनुस्मृति मानव-सूत्र के आधार पर बनी।

शुल्व सूत्रो मे वेदी आदि बनाने के ढङ्ग लिखे है। इनसे रेखा-गणित का अच्छा ज्ञान विदित होता है। कुछ लोगों का विचार था कि ब्राह्मणो ही ने इन सब धार्मिक रीतियो तथा विधियो को चलाया, किन्तु अब यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि यद्यपि ब्राह्मणो ने इनकी उन्नति वहुत अधिकता से की और इन सब को क्रम-बद्ध करके अपना बुद्धि-वैभव दिखलाया, तथापि इन सब का मूल प्राचीन आर्य-सभ्यता मे वर्तमान था। इसके उदाहरण-स्वरूप आर्यों तथा पार्सियो के यज्ञ, सोम, यज्ञोपवीत, अग्नियज्ञ, विवाह की सप्तपदी आदि से सम्बन्ध रखने वाले विचार हैं। लकड़ियों को रगड़ कर अग्नि उत्पन्न करने का भी ढङ्ग दोनों जातियो मे एकसा पाया जाता है।

सूत्रवत् वैदिक ग्रन्थोके हमारे यहाँ ६ भाग माने गये हैं, जिन्हे वेदाङ्ग कहते है। इनके नाम शिक्षा (उच्चारण), छन्द, व्याकरण, निरुक्त (शब्दविभाग), कल्प (धार्मिक विधि), और ज्योतिष हैं। शिक्षा का कुछ वर्णन हम वैदिक अध्यायों मे कर आये हैं। छन्द का विधान पिङ्गल से सम्बन्ध रखता है। कहते हैं कि शेषनाग ने छन्दों का विधान

किया। इसमे जान पड़ता है कि छन्दःशास्त्र नागो का बनाया हुआ है। व्याकरण के सबसे पहले आचार्य पाणिनि प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अष्टाध्यायी की रचना की। इनसे पहले का कोई व्याकरण ग्रन्थ अब हस्तगत नही होता, किन्तु स्वय पाणिनि ने अपने पूर्व के ६४ वैयाकरणो के नाम लिखे हैं। यास्क भी एक प्रकार से वैयाकरण थे, यद्यपि अब उनकी महत्ता केवल निरुक्त पर ही अवलम्बित है। यास्क पाणिनि से बहुत पहिले के हैं। इनके समय मे भी व्याकरण का ज्ञान बहुत फैल चुका था, क्योकि इन्होंने व्याकरण सम्बन्धी दो शाखाये उत्तरी और पूर्वी कही हैं तथा प्राय: ७० वैयाकरणो के नाम लिखे है जिनमें शाकटायन, गार्ग्य और शाकल्य प्रधान हैं। पाणिनि का व्याकरण ऐसा उत्कृष्ट बना कि इनके पहले वाले सभी वैयाकरणों के ग्रन्थ और यश लुप्त हो गए और यदि यास्क ने निरुक्त न लिखा होता तो इनके ग्रन्थ की भी वही दशा होती जो औरों की हुई।

शांख्यायन गृह्य सूत्र मे सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल के नाम हैं तथा आश्वलायन सूत्र मे भारत और महाभारत के। शाम्बव्य सूत्र भी महाभारत का कथन करता है। नवीन सूत्र उसी समय के हैं जब भारत और रामायण बनी। शतपथ ब्राह्मण मे जनमेजय थोड़े ही दिन पहले के महाराजा हैं। वैशम्पायन और व्यास के नाम तैत्तिरीय आरण्यक मे हैं, किन्तु महाभारत से उनका सम्बन्ध अकथित है। कात्यायन के वार्तिक मे पहले पहल कुरु पाण्डवों का कथन है। (हाप्किंस)।

मैकडानेल महाशय के अनुसार यास्क सूत्रकाल के आदि मे हुए। पाणिनि के समय का कथन ऊपर आ चुका है। इनके पीछे वाले व्याकरणकारो मे कात्यायन और पतञ्जलि प्रधान हैं और ये तीनों मुनित्रय कहाते हैं। कात्यायन नंद वंश के मंत्री होने से चौथी शताब्दी बी० सी० के ही थे और पतञ्जलि पुष्यमित्र के समकालिक होने से दूसरी शताब्दी बी० सी० के। कात्यायन ने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर वार्तिक लिखे, जिनमे पाणिनि इनके पूर्व ठहरते हैं। हम ऊपर कह आये हैं कि बोधायन चौथी पांचवी शताब्दी बी० सी० में थे। इनके ग्रन्थ मे महाभारत का हवाला मिलता है। डाक्टर जौली ने

मतानुसार गौतम पांचवी या छठी शताब्दी बी० सी० के हैं, तब बोधायन आते है, फिर आपस्तम्ब, अनन्तर वशिष्ट। डाक्टर जायसवाल आपस्तम्ब के विषय मे जॉली से सहमत होकर उन्हे प्राय: ४५० बी० सी० का मानते हैं, किन्तु गौतम को आपस्तम्ब से पुराना नहीं समझते वरन् उन्हे ३५० बी० सी० के निकट का बतलाते है। मूलत: बोधायन का ग्रन्थ आपस्तम्ब से पुराना है, किन्तु उस ग्रन्थ का वर्तमान रूप दूसरी शताब्दी बी० सी० तक आ जाता है। वशिष्ठ १०० शताब्दी बी० सी० से पहले का न होगा। अतएव प्राय: सातवी शताब्दी से चल कर सूत्रकाल प्राय: पहली शताब्दी बी० सी० तक चला।

पुराणो के वर्णन सें हम महाभारत की प्राचीनता के प्रमाण लिखेगे। उधर यास्क पाणिनि से और भी अधिक प्राचीन समझ पड़ते है, क्योकि इन दोनो के बीच मे बहुत भारी भारी वैयाकरणों के नाम आये है। निरुक्त एवं ज्योतिष का वर्णन हम ब्राह्मणों के अध्याय मे कुछ कुछ कर आये है। परिशिष्ट, प्रयोग, पद्धति और कारिका नामक ऐसे चार ग्रन्थ है जो सूत्रों से कुछ कुछ मिलते है। अनुक्रमणिका ग्रन्थ मे कात्यायन कृत सर्वानुक्रमणिका प्रधान है। विधि आदि के विषय पर पूरा बल प्रयोग करते हुए भी हमारे ऋषियो ने आचार ही की प्रधानता रक्खी। वशिष्ठ का वचन है, "जैसे स्त्री की सुन्दरता अन्धे को कोई प्रसन्नता नहीं देती, उसी प्रकार षडङ्गों तथा यज्ञो समेत सब वेद उसके लिए शुभ नही होते जिसका आचार ठीक नहीं है।" सूत्रकाल के ज्योतिषकारो मे पराशर और गर्ग की प्रधानता है, किन्तु इन लोगो के नामो पर जो ग्रन्थ मिलते है वे ईसा से एक ही दो शताब्दी पहिले के है।

हम ब्राह्मण-काल के साहित्य-विवरण मे लिख आये है कि षड्-दर्शन के मूल सिद्धान्त बीज-रूप से ब्राह्मण ग्रन्थो मे मिलते है। इनका विकास सूत्रकाल मे कुछ अच्छा हुआ। ऊपर गौतम कृत धर्म सूत्र का वर्णन कर आये है। जान पड़ता है कि यही सूत्रकार गौतम न्याय-शास्त्र के भी आचार्य थे। हमारे यहाँ का न्याय शास्त्र अँगरेजी लॉजिक ही के समान नहीं है, वरन लॉजिक के सिद्धान्तो को कहकर वह और भी बहुत सी बातो का कथन

करता है। गौतम ने पहले सोलह पदार्थों का सम्बन्ध बता कर यह सिद्ध किया कि उनसे मुक्ति किस प्रकार मिलती है? इनके थोड़े ही पीछे आचार्य कणाद हुए जिन्होंने न्याय से सम्बन्ध रखने वाले वैशेषिक शास्त्र को प्रकट किया। इनका सिद्धान्त एक प्रकार का परमाणुवाद है और खेतों से बीन कर केवल कण खाने के कारण इनको कणाद कहते हैं। इनका वास्तविक नाम क्या था सो अब ज्ञात नहीं है। उलूक गोत्री होने के कारण ये औलूक कहलाते थे। हमारे षड्दर्शन में सांख्य और पूर्वमीमांसा अनीश्वरवादी हैं। सांख्य केवल प्रकृति और पुरुष को मान कर चलता है अथच ईश्वर का अस्तित्व नहीं मानता। कपिल ने २५ तत्त्वों को लेकर संसार-सृष्टि बताई है। इन षड्दर्शन वाले वर्तमान ग्रन्थों में एक दूसरे तथा बौद्ध दर्शनों के भी हवाले हैं। इस से इन वर्तमान ग्रन्थों के नवीन भाग दूसरी तीसरी शताब्दी ईसवी के पीछे के हैं।

उपर्युक्त दोनों अनीश्वरवादी शास्त्रों के प्रादुर्भाव से हिन्दू मत में अनीश्वरता का पहले पहल शास्त्रीय रूप में बीजारोपण हुआ और पण्डित-समाज में बड़ी खलबली पड़ी। इसलिए महर्षि गौतम तथा कणाद ने ईश्वरवाद के पक्ष को दृढ़ किया। पूर्व मीमांसा में वेदों की महत्ता सिद्ध की गई है और उन पर पाण्डित्य-पूर्ण विचार प्रकट किए गये हैं। जान पड़ता है कि इसी समय या इस से बहुत पूर्व चार्वाक् का शरीरवाद फैला जिसके अनुसार शारीरिक सुख सभी धर्मों का मूल है। महर्षि जैमिनि ने बृहस्पति के इस विचार का खण्डन भी किया है। जैमिनि एक बहुत प्राचीन आचार्य थे, क्योंकि यास्क के ग्रन्थों में इनके सिद्धान्तों का कथन आया है, जिससे इनका यास्क के पहले होना प्रकट होता है। उधर कणाद गौतम के पीछे हुए।

गौतम, पराशर, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ आदि ने मनु का उल्लेख किया है। भृगु, गौतम, शौनक, अत्रि आदि के विचार मनु में पाये जाते हैं। भृगु ने मनु के सिद्धान्तों को एकत्र करके मानव धर्म सूत्र रचा।

पांचवीं शताब्दी बी० सी० के लगभग बादरायण व्यास ने उत्तर मीमांसा के आदिम रूप का निर्माण किया। पूर्व मीमांसा में कर्म-

काण्ड की विशेष प्रधानता रही, किन्तु उत्तर मे ज्ञान की। मोटे प्रकार से पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा का वही सम्बन्ध है जो ब्राह्मण और उपनिषदों का है।

जैन पंडित हेमचंद्र का कहना है कि न्याय के भाष्यकार पक्षिल चाणक्य ही थे। जैमिनि वेदो का महत्व स्वीकार करते हैं किन्तु उनका अनादि होना नहीं मानते। गौतम ईश्वर को मानते हैं किन्तु उसकी सृष्टि-शक्ति को नहीं।

भारतवर्ष मे वेदान्त या दर्शन की १९ शाखाये थी। हिन्दू वेदान्त प्रथम ईश्वरवादी था, किन्तु पीछे से अनीश्वरवादी भी हो गया। मुक्ति की समस्या को सब एक मत से मानते है।

बृहस्पति कृत चारवाक का मत है कि (१) कष्टप्रद कार्य मत करो। (२) हिसा न करो। (३) भाग्य नहीं, पुरुषार्थ मुख्य है। आलसी भाग्य पर भरोसा करते हैं। आत्म निर्भर रहो। आत्म-निर्भरता ही शक्ति है। उसी से मोक्ष होती है। (४) परमेश्वर अथवा अन्य लोक नही है। (५) वेद और ईश्वर मे विश्वास मत करो, क्योंकि वे कृत्रिम और धोखेबाज़ है। (६) सदा बुद्धि पर चलो। बुद्धि बिना धर्म नहीं। (७) आत्मा अमर है और वह क्षिति, जल, पावक और समीर से बना है, अग्नि से भी नही। (८) केवल प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सब से पहले बृहस्पति ने अनीश्वरवाद चलाया था और ब्रह्मा ने अथर्व दर्शन। अनीश्वरवाद शूद्र राज्यो मे तथा ब्राह्मण-वेदान्त क्षत्रिय-राज्यो मे उन्नत हुआ।

जैनों के मुख्य तीन सिद्धान्त हैं अर्थात् (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् ज्ञान, और (३) सम्यक् कर्म। सम्यक् कर्म मे ५ उपभेद हैं अर्थात् (१) सत्यभाषण, (२) अस्तेय, (३) इच्छाध्यान, (४) पवित्रता (मानस, वाचिक एवं कायिक), और (५) अहिंसा।

महाभारत मे लिखा है कि आर्य जैन और म्लेच्छों के कारण लोग सदिग्ध हो गए थे। हिरण्यकशिपु और अश्वग्रीव सबसे पहले शरीर-वादी थे। अश्वग्रीव ने वैदिक धर्म को ससार से उठाने का प्रयत्न किया और वेद को चुरा लिया।

ब्राह्मण-काल-पर्यन्त जो वेदों और ब्राह्मणों की रचनायें हुई थी वे सब अपौरुषेय कहलाती है, किन्तु सूत्रकाल के ग्रन्थ मनुष्यकृत हैं ऐसा कट्टर पण्डितों का भी कथन है। वैदिक, ब्राह्मण और सूत्र नामक तीन काल कहे गये है। इन तीनों कालों मे भाषा भी एक दूसरे से भिन्न थी। वैदिक समय मे आर्यों की भापा आसुरी कहलाती थी जिसमे ऋग्वेद एव सामवेद का गान हुआ। यह आर्यो की सबसे पुरानी भापा थी। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद की भापा इससे कुछ उन्नत समझ पड़ती है। यद्यपि यह भेद सभी स्थानो पर दृष्टिगोचर नही होता, तथापि कुल बातों पर विचार करने से यह भापा ऋग्वेद से कुछ विकसित अवश्य है। यह विकास ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों की भापा मे और भी स्पष्ट होता है। सूत्रकाल मे साहित्य का गौरव और लेखकों की सख्या इतनी बढ़ी कि धीरे धीरे नियमो की रचना होने लगी। इन नियम-सम्बन्धी ग्रन्थों का नाम व्याकरण पडा। इसी व्याकरण के दृढ़ होने से भापा का संस्कार हुआ, जिससे उसका नया नाम सस्कृत पड़ गया। व्याकरण का आदि काल सूत्रकाल के आरम्भ से ही समझ पड़ता है, और पाणिनि के समय मे वह दृढता को प्राप्त हुआ। पाणिनि के पूर्व वाले वैयाकरण भी भापा का सस्कार करने के प्रयत्न मे लगे रहे किन्तु उस मे सफलता पाणिनि को हुई। व्याकरण सम्बन्धी विचारों के बहुतायत से समस्त सूत्रकाल की भापा संस्कृत कही जा सकती है। अतः वैदिक समय की भापा आसुरी हुई और सूत्रकाल की सस्कृत। ब्राह्मणकाल की भापा इन दोनों के बीच मे थी। इन तीनो को हम आर्य-भापा कह सकते है। नवीन परिष्कृत संस्कृत भापा का आरम्भ काल यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों मे है। यह धीरे धीरे दो स्थितियो मे गुजर कर वर्तमान रूप में पहुँची है।

ब्राह्मण-काल-पर्यन्त आर्य-भापा ही की महत्ता रही और प्राकृत भापा इसके संसर्ग से उन्नति अवश्य करती गई किन्तु उसने ऐसा विभव नहीं प्राप्त किया कि उसमें ग्रन्थ लिखे जाते। यदि कुछ प्राकृत ग्रन्थ उस काल बने भी हों तो वे ऐसे नीरस और क्षुद्र थे कि [illegible] से रक्षित नहीं रह सके। सूत्रकाल में ही इस प्राकृत [illegible]

पहल साहित्य क्षेत्र मे अवतीर्ण होते देखते है। ब्राह्मण लोग सूत्रकाल पर्यन्त उच्च विषयों मे लगे रहे। इसीलिए उन्होने राज-यश गान अपनी महत्ता के प्रतिकूल समझा। यही कारण है कि राजनीतिक इतिहास रक्षित करने का भार सूत लोगो पर पड़ा। कहते है कि जब महर्षि वेदव्यास ने अपने शिष्यो मे वेद को बाँटा, तब पुराणो का विषय लोमहर्षण सूत को सौपा। इससे जान पड़ता है कि जब इस विषय को क्षुद्र समझ कर ब्राह्मणो ने इसका तिरस्कार किया, तब सूतो ने इसे अपनाया। यह सूत लोग आर्य-भाषा मे प्रवीण न रहने के कारण प्राकृत की ही ओर झुकते थे। उसी भाषा का साधारण जन-समुदाय मे व्यवहार भी विशेष होगा। इसलिए पुराणो के विषय-वर्णन के साथ प्राकृत का पहला लेखन-काल प्रारम्भ हुआ। राजा लोग भी अपना तथा अपने पूर्व पुरुषो का वृत्त एकत्रित करने का प्रयत्न करते थे। सबसे अधिक वंशावलियो पर ध्यान रहता था। यह ऐतिहासिक मसाला भी प्राकृत ही में एकत्रित होता था। जान पड़ता है कि वर्तमान ब्रह्मभट्ट और चारणो की भाँति पूर्व काल मे इन बातो पर सूतों ने विशेष ध्यान दिया और इसीलिए राजाओ ने वंशवृत्त-रक्षणार्थ उन्ही से काम लिया। ये वृत्त भी पहले स्मरण-शक्ति द्वारा रक्षित रहे, किन्तु लेखनकला के चलन से सब से पहले उसका प्रयोग भी इन्ही विषयो पर हुआ।

सर्व साधारण तथा स्त्रियाँ भी इतिहासो के सुनने का चाव रखती थी। शायद इसीलिए कहा गया है कि पुराण स्त्रियो तथा शूद्रो ही के लिए है। अत: प्रकट होता है कि राजाओ, सूतो, स्त्रियो तथा शूद्रो के प्रोत्साहन से हमारे यहाँ पहले पहल इतिहास का प्रादुर्भाव हुआ। पार्जिटर महाशय ने सिद्ध किया है कि प्राचीनतम संस्कृत-पुराण-ग्रन्थ प्राकृत पुराणो के आधार पर बने और बहुत स्थानो पर श्लोक प्राकृत से जैसे के तैसे उठाकर संस्कृत मे अनुवादित हो गये, यहाँ तक कि कही कही भविष्य पुराण मे प्राकृत शब्द के स्थान पर वैसा ही संस्कृत शब्द लाने का प्रयत्न करने से व्याकरण तथा छन्दादि की भी अशुद्धियाँ हो गई। यदि उन स्थानो पर प्राकृत शब्द रक्खे जायँ तो यह अशुद्धियाँ दूर हो सकती है। बौद्ध निकाय ग्रन्थों मे विदित होता

है कि ऐसे प्राचीन समय में भी सर्वसाधारण में पुराण सुनने की प्रथा थी जब संस्कृत के पुराण ग्रन्थ न बने थे। इन बातों से सिद्ध होता है कि प्राकृत में श्लोकबद्ध पुराण भी बने थे और सर्वसाधारण में उनका मान होता था। उनमें साहित्यिक चमत्कार विशेष न था, इसीलिए संस्कृत-पुराण ग्रन्थ बनने के कारण उनका लोप हो गया। श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलरामजी की तीर्थ-यात्रा के वर्णन में लिखा है कि नैमिषारण्य में उन्होंने किसी सूत को व्यासासन पर बैठे हुए सहस्रों श्रोताओं को पुराण सुनाते देखा। उस श्रोतृ-समाज में अनेक ब्राह्मणों को भी देखकर बलरामजी को पौराणिक सूत की अनुचित महिमा पर इतना क्रोध आया कि इन्होंने तत्काल उसका वध करके एक ब्राह्मण को उसके स्थान पर पुराण बाँचने के लिए नियत किया। (इस कथन का आधार १२वें अध्याय में है।) इस बात से सिद्ध होता है कि उस काल भी पुराण बाँचने की प्रथा थी और सूतों के अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण लोग भी इसमें पटु हो गये थे।

लेखन-कला का भी चलन भारत में सूत्रकाल में ही हुआ। बौद्ध इतिहासकार रिज डेविड्स ने अनेकानेक प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से अवतरण देकर सिद्ध किया है कि छठी शताब्दी बी० सी० में लेखनकला भारत में सर्वसाधारण में प्रचलित थी। इनके अनुसार छठी शताब्दी बी० सी० के मध्य अथवा आठवीं के प्रारम्भ में द्राविड़ व्यापारी लोग समुद्रमार्ग से बैबिलोन को प्रायः जाते आते थे। यह देश पश्चिमी एशिया में है। वहाँ से इन लोगों ने फारसी की भाँति दाहिनी ओर से बांई ओर लिखी जाने वाली लिपि सीखी और उसका भारत में प्रचार किया। हमारे यहां की प्राचीन ब्राह्मी लिपि भी इसी प्रकार लिखी जाती थी। इसी के पीछे भारत में खरोष्ट्री लिपि का प्रचार हुआ जो वर्तमान लिपि की भांति बांई ओर से चलती है। सब से पुरानी लिपि भारत में मोहंजो दड़ो और हड़प्पा में मिली है। वह अभी पढ़ी नहीं गई है। पुरातत्त्व वेत्ताओं ने इस का समय ३५०० से २५०० बी० सी० से कभी माना है। स्पष्ट रचना गाथाओं का रचन ऋग्वेद में होने से उस काल भी लेखन का गम में कम कुछ प्रयोग सिद्ध है।

श्याम शास्त्री का मत है कि हमारे यहां की लेखन-विद्या का प्रादुर्भाव देव-पूजन से हुआ. अर्थात् जिस काल प्रतिमाएं न थीं, तब विविध सांकेतिक चिह्नों द्वारा पृथक् पृथक् देवताओं का पूजन होता था। समझा जाता था कि इन सांकेतिक चिह्नों में देवताओं का निवास है, अर्थात् ये देवनगर हैं। इन्हीं में समय पर लिपि निकली और वह देवनागरी कहलाई। इस मत को मानने से भारतीय लिपि-प्रणाली का बैबिलोन से आना असिद्ध ठहरेगा। जनरल कनिंगहम का भी मत है कि भारत में लिपि-प्रणाली बैबिलोन व पश्चिमी एशिया से असंबद्ध है और यहां पण्डितों ने स्वयं अपनी लिपि का प्रादुर्भाव किया। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के पीछे अशोकादि के प्राचीन शिला-लेख सब खरोष्ट्री में मिलते हैं। अशोक-काल से प्राचीनतर केवल एक पाषाण लेख नैपाल की तराई में मिला है जिसमें १४ अक्षर मात्र हैं। प्राचीन प्राकृत पुराण ग्रन्थों के अस्तित्व से प्रकट होता है कि भारत में लेखनकला का चलन आठवीं शताब्दी बी० सी० से अवश्य है। जिस काल महर्षि व्यास ने महाभारत बनाई, उस काल पुराण-लेखन में स्मरण से काम नहीं लिया जाता था, क्योंकि महाभारत ही में लिखा है कि व्यासदेव इसे बना बना कर लिखाते गये। इस ग्रन्थ का आदिम नाम जय था, जो छठी सातवीं शताब्दी बी० सी० का कहा जाता है।

यहाँ तक हम सूत्रकाल की विद्या-विषयिणी उन्नतियों का विवरण करते आये हैं। अब उन्हीं के सहारे सामाजिक अवस्था का कुछ वर्णन किया जायगा। धर्म सूत्रों ही से बढ़ कर समय पर स्मृति ग्रन्थों का निर्म्माण हुआ। सब से पहला स्मृति-ग्रन्थ मानव-धर्म-शास्त्र अथवा मनुस्मृति है। कण्व वंशी तीसरे राजा नारायण के राजकवि भास कहे जाते हैं। उन्होंने १३ नाटक रचे। नारायण पहली शताब्दी बी० सी० में थे। इतना प्रकट है कि मानव-धर्म-शास्त्र भास से पहले का है। मनुस्मृति का समय पाश्चात्य पण्डितों ने दूसरी शताब्दी बी० सी० से दूसरी शताब्दी ईसवी तक के बीच का माना है पर इस ग्रन्थ का समय निरूपण कठिन कार्य है क्योंकि यह कई बार करके बना और क्षेपक पूर्ण भी है। कुल मिला कर भारतीय पण्डितों का विचार है कि

इसका आदिम रूप महाभारत के पीछे का नहीं है। आज कल मुख्य स्मृतियां १८ मानी गई हैं। स्मृतिकारों में मनु, अत्रि, हारीत, शंख-लिखित (दोनों ने मिल कर एक ही स्मृति रची), पराशर, व्यास, नारद, विष्णु, वशिष्ट और याज्ञवल्क्य मुख्य हैं। सत्ययुग के लिए मनुस्मृति की प्रधानता मानी गई है, त्रेता में गौतम की, द्वापर के लिए शंख-लिखित की तथा कलियुग में पराशर की।

प्रसिद्ध १८ स्मृतियों के रचयिता निम्नानुसार हैं:—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तंब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख-लिखित, गौतम, शातातप और वशिष्ट। स्मृतियों का काल बी० सी० पांचवीं से कई शताब्दियों तक चलता है। सामाजिक विवरण के लिये स्मृतियों से बहुत कुछ मसाला मिलता है किन्तु उन्हें छोड़ कर केवल सूत्र ग्रन्थों से भी अच्छा सामाजिक विवरण प्रकट होता है। स्मृतियों का विवरण आगे के भाग से सम्बद्ध है।

सब से पहले हम स्त्रियों के अधिकारों तथा विवाहों के विषय में विचार करेंगे। नारद, देवल तथा पराशर ने स्त्रियों को सबसे अधिक अधिकार दिये। इनके विचार में मासिक ऋतु से भूत जार की शुद्धि होती है और गर्भ तक रह जाने से प्रसव के पश्चात् स्त्री शुद्ध हो जाती है। यह भी कहा गया है कि यदि किसी का पति बेपता हो जाय तो जाति के अनुसार वह दो से लेकर यथाक्रम ८ वर्षों के पीछे दूसरा पति कर सकती है। पचापत्तियों में भी इन्होंने स्त्रियों के लिये दूसरे पति का विधान किया है। निकट के सम्बन्धियों में विवाह वर्ज्य किया गया है, यद्यपि युधिष्ठिर के समय तक यह प्रथा जारी थी। मिलित विवाहों की प्रथा सूत्रकाल में भी चलती रही। स्वयं गौतम बुद्ध से एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या व्याहने को कहा था और फिर वही कन्या राजा उदयन को व्याही गई। उदयन कुलीन क्षत्रिय थे, किन्तु उनकी तीन रानियों में से एक ब्राह्मणी थी, एक क्षत्रिया तथा एक वैश्या। इसके बहुत पीछे तक यह चाल चलती रही।

वर्णाश्रम धर्म की प्रथा बहुत प्राचीन काल से हमारे यहां चली आती थी। वर्ण विभाग के ही अन्तर्गत जातिभेद भी था। [illegible]

में ब्राह्मण-काल की अपेक्षा जातिभेद की अधिक दृढ़ता हुई किन्तु आश्रमभेद की परिपाटी में कुछ शिथिलता आने लगी। आदिम काल में अधिकांश विद्यार्थी गुरुओं के यहां जाकर ब्रह्मचर्य-विधान से विद्या ग्रहण करते थे। अनाथ बालकों के लिये भी शिक्षा का प्रबंध था और वे पुण्य शिष्य कहलाते थे। यह संस्था सूत्रकाल में बहुत कम हो गई और वानप्रस्थ तथा संन्यास की परिपाटी भी कमी को प्राप्त हुई। हिन्दू धर्म के अनुयायी बढ़े और अनेकानेक आदिम निवासी इसमें आये। प्रारम्भ में ब्राह्मण और क्षत्रिय बहुत कम थे। उत्तरी भारत में प्रायः वैश्यों ही का प्राधान्य था। उत्साही, स्वतंत्र स्वभाव द्रविडों के बहुत से लोग बंगाल और कलिंग को गये और वहां उन्होंने राज्य स्थापित किये। उनमें से जो लोग आर्य आगमन समय तक पूर्ण हिन्दू बनने से बच रहे थे उनको इन्होंने अपने में मिला लिया। उनमें से बहुत लोग वैश्य हो गये तथा शेष शूद्र रहे। पतित या जातिच्युत आर्य भी शूद्र ही कहाते थे। इन ४ वर्णों के अतिरिक्त एक बड़ी जाति निषाद भी थी। अब वे अछूतों में हैं और उनकी संख्या प्रायः २५ प्रतिशत है। बहुतेरे विदेशीय भी समय पर जातियों में सम्मिलित हो गये। ग्रीक, पार्थियन, सीदियन, शक, तुर्क, हूण, कुशान आदि सब हिन्दू हो गये। स्वच्छ आचरण के कारण शूद्र भी रसोइया बनाया जा सकता था। स्त्री और पुरुष सब लम्बे बाल रखते थे, विशेष कर वशिष्ठ गोत्र वाले अवश्य ऐसा करते थे। शिखा का उल्लेख प्रथम शतपथ ब्राह्मण में आया है। जो जन-समुदाय कोई विशेष कार्य करता था, उसकी एक पृथक् जाति सी होती थी। अम्बष्ठ, निषाद, उग्र, मागध, वैदेहक, सुनार, बढ़ई, लोहार, कुक्कुटक, चाण्डाल, आदि अनेकानेक जन-समुदाय इस प्रकार के थे। वशिष्ठ, बोधायन और गौतम के अनुसार कुछ जातियों की उत्पत्ति मिश्रित थी, जैसे—चाण्डाल = शूद्र + ब्राह्मणी; वैन = शूद्र + क्षत्रिया; अन्त्यवासिन = शूद्र + वैश्या; रमक = वैश्य + ब्राह्मणी; पौल्कस = वैश्य + क्षत्रिय; सूत = क्षत्रिय + ब्राह्मणी; अम्बष्ट = ब्राह्मण + क्षत्रिया; उग्र = क्षत्रिय + वैश्या; निषाद = वैश्य + शूद्रा। इनको उपजाति भी कहते थे। शांति पर्व में लिखा है कि काले, मिश्रित जन्मी मनुष्य,

जो अपवित्र, क्रूर स्वभाव वाले, लालची तथा सब कर्म्मकर्ता थे, शूद्र कहलाये। कहीं कहीं आया है कि मूलतः शूद्र आर्यों और दस्युओं के मेल से उत्पन्न दास श्रेणी के मनुष्य थे। प्रायः वे द्रविड़ (Dravidian) जाति के परिवर्तित लोग थे। कोई कोई यह भी सोचते हैं कि शूद्र मूलतः अनार्य्यों की कोई भारी जाति थी, और पीछे कुछ आर्य्यों एवं अन्यों को मिलाकर इसका व्यापक नाम हो गया। अंतिम वेदों में इनको निषाद जाति अर्थात् शिकारी कहा है। ये लोग जैसे के तैसे हिन्दूधर्म में आ गये और इनकी जाति जैसी की तैसी बनी रही। इन लोगों को चार ही जातियों में स्थान मिलना था, क्योंकि शास्त्रकारों ने लिखा है कि हिन्दुओं में कोई पंचम वर्ण नहीं है। इसलिये इन लोगों को अपने अपने सामाजिक प्रभावानुसार चातुर्वर्ण्य के किसी न किसी विभाग में स्थान मिल गया। स्थानानुसार ब्राह्मणों के भी दस विभाग हो गये जिनमें उत्तरीय पंचगौड़ कहलाये और दाक्षिणात्य पंचद्राविड़। पंचगौड़ों में सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड, मैथिल और उत्कलों की गणना है, तथा पंचद्राविड़ों में महाराष्ट्र, द्रविड, तैलंग, कारनाटक और गुर्जर की।

वैदिक समय में आर्यसभ्यता का केन्द्र पंजाब एवं कुरु क्षेत्र रहा, ब्राह्मण-काल में कुरुक्षेत्र तथा विहार और सूत्र समय में कान्यकुब्ज (कन्नौज)। बौद्ध काल में यही केन्द्र मगध हो गया। कश्मीरी ब्राह्मण सारस्वत हैं तथा सनाढ्य और कुछ बंगाली ब्राह्मण कान्य-कुब्ज हैं। कहते हैं कि कान्यकुब्जों के ५ घराने बङ्गाल में गए थे, जिनसे बंगाली कान्यकुब्जों का वंश चला। ये लोग शेष बङ्गाली ब्राह्मणों को बेटी प्रायः नहीं देते थे। जैसे ब्राह्मण-काल में वानप्रस्थाश्रम के लिये नियमोपनियम बने थे, इसी तरह सूत्रकाल में गृहस्थ तथा सन्यासाश्रम के रचे गये तथा अन्य आश्रमों के भी दृढ़ हुए। यज्ञों की परिपाटी वैदिक समय से उठकर ब्राह्मण काल में पुष्ट हुई थी। सूत्रकाल में इसकी विशेष उन्नति तो न हुई और वह पतनोन्मुख रहा, किन्तु फिर भी किसी न किसी भांति वह चलती गई।

सूत्रकाल में विशेष ध्यान गार्हस्थ्य नियमों तथा सामाजिक अधिकारों पर रहा और फिर समाज-बन्धन में [illegible]

गई। महाभारत युद्ध के समय भारत के ठेठ पूर्व, ठेठ पश्चिम और ठेठ दक्षिण में अहिन्दुओं का निवास था, किन्तु सूत्रकाल में वे सब हिन्दू हो गये और समस्त भारतवर्ष में अहिन्दू बहुत कम रह गये। अतः जैसे ब्राह्मण काल में आर्यों ने राजनीतिक उन्नति को चरमसीमा पर पहुँचाया था, उसी प्रकार सूत्रकाल में धार्मिक-विस्तार चरमसीमा को पहुँच गया। मोहंजोदड़ो और हड़प्पा के अतिरिक्त महाभारत युद्ध पर्यन्त भारत में प्रतिमा-पूजन का कोई भी उदाहरण नहीं मिलता। यदि ढूँढ़ खोज कर कोई एकाध उदाहरण दिखला देवे, तो इतना अवश्य कहा जायगा कि देश में प्रतिमा का चलन बहुत ही कम था। प्रकृति पूजन से मानस प्रतिमा पूजन निकला। सूत्रकाल में प्रतिमा-पूजन का चलन कुछ कुछ हुआ किन्तु यह समाज के अधोभाग में ही रहा और ऊंची श्रेणियों में न आया। प्रतिमा की मुख्यता विशेषतया बौद्धमत विस्तार के साथ दूसरी शताब्दी से है। गौ ब्राह्मण महिमा इस काल में और भी बढ़ी और अनजान में भी इनके हिंसक को कठोर दण्ड दिया गया।

व्यापार-सम्बन्धिनी जातियों के हिन्दूमत में सम्मिलित होने से इसमें भी जाति संबन्धी दृढ़ता का समावेश होने लगा। ये व्यापारी जातियाँ खान पान, बेटी व्यवहार आदि का सबन्ध अपनी सस्था के बाहर प्रायः नहीं करती थी। इनके उदाहरण का प्रभाव शेष हिन्दुओं पर भी बहुत पड़ा और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि में जो वैवाहिक और खान पान सम्बन्धी स्वच्छन्दता थी, उसका चलन समय के साथ कम होता चला। इसलिये यद्यपि मिलित विवाहादि नितान्त लुप्त नहीं हुए, तथापि इनका चलन दिना दिन घटता ही गया। यद्यपि शूद्रों की सभी जातियाँ शास्त्रानुसार आपस में सम्बन्ध कर सकती हैं, तथापि वास्तव में ऐसे विवाहों का चलन समाज में नहीं है।

इन लोगों के हिन्दूमत में आने से इनके प्राचीन भूतप्रेतादि के पूजन विधान तथा कराल देवताओं के विचार भी इस में घुसने लगे। अब तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश का पूजन विधान लोक में प्रचलित नहीं हुआ था। यद्यपि विष्णु और शिव के नाम ऋग्वेद में हैं और यज्ञ में इन्हें भी भाग मिलता था, तथापि इनकी गणना अमुख्य देवताओं में थी और ईश्वर के प्रधान स्थानापन्न होने का गौरव इन्हें बिलकुल

नही प्राप्त हुआ था। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद मे हम शैव ईश्वरत्व पाते हैं। शतपथ ब्राह्मण मे देवताओं मे विष्णु को अधिक मान मिला किन्तु कृष्ण का पूजन उस समय तक नही चला था। शतपथ ब्राह्मण ही मे दक्ष और पार्वती को बलिप्रदान का उल्लेख है। श्रीदेवी का आवाहन प्रथम तैत्तिरीयारण्यक में किया गया। कृष्ण ने सरस्वती का तथा शाम्ब ने सूर्य का पूजन चलाया। सूत्रकाल में अनार्यों द्वारा बहुतायत से हिन्दूमत ग्रहण होने के कारण उनकी धार्मिक योग्यतानुसार कुछ साधारण देवताओं की प्रधानता हिन्दूमत में बढ़ने लगी। इसलिये रुद्र की उन्नति फिर से होने लगी और उनके अनुयायियों मे भूत-प्रेतादि भी सम्मिलित हो गये। महाभारत-काल में बंगाल मे अनार्यों की बस्ती प्रचुरता से थी। सूत्रकाल मे इन लोगों के समूह के समूह एक बारगी हिन्दू हो गये। इनमे कराल देवताओं की परम प्रचुरता थी। इसलिये बंगाली हिन्दू धर्म मे चक्र-पूजन, काली, भैरव, कापालिक आदि की प्रधानता हो गई।

जब रुद्र का महत्त्व अनार्यों के कारण बढ़ा और उनको संहार का कार्य मिलने का समय आने लगा, तब जगदुत्पादक की भी आवश्यकता पड़ी और इसलिये ब्रह्मा का विचार उठने लगा। ब्राह्मण-काल पर्यन्त ईश्वर से पृथक् ब्रह्मा का कोई विचार नहीं समझ पड़ता और विष्णु भी जगत्संचालक नही ज्ञात होते। सब से पहले नारायण ने ब्रह्मा को जाना। सूत्रकाल मे इन तीनों विचारों के उठने का मसाला एकत्रित हो गया और बौद्ध काल में उनके त्रिरत्न के जोर पर हिन्दुओं में त्रिमूर्ति का भाव उठकर उसकी दृढ़ता हुई तथा अवतार का विचार भी पुष्ट हुआ। इस प्रकार वर्तमान हिन्दूमत के इन भिन्न विचारों का बीजारोपण भी सूत्रकाल में हो गया, और समय पर ब्राह्मण धर्म से ही हिन्दू धर्म निकला।

प्राचीन हिन्दू धर्म ब्राह्मण-काल-पर्यन्त रहा और नवीन बौद्धकाल के पीछे से है। धार्मिक उन्नति के लिए सूत्रों तथा बौद्धों के समयों को परिवर्तन-काल मान सकते हैं। वैदिक समय में हिन्दूमत का [illegible] हुआ, ब्राह्मण काल में उसका पूर्णोद्धार [illegible] किया गया तथा [illegible]
[illegible] पर [illegible] [illegible]

हुआ और पीछे से वर्तमान हिन्दूमत की दृढ़ता देखने में आई।

मोहंजो दड़ो और हड़प्पा में सिंह वाहिनी मातृदेवी या पृथ्वी देवी की मूर्तियां बहुधा मिलती हैं। यही शक्ति पूजन का मूल था। त्रिनेत्र शिव भी पशुपति के रूप में (हाथी, चीता, भैंसा और गैंडा के निकट) मिलते हैं अथच योनि (अर्घे) और लिंग के रूप में भी। वे दो मृग चर्मों पर बैठे हैं। जानवरों का भी पूजन था तथा सींग देवत्व का चिन्ह था। गिरिपूजन भी चलता था। ऋग्वेद में शिव केवल ३३ देवताओं में से थे, इन्द्र मुख्य थे और विष्णु उपेन्द्र। शक्ति ईश्वर में ही थी, किन्तु मुख्यता इन्द्र, अग्नि और वरुण की थी। यजुर्वेद और अथर्ववेद में शैव ईश्वरत्व है जो औपनिदकाल तक चला। यजुर्वेद से यज्ञों का महत्व बढ़ा जो ब्राह्मण काल में कर्म काण्ड के साथ वृद्धिगत हुआ। आरण्यकों और उपनिषदों के साथ ज्ञान काल सबलता पूर्वक चला तथा परमेश्वर के निर्गुण भाव पर बल बढ़ा। निर्गुण परमात्मा निष्कल परब्रह्म परमेश्वर था, और सगुण सकल, अपरब्रह्म ईश्वर। अनन्तर बृहस्पति, कपिल, जैमिनि और बुद्ध के साथ शंकावाद उठकर पुष्ट हुवा तथा आचारात्मक बौद्ध धर्म स्थापित होकर शैव ईश्वरत्व शिथिल पड़ा। यह शंकावाद लोकायत विचारों से चला था। निर्गुण ब्रह्म पर साधारण जन समुदाय की श्रद्धा न जमने का यह फल था। कपिल का प्रादुर्भाव गौतम बुद्ध (५६३ बी० सी०) के पूर्व हो चुका था। बृहस्पति शायद कपिल से भी पूर्व के थे और जैमिनि कपिल और बुद्ध के बीच में समझ पड़ते हैं। बौद्धमत का प्रचार याज्ञिक रीतियों से अश्रद्धा तथा निर्गुण ब्रह्म की ओर लोक रुचि की कमी से हुआ। इन विचारों के कारण ईश्वरवाद को भारी धक्का लगा।

ऐसी दशा में महर्षि बादरायण व्यास ने पांचवीं शताब्दी बी० सी० के लगभग भगवद्गीता का मूल रूप रचा जिसमें हिन्दू निर्गुणवाद के साथ सगुणवाद मिलाकर ईश्वरभक्ति को दृढ़ किया। अब तक देश में वेदों का मत साहित्यात्मक था उपनिषदों का तर्कात्मक, तथा बुद्ध का आचारात्मक। आपने गीता में इन तीनों गुणों के साथ सगुण विश्वासात्मक मत भी जोड़कर हिन्दू मत को सर्व-

साधारण में फैलने के योग्य बनाया। सगुणत्व के एक मोटिया भाव होने से आपने गीता में कम से कम विश्वासात्मिकता रक्खी अथच यथासाध्य स्थूलता न आने दी। अतएव इस काल हमारे सामने बौद्ध तथा गीता के दो मत ऐसे आये जो दो महोपदेशकों द्वारा प्रचारित थे। इधर वाल्मीकीय रामायण (छठी से तीसरी शताब्दी बी० सी०) तथा कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र (तीसरी से पहली शताब्दी बी० सी०) में हमें एक तीसरा मत मिलता है जो महोपदेशकों द्वारा तो समर्थित न था, किन्तु देश में प्रचलित खूब था। इसी के सुधारने के बुद्धदेव और बादरायण ने असफल प्रयत्न किये।

इस प्रचलित मत में अवतार नहीं हैं, तथा वैदिक देवता एवं काम, कुबेर, शुक्र, कार्तिकेय, गंगा, लक्ष्मी, उमा आदि देवी-देवता हैं। विष्णु और शिव की महत्ता है। नाग, वृक्ष, नदी, तड़ागादि पूजित हैं। देवताओं के मन्दिर और प्रतिमायें हैं किन्तु शिव लिंग नहीं। पशुबलि है। आवागमन सिद्धान्त की पूर्ण उन्नति नहीं है। तीसरी शताब्दी बी० सी० के महानारायणीय उपनिषद में विष्णु वासुदेव हैं। प्रतिमा कल्प सूत्र में है किन्तु उसके पूजन का आदेश नहीं। प्राचीन ग्रीक लेखकों की साक्षी से गंगा स्नान में पुण्य माना जाता था। यह पुण्य गीता की गंगा में नहीं है। अर्थशास्त्र में छोटे बड़े देवता हैं। पहाड़ों, नदियों, वृक्षों, आग, चिड़ियों, नागों, गायों आदि के पूजन मरी आदि से बचने को किये जाते थे, तथा इसी अभिप्राय से रीतियों, मन्त्रों और जादू के काम कराये जाते थे। आवागमन, कर्म और मुक्ति के कथन नहीं हैं। यह धर्म कुछ-कुछ अशोक वाले के समान है।

बादरायण व्यास ने वासुदेव मत को वेद विरुद्ध मान कर उसकी समीक्षा की है। इधर गीता में स्वयं कृष्ण विष्णु और वासुदेव हैं तथा शैव माहात्म्य भी गाया है। चौथी शताब्दी से पूर्व वाले बौधायन ने गीता का एक अवतरण दिया है, तथा तीसरी शताब्दी बी० सी० में प्राप्त निद्देस नामक बौद्ध ग्रन्थ में स्मृत-पुराण है, किन्तु वह गीता में नहीं है। इससे गीता का अस्तित्व पांचवीं शताब्दी बी० सी० में जाता है। फिर भी इसमें सांख्य का वेदान्तपन [illegible]

बादरायण के प्रतिकूल है। इससे गीता मे पीछे भी घटा-बढ़ी हुई ऐसा प्रकट है। पाश्चात्य पंडितो ने उसमे पहली दूसरी शताब्दी तक के कुछ विचार दिखलाये है। समझ पडता है कि बादरायण ने गीता में पहले केवल वैष्णव ईश्वरत्व कहा. किन्तु जब आगे चलकर वासुदेव से विष्णु का एकीकरण हुआ, तब वासुदेव सम्बन्धी वैष्णव विचार भी उसमे जुड़ गये। गीता के थोडा ही पीछे से व्यूह-पूजन का बल बढ़ा। इसमे बलराम. प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी ईश्वरांश माने जाते है।

बुद्ध के पूर्व की प्रतिमा मोहंजोदड़ो के अतिरिक्त अब केवल श्री की मिलती है, सो भी सांकेतिक। प्रयोजन यह है कि प्रतिमा है नही किन्तु सकेत से उसका अस्तित्व बतलाया गया है। प्राचीन बौद्ध मूर्तियां भी इसी प्रकार सांकेतिक है। आगे चलकर बौद्धमत और कुशान साम्राज्य के प्रभाव विस्तार से देश मे प्रतिमा पूजन का बल बढ़ा। इसका विवरण दूसरे भाग मे यथा स्थान होगा।

यह भाग अब इसी स्थान पर समाप्त होता है। इस अध्याय मे बुद्ध से पीछे के भी कुछ विवरण आ गये हैं। कारण यह है कि यह विषय बुद्ध पूर्व से उठकर तीसरी शताब्दी बी० सी० तक चला गया है।

बुद्ध पूर्व का भारतीय इतिहास

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	७	वनियर	वनियर
१५	११	भरद्वाज, अग्निवर्चस वशिष्ठ, मित्रयु सावर्णि, सोमदत्ति	भरद्वाज-अग्निवर्चस वशिष्ठ-मित्रयु सावर्णि-सोमदत्ति
१७	१	खंड	बुन्देलखण्ड
२८	१४	इन्द्रद्युम्न परमेष्ठि	इन्द्रद्युम्न—परमेष्ठि
२८	१९	७	६
२९	३	शुक्ल (कृष्ण भाई)	(शुक्ल, कृष्ण भाई)
२९	२२	खष्टांग	खट्वांग
२९	२५	शल	—शल
३१	४	रुरुक	रुरुक के
३१	१०	शेष	शेप
३२	१८	वाह,	वाहु
३४	४	शास्त्रोच्चार	शाखोच्चार
३४	१०	३०	३५
३५	५	श्रुतायुस	श्रुतायुस—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५	२१	३५	— —
३५	२६	१० कारन्धम—अवीक्षित	कारन्धम—१० अवीक्षित
३६	९	अभयद्	अभयद्—
३८	८	संजय	सृ जय
३८	१३	वेदपि	वेदर्षि
३८	२३	चायमान	चयमान
४१	१२	उपयुक्त	उपर्युक्त
४१	१९-२०	३०. जह्नु—अजक	जह्नु—३० अजक
४३	८	ज्यामन	ज्यामघ
४७	२१	के	के पिता
४७	अन्तिम	सत्य—शिवस्त	सत्य शिवस्त
४८	६	गुरु कावशेय	तुरकावशेय
४८	७	पुराग	एवं पुराण
५६	१७	पशाम्बारे	प्रशाम्बारे
५८	१८	भ्रमवर्गो	भृम्रवर्गो
६०	२३	प्राकृति गस्मदनों	प्राकृतिक मदनों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७२	१	सावर्णि	सावर्णि
८१	१६	जाते ही थे	जाते ही न थे
९६	अन्तिम	५६	६५
९८	१०	१९०	१९१
९९	१९	मातरिश्वम्	मातरिश्वन्
१०१	७	पुरुकुम्त	पुरुकुत्स
१०६	२३	चार	चार में
१०७	१२	७९व	७९वां
१०९	३	पतवारों	बादबानों
११३	२	तुर्ग	दुर्ग
११३	१४	पतवारों	बादबानों
११६	७	हुइ	हुई
११८	शिरोभाग	६	७
१२३	अन्तिम	वध्रश्व	वध्र्यश्व
१२६	११	परादास	परोदास
१३२	४	माई	भाई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४३	९	रक्खे	रक्खो
१४४	१५	दैन्य	दैत्य
१४७	अन्तिम	वतन	वर्तन
१६९	५	भाग	भोग
१७४	अन्तिम	प	पौड्र
१८१	१६	पांचाल	कोशल
१८६	१७	उत्तरायथ	उत्तरापथ
१९०	२३	योवनावस्था	यौवनावस्था
१९०	२८	संभव:	सभवत:
१९३	१२	बाहर की	बाहर भी
२००	३	कन्द	स्कन्द
२०४	२	ये	ये
२०४	१२	मुयाम	मुदाम
२०५	२१	चयन	जगंत
२०८	८	शर्फात	शर्यात
२०८	१३	विदेन	निदेन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१२	१७	मृगायार्थ	मृगयार्थ
२१४	१२	दोण	द्रोण
२२४	११	पारव	पौरव
२२९	९	३५	३४
२३७	२६	यश	यह
२४०	१६	तोवश	तौर्वश
२४०	२५	मर्दनापुर	मदनापुर
२४२	१२	वश ..नाम था	(वश . नाम था)
२४३	१२	अयागव	अयोगव
२४४	१२	चाक्षुस	चाक्षुष
२४६	२१	तिमिध्वज, शम्बर	तिमिध्वज शम्बर
२४८	११	शिवि	शिव
२५२	१९	वैराग्य	वैराग्य,
२५७	१७	रहुँचे	पहुँचे
२६०	शिरोभाग	१२	१३
२६४	२७	सिहिका	सिंहिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६८	१९	है	है"
२६९	११	महात्म्य	माहात्म्य
२७५	४	व्यवहार	व्यवहार से
२७६	१८	पुर्वोक्त	पूर्वोक्त
२७९	२५	कवल	केवल
२८७	१०	वाध्य	वध्य
३०२	१०	वाप्णेयों	वार्ष्णेयों
३२१	अन्तिम	इमेन	इनमें
३२८	२८	शायाभिमान	शौर्याभिमान
३३४	९	अतविपुरी	अतंविपुरी
३३६	१४	फग	पग
३५५	१३	आर	और
३५६	८	कालिया	कालिय
३६९	२०	वाहद्रथ	वार्हद्रथ
३७३	२८	वासदत्ता	वासवदत्ता
४०३	१३	आदि में	आदि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१७	२३	लाहार	लोहार
४१७	२८	च्तत्रिय	च्तत्रिया
४१८	२९	गाहस्थ्य	गार्हस्थ्य

नोट—ग्रन्थ मे बिन्दु, मात्रा आदि कही कहीं छापने मे टूट गये हैं। उन्हे शुद्धिपत्र मे स्थान देने से विस्तार बहुत हो जाता। आशा है कि पाठक महाशय ऐसे स्थानों को सुगमता पूर्वक शुद्ध रूप मे पढ़ लेंगे।

मिश्र बन्धु